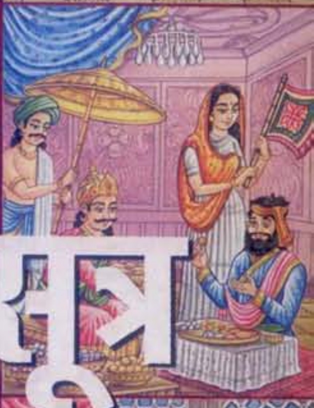

सचित्र औपपातिक सूत्र

श्री अमर मुनि

ILLUSTRATED AUPAPATIK SUTRA

Shri Amar Muni

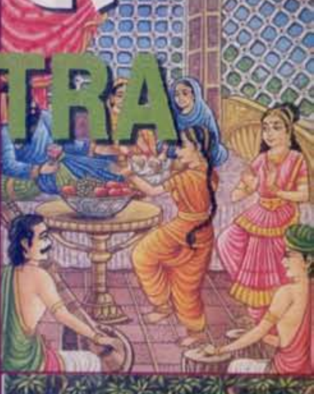

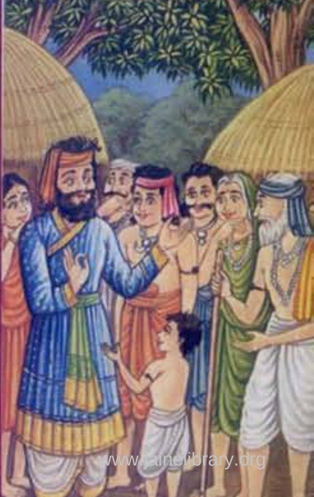

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

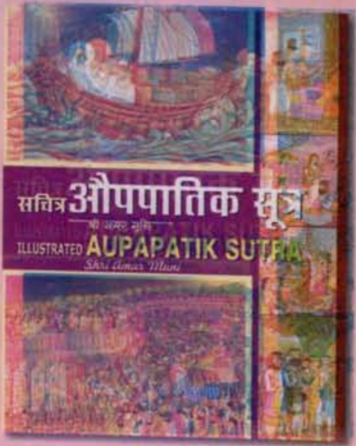

उपपात का अर्थ है, जीव का पुनर्जन्म। किस प्रकार की आचार क्रिया से जीव का उपपात कहाँ (जन्म) होता है, इस विषयक जिज्ञासाओं का समाधान जिस आगम में है, इसका नाम है औपपातिक सूत्र।

इसमें नगरी, उद्यान, राजसभा, राजा, भगवान महावीर का दैहिक सौष्ठव, उनके श्रमण तथा धर्म देशना आदि अनेक विषयों का विस्तृत वर्णन है। इसी में अम्बड़ परिव्राजक के सम्बन्ध में तथा तत्कालीन तापस व परिव्राजक परम्परा का विशद वर्णन भी उपलब्ध है।

भगवान महावीर कालीन समाज, सम्प्रदाय व राजनीति का भी वर्णन इस आगम में उपलब्ध है।

श्री अमर मुनिजी का इस आगम पर सारगर्भित विवेचन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

Upapat means reincarnation of a being or soul. What conduct and action leads to reincarnation at which specific genus or place? The Agam that contains answers and explanations to such questions about rebirth is called **Aupapatik Sutra.**

It contains detailed description of a city, garden, king s assembly, king, the physical excellence of Bhagavan Mahavir s body, his Shraman disciples, his sermon, and many other topics. This also contains detailed information about Ambad Parivrajak and the Tapas and Parivrajak traditions of that period.

This Agam also contains information about the society, religious sects, and political conditions of Bhagavan Mahavir s period.

The informative and lucid commentary of this Agam by Shri Amar Muni ji is valuable in many respects.

Rs. 600.00 ONLY

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र
औपपातिक सूत्र

(चतुर्दश पूर्वधर स्थविर प्रणीत प्रथम उपांग)

मूल पाठ, हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद, विवेचन तथा रंगीन चित्रों सहित

❖ प्रधान सम्पादक ❖

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य

उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

❖ सह-सम्पादक ❖

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

पद्म प्रकाशन

पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र आगममाला का तेरहवाँ पुष्प

■ सचित्र औपपातिक सूत्र (प्रथम उपांग)

■ **प्रधान सम्पादक**
उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

■ **सह-सम्पादक**
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

■ **अंग्रेजी अनुवादक**
सुरेन्द्र बोथरा, जयपुर

■ **संशोधन**
राजकुमार जी जैन, दिल्ली

■ **प्रथमावृत्ति**
वि. सं. २०५९, चैत्र
ईस्वी सन् २००३, अप्रैल

■ **चित्रांकन**
डॉ. त्रिलोक शर्मा

■ **प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान**
पद्म प्रकाशन
पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

■ **मुद्रण-व्यवस्था**
संजय सुराना
श्री दिवाकर प्रकाशन
ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
दूरभाष : (०५६२) २१५११६५

■ **मूल्य**
छह सौ रुपया मात्र (६००/- रुपये)

© **सर्वाधिकार** : पद्म प्रकाशन, दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ILLUSTRATED

AUPAPATIK SUTRA

(THE FIRST UPANGA WRITTEN BY A CHATURDASH PURVADHAR STHAVIR)

Original Text with Hindi and English Translations, Elaboration and Multicoloured Illustrations

❖ EDITOR-IN-CHIEF ❖

Up-pravartak Shri Amar Muni

(The Disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandra ji M.)

❖ ASSOCIATE-EDITOR ❖

Srichand Surana 'Saras'

PADMA PRAKASHAN

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

THE THIRTEENTH NUMBER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES

- ILLUSTRATED AUPAPATIK SUTRA
  (The First Upanga)

- *Editor-in-Chief*
  Up-pravartak Shri Amar Muni

- *Associate-Editor*
  Srichand Surana 'Saras'

- *English Translator*
  Surendra Bothara, Jaipur

- *Copy Editing*
  Raj Kumar Jain, Delhi

- *First Edition*
  Chaitra, 2059 V.
  April, 2003 A.D.

- *Illustrator*
  Dr. Trilok Sharma

- *Publisher and Distributor*
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040

- *Printer*
  Sanjay Surana
  Shree Diwakar Prakashan
  A-7, Awagarh House, M.G. Road, Agra-282 002
  Phone : (0562) 2151165

- *Price*
  Six Hundred Rupees only (Rs. 600/-)

© *Copyright* : Padma Prakashan, Delhi

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

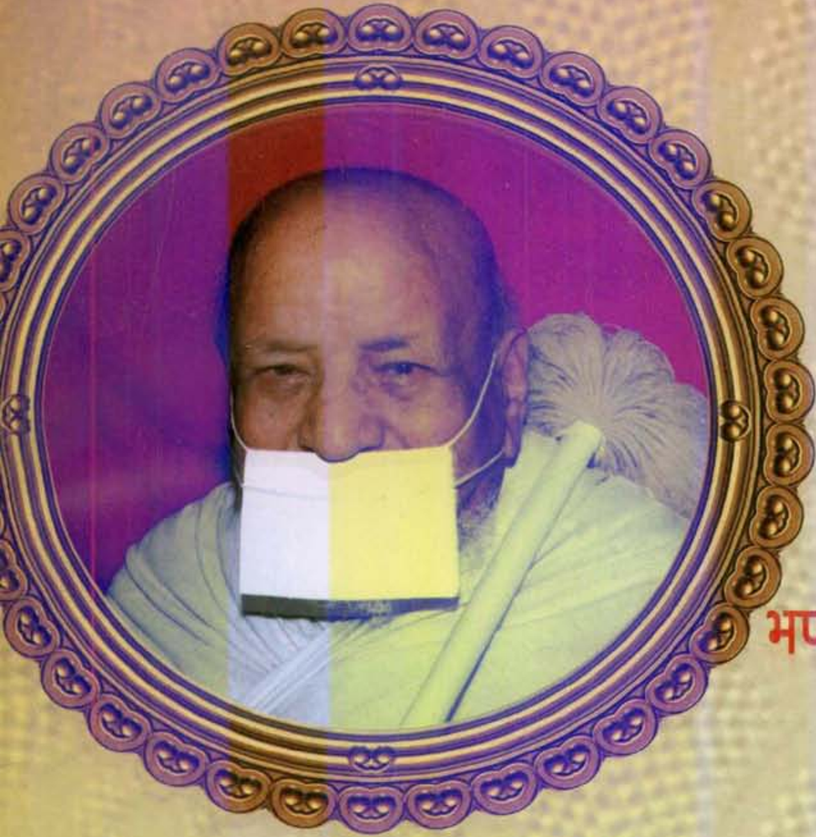

राष्ट्रसन्त पूज्य गुरुदेव
उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक
भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म.
की दीक्षा हीरक जयन्ती
के उपलक्ष्य में
सादर समर्पित

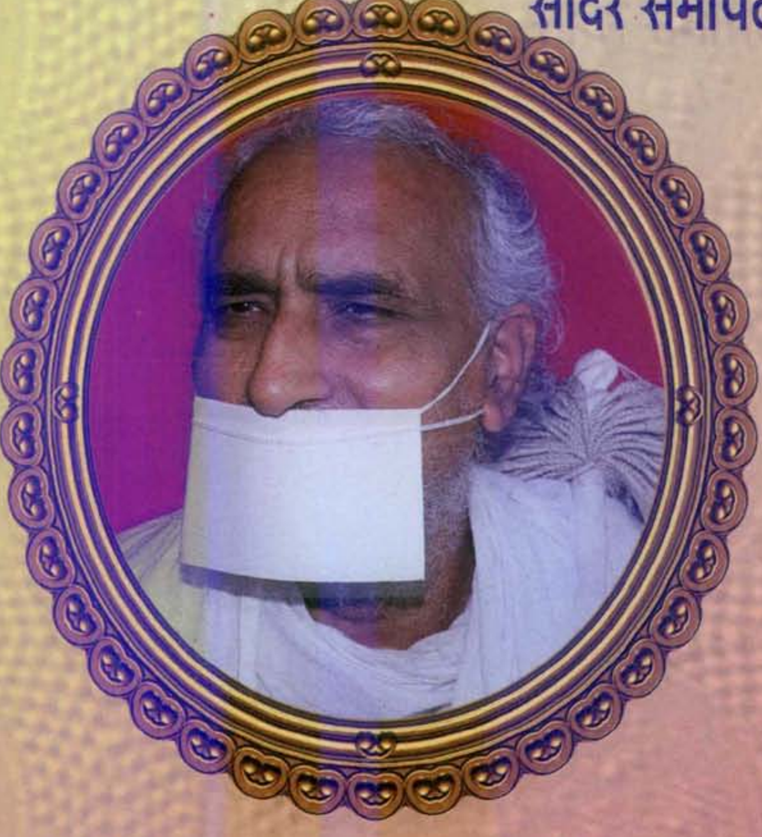

रुदेव का
रण-चंचरीक
मर मुनि
उप प्रवर्त्तक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सेवा में उदार सहयोग दाता

श्री सतपाल जी प्रेमलता गोयल, पेहवावाले

श्री राजेश गोयल, पेहवावाले

श्री दुर्गाचरण गोयल, गोविन्दगढ़ मण्डी

डॉ. नीरज जैन डॉ. मोनिका जैन,
पश्चिम विहार, दिल्ली

श्री रामेश्वरदास जैन,
चन्द्रलोक दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सेवा में उदार सहयोग दाता

श्री रमेश भाई जैन (शाह) मालती बेन शाह;
गुजरात विहार, दिल्ली

श्री केतन सोनल जैन (शाह)
गुजरात विहार, दिल्ली

श्री निमेष नमिता जैन (शाह)
गुजरात विहार, दिल्ली

श्री रामकर्ण गोयल, कुरुक्षेत्र

श्री अशोक कुमार गोयल, कुरुक्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सेवा में उदार सहयोग दाता

श्री अभय कुमार रेणु जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली

श्री श्यामलाल जी जैन
शास्त्री नगर

श्री सुभाष सुलोचना जैन
हुड्डा कॉलोनी, पानीपत

श्री पवनकुमार सुमन रानी जैन
मॉडल टाऊन, पानीपत

श्री अनिल मंजु जैन
विश्वा अपार्टमेंट, दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

हमारे मार्गदर्शक, प्रेरणा स्रोत, राष्ट्रसन्त गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. फरमाते थे– "जिसके काम में कठिनाइयाँ नहीं आती उसे काम करने का आनन्द भी नही मालूम ! काम करने का आनन्द उसे ही आता है, जो हर कठिनाई को साहस के साथ पार कर जाता है।"

उप प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. भी ऐसे ही साहसी और संकल्पबली संत हैं, जो हर कठिनाई से जूझना जानते हैं और कठिनाईयों पर विजय पाना भी सीखा है। जब से आपश्री ने सचित्र आगम प्रकाशन का महान कार्य प्रारम्भ किया, इस शुभ काम में अनेक कठिनाईयाँ आई, समस्याएँ आयीं। बहुत लोगों ने निराशा और हतोत्साह की बातें की। किन्तु आपश्री ने अपना एक ही संकल्प दोहराया, "मुझे मेरे गुरुदेव ने आज्ञा दी है, कि जिनवाणी के प्रचार–प्रसार में अपना जीवन लगा दें। संसार में सच्चे ज्ञान का प्रकाश करने के समान दूसरा कोई काम नहीं है। तब से मैंने यह काम हाथ में लिया है और इसे जीवन भर करते रहना है। जिन्होंने प्रेरणा दी है, आज्ञा दी है वे इसे पूरा करने की शक्ति भी देंगे।"

हमें प्रसन्नता है और गौरव भी है कि गुरुदेव श्री अमर मुनि जी के प्रबल पुरुषार्थ और दृढ़ संकल्प बल के सहारे अब तक हमने बत्तीस सूत्रों के प्रकाशन की योजना में लगभग आधे से ज्यादा सत्रह सूत्रों का काम सम्पन्न कर लिया है। अब तक चार मूल सूत्र (उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी व अनुयोगद्वार), आचारांग, ज्ञाताधर्मकथा, उपासगदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, रायपसेणिय सूत्र, उववाइय सूत्र, निरयावलिया (पाँच सूत्र) विपाक श्रुत यों कुल १७ आगमों का कार्य सम्पन्न हो रहा है। तथा आगे भी हमारा कार्य इसी उत्साह के साथ चलता रहेगा, यह विश्वास है।

सचित्र आगमों का प्रकाशन देश–विदेश में सर्वत्र प्रशंसा व आदर प्राप्त कर रहा है। जो लोग शास्त्र के नाम से डरते थे वे भी अब इनका पठन–पाठन करने में रुचि ले रहे हैं और पढ़कर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। आगमों का गहन भाव व कठिन शब्दों को अंग्रेजी माध्यम से वे लोग बड़ी सरलता के साथ समझ लेते हैं।

हम यही चाहते हैं, कि इस जिनवाणी को प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति भाव पूर्वक पढ़े और पढ़कर जीवन को उच्च आदर्शों की ओर मोड़े।

इस शुभ कार्य में गुरुदेव की प्रेरणा और प्रभाव से सहयोगी जुट रहे हैं और जुटते रहेंगे। शुभ भावना पूर्वक किये शुभ कार्य में कभी कोई कमी नहीं आती, इस विश्वास के साथ हम पाठकों के हाथों में यह आगम प्रस्तुत कर रहे हैं।

महेन्द्रकुमार जैन

अध्यक्ष

पद्म प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

PUBLISHER'S NOTE

Rashtra Sant Gurudev Bhandari Shri Padma Chandra Ji M., our guide and source of inspiration, used to say—"He who does not face difficulties in doing a work remains ignorant of the joy of working. Only he enjoys working who bravely crosses every hurdle."

Up-pravartak Shri Amar Muni Ji M. is one such brave and resolute *Sant* (sage) who knows how to tackle a problem and win over it. Since his launching this great project of publication of *Illustrated Agams* he has come across many problems and difficulties. Many a people tried to discourage him and painted gloomy pictures. But on every such occasion he just reiterated his singular resolve—"My Gurudev has commanded me to devote my life to the mission of popularizing and spreading *Jinavani* (the sermon of the *Jina*). In this world there is nothing more important than spreading the light of true knowledge. Since that day I have taken up this mission and this endeavour will continue till I breathe my last. He who has inspired and commanded me will also provide the strength to accomplish the mission."

We take pleasure and pride in conveying that with the help of the unwavering perseverance and resolve of Gurudev Shri Amar Muni Ji we have successfully completed the publication of seventeen *Sutras*. This is more than half of the planned project of thirty two *Sutras*.

In this project, work on the following seventeen *Agams* has been completed—Four *Mool Sutras* (*Uttaradhyayana Sutra, Dashavaikalika Sutra, Nandi Sutra,* and *Anuyoga Dvar Sutra*), *Acharanga Sutra, Jnata Dharma Katha, Upasak-dasha, Antakrid-dasha, Anuttaropapatik-dasha, Rajaprashniya Sutra, Aupapatik Sutra, Niryavalika* (5 Sutras), and *Vipaak Sutra*. We are confident that our efforts will continue unabated in future.

The publication of *Illustrated Agams* is being lauded in the country as well as outside the country. Those who avoided even talking about scriptures are now taking interest in reading and teaching these. They express their joy and contentment after reading these editions. With the help of English rendering it has become easy for them to understand the profound and complex ideas discussed in *Agams*.

It is our earnest desire that everyone reads the sermon of the *Jina* with reverence and devotion and steers his life towards lofty ideals.

With the influence of and inspiration from Gurudev this auspicious mission is drawing assistance from all directions and will continue to do so. With the confidence that a pious deed done with pious feelings is never impeded, we present this *Agam* to our readers.

Mahendra Kumar Jain
PRESIDENT
Padma Prakashan

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकथ्य : प्रस्तावना

जैन आगम साहित्य का भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान है। केवल अध्यात्म एवं तत्त्वज्ञान की दृष्टि से ही यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था व सांस्कृतिक सम्पदा को समझने के लिए, विभिन्न धार्मिक परम्पराओं व विचार धाराओं के परिज्ञान के लिए भी इसका अपना महत्त्व है। बिना जैन आगमों का अध्ययन किये, भारतीय धर्म व संस्कृति का अध्ययन अधूरा ही रहता है।

उपांग नाम की सार्थकता

प्राचीनकाल में अर्थात् भगवान महावीर की उपस्थिति में आगमों के दो प्रकार के वर्गीकरण थे। **एक**, पूर्व और अंग। पूर्वों का अध्ययन विशिष्ट बुद्धिसम्पन्न, विशेष उपधान तप करने वाले श्रमण करते थे। अंगों का अध्ययन सभी श्रमणों के लिए आवश्यक था। **दूसरा**, अंग प्रविष्ट तथा अंग बाह्य। अंग प्रविष्ट आगमों में दृष्टिवाद सहित १२ अंग सूत्रों की गणना थी, शेष सभी आगम अंग बाह्य थे। भगवान महावीर निर्वाण के पश्चात् आगमों का जब संकलन हुआ तो उसका वर्गीकरण एक भिन्न प्रकार से किया गया। अंग आगम तथा उपांग आगम। इसके पश्चात् मूल व छेद के रूप में भी आगमों की सूची बनाई गई।

अंग सूत्र बारह थे, किन्तु दृष्टिवाद लुप्त होने के पश्चात् ग्यारह अंग ही विद्यमान रहे। उपांगों की संख्या बारह है। *'उपांग' शब्द से यह सूचित होता है कि इनका अंगों के साथ सम्बन्ध है, किन्तु वास्तविकता यह है* कि अंगों व उपांगों की विषय वस्तु में परस्पर कोई सम्बन्ध या पूरकता जैसी बात नहीं है। उपांगों का विषय प्रायः स्वतंत्र ही है। फिर इन्हें उपांग क्यों कहा गया? यह चिन्तन का विषय है।

आगमों के टीकाकार आचार्यों के मतों का समीक्षण करके व उनके विषय को समग्र रूप में हृदयंगम करके आगमों के गम्भीर ज्ञाता और विशिष्ट व्याख्याता आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने लिखा है, कि "अंगों के साथ उपांगों का प्रत्यक्ष रूप में भले ही कोई तार्किक सम्बन्ध न लगता हो, किन्तु उनकी विषय वस्तु को विशद रूप में व विस्तार पूर्वक प्रस्तुत करने की दृष्टि से अंगों के साथ उपांगों का परोक्ष सम्बन्ध जुड़ा है। इसलिए आचार्यों ने एक-एक अंग का एक-एक उपांग निश्चित किया है।"

आचारांग सूत्र प्रथम अंग है और उसका उपांग है उववाइय सुत्त (औपपातिक सूत्र)। प्रत्यक्ष रूप में आचारांग का विषय गहन अध्यात्म, अहिंसा, संयम, सम्यक्त्व आदि से सम्बन्धित है, जबकि औपपातिक में विविध विषयों का विस्तार पूर्ण वर्णन है। आचारांग सूत्रात्मक शैली में है। छोटी-छोटी वाक्य रचना है। जबकि औपपातिक के सूत्र विस्तृत है एवं लम्बे-लम्बे समासान्त पाठ हैं। किन्तु गहराई से विचारने पर आचारांग सूत्र का उत्थान जिस विषय से हुआ है वह है-

एवमेगेसिं णो णायं भवति-
अत्थि मे आया ओववाइए
णत्थि मे आया ओववाइए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ मनुष्यों को यह ज्ञात नहीं होता, मेरी आत्मा उपपात (पुनर्जन्म) लेने वाली है अथवा मेरी आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली नहीं है।

इसी आदि सूत्र वचन का विस्तार सम्पूर्ण औपपातिक सूत्र में दृष्टिगोचर होता है। औपपातिक शब्द ही आचारांग के साथ इस उपांग का सम्बन्ध सूचित करता है। आचार्य अभयदेव सूरि अपनी वृत्ति में लिखते हैं—**उपपतनं उपपातः। देव—नारक—जन्म—सिद्धि गमनं च। अतः तमधिकृत्य कृतमध्ययनमौपपातिकम्**—उपपात का अर्थ है उत्पत्ति या जन्म। देवता, नारक, मानव आदि का जन्म तथा आत्मा का सिद्धिगमन, यह सब विषय 'उपपात' शब्द से ग्रहीत होते हैं। अतः उपपात का विषय जिसमें है, वह औपपातिक सूत्र है।

इस प्रकार विषय का आन्तरिक विश्लेषण करने पर प्रथम अंग आचारांग के साथ इस उपांग का सीधा सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है।

प्रतिपाद्य विषय

औपपातिक सूत्र के दो विभाग हैं—प्रथम, समवसरण तथा दूसरा, उपपात।

प्रथम समवसरण विभाग में भगवान महावीर का, उनके परम भक्त राजा कूणिक का, चम्पानगरी का, कूणिक की दर्शन यात्रा एवं भगवान के श्रमणों का तथा भगवान की देशनान्तर्गत बारह प्रकार के तपों का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन है। यह वर्णन बड़ा ही रोचक शैली व साहित्यिक अलंकार पूर्ण भाषा में है।

चम्पापति कूणिक का वर्णन इस सूत्र में भी है और निरयावलिका में भी। हमने निरयावलिका के परिशिष्ट में श्रेणिक एवं कूणिक से सम्बन्धित पूरा वर्णन दिया है। अतः यहाँ इस विषय में अधिक कुछ नहीं लिखा है।

दूसरे विभाग में उपपात—अर्थात् किसका जन्म कहाँ होगा। इस विषय पर गणधर गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते हुए विविध प्रकार के मनुष्यों के स्वभाव, शील व आचार का वर्णन करके उसके अनुसार उनका आगामी भव कहाँ होगा। उनकी आत्मा किस गति में उत्पन्न होगी, इस जिज्ञासा का समाधान है। यह विषय बहुत ही विस्तृत है। इसके अन्तर्गत उस युग में विविध प्रकार का तप करने वाले परिव्राजकों के विभिन्न मतों व शाखाओं का बड़ा ऐतिहासिक रोचक वर्णन है। पता चलता है, उस युग में परिव्राजक के रूप में कितने तपस्वी, किस प्रकार का आचार—विचार रखते थे। किस प्रकार की साधना करते थे। परिव्राजकों की विभिन्न शाखाओं का जितना विस्तृत वर्णन इस सूत्र में है, इतना विस्तृत वर्णन तो परिव्राजकों की मूल वैदिक परम्परा के किसी प्राचीन ग्रन्थ में देखने को भी नहीं मिलता।

अम्बड़ परिव्राजक व उसके सात सौ शिष्यों के आचार का वर्णन पढ़ने से लगता है, यह परिव्राजक परम्परा श्रमण परम्परा के बहुत ही नजदीक थी एवं इसके साथ इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। आचार में कुछ भिन्नता होते हुए भी वे परिव्राजक भगवान महावीर को ही अपना आराध्य देव मानते हैं, उन्हीं की शरण लेते हैं और उनके द्वारा प्ररूपित आचार के बहुत से नियमों का दृढ़ता के साथ पालन करते हैं।

भगवान महावीर ने भी अम्बड़ परिव्राजक को श्रेष्ठ तपस्वी माना है और अगले भवों में मोक्ष जाने की घोषणा भी की है। भगवान महावीर के प्रति उसकी अडिग आस्था थी, श्रद्धा थी। अम्बड़ अनेक प्रकार की चमत्कारी लब्धियों का धारक था। अवधिज्ञानी था और औद्देशिक—नैमित्तिक आहार नहीं लेता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पता चलता है, यह परिव्राजक परम्परा निर्ग्रन्थ परम्परा एवं वैदिक परम्परा के बीच की कोई कड़ी थी, जो आज प्रायः लुप्त हो चुकी है, परन्तु उस युग में बहुत व्यापक प्रचार व प्रभाव था इसका।

इसके साथ ही आजीवकों का, निन्हवों का, केवलि समुद्घात का तथा सिद्धों का बहुत ही रोचक वर्णन इस सूत्र में है।

वर्णन शैली

इस सूत्र की वर्णन शैली प्रायः सभी आगमों से भिन्न विशिष्ट प्रकार की है। जिस विषय का वर्णन किया है उसका सर्वांग यथार्थ वर्णन है। जैसे भगवान महावीर के शरीर–सौष्ठव का वर्णन, चम्पानगरी का वर्णन, उद्यान का वर्णन, कूणिक राजा की दर्शन यात्रा का वर्णन आदि। इतना विस्तृत वर्णन, इतनी उपमाएँ, इतना भाषा सौन्दर्य अन्यत्र देखने में नहीं मिलता। यही कारण है कि भगवती जैसे अंग सूत्रों में भी जहा उववाइए कहकर इस वर्णन को महत्त्व दिया है। आगमों में नगर, उद्यान, राजा आदि के वर्णन में वण्णओ–संक्षिप्त सूचन करके उववाइय सूत्रानुसार समझने की सूचना, इस सूत्र का महत्त्व सिद्ध करती है।

मूल आधार

मैंने औपपातिक सूत्र का अनुवाद/विवेचन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि जहाँ भी कोई कठिन पारिभाषिक शब्द आया है, उसका सरल भावानुवाद या संक्षिप्त परिभाषा वहीं दे दी जाय, जिससे पाठक उस शब्द का परम्परागत अर्थ व भाव सम्यक् रूप में शीघ्र समझ सकें। इससे विवेचन अलग लिखने की भी आवश्यकता नहीं रही।

इस सम्पादन में मैंने तीन प्रतियों का मुख्य आधार लिया है–(१) आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर का उववाइय सूत्र, सूत्र संख्या व मूल पाठ इसी का मान्य रखा है, (२) आचार्य अभयदेव सूरि कृत टीका आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, तथा (३) आचार्य श्री घासीलाल जी म. कृत संस्कृत हिन्दी टीका। अनेक पारिभाषिक शब्दों के स्पष्टीकरण में यह टीका सहायक बनी है। अतः यहाँ उक्त आगमों के सम्पादकों व प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मेरे जीवन में जिनवाणी के प्रति अडिग आस्था–विश्वास व अध्ययन करने की जिज्ञासा जगाने में मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव उ. भा. प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. का अविस्मरणीय उपकार है। उनके उपकारों के प्रति आभार प्रकट करना तो मात्र एक औपचारिकता होगी। सचित्र आगम प्रकाशन के कार्य में सतत प्रेरणा देने में उप प्रवर्तिनी श्री आज्ञावती जी म. एवं तपाचार्या श्री मोहन माला जी म. आदि का योगदान भी स्मरणीय है। सम्पादन व चित्रांकन–प्रकाशन का दायित्व निभाने में श्रीचन्द जी सुराना, अंग्रेजी अनुवाद में श्री सुरेन्द्र जी बोथरा व सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन का सहयोग तो सदा मिलता ही रहा है। साथ ही अनेक गुरुभक्त आगम प्रेमी दाताओं ने खर्चीले प्रकाशन कार्य का दायित्व सदैव की भाँति निभाया है। उन सबका सहयोग इस कार्य में जुड़ा है। मैं सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

पाठक पूर्ण शुद्धता व यतनापूर्वक आगमों का स्वाध्याय करेंगे, इसी आशा के साथ....।

–उपप्रवर्त्तक अमर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

FROM THE EDITOR'S PEN

Jain *Agamic* literature occupies a special position in Indian literature. It is important not only from the spiritual and philosophical angle but also from the angle of understanding ancient Indian social systems and cultural heritage as well as acquiring information about various diverse religious traditions and schools. Without the study of Jain *Agams* the study of Indian religions and culture remains incomplete.

RELEVANCE OF THE TERM UPANGA

In ancient times or during Bhagavan Mahavir's period there were two classifications of *Agams*. First of which was *Purvas* (the subtle canons numbering fourteen) and *Angas*. The *Purvas* were studied by exceptionally accomplished and endowed *Shramans* who indulged in special austerities and meditation. The study of *Angas* was compulsory for all *Shramans*. The second classification was *Anga Pravisht* (*Angas* proper) and *Anga Bahya* (other than the *Angas*). *Anga Pravisht* (*Angas* proper) *Agams* included twelve *Anga Sutras* inclusive of *Drishtivad*. All the remaining *Agams* were *Anga Bahya* (other than the *Angas*). After the nirvana of Bhagavan Mahavir when *Agams* were re-compiled they were classified in a different way—*Anga Agam* (*Angas* proper) and *Upanga Agam* (Auxiliary *Angas*). Sub-categories like *Mool* and *Chhed* were evolved at a later date.

As stated, originally there were twelve *Anga Sutras*. However, with the extinction of *Drishtivad* only eleven *Angas* were extant. The number of *Upangas* is twelve. The term '*Upanga*' (auxiliary parts) implies that these texts are connected with *Angas*. But there is no apparent mutual relationship or complementary nature in the subject matter of *Angas* and *Upangas*. The *Upangas* mostly deal with independent subjects. Why then they were called *Upangas* (auxiliary parts) ? This is a matter worth consideration.

After reviewing the opinions of the commentator *acharyas* and comprehensively studying the contents of *Agams*, Acharya Shri Atmaram ji M., a profound scholar and distinguished commentator in his own right, has stated—"On a cursory look there is no apparent and logical relationship of *Upangas* with *Angas*. But there certainly is an indirect relationship from the angle of a detailed and elaborate presentation of the themes of the *Agams*. That is why past *acharyas* have assigned one *Upanga* to each *Anga*."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Acharanga Sutra is the first *Anga* and its *Upanga* is *Uvavaiya Sutta* (*Aupapatik Sutra*). On a cursory glance the subject matter of *Acharanga* is related to profound themes like spiritualism (*adhyatma*), ahimsa, ascetic-discipline (*samyam*), and righteousness (*samyaktva*) whereas *Aupapatik* contains elaborate descriptions of a number of varied things. *Acharanga* is in aphoristic style (*sutratmak shaili*) with short structured and non-descriptive sentences whereas *Aupapatik Sutra* contains extremely long and descriptive sentences. But on a serious contemplation we find that the introductory theme of *Acharanga* is —

'Some people are not aware of the fact : Is my soul destined to reincarnate (*upapat*) ? Or is my soul not destined to reincarnate ?'

The elaboration of this introductory aphorism can be seen in the whole *Aupapatik Sutra*. The title *Aupapatik* itself informs about the connection of this *Upanga* with *Acharanga*. Acharya Abhayadev Suri writes in his commentary (*Vritti*)—

"*Upapat* means origination or birth. The birth of a god, an infernal being, a human being and others as also the passage of soul to the status of *Siddha* (liberated soul), all these are covered by the term *upapat*. Therefore, that which deals with the subject of *upapat* is called *Aupapatik Sutra*."

Thus on deeper analysis of the subject matter contained, the direct relationship between *Acharanga*, the first *Anga*, and this *Upanga* (*Aupapatik Sutra*) becomes evident.

THE CONTENTS

Aupapatik Sutra has two sections—the first is *Samavasaran* and the second is *Upapat*.

The first section titled *Samavasaran* contains detailed description of Bhagavan Mahavir, his great devotee king Kunik, Champa city, Kunik's going in procession to behold *Bhagavan*, the *Shraman* disciples of *Bhagavan*, and the twelve kinds of austerities (*tap*) prescribed in *Bhagavan's* sermon. This description is in a lucid style and ornamental terminology.

Besides *Aupapatik Sutra* the description of king Kunik, the ruler of Champa city, is also available in *Niryavalika Sutra*. We have included additional information about king Shrenik and king Kunik as appendix in *Niryavalika*. Therefore, detailed elaboration on that topic is not appended here.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

As its title suggests, the second section deals with *Upapat* or who is born where. In reply to the questions of Ganadhar Gautam information about the nature, character, and conduct of different kinds of people has been given along with the destinations of their future birth. This covers a wide range of topics and information. It contains interesting historical information about different sects and branches of Parivrajaks (mendicants) existing during that period and their different types of penances. It reveals details about the conduct of a variety of hermits moving around as Parivrajaks in those days and what kinds of spiritual practices they were involved in. Such detailed description of different branches of Parivrajaks is not available even in the ancient scriptures of the *Vedic* tradition to which the Parivrajaks originally belonged.

On reading the details about the praxis of Ambad Parivrajak and his seven hundred disciples, it becomes evident that this branch of Parivrajaks had affinity and close association with the *Shraman* tradition. Although there were some variations in their conduct, they still considered Bhagavan Mahavir as the object of their worship. They took refuge unto him and strictly followed many of the codes of conduct propagated by him.

Bhagavan Mahavir has also recognized Ambad Parivrajak as an accomplished hermit and announced that he will attain liberation after some births. Ambad had immense respect for and unwavering faith in Bhagavan Mahavir. He was endowed with numerous miraculous powers. He possessed *Avadhi-jnana* (extrasensory perception of the physical dimension, something akin to clairvoyance) and he did not accept food specifically prepared for him.

These evidences indicate that the Parivrajak tradition was some long lost link between the *Nirgranth* (Jain) tradition and the *Vedic* tradition. Although it is almost extinct now, it was highly influential and wide spread during that period.

Besides this, *Aupapatik* contains very interesting details about Ajivak sect, *Nihnavas, Kevali Samudghat,* and *Siddhas*.

STYLE OF DESCRIPTION

This *Sutra* has a unique style of description, very different from almost all other *Agams*. It contains realistic description of every topic it touches. Some examples are—the physical excellence of Bhagavan Mahavir's body, Champa city, garden, king Kunik's procession, etc. Such elaborate description, so many metaphors, and such lucid language is

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

hardly seen anywhere else. That is the reason that even *Anga Sutras* like *Bhagavati Sutra* have recognized the style of description by stating '*jaha uvavaiye*' or 'as in *Aupapatik*'. While describing a city, a garden or a king almost every *Agam* just briefly mentions '*vannao jaha uvavaiye*' or 'description should be read as mentioned in *Aupapatik*'. This confirms the importance of this *Sutra*.

ORIGINAL SOURCES

While translating and elaborating *Aupapatik Sutra* I have taken special care that wherever a difficult technical term appears, its simple explanatory definition is given alongside. This facilitates the reader to understand properly the traditional meaning and sense at once. This also considerably reduced the need of giving separate elaborations.

While editing this edition I have taken three books as authentic sources—(1) *Uvavaiya Sutra* published by Agam Prakashan Samiti, Beawar (Prakrit text and aphorism number taken from this edition). (2) *Tika* by Acharya Abhaya Dev Suri, published by Agamodaya Samiti. (3) Sanskrit and Hindi *Tika* by Acharya Shri Ghasi Lal ji M. These commentaries (*Tika*) have been of immense help in elaborating many technical terms. As such, I express my gratitude for the editors and publishers of these works.

The blessings of my revered Gurudev, Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj, have been the source of my unwavering faith and belief in the sermon of the *Jina*; it was he who instilled in me the curiosity for studying the same. It would, indeed, be just a formality to express my indebtedness to him. I also acknowledge the contribution of Up-pravartini Shri Ajnavati ji M. and Tapacharyaa Shri Mohan Mala ji M. and others for their continued encouragement and support for this *Illustrated Agam* publication project. I have been continuously getting cooperation of Shri Shrichand Surana 'Saras' in editing, illustrating and publication and that of Shri Surendra Bothara and Sushravak Shri Raj Kumar Jain in English translation. Besides these, many devotees and *Agam* lovers have borne the financial responsibility of this expensive project. I once again express my heartfelt gratitude for all those who have contributed in any way towards the publication of this work.

With the hope that readers will study these *Agams* sincerely, piously and carefully —

—Up-pravartak Amar Muni

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका | CONTENTS

उपोद्घात	३	Introduction	4
समवसरण अधिकार		**Samavasaran Adhikar**	
चम्पा नगरी की शोभा	५	The Grandeur of Champa City	5
मनोरंजन के साधन	६	Means of Entertainment	8
नगर की सुरक्षा–व्यवस्था	७	City-security	9
पूर्णभद्र चैत्य	१०	The Purnabhadra Chaitya	11
वनखण्ड का दृश्य	१३	Description of the garden	13
वृक्षावली–वर्णन	१४	Description of tree	15
अशोक वृक्ष का वर्णन	१८	Description of the Ashoka tree	18
शिलापट्टक वर्णन	२०	The stone slab	21
चम्पापति कूणिक	२१	King Kunik of Champa	22
कूणिक का चरित्र	२२	The character of Kunik	22
कूणिक का वैभव	२३	The grandeur of Kunik	24
राजमहिषी धारिणी (सौन्दर्य तथा गुण वर्णन)	२५	Queen Dharini	26
कोणिक की राज्य सभा	२६	The servant	26
भगवान महावीर	२८	Bhagavan Mahavir	29
भगवान का शरीर सौष्ठव	३०	The body	37
आत्मिक वैभव	४०	The spiritual grandeur	41
प्रवृत्ति–निवेदक द्वारा सूचना	४३	News by the Reporter	44
कूणिक हर्षित हो उठा	४५	Kunik's delight	46
भगवान को परोक्ष वन्दना	४७	Remote prayer	48
भगवान का चम्पा में आगमन	५३	Bhagavan's arrival in Champa	54
भगवान के अन्तेवासी श्रमण	५४	The accompanying ascetics	55
श्रमणों की आत्म–ऋद्धि का वर्णन : ज्ञान बली	५६	The spiritual wealth of Shramans	57
विविध लब्धिधारी श्रमण	५८	Shramans with various special powers	60
तपोबली श्रमण	६२	Shramans with wealth of austerities	62
स्थविरों के गुण वर्णन	६५	The qualities of sthavirs	66
गुण–सम्पन्न अणगारों की बाईस उपमाएँ	६८	Twenty two metaphors for anagars	70

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिबंध–मुक्त अणगार	७१	Unrestricted anagars	72
विहार चर्या	७२	Ascetic praxis	73
तप वर्णन (ब्रह्म तप)	७४	Austerities	74
(१) अनशन तप	७५	(1)) Anashan Tap	76
(२) अवमोदरिका तप	७८	(2) Avamodarika Tap	80
(३) भिक्षाचर्या तप	८१	(3) Bhikshacharya Tap	83
(४) रस–परित्याग तप	८५	(4) Rasa Parityag Tap	86
(५) काय–क्लेश तप	८६	(5) Kayaklesh Tap	87
(६) प्रतिसंलीनता तप	८८	(6) Pratisamlinata Tap	92
आभ्यन्तर तप	९४	Inner Austerities	94
(१) प्रायश्चित्त तप	९४	(1) Prayashchit Tap	96
(२) विनय तप	९८	(2) Vinaya Tap	103
(३) वैयावृत्य तप	१०७	(3) Vaiyavritya Tap	107
(४) स्वाध्याय तप	१०७	(4) Svadhyaya Tap	108
(५) ध्यान तप	१०८	(5) Dhyan Tap	113
(६) व्युत्सर्ग तप	११८	(6) Vyutsarg Tap	120
अनगारों द्वारा उत्कृष्ट आराधना	१२२	Exemplary study of scriptures by anagars	122
संसार–समुद्र	१२३	The Ocean of mundane existence	125
संयम पोत	१२७	Ships of ascetic-discipline	128
भगवान की सेवा में असुरकुमार देवों का आगमन	१२९	The arrival of Asur-kumar gods	131
अन्य भवनवासी देवों का आगमन	१३३	Arrival of other Bhavan-vasi gods	134
व्यन्तर देवों का आगमन	१३५	Arrival of Vaan-vyantar gods	136
ज्योतिष्क देवों का आगमन	१३७	Arrival of Jyotishk gods	137
वैमानिक देवों का आगमन	१३८	Arrival of Vaimanik gods	139
(१) असुरकुमार	१४०	(1) Asur-kumar gods	142
(२) वाणव्यन्तर देव	१४१	(2) Vaan-vyantar (interstitial) gods	143
(३) ज्योतिषी देव	१४१	(3) Jyotishk (stellar) gods	144
(४) वैमानिक देव	१४१	(4) Vaimanik (endowed with celestial vehicles) gods	144
देवियों–अप्सराओं का आगमन	१४५	Arrival of goddesses	145
चम्पा निवासी जन–समुदाय में उत्सुकता	१४८	Eagerness of the people of Champa	149
विविध वर्ग	१५०	People of varioous classes	151
विविध हेतु	१५१	Variety of reasons	152

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने की तैयारी	१५२	The Preparations	153
वाहन आदि	१५३	The Carriages	154
महाराज कूणिक को सूचना	१५५	Information to King Kunik	156
दर्शन–वन्दन की तैयारी	१५६	Preparations for homage	158
अभिषेक हस्ति की सज्जा	१५९	Decoration of the elephant	160
रथ वाहनों की सज्जा	१६१	Decoration of carriages	162
नगर की सफाई व्यवस्था	१६३	Cleaning of the city	163
कूणिक राजा की प्रस्थान तैयारी	१६५	King Kunik' preparations	168
स्नानागार में प्रवेश	१६५	The bathroom	168
वस्त्राभूषण धारण	१६५	Adornments	169
भगवद् दर्शनों के लिए प्रस्थान : अष्टमंगल	१७०	The departure : Asht-mangal	174
राज चिह्न	१७१	The royal cavalcade	174
अश्व सेना	१७१	Cavalary	175
गज सेना	१७१	Elephant brigade	175
रथ सेना	१७२	Chariot brigade	176
पदाति सेना	१७२	Foot soldiers	176
कूणिक का अद्‌भुत स्वरूप	१७६	Kunik's majestic appearance	177
जनता द्वारा मंगल घोष	१७९	Hailing masses	180
भगवद् दर्शन–लाभ	१८१	Beholding Bhagavan	184
पाँच अभिगम	१८२	Five codes (Abhigam)	184
तीन प्रकार की पर्युपासना	१८२	Threefold worship	184
रानियों का सपरिजन आगमन	१८५	Arrival of the queens	187
विशाल दासी परिवार	१८५	Large contingent of maids	187
भगवान द्वारा धर्मदेशना	१८८	Bhagavan's sermon	189
भगवद् वाणी का स्वरूप	१८८	Attributes of Bhagavan's speech	189
भगवान द्वारा कथित धर्म का सार्वभौम स्वरूप	१९०	The universal form of Bhagavan's sermon	192
चार गति के चार कारण	१९६	Four causes of four genuses	199
धर्म के दो प्रकार	२००	Two kinds of dharma	202
परिषद् का वापस गमन	२०४	Dispersing of the the congregation	204
अहोभाव की अभिव्यक्ति	२०४	Expression of gratitude	205

उपपात वर्णन — Description of Upapat

इन्द्रभूति गौतम	२०८	Indrabhuti Gautam	209
जिज्ञासा जागृति	२१०	The curiosity	211
पापकर्म का बन्ध	२११	Bondage of paap karma	212

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तबाल : एकान्तसुप्त का उपपात	२१३	The upapat of ekant baal and ekant supt	214
क्लिशित उपपात	२१७	Klishit upapat	218
भद्र प्रकृति जनों का उपपात	२२३	Upapat of noble beings	224
परिक्लेशबाधित नारियों का उपपात	२२४	Upapat of tormented women	225
विविध व्रती मनुष्यों का उपपात	२२६	Upapat of vow observing people	227
वानप्रस्थों का उपपात	२३०	Upapat of forest dwelling hermits	232
प्रव्रजित श्रमणों का उपपात	२३६	Upapat of initiated shramans	237
परिव्राजकों का उपपात	२३७	Upapat of Parivrajaks	238
परिव्राजकों के धर्मशास्त्र	२४०	The religious texts of Parivrajaks	241
परिव्राजकों का शौच धर्म	२४१	The Parivrajak religion of cleansing	242
परिव्राजकों का कल्प–आचार	२४३	The conduct of Parivrajaks	245

अम्बड़ परिव्राजक प्रकरण		**Story of Ambad Parivrajak**	

अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी	२४९	Seven hundred disciples of Ambad Parivrajak	249
संथारा–संलेखना ग्रहण	२५३	Taking the ultimate vow	254
अम्बड़ परिव्राजक के विषय में गौतम की जिज्ञासा	२५८	Gautam's query about Ambad Parivrajak	258
भगवान का समाधान	२५८	Bhagavan's Reply	259
अम्बड़ का आचार–विचार	२६१	Conduct of Ambad	262
अम्बड़ के आगामी भवों की पृच्छा	२६८	Future reincarnations of Ambad	269
प्रत्यनीकों का उपपात	२८३	The upapat of Pratyaneeks	283
संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनि जीवों का उपपात	२८४	The upapat of sentient five sensed animals	285
आजीवकों का उपपात	२८५	The upapat of Ajivaks	286
आत्मोत्कर्षक आदि प्रव्रजित श्रमणों का उपपात	२८६	The upapat of Atmokarshak and other initiated Shramans	287
निह्नवों का उपपात	२८८	The upapat of Nihnavas	288
सात निह्नव	२८९	Seven Nihnavas (mendacious seceders)	290
अल्पारंभी आदि मनुष्यों का उपपात	२९२	The upapat of alparambhi and other human beings	293
आरम्भ त्यागी श्रमणों का मोक्ष	२९७	The Upapat of arambh-tyagi Shramans	298

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकभवावतारी श्रमण	३००	Shramans destined for one reincarnation	301
सर्वकामादिविरत मनुष्यों का उपपात	३०१	The Upapat of Sarvakamadivirat	301
केवली-समुद्घात सम्बन्धी प्रश्नोत्तर	३०२	Questions Regarding Kevali-samudghat	302
छद्मस्थ की जानने की क्षमता	३०२	Capacity of a chhadmasth to experience	303
केवली-समुद्घात का हेतु	३०६	The purpose of Kevali samudghat	306
समुद्घात का स्वरूप	३०७	Nature of samudghat	307
समुद्घात में योग प्रवत्ति	३०९	Association during samudghat	309
समुद्घात के पश्चात् योग-प्रवृत्ति	३११	Post samudghat association	312
सिद्धावस्था-प्राप्ति का क्रम	३१३	Progress to perfection	314
सिद्धों का स्वरूप	३१७	Nature of Siddhas	318
सिद्ध होते जीव के संहनन संस्थान आदि	३१९	Constitution and structure	319
सिद्धों का परिवास	३२१	Abode of Siddhas	321
ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम	३२४	Twelve names of Ishatpragbhara Prithvi	324
सिद्धों के अनन्त अनुपम सुख	३३०	The infinite unending bliss	330
दृष्टान्त द्वारा सुखों की उपमा	३३२	Metaphoric expression of bliss	332

परिशिष्ट **Appendix**

आगमों का अनध्यायकाल	३४३	(1) Inappropriate time for study of Agams	346
		(2) Technical Terms	349

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्र
औपपातिक सूत्र

ILLUSTRATED
AUPAPATIK SUTRA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयथेरमुणिपणीअं पढमं उवंगं

उववाइयसुत्तं

✳

श्रुतस्थविरमुनिप्रणीत प्रथम उपाङ्ग

औपपातिकसूत्र

✳

The First Upanga Created By Accomplished Senior Ascetics

AUPAPATIK SUTRA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत स्थविरमुनिप्रणीत प्रथम उपाङ्ग
औपपातिकसूत्र

उपोद्घात

औपपातिकसूत्र प्रथम उपांग है। (जैन परम्परा के बारह आधारभूत ग्रन्थों को अंग कहते हैं। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इनमें से ग्यारह विद्यमान हैं और एक लुप्त हो गया है। अंगों के सहायक आगम उपांग कहे जाते हैं।) अंगों में जो स्थान आचारांगसूत्र का है, उपांगों में वही स्थान औपपातिकसूत्र का है। इसकी शैली वर्णन-प्रधान तथा भाषा उच्च साहित्यिक समास बहुल है। इसके दो विभाग हैं- (१) समवसरण, तथा (२) उपपात। आचार्य अभयदेव सूरि ने 'उपपात' का अर्थ प्रकट करते हुए लिखा है-"इसमें देव-नरक गति में जन्म (उपपात) तथा सिद्धिगमन का वर्णन होने से इसका नाम औपपातिक है।"

इस आगम की सबसे बड़ी विशेषता है कि जिन विषयों का वर्णन हुआ है, वह पूर्ण विस्तार के साथ और बड़ी सुललित भाषा में हुआ है। एक से एक श्रेष्ठ और सुन्दर उपमाओं का भण्डार है। पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है कोई महाकाव्य पढ़ रहे हैं। इतना विस्तृत सुन्दर वर्णन अन्य किसी आगम में नहीं है, यही कारण है कि प्रज्ञापना तथा भगवती जैसे आगमों में भी **'जहा ओववाइए'** कहकर प्रस्तुत सूत्र का वर्णन जानने की सूचना दी गई है। भगवान महावीर के शरीर का नख से शिख तक सम्पूर्ण अंगोपांगों का विविध उपमाओं द्वारा जितना लालित्यपूर्ण वर्णन यहाँ है, अन्यत्र कहीं नहीं है।

इस सूत्र का आरम्भ अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी के नगर-सौन्दर्य वर्णन तथा राजा कूणिक के बल-वैभव तथा उसकी धारिणी रानी का वर्णन करके फिर चम्पा में भगवान के पधारने के वर्णन के साथ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

SHRUT-STHAVIR-MUNIPRANEET PRATHAM UPANGA
AUPAPATIK SUTRA

(The First Upanga Created By Accomplished Senior Ascetics)

INTRODUCTION

Aupapatik Sutra is the first among the *Upangas* (the auxiliary explanatory works to the twelve *Angas* or the main corpus of the Jain canonical texts. This consists of twelve treatises having the group name *Anga*. Eleven of these are extant according to the Shvetambar tradition). *Aupapatik Sutra* occupies the same position among the *Upangas* that *Acharanga* occupies among the *Angas*. It is mainly a descriptive narrative composed in highly ornamental and literary style. It has two sections—(1) *Samavasaran*, and (2) *Upapat*. Explaining the title '*Upapat*' Acharya Abhayadev Suri mentions—"As it contains the description of instantaneous births (*upapat*) in divine and infernal dimensions, as also of attaining the *Siddha* status, it is called *Aupapatik*."

The most important attribute of this *Agam* is that, no matter what subject has been discussed, it includes all possible details presented in highly ornate and lucid style. It abounds in most appropriate and beautiful analogies and metaphors. Going through it appears as if one is reading an epic. No other *Agam* contains such detailed and beautiful description. That is the reason that even in elaborate works like *Prajnapana Sutra* and *Bhagavati Sutra* this work is referred to ('*jaha ovavaie*' or refer to *Aupapatik*) at places where descriptions are needed. The vivid and ornate description of each and every limb and part of the body of Bhagavan Mahavir from head to toe, with the help of a variety of fitting metaphors and analogies, is found in no other work but this.

This book starts with the description of the beauty of the city of Champa, the capital of Anga state; power and grandeur of king Kunik, beauty of his queen Dharini, and the arrival of Bhagavan Mahavir in Champa.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवसरण अधिकार
SAMAVASARAN ADHIKAR

चम्पा नगरी की शोभा

१. (क) तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा।

पमुइयजण–जाणवया आइण्ण–जणमणूसा।

हल–सयसहस्स–संकिट्ठ–विकिट्ठ–लट्ठ–पण्णत्तसेउसीमा।

कुक्कुड–संडेयगामपउरा, उच्छु–जव–सालि–कलिया, गो–महिस–गवेलगप्पभूया।

१. (क) उस काल–(वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे के अन्तिम समय में) उस समय–(जब आर्य सुधर्मा इस पृथ्वी पर विचर रहे थे) चम्पा नामक नगरी थी। वह धन एवं भवनों से ऐश्वर्यशाली थी। शत्रु आदि के भय से सुरक्षित थी तथा व्यापार आदि के कारण बहुत समृद्ध थी।

चम्पा के निवासी नागरिक जन और पूरे जनपद (देश) के निवासी निर्भय तथा सुखी थे। नगरी में आमोद–प्रमोद–मनोरंजन के साधन होने से वहाँ रहने वाले सदा खुश रहते थे। नगर की आबादी बहुत घनी थी।

वहाँ की भूमि बार–बार सैकड़ों, हजारों हलों द्वारा जोती जाने से मिट्टी, कंकर, पत्थररहित मुलायम तथा उपजाऊ थी। किसानों ने अपने खेतों पर मेंड़ें बनाकर सीमा निर्धारित कर रखी थी। इस कारण कभी उनमें विवाद नहीं होता था।

वहाँ (किसानों व ग्वालों के घरों में) मुर्गे और तरुण साँड़ों की बहुलता थी। खेतों में–ईख, जौ तथा धान (शालि) के सुन्दर पौधे लहलहाते रहते थे। गाय और भैंसों की बहुलता होने से जनता को दूध–दही आदि का अभाव नहीं था। भेड़ें भी बहुत थीं।

THE GRANDEUR OF CHAMPA CITY

1. (a) During that period (end of the fourth section of the current descending cycle of time) of time (when Arya Sudharma was living on this earth) there was a city called Champa. It was opulent both in terms of wealth and architecture. It was well protected against enemies and was affluent due to its commercial activities.

The residents of Champa and the vast population of the country were happy and secure. The citizens were ever cheerful due to the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

availability of means of entertainment. The city was thickly populated.

Being regularly cultivated with hundreds and thousands of ploughs, the land around was free from dirt, pebbles and rocks as also soft and fertile. In order to be free of any disputes, the farmers had systematically demarcated their farms and surrounded them with mud-walls.

There was an abundance of hen and young bulls (in the households of farmers and cowherds). The farms were flush with rich crops of sugar-cane, barley and paddy. Due to abundance of cows and she-buffalos there was no shortage of milk and milk products. There were large herds of sheep as well.

मनोरंजन के साधन

१. (ख) आयारवंत–चेइय–जवइ–विविह–सण्णिविट्ठबहुला, उक्कोडियगायगंठिभेयग–भड–तक्कर–खंडरक्ख–रहिया, खेमा, णिरुवद्दवा, सुभिक्खा, वीसत्थसुहावासा अणेग–कोडिकुडुंबियाइण्ण णिव्वुयसुहा। णड–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिय–वेलंबग–कहग–पवग–लासग–आइक्खग–मंख–लंख–तूणइल्ल–तुंबवीणिय, अणेगतालायराणुचरिया।

१. (ख) नगर के बाहर बड़े–बड़े सुन्दर उद्यान थे तो नगर में तरुण युवतियों के अनेक कलात्मक भव्य भवन बने थे। वहाँ रिश्वतखोरों, गिरहकटों, बदमाशों, चोरों, बटमारों तथा खण्डरक्षकों (चुंगी वसूल करने वालों) का कोई भय नहीं था। इस कारण वहाँ के नागरिक सुख–शान्तिमय तथा उपद्रवशून्य थे। भिक्षुकों को वहाँ सुखपूर्वक भिक्षा प्राप्त होती थी। अथवा **सुभिक्खा**–सुभिक्ष–उस देश में कभी दुष्काल नहीं पड़ता था। वहाँ रहने वालों में परस्पर विश्वास था, इसलिए सभी सुखी, आश्वस्त–भयरहित थे। वहाँ अनेक **कोटि**–भिन्न–भिन्न श्रेणी के, **कौटुम्बिक**–पारिवारिक लोगों की घनी बस्ती थी और सभी सुखी थे। **नट**–नाटक करने वाले, **नर्तक**–नाचने वाले, **जल्ल**–रस्सी आदि पर चढ़कर कलाबाजी दिखाने वाले, **मल्ल**–पहलवान, **मौष्टिक**–मुक्केबाज, **विडम्बक**–विदूषक, मसखरे, **कथक**–कथा करने वाले, **प्लवक**–उछलने या नदी आदि में तैरने का प्रदर्शन करने वाले, **लासक**–रासलीला दिखाने वाले, **आख्यापक**–शुभ–अशुभ शकुन बताने वाले, **लंख**–बाँसों पर खेल दिखाने वाले, **तूणइल्ल**–(तूणावन्त) तूणा नामक वाद्य बजाकर आजीविका करने वाले, **तुंब वीणिक**–तूंब वीणा–पूँगी बजाने वाले, **तालाचर**–ताली बजाकर मनोरंजन करने वाले आदि अनेक प्रकार की आजीविका करने वाले रहते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. (b) The outskirts of the city had large and beautiful gardens. The city proper had many grand and exquisite buildings meant for the youth. There was no fear of bribe-takers, pick-pockets, hooligans, thieves, bandits and octroi-collectors. Therefore, the citizens lead a peaceful and trouble free life. Alms were freely available to beggars or there was complete absence of drought in that area. The citizens had faith in each other and consequently an atmosphere of general contentment and security prevailed. The city was densely populated with families of various status and all were very happy. The citizens enjoyed the services of numerous professional entertainers, such as, *Nat* (actors; also acrobats), *Nartak* (dancers), *Jalla* (trapeze artists), *Malla* (wrestlers), *Maushtik* (boxers), *Vidambak* (comedians, clowns or jesters), *Kathak* (story-tellers), *Plavak* (gymnasts), *Lasak* (folk-dancers), *Akhyapak* (augers), *Lankh* (stilt-dancers and pole-acrobats), *Tunailla* (players of a musical instrument called *Tuna*), *Tumb Veenak* (players of drone or snake-charmer's pipe), *Taalaachar* (clappers or those who entertain by clapping) etc.

नगर की सुरक्षा–व्यवस्था

१. (ग) आरामुज्जाण–अगड–तलाग–दीहिय–वप्पिण–गुणोववेया, नंदणवण–सन्निभप्पगासा, उव्विद्ध विउल गंभीर खायफलिहा, चक्क–गय–भुसुंढि–ओरोह–सयग्घि जमलकवाड–घणदुप्पवेसा, धणुकुडिल–वंकपागार परिक्खित्ता, कविसीसगवट्टरइय–संठियविरायमाणा।

अट्टालय–चरिय–दार–गोपुर–तोरण–समुण्णयसुविभत्तरायमग्गा।

छेयायरिय–रइयदढफलिहइंदकीला।

विवणि–वणिछित्त–सिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा, सिंघाडग–तिग–चउक्क–चच्चर–पणियावण–विविहवत्थुपरिमंडिया, सुरम्मा।

नरवइपविइण्ण–महिवइपहा, अणेगवरतुरग–मत्तकुंजर–रहपहकर–सीय–संदमाणी–आइण्णजाण–जुग्गा।

विमउल–णवणलिणिसोभियजला, पंडुरवरभवणसण्णिमहिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्ताणणयण पेच्छणिज्जा पासादीया दरिसणिज्जा, अभिरूवा पडिरूवा।

१. (ग) (चम्पा नगरी)–**आराम**–क्रीड़ा वाटिका, **उद्यान**–कुएँ, तालाब, बावड़ी, जल के छोटे–छोटे बाँध आदि से नंदनवन जैसी शोभा–सम्पन्न थी। नगर के बाहर चारों तरफ गोलाकार, ऊँची, लम्बी और गहरी खाई थी। शत्रु सेना को रोकने के लिए उसका परकोटा (अवरोध) भींत की दोहरी दीवार से बना था और चक्र, गदा, भुसुंडि–पत्थर फेंकने का विशेष अस्त्र (गोफन) जैसे आयुधों से युक्त था। उसके ऊपर **शतघ्नी**–यह महाशिला जैसा शस्त्र होता था जिसके गिराने से सैकड़ों व्यक्ति दब–कुचलकर मर जाते थे–रखी थी। नगर **गोपुर**–(प्रवेश–द्वार) के कपाट बहुत सुदृढ़ दुर्भेद्य थे। नगर को किले के समान घेरे यह परकोटा धनुष जैसे वक्र आकार का था। उस परकोटे पर **कपि शीर्षक**–कंगूरे बने हुए थे, जिनके छोटे–छोटे छेदों से शत्रु सेना को देखा जा सकता था।

अट्टालक–परकोटे के ऊपर आश्रय स्थान (गुमटियाँ) अट्टालिकाएँ बनी हुई थीं। **चरिका**–परकोटे के मध्य में आठ हाथ चौड़ा राजमार्ग था। परकोटे के बीच–बीच में छोटे–छोटे प्रवेश–द्वार बने हुए थे। वह परकोटा–गोपुरों–नगर–द्वारों, तोरणों आदि से सज्जित था। राजमार्ग पर पहुँचने के लिए अनेक छोटे–छोटे मार्ग–गलियाँ सरणियाँ बनी थीं।

नगरद्वार की **अर्गला**–(पाटा) और **इन्द्रकील**–(द्वारों को बन्द करने के लिए, भाले जैसी मजबूत नुकीली कीलें, डोर बोल्ट) सुयोग्य शिल्पाचार्यों–कारीगरों द्वारा बनाई हुई थीं।

नगर के मार्ग **हाट**–(विपणि) **वणिक क्षेत्र**–व्यापार के क्षेत्र–बाजार आदि भीड़ भरे रहते थे। वहाँ अनेक **शिल्पी**–कुंभार जुलाहे आदि रहते थे जिससे जनता को सुख–सुविधा की वस्तुएँ सुलभ थीं। **शृंगाटक**–तिकोने स्थानों, **त्रिक**–तिराहों, चौराहों, **चत्वरों**–जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हैं, वहाँ पर दुकानें आदि बनी थीं, जहाँ सभी वस्तुएँ उपलब्ध थीं। दुकानों आदि से बाजार रमणीय लगते थे।

राजा की सवारी निकलने के कारण राजमार्ग पर भीड़ लगी रहती थी। उस नगर में अनेक उत्तम घोड़े, मदोन्मत्त हाथी, रथों के समूह, **शिविकाएँ**–पालकियाँ, **स्यन्दमानिका**–बड़ी पालकियाँ, **यान**–गाड़ियाँ, **युग्म**–डोली जैसे वाहन आदि का जमघट लगा रहता था।

जलाशय विकसित कमलों से शोभित थे। भवन सफेद चूने से पुते हुए अत्यधिक सुन्दर लगते थे।

अत्यधिक सुन्दरता व रमणीयता के कारण वह नगरी अपलक दृष्टि से **प्रेक्षणीय**–देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, **दर्शनीय**–एक प्रदर्शनी की वस्तु जैसी थी वह नगरी। वह **अभिरूप**–जैसी सुन्दर होनी चाहिए वैसी ही **प्रतिरूप**–मन को लुभाने वाली थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. (c) Facilities like *Aaram* (entertainment centers), gardens, wells, ponds, *Bavadi* (a deep and elaborate masonry tank or well with steps down to the water level), and small barrages made the city of Champa as beautiful as *Nandan-van* (the divine garden). The city was surrounded by a circular, high, wide and deep moat. To secure it from any enemy attack there was a high double walled rampart of masonry equipped with weapons like *chakra* (disk-weapon), *gada* (mace) and *bhusundi* (a sling like weapon for throwing stones). Over the wall was placed a *shataghni* (a giant catapult capable of launching large rocks that could crush hundreds of soldiers). The doors of the main gate into the city were extremely strong and impenetrable. This fortification surrounding the city had a bow like complex shape. This large bulwark had battlements having small peep-holes from which attacking army could be watched.

Cabins were also constructed on this rampart. There was also an eight cubit wide pathway in the middle. Small windows and gates could be seen all along the rampart. This city wall was made attractive with numerous gates and *torans* (ornamental entrances). There was a network of pathways and streets reaching the highway.

The strong latch-chains and door-bolts were made by skilled artisans.

The markets and trading centers in the city were always crowded. As potters, weavers and many other artisans inhabited the city, all essential merchandise was easily available to the citizens. The city construction included shops and other such structures at triangular avenues and intersections where three, four or more roads met. Everything was available in these shops and they enhanced the beauty of the markets.

The main road was often crowded due to frequent movement of the king's cavalcade. The city remained congested with numerous horses of good breed, majestic elephants, clusters of chariots, a variety of palanquins like *shivika* (small palanquin) and *syandamanika* (large palanquin), and other vehicles including *yugma* (a palanquin shaped vehicle).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Blooming lotuses enhanced the beauty of the ponds in the city. The white-washed buildings all around looked extremely beautiful.

The exquisite beauty and glamour of the city was so pleasant and attractive that it drew and held attention of the onlookers. It was ideally beautiful and alluring.

पूर्णभद्र चैत्य

२. (क) तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था–चिराईए, पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोराणे, सद्दिए, वित्तिए, कित्तिए, णाए।

सच्छत्ते, सज्झए, सघण्टे, सपडागे, पडागाइपडागमंडिए, सलोमहत्थे, कयवेयड्डिए, लाउल्लोइयमहिए, गोसीस–सरसरत्तचंदण–दद्दरदिण्ण–पंचंगुलितले, उवचियचंदणकलसे, चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभाए।

आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावे, पंचवण्णसरस–सुरभिमुक्क–पुप्फपुंजोवयारकलिए, कालागुरु–पवरकुंदुरुक्कतुरुक्क–धूव–मघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे, सुगंधवरगंधगंधिए, गंधवट्टिभूए।

२. **(क)** उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर–पूर्व दिशा (ईशानकोण) में पूर्णभद्र नामक एक **चैत्य**–यक्षायतन था। वह बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा था। **पूर्व पुरुष**–अतीत में हुए बड़े–बूढ़े उसकी प्राचीनता की चर्चा करते थे। दूर–दूर तक उसकी प्रसिद्धि थी। वह **वित्तिक**–वित्तयुक्त–चढ़ावा, भेंट आदि के रूप में प्राप्त सम्पत्ति के कारण धन–सम्पन्न था, अथवा **वृत्तिक**–आश्रित लोगों को उसकी ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी। वह **कीर्तित**–अनेक प्रकार की दन्त–कथाओं के कारण लोगों द्वारा प्रशंसित था। वह **ज्ञात**–अपने प्रभाव आदि के कारण विख्यात तथा मान्य था।

वह छत्र, ध्वजा, घण्टा तथा पताकाओं से शोभित था। उस पर छोटी और बड़ी झण्डियाँ सजी रहती थीं। सफाई के लिए वहाँ रोममय मयूर पिच्छियाँ रक्खी थीं। वेदिकाएँ बनी हुई थीं। वहाँ का आँगन गोबर आदि से लिपा–पुता था। दीवारें खड़ियाँ, कलई आदि से पुती हुई थीं। दीवारों पर जगह–जगह गोरोचन तथा **सरस**–(गीले) लाल चन्दन के हाथ–पाँचों अंगुलियों और हथेली सहित हाथ की छापें लगी थीं। चारों ओर चन्दन–कलश–चन्दन से चर्चित मंगल घट रक्खे थे। उसका प्रत्येक द्वार चन्दन–कलशों और तोरणों से सजा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-१

Illustration No. 1

पूर्णभद्र यक्षायतन

चम्पा नगरी के बाहर ईशानकोण में पूर्णभद्र नामक यक्ष का एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। वहाँ पूर्णभद्र यक्ष की पत्थर की प्राचीन प्रतिमा है। जिस पर सिन्दूर-तैल चढ़ा है। यह चैत्य चारों ओर से अनेक प्रकार के फल-फूल वाले सघन छायादार वृक्षों के झुण्डों से घिरा हुआ है।

यक्ष प्रतिमा के समक्ष तरह-तरह की भेंट, फल-फूल, मिष्ठान्न, धन सम्पत्ति का चढ़ावा रखा है। धूप-अगरबत्तियाँ आदि जलती रहती हैं। फूल मालाएँ टँगी है। मंगल घट रखे हैं। मन्दिर पर अनेक झण्डियाँ व पताकाएँ टँगी हैं।

यहाँ अर्चा-पूजा करने वाले लोगों की भीड़ लगी रहती है। अनेक भक्त लोग वहाँ चढ़ावा चढ़ाते हैं। कथावाचक कथा करते हैं। हर समय प्रसाद बँटता रहता है। भक्तों की लम्बी कतारें लगी रहती हैं। लोग नाचते-गाते-बजाते हैं। दूर-दूर से लोग अनेक प्रकार की मनोकामना लिये आते रहते हैं।

-सूत्र २

PURNABHADRA YAKSH TEMPLE

There is an ancient temple of Purnabhadra Yaksh outside the Champa city, in the north-eastern direction. In it is an ancient stone image of the deity covered with a paste of vermilion in oil. The temple is surrounded by clumps of a variety of dense trees laden with flowers and fruits.

Before the *Yaksh* image lie heaps of offerings such as fruits, flowers, sweets, cash and other valuables. Incense sticks and powders are burning. Flower garlands are hanging all around and auspicious urns are placed. Numerous flags and buntings add to its beauty.

It is always crowded with devotees and worshipers coming in long queues and offering gifts. Story-tellers recite religious tales. Offerings are distributed all the time. People sing, dance, and play music. People from far and near come here to seek boons and get their wishes fulfilled.

—Sutra 2

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यक्षायतन की दीवारों पर ऊपर-नीचे सर्वत्र बड़ी-बड़ी गोल तथा लम्बी अनेक पुष्पमालाएँ सजी हुई थीं। पाँचों रंगों के ताजे फूलों के ढेर के ढेर वहाँ चढ़ाये हुए थे, जिनसे वह बड़ा रमणीय लगता था। काले अगर, उत्तम कुन्दरुष्क, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ का वातावरण बड़ा सुगंधमय था। उठते हुए सुगन्धित धुएँ की सघनता से वहाँ गोल-गोल धुएँ के छल्ले से बन रहे थे।

THE PURNABHADRA CHAITYA

2. (a) Outside the Champa city, in the north-eastern direction there was Purnabhadra *Chaitya* (*Yaksha* temple complex). It existed there since ancient times. Elderly people of the past too mentioned of its antiquity. Its fame had spread far and wide. It was rich in endowment properties (or, it provided help to the needy). It was praised by people due to a variety of legends attached to it. It was widely recognized for its influence.

It was embellished with a canopy, a flag, a bell and banners. Small and large buntings always adorned it. For wiping and cleaning, brooms of peacock feathers were placed around. Platforms and seats could be seen all around. The floor was plastered with a mixture of cowdung and other ingredients. The walls were white-washed with lime. On the walls were printed marks of five fingers or whole palms dipped in *gorochan* and red sandal-wood paste. Urns or pitchers painted with auspicious marks in sandal-wood paste were placed all around. Every door was decorated with small urns and ornamental arches.

Long garlands reaching the floor dangled from roof at every wall in the temple. Heaps of multi-coloured flowers were placed at appropriate spots enhancing the beauty of the temple. The atmosphere was redolent with burning incenses like black *Agar*, best *Kundarushk*, *Loban* and *Dhoop*. Dense and fragrant fumes created smoke-rings while drifting upwards.

२. (ख) णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-पवग-कहग-लासग आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणि-भुयग-मागहपरिगए।

बहुजणजाणवयस्स विस्सुयकित्तिए, बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे, पाहुणिज्जे, अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, नमंसणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणिज्जे, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, विणएणं पज्जुवासणिज्जे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्वे, सच्चे, सच्चोवाए, सण्णिहियपाडिहेरे, जागसहस्स–भागपडिच्छए बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्दचेइयं पुण्णभद्दचेइयं।

२. **(ख)** वह चैत्य नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विडम्बक, प्लवक, कथक, लासक, आख्यापक, लंख, मंख, तूणइल्ल, तुम्बवीणिक, **भोजक**–भक्ति–प्रधान गीत गाने वाले तथा **मागध**–भाट आदि जनों से सदा भरा रहता था। अनेकानेक नगरों तथा जनपदों तक उसकी कीर्ति फैली थी।

बहुत से दानशील उदार पुरुष वहाँ दान करते थे इसलिए वह **आहवनीय**–दान–प्रदान करने योग्य, **प्राहवनीय**–विशिष्ट विधि–विधान किये जाने योग्य था। भक्तों के लिए वह **अर्चनीय**–चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से अर्चना करने योग्य, **वन्दनीय**–स्तुति आदि द्वारा वन्दना करने योग्य, **नमस्करणीय**–नमस्कार करने योग्य, **पूजनीय**–पुष्प आदि द्वारा पूजा करने योग्य, **सत्करणीय**–वस्त्र आदि द्वारा सत्कार करने योग्य, **सम्माननीय**–मन से सम्मान देने योग्य, **कल्याणमय**–कार्य–सिद्धिदायक या कामना पूर्ण करने वाला, मंगलमय, **प्रतिहारक**–विघ्न दोष निवारक, अवांछित स्थितियाँ मिटाने वाला, **दिव्य**–दैवी शक्ति से युक्त तथा विनयपूर्वक **पर्युपासनीय**–विशेष रूप से उपासना करने योग्य माना जाता था।

वह दिव्य, सत्य एवं **सत्योपाय**–अपने आराधकों की सेवा को सफल करने वाला था। वहाँ **याग–भाग**–हजारों प्रकार की पूजा–उपासना भेंट सामग्री प्राप्त होती थी। बहुत से लोग वहाँ आते और अपनी लौकिक कामना–पूर्ति के लिए उस पूर्णभद्र चैत्य की अर्चा पूजा करते थे।

2. (b) This *chaitya* was always filled with *Nat* (actors; also acrobats), *Nartak* (dancers), *Jalla* (trapeze artists), *Malla* (wrestlers), *Maushtik* (pugilists), *Vidambak* (comedians, clowns or jesters), *Kathak* (story-tellers), *Plavak* (gymnast), *Lasak* (folk-dancers), *Akhyapak* (augers), *Lankh* (stilt-dancers), *Mankh* (pole-acrobats), *Tunailla* (players of a musical instrument called *Tuna*), *Tumb Veenak* (players of drone or snake-charmer's pipe), *Bhojak* (singers of devotional songs) and *Magadh* (bards). Its fame had reached numerous cities and countries.

As many altruistic people gave charity there, it was a place suitable for charitable deeds (*ahvaniya*). It was also suitable for performing special rites and rituals (*prahvaniya*). For devotees it was suitable for offering scented substances (*archaniya*); to many it

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

was a place believed to be suitable for various activities, such as salutations by reciting panegyrics and other rites (*vandaniya*); paying homage (*namaskaraniya*); worshiping with flowers and other such things (*pujaniya*); honouring by offering clothes (*satkaraniya*); giving a place of honour in one's mind (*sammananiya*); revering as a place that is a source of boons and beatitude (*kalyanmaya*), remover of hurdles, faults and adverse conditions (*pratiharak*) and divine powers; and worthy of worship with profound devotion.

It was divine and real. Desires of devotees got fulfilled there. A large variety of offerings, gifts and things of worship were available there. Throngs of people visited and worshipped at Purnabhadra *Chaitya* for fulfillment of their mundane desires.

वनखण्ड का दृश्य

३. से णं पुण्णभद्दे चेइए एक्केणं महया वणसंडेणं सव्वओ समंता परिक्खित्ते। से णं वणसंडे किण्हे, किण्होभासे, नीले, नीलोभासे, हरिए, हरिओभासे, सीए, सीओभासे, णिद्धे, णिद्धोभासे, तिव्वे, तिव्वोभासे, किण्हे, किण्हच्छाए, नीले, नीलच्छाए, हरिए, हरियच्छाए, सीए, सीयच्छाए, णिद्धे, णिद्धच्छाए, तिव्वे, तिव्वच्छाए, घणकडिअ-कडिच्छाए, रम्मे, महामेहणिकुरंबभूए।

३. वह पूर्णभद्र चैत्य चारों ओर से एक विशाल **वनखण्ड**-(अनेक जाति के वृक्षों के समूह) से घिरा हुआ था। वृक्षों की अत्यधिक सघनता के कारण वह वनखण्ड काला, काली आभा वाला, (मोर की गर्दन जैसा) नीला, नीली आभा वाला तथा (तोते की पूँछ जैसा) हरा, हरी आभा वाला दिखाई देता था। (लताओं, पौधों व वृक्षों की प्रचुरता के कारण) उसकी हवा शीतल, शीतल आभामय लगती थी। वहाँ की मिट्टी **स्निग्ध**-चिकनी, रूक्षतारहित, स्निग्ध आभामय, तीव्र-सुन्दर वर्ण आदि से युक्त थी। वृक्षों की शाखाओं के परस्पर मिल जाने, गुँथ जाने के कारण उसकी छाया अत्यन्त गहरी थी। उसका दृश्य ऐसा रमणीय लगता था, मानो बड़े-बड़े बादलों की घटाएँ घिरी हों।

DESCRIPTION OF THE GARDEN

3. The said Purnabhadra *Chaitya* was surrounded by a vast forest strip (with trees of numerous species). Due to the extreme denseness, that forest strip appeared black with a black hue, blue

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

with a blue hue (like the neck of a peacock), green with a green hue (like the tail of a parrot). (Due to the excess of creepers, plants and trees) the wind blowing through it was cool and soothing. The soil had a nice appearance and it was smooth, slick and not dry. The branches of the dense trees were so closely intertwined that they cast a deep shadow. The whole area looked as attractive as low, expansive and dense clouds.

वृक्षावली–वर्णन

४. (क) ते णं पायवा १. मूलमंतो, २. कंदमंतो, ३. खंधमंतो, ४. तयामंतो, ५. सालमंतो, ६. पवालमंतो, ७. पत्तमंतो, ८. पुप्फमंतो, ९. फलमंतो, १०. बीयमंतो, अणुपुव्वसुजाय–रुइल–वट्टभावपरिणया। एक्कखंधा, अणेगसाला, अणेगसाह–प्पसाह–विडिमा, अणेगनर–वामसुप्पसारिय–अग्गेज्झ घण–विउल–बद्धखंधा, अच्छिद्दपत्ता, अविरलपत्ता, अवाईणपत्ता, अणईपत्ता, निद्धूयजरढ–पंडुपत्ता, णव हरिय–भिसंत–पत्तभारंधयार–गंभीर–दरिसणिज्जा।

उवणिग्गय–णवतरुण–पत्त–पल्लव–कोमल–उज्जल–चलंत–किसलय–सुकुमाल–पवाल–सोहियवरंकुरग्गसिहरा।

४. (क) उस वनखण्ड के वृक्षों की जड़ें (मूल) जमीन में गहरी फैली हुई थीं। उनके **कन्द**–(मूल के भीतर गाँठें, जहाँ से जड़ें फूटती हैं) और **स्कन्ध**–(जहाँ से शाखाएँ फूटती हैं) बहुत सुदृढ़ थे। वे वृक्ष छाल, छोटी शाखाएँ, **प्रवाल**–नई कोंपलें तथा पत्र–पुष्पयुक्त थे। बीजों से भरे फल उन पर लगे थे। ये सभी वृक्ष नीचे से ऊपर छत्राकार (गोल आकार) में विकसित थे। इनके स्कन्ध एक थे, उनसे अनेक शाखाएँ फूटी थीं जो ऊपर की ओर निकली हुई थीं। वृक्षों के तने इतने घने सुघड़ तथा विस्तृत थे जो मनुष्यों की फैली हुई भुजाओं की पकड़ में नहीं आ सकते थे। पत्ते छेदरहित, घने और एक–दूसरे से मिले हुए बहुत सघन थे। दीखने में स्वस्थ और नीचे लटके हुए थे। पुराने पत्ते पीले होकर झड़ चुके थे। उनके स्थान पर नये हरे चमकीले पत्ते आ चुके थे जिनकी सघनता से वहाँ सदा ही अँधेरा जैसा छाया रहता था।

उन वृक्षों के जो नये पत्ते निकले थे, वे कोमल तथा पूर्ण विकसित थे। उनकी कोंपलें कोमल, उज्ज्वल थीं, उनका वर्ण ताँबे जैसा चमकदार था। इस प्रकार पत्तों, पल्लवों, कोंपलों आदि से वृक्षों के ऊपर के शिखर शोभायमान लगते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. (a) The roots of the trees in that forest strip were deep and wide spread. Its bulbous roots and joints of branches were very strong. These trees had well developed and healthy barks, branches, sprouts and leaves. They were loaded with seed bearing fruits. All these trees had a luxurious umbrella-shaped growth. They had a single trunk with a vertical growth of numerous branches. The trunks of these trees were well shaped and large, so large that it was impossible to encircle one jointly by many persons with their extended arms. There was a thick growth of healthy and dangling leaves without any visible gaps. The old and yellow leaves had already been shed and their place had been taken by fresh bright green new sprouts. The denseness of all these kept the area perpetually dark.

The fresh leaves of these trees were soft and fully developed. The copper coloured sprouts were delicate and bright. Loaded with such leaves, flowers and sprouts the tree-tops were enchanting to look at.

४. (ख) णिच्चं कुसुमिया, णिच्चं माइया, णिच्चं लवइया, णिच्चं थवइया, णिच्चं गुलइया, णिच्चं गोच्छिया, णिच्चं जमलिया, णिच्चं जुवलिया, णिच्चं विणमिया, णिच्चं पणमिया, णिच्चं कुसुमिय–माइय–लवइय–थवइय–गुलइय–गोच्छिय–जमलिय–जुवलिय–विणमिय–पणमिय–सुविभत्तपिंडमंजरिवडिंसयधरा।

सुय–बरहिण–मयणसाल–कोइल–कोभगक–भिंगारग–कोंडलग–जीवंजीवग–णंदीमुह–कविलपिंगलक्खग–कारंडचक्कवाय–कलहंस–अणेग सउणगण–मिहुण–विरइय–सद्दुण्णइय–महुर सरणाइए, सुरम्मे, संपिंडिय दरिय भमर–महुयरि पहकर परिलिंत–मत्तछप्पय–कुसुमासव–लोलमहुर–गुमगुमंत–गुंजंतदेसभाए।

४. (ख) उनमें कई वृक्ष ऐसे थे जो सब ऋतुओं में फूलों, मंजरियों, पत्तों, फूलों के गुच्छों, गुल्मों से लदे रहते थे। नवमल्लिका की बेलों से लिपटे तथा पत्तों के गुच्छों से हवा में लहलहाते रहते थे। कई वृक्ष ऐसे थे जो एक श्रेणी में–स्थित थे। कई ऐसे थे जो सदा युगल रूप में–दो–दो की जोड़ी के रूप में खड़े थे। कई ऐसे थे जो पुष्प, फल आदि के भार से नित्य **विनमित**–बहुत झुके हुए रहते थे। **प्रणमित**–कई वृक्ष तो फल–फूलों के भार से नीचे जमीन तक झुके हुए थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(यों विविध प्रकार की अपनी-अपनी विशेषताएँ लिए हुए वे वृक्ष अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मंजरियों के रूप में मानो शिरोभूषण-सिर पर कलंगियाँ धारण किये जैसे लगते थे।)

उन वृक्षों पर तोते, मोर, मैना, कोयल, कोभगक, भिंगारक, कोण्डलक, चकोर, नन्दिमुख, तीतर, बटेर, बतख, चक्रवाक, कलहंस, सारस प्रभृति पक्षी सतत मधुर ध्वनियाँ करते रहते थे। वे वृक्ष गूँज रहे हैं, ऐसे सुरम्य प्रतीत होते थे। वहाँ पर मदमाते भ्रमरों तथा भ्रमरियों व मधुमक्खियों के समूह एवं **पुष्परस**-मकरन्द के लोभ से दूर-दूर से आये हुए विविध जाति के भँवरे मस्ती से गुंजन करते थे जिससे वह स्थान सदा गुंजायमान रहता था।

4. (b) Some of these trees were always laden with flowers, buds, leaves, clusters of flowers and bunches of leaves. Embraced by creepers like Jasmine and heavy with the flourishing greenery they swayed gracefully in the wind. Some stood in a row and others always in pairs. There were many that bent low (*vinamit*) due to the load of flowers, fruits and leaves. Some of these even touched the ground due to excessive weight.

(Thus with their unique attributes these trees appeared as if they donned plumed crests in the form of beautiful buds and danglers.)

All the time the forest strip resonated with sweet musical sounds of chirping and cooing of birds like parrots, peacocks, *myna* (a type of Asian starling), cuckoo, *kobhagak*, *bhingarak* (a type of bird producing humming sound like a bumble-bee), *kondalak*, *chakor* (a type of partridge), *nandimukh*, *titar* (partridge), *bater* (quail), duck, *chakravak* (Brahminy duck; Anas casarca), *kalahansa* (swan), *sarus* (crane) and many others. The echo of these musical sounds enhanced the charm of these trees. A multitude of intoxicated bumble-bees and honey-bees of many species, coming from far off areas in search of pollen, hovered around droning with excitement. The place echoed with these sounds all the time.

४. (ग) अब्भिंतरपुप्फफले, बाहिरपत्तोच्छण्णे, पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्नपडिवलिच्छण्णे साउफले, निरोयए, अकंटए, णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्मसोहिए, विचित्तसुहकेउभूए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वावी–पुक्खरिणी–दीहियासु य सुनिवेसियरम्म–जालहरए पिंडिमणीहारिमं सुगंधिं सुहसुरभिमणहरं च महया गंधद्धणिं मुयंता, णाणाविहगुच्छ–गुम्म–मंडवग–घरग–सुहसेउकेउबहुला, अणेगरह–जाण–जुग्ग–सिविय–पविमोयणा।

सुरम्मा, पासादीया, दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

४. **(ग)** वे वृक्ष भीतर से फूलों और फलों से लदे थे तथा बाहर पत्तों से ढके थे। वे पत्तों और फूलों से सर्वथा आच्छादित थे। उनके फल स्वादिष्ट, नीरोग तथा काँटों से रहित थे। वे तरह–तरह के फलों के गुच्छों, लता–कुंजों तथा मण्डपों द्वारा रमणीय और शोभित थे। उनके ऊपर भिन्न–भिन्न प्रकार की सुन्दर ध्वजाएँ फहराती थीं।

उस वनखण्ड में चौकोर, गोल तथा लम्बी बावड़ियों में जाली–झरोखेदार सुन्दर भवन बने थे। दूर–दूर तक जाने वाली सुगन्ध के परमाणुओं के कारण वे वृक्ष अपनी सुन्दर महक से लोगों के मन को हर लेते थे। उनकी सुगन्ध अत्यन्त तृप्ति देने वाली थी। इस प्रकार यह क्षेत्र अनेकानेक पुष्पगुच्छ, लताकुंज, मण्डप, विश्राम–स्थान आदि से युक्त था। वहाँ पताकाएँ लगी थीं। अनेक मार्ग बने थे। सुन्दर वन–क्रीड़ा के लिए आने के लिए रथों, वाहनों, डोलियों तथा पालखियों के ठहरने के लिए उपयुक्त विस्तीर्ण स्थान थे।

इस प्रकार के वृक्ष रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, **अभिरूप**–मन को अपने में रमा लेने वाले तथा **प्रतिरूप**–मन में बस जाने वाले थे।

4. (c) Under a dense cover of leaves the trees were richly laden with fruits. They were completely covered with leaves and flowers. The fruits in these trees were delicious, uncontaminated and free of thorns. These dangling bunches of a variety of fruits, groves and canopies of creepers made that area beautiful and attractive. It appeared as if different types of flags were furling over the trees.

There were square, round and oblong water tanks with steps reaching down the water level and surrounded by beautiful buildings with lattice windows and carved stone grills. These trees attracted people with the far reaching sweet fragrance that they emitted. This fragrance was very pleasing and satisfying. Thus this area abounded in trees, flower beds, groves, creepers, canopies and resting places. It was embellished with many flags and had many pathways. There were large vacant areas for parking of chariots, carriers, litters and palanquins belonging to the visitors.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This made it attractive, beautiful, spectacular, enchanting and mesmerizing.

अशोक वृक्ष का वर्णन

५. तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते--कुसविकुस--विसुद्ध--रुक्खमूले, मूलमंते, कंदमंते, जाव सुरम्मे, पासादीए, दरिसणिज्जे अभिरूवे, पडिरूवे।

५. उस वनखण्ड के ठीक बीच के भाग में एक विशाल श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था। उसकी जड़ें कुश, डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं। वह वृक्ष उत्तम मूल, कन्द स्कन्ध आदि से युक्त था। (सूत्र ४ के वर्णन अनुसार पूरा कथन समझ लेना चाहिए)। वह अतीव रमणीय, सुखप्रद--चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय--अभिरूप--प्रतिरूप अर्थात् असाधारण सुन्दरता से युक्त था।

DESCRIPTION OF THE ASHOKA TREE

5. Exactly at the center of the forest there was a huge and beautiful Ashoka tree. The ground where it stood was free of any weeds and grass like *kush* and *darbh*. It had roots, bulbous roots etc. (details same as aphorism 4-) This made it attractive, beautiful, spectacular, enchanting and mesmerizing.

६. से णं असोगवरपायवे अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं, लउएहिं, छत्तोवेहिं, सिरीसेहिं, सत्तवण्णेहिं, दहिवण्णेहिं, लोद्धेहिं, धवेहिं, चंदणेहिं, अज्जुणेहिं, णीवेहिं, कुडएहिं, कलंबेहिं, सव्वेहिं, फणसेहिं, दालिमेहिं, सालेहिं, तालेहिं, तमालेहिं, पियएहिं, पियंगूहिं, पुरोवगेहिं, रायरुक्खेहिं, णंदिरुक्खेहिं, सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

६. वह उत्तम अशोक वृक्ष अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ था। उन वृक्षों के नाम इस प्रकार हैं--तिलक, लकुच, क्षत्रोप, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीम, कुटज, कदम्ब, सव्य, पनस, दाडिम, शाल, ताल, तमाल, प्रियक, प्रियंगु, पुरोपग, राजवृक्ष, नन्दिवृक्ष--इस प्रकार अनेक वृक्षों से परिवेष्टित बहुत ही सुरम्य प्रतीत होता था।

6. That excellent Ashoka tree was surrounded by many other trees, namely—*Tilak, Lakuch, Kshatrop, Shirish, Saptaparna, Dadhiparna, Lodhra, Dhav, Chandan, Arjun, Neem, Kutaj, Kadamb, Savya, Panas, Dadim, Shaal, Taal, Tamal, Priyak, Priyangu, Puropag, Rajavriksh* and *Nandivriksh*. Surrounded by all these trees it appeared delightful.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. ते णं तिलया लउया जाव णंदिरुक्खा, कुसविकुस–विसुद्धरुक्खमूला, मूलमंतो, कंदमंतो, एएसिं वण्णओ भाणियव्वो जाव सिवियपरिमोयणा, सुरम्म, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा पडिरूवा।

७. उन तिलक, लकुच, (सूत्र ६ के अनुसार सभी वृक्षों के नाम समझें) नन्दिवृक्ष आदि इन सभी वृक्षों की जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित स्वच्छ थीं। उनके मूल, कन्द आदि दसों अंग उत्तम कोटि के थे। वे वृक्ष बहुत ही रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप–प्रतिरूप थे। (उनका वर्णन सूत्र ४ के अनुसार जान लेना चाहिए।)

7. The ground where these *Tilak*, *Lakuch*, (list same as aphorism 6) trees stood was free of any weeds and grass like *kush* and *darbh*. These trees had fine roots, bulbous roots etc. (details same as aphorism 4 up to -) This made them attractive, beautiful, spectacular, enchanting and mesmerizing.

८. ते णं तिलया जाव णंदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउमलयाहिं, णागलयाहिं, असोअलयाहिं, चंपगलयाहिं, चूयलयाहिं, वणलयाहिं, वासंतियलयाहिं, अइमुत्तयलयाहिं, कुंदलयाहिं, सामलयाहिं सव्वो समंता संपरिक्खित्ता।

८. (जिस प्रकार अशोक वृक्ष तिलक, लकुच आदि वृक्षों से घिरा हुआ था उसी प्रकार–) वे तिलक, नन्दीवृक्ष आदि वृक्ष भी अन्य बहुती–सी पद्मलताओं, नागलताओं, अशोकलताओं, चम्पकलताओं, आम्रलताओं, पीलुकलताओं, वासन्तीलताओं तथा अतिमुक्तकलताओं से चारों ओर से घिरे हुए थे।

8. As the Ashoka tree was surrounded by *Tilak* (same as aphorism 6 up to -) and *Nandi* trees so were these trees surrounded by a variety of creepers including *Padmalata, Naagalata, Ashokalata, Champakalata, Amralata, Pilukalata, Vasantilata* and *Atimuktakalata*.

९. ताओ णं पउमलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव पासादीयाओ, दरिसणिज्जाओ, अभिरूवाओ, पडिरूवाओ।

९. वे पद्मलताएँ आदि सब ऋतुओं में फूलों से भरी रहती थीं, [सूत्र ४ (ख) के अनुसार] जिससे ऐसा लगता था मानो वे सिर पर झुकी कलंगियाँ धारण किये हों। वे रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप–प्रतिरूप थीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9. These *Padmalata* and other creepers were always laden with flowers, [read same as in aphorism 4 (b) up to -] and they appeared as if they donned plumed crests in the form of beautiful buds and danglers. This made them attractive, beautiful, spectacular, enchanting and mesmerizing.

शिलापट्टक वर्णन

१०. तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते–विक्खंभायाम–उस्सेहसुप्पमाणे, किण्हे, अंजण–घण–किवाण–कुवलय–हलहरकोसेज्जागास–केस–कज्जलंगीखंजण, सिंगभेद–रिट्ठय–जंबूफल–असणग–सण–बंधण–णीलुप्पलपत्तनिकर–अयसिकुसुमप्पगासे, मरगय–मसारकलित्त–णयणकीयरासिवण्णे।

णिद्धघणे, अट्ठसिरे, आयंसयतलोवमे, सुरम्मे ईहामिय–उसभ–तुरग–णर–मगर–विहग–वालग–किण्णर–रुरु–सरभ–चमर–कुंजर–वणलय–पउमलय–भत्तिचित्ते, आईणग–रूय–बूर–णवणीय–तूलफरिसे, सीहासणसंठिए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।

१०. उस अशोक वृक्ष के नीचे तने के कुछ पास एक बड़ा **पृथ्वी शिलापट्टक**–चबूतरे की भाँति जमी हुई मिट्टी पर स्थापित शिलापट्ट था। उसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई एक समान थी। वह कृष्ण वर्ण का था। उसका रंग अंजन, बादल, कृपाण, नीले कमल, बलराम के वस्त्र, आकाश, केश, काजल की कोठरी, खंजन पक्षी, भैंस के सींग, रिष्टक (नील वर्ण का) रत्न, जामुन के फल, वीयक नामक वनस्पति, सन के फूल के डंठल, नीलकमल के पत्तों की राशि तथा अलसी के फूल के समान नीली चमक लिए हुए था। नीलमणि, कसौटी, कमर पर बाँधने के चमड़े के पट्टे तथा आँखों की कनीनिका–तारे–इनके पुँज जैसा उसका वर्ण था।

वह अत्यन्त स्निग्ध–चिकना था। उसके आठ कोने थे। वह दर्पण के समान चमकदार सुरम्य था। उस पर विविध प्रकार के चित्र बने हुए थे, जैसे–भेड़िये, बैल, घोड़े, मनुष्य, मगर, पक्षी, साँप, किन्नर, रुरु, अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता और पद्मलता। मृगछाला, कपास, बूर, मक्खन तथा आक की रुई के समान उसका कोमल स्पर्श था। वह आकार में सिंहासन जैसा दीखता था। इस प्रकार वह शिलापट्टक मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप–प्रतिरूप था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10. Under this Ashoka tree and a little closer to its trunk there was a large stone slab installed on a sand platform. Its length, width and height were equal (it was cubical in shape). It had a black hue like that of lampblack, dark clouds, sword, blue lotus, Balaram's robe, sky, hair, room filled with collyrium, *khanjan* bird, buffalo-horn, *rishtak* gem, rose-apple, *veeyak* plant, stalk of *san* flower (the plant *Cannabis sativa*), heap of leaves of blue lotus and *alsi* (linseed) flower. Its colour was like that of blue sapphire, touchstone, black leather belt and a bunch of eye-pupils.

Its surface was very smooth. It had eight corners. It had a mirror-like polish. A variety of figures were engraved on it. These included wolves, bulls, horses, human beings, crocodiles, birds, snakes, *kinnars* (lower gods), *rurus*, *sarabhs* (octopuses), *chamars* (yaks), elephants, forest creepers and lotus creepers. Like chamois leather, softest cotton, *Bura* plant, fresh butter and *Aak* fibre, it was extremely soft to touch. In appearance it was like a throne. Thus it was attractive, beautiful, spectacular, enchanting and mesmerizing.

चम्पापति कूणिक

११. (क) तत्थ णं चंपाए णयरीए कूणिए णामं राया परिवसइ।

महयाहिमवंत–महंतमलय–मंदर–महिंदसारे, अच्चंतविसुद्ध–दीहरायकुलवंससुप्पसूए, णिरंतरं रायलक्खणविराइयंगमंगे, बहुजण–बहुमाणपूइए, सव्वगुणसमिद्धे, खत्तिए, मुइए, मुद्धाहिसित्ते, माउपिउसुजाए।

११. (क) उस चम्पा नगरी का राजा कूणिक था, जो वहाँ निवास करता था।

वह कूणिक राजा महाहिमवान् पर्वत के समान महान् तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र पर्वतों के समान अनेक विशिष्टता लिए हुए था। वह अत्यन्त **विशुद्ध**–निर्दोष, प्राचीन राजवंश में उत्पन्न हुआ था। उसके सभी अंग राजा के योग्य लक्षणों से शोभित थे। वह बहुत लोगों द्वारा अति सम्मानित और पूजित था। वह नीति, शौर्य आदि सर्वगुण समृद्ध था। जनता को आक्रमण तथा संकट से बचाने वाला **क्षत्रिय** था। वह सदा **मुदित**–प्रसन्न रहता था। अपनी पैतृक परम्परा द्वारा एवं आज्ञानुवर्ती अन्य बहुत से राजाओं द्वारा उसका **मूर्द्धाभिषेक**–राज्याभिषेक या राजतिलक हुआ था। वह उत्तम माता–पिता का सुजात–आज्ञापालक पुत्र था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

KING KUNIK OF CHAMPA

11. (a) In Champa lived its ruler king Kunik.

His stature was as lofty as the great Himalayas. He had many unique qualities like those of Malaya, Meru and Mahendra mountains. He belonged to an ancient and distinguished royal family. Every part of his body bore auspicious marks suited to a monarch. He commanded respect and adoration of many. He was richly endowed with qualities like integrity and valour. He was a true *Kshatriya* (the warrior or the regal caste), the defender of masses from attack and adversity. He had a charming and pleasing personality. He was installed and crowned as a monarch by the kingdom he inherited as well as many other subordinate kingdoms. He was a worthy son of noble parents.

कूणिक का चरित्र

११. (ख) दयपत्ते, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, मणुस्सिंदे, जणवयपिया, जणवयपाले, जणवयपुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, णरपवरे, पुरिसवरे, पुरिससीहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुंडरीए, पुरिसवरगंधहत्थी, अड्ढे, दित्ते, वित्ते।

११. (ख) वह राजा स्वभाव से दयालु था। मर्यादाओं की स्थापना करने वाला तथा उनका पालन करने वाला था। वह **क्षेमंकर**–प्रजा के लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करने वाला तथा **क्षेमंधर**–उन्हें स्थिर रखने वाला था। वह विपुल ऐश्वर्य के कारण मनुष्यों में इन्द्र के समान मान्य था। वह अपने जनपद के लिए पितृतुल्य प्रतिपालक, प्रजा के हित को आगे रखने वाला, कुमार्गगामियों को सन्मार्ग पर लाने वाला, अच्छे कार्यों को करने वाला था। वह **नरप्रवर**–वैभव, सेना, शक्ति आदि की दृष्टि से मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा **पुरुषवर**–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों में उद्यमशील, परमार्थ–चिन्तन के कारण पुरुषों में श्रेष्ठ था। कठोरता व पराक्रम में वह सिंहतुल्य, रौद्रता में बाघ के तुल्य तथा अपने क्रोध को सफल बनाने के सामर्थ्य में सर्पतुल्य था। वह पुरुषों में उत्तम **पुण्डरीक**–सबके लिए सुखदायी तथा सेवाशील जनों के लिए श्वेत कमल जैसा सुकुमार था। वह पुरुषों में गन्धहस्ती के समान–अपने विरोधी राजा रूपी हाथियों का मान–मर्दन करने वाला था। वह समृद्ध, **दृप्त**–दर्प या प्रभावयुक्त तथा **वित्त** या **वृत्त**–स्वदेश व स्व–धर्म के पालन में सुप्रसिद्ध था।

THE CHARACTER OF KUNIK

11. (b) By nature he was compassionate. He was a founder of moral and ethical code and a strict follower of the same. He worked

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

for the lasting welfare of his people (*kshemankar*). Due to his unlimited wealth and grandeur he enjoyed the status of Indra (the king of gods) among men. For his kingdom he was the father-like protector. The good of his people was his first priority. He was the reformer who steered the drifters on to the right path. He was a performer of good deeds. In terms of grandeur, power and other such attributes he was the best among men. As he sincerely pursued the four human goals of religion, wealth, procreation and liberation with altruistic thoughts he was the loftiest among men. He was strong and valorous like a lion, ferocious like a tiger and efficient in dealing his wrath like a serpent. He was a white lotus among men because he was soft and sensitive for those who served masses and worked for their happiness (*Pundareek*). He was a king-elephant among men because he humbled the pride of other minor kings. He was affluent, influential and renowned as benefactor of his religion and country.

कूणिक का वैभव

११. (ग) विच्छण्णि-विउलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहुधण-बहुजायरूव-रयए, आओग-पओग-संपउत्ते, विच्छड्डियपउर-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए, पडिपुण्णजंतकोसकोट्ठागाराउधागारे, बलवं, दुब्बलपच्चामित्ते, ओहयकंटयं, नियकंटयं, मलियकंटयं, उद्धियकंटयं, अकंटयं, ओहयसत्तुं, निहयसत्तुं, मलियसत्तुं, उद्धियसत्तुं, निज्जियसत्तुं, पराइयसत्तुं।

ववगयदुब्भिक्खं, मारिभयविप्पमुक्कं, खेमं, सिवं, सुभिक्खं, पसंतडिंबडमरं रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

११. (ग) उसके पास बड़े-बड़े विशाल भवन, सोने-बैठने के आसन तथा रथ, घोड़े आदि सवारियाँ, वाहन आदि विपुल मात्रा में थे। उसके पास विपुल सम्पत्ति, सोना तथा चाँदी थी। वह **आयोग-प्रयोग**-धन लाभ के उपायों का जानकार एवं धन-वृद्धि के उपायों में अनेक प्रकार से प्रयत्नशील रहता था। उसके यहाँ भोजन कर लिए जाने के बाद बहुत खाद्य सामग्री बच जाती थी। (जो गरीबों में बाँट दी जाती थी।) उसके यहाँ अनेक दासियाँ, दास तथा पशुशाला में गायें, भैंसें, भेड़ें आदि थीं। उसके यहाँ **यन्त्र**-(यंत्रागार), **कोष**-खजाना, **कोष्ठागार**-अन्न आदि वस्तुओं का भण्डार तथा शस्त्रागार सदा प्रतिपूर्ण-भरा रहता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। उसके पास विशाल सेना थी। उसने अपने राज्य के सीमावर्ती राजाओं या पड़ोसी राजाओं को शक्तिहीन बना दिया था। अपने सगोत्र प्रतिस्पर्द्धियों–प्रतिस्पर्द्धा व विरोध रखने वालों को विनष्ट कर दिया था। उनका धन छीनकर एवं उनका मान-भंग कर तथा उन्हें देश से निर्वासित कर वह निष्कण्टक बन गया था। उसका कोई भी सगोत्र-विरोधी बच नहीं पाया था। उसी प्रकार उसने अपने (गोत्र-भिन्न) शत्रुओं को विनष्ट कर दिया था, देश से निर्वासित कर दिया था तथा राज्य के चोर, तस्कर, हिंसा प्रेमी–काँटों को निकालकर समाप्त कर दिया था। उन सबको अपने प्रभाव से जीत लिया था, पराजित कर दिया था।

इस प्रकार वह राजा दुर्भिक्ष (दुष्काल) तथा महामारी के भय से रहित–निरुपद्रव, क्षेममय, कल्याणमय सुभिक्षयुक्त–(जहाँ भिक्षुओं को सुलभता से भिक्षा प्राप्त हो जाती) एवं शत्रुकृत विघ्नरहित राज्य का शासन करता था।

THE GRANDEUR OF KUNIK

11. (c) He owned large palaces and mansions, unlimited furniture, chariots, horses and other vehicles. He had abundant wealth including gold and silver. He was proficient in various methods of expanding his wealth and putting them to use with great efficiency. Large quantity of food was cooked in his royal kitchen resulting in a surplus after every meal. (This was distributed among the destitute.) He had innumerable servants and maids and also abundant livestock including cows, buffalos and sheep. He had large and well supplied machine-shop, treasury, granary, armoury and other storehouses. He also had an immensely large army. He had reduced the neighbouring kingdoms to insignificance. He had also destroyed all the rival claimants to the throne as well as other competitors within the clan. He had secured his rule by depriving them of their wealth and power, shattering their status and exiling them. He was left with no opposition within the clan. He did the same to his enemies outside the family and clan. He made his kingdom free of thieves, smugglers and other anti-social elements. With his great power he had defeated them, conquered them.

This way he ruled over his state in peace, beatitude and abundance, without any fear of drought, epidemic and other disturbances including those caused by enemies.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था--सुकुमालपाणिपाया, अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा, लक्खण-वंजण-गुणोववेया, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगी, ससिसोमाकारकंतपियदंसणा, सुरूवा।

करयल परिमिय पसत्थ तिवली वलियमज्झा, कुंडलुल्लिहिय-गंडलेहा, कोमुइय रयणियर विमलपडिपुण्ण सोमवयणा, सिंगारागारचारुवेसा, संगयगय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललियसंलाव-णिउणजुत्तोवयारकुसला, पासादीया, दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

कोणिएणं रण्णा भंभसारपुत्तेण सद्धिं अणुरत्ता, अविरत्ता, इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

१२. राजा कोणिक की रानी का नाम धारिणी था। उसके हाथ-पैर सुकोमल थे। शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ प्रतिपूर्ण-रचना की दृष्टि से अखण्डित, सम्पूर्ण, अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में सक्षम थीं। वह उत्तम **लक्षण**-सौभाग्यसूचक हाथ की रेखा आदि, **व्यंजन**-उत्कर्षसूचक, तिल, मस आदि चिह्न तथा **गुण**-शील, सदाचार आदि गुणों से युक्त थी। मान, उन्मान, प्रमाण अर्थात् शरीर का विस्तार, वजन, ऊँचाई आदि की दृष्टि से वह परिपूर्ण, श्रेष्ठ तथा सर्वांग सुन्दरी थी। उसका आकार चन्द्र के समान सौम्य तथा देखने में कमनीय था। वह परम रूपवती थी।

उसकी देह का मध्य भाग कमर **करतल परिमित**-मुट्ठी में आ सके इतनी पतली थी। उसका उदर पेट पर पड़ने वाली उत्तम तीन रेखाओं से युक्त था। उसके दोनों कपोल कुण्डलों से **उद्दीप्त**-सुशोभित थे। उसका मुख शरद पूर्णिमा के चन्द्र के सदृश निर्मल, सौम्य था। उसकी सुन्दर वेशभूषा ऐसी थी, मानो शृंगार रस का घर हो। उसकी **गति**-चाल, **स्मित**-मंद हँसी, **भणित**-बोली, **कृति**-व्यवहार एवं **विलास**-दैहिक चेष्टाएँ **संगत**-समुचित चातुर्यपूर्ण थीं। लालित्यपूर्ण आलाप-संलाप में वह निपुण थी। यथायोग्य लोक-व्यवहार में वह कुशल थी। वह मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थी।

वह रानी अपने पति भंभसार-(श्रेणिक) के पुत्र कोणिक राजा के प्रति सदा **अनुरक्त**-अनुकूल रहती। क्रोधित होने पर भी कभी **विरक्त**-प्रतिकूल नहीं होती। पति के साथ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध रूप पाँचों इन्द्रियों के मन इच्छित काम-भोग भोगती हुई अपना जीवन सुखपूर्वक बिता रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

QUEEN DHARINI

12. The name of king Kunik's consort was Dharini. She had tender and delicate limbs. All her five sense organs were flawless, well developed and perfect in performance. She was well endowed with all auspicious signs (like a good fate-line in the palm etc.) and marks (like moles and birth marks) as well as virtues (like good character and conduct). In terms of height, weight and figure she was perfectly, exquisitely and absolutely beautiful. Her personality was charming and delightful like moon. She was the epitome of supreme beauty.

Her waist was so slender that it could be held in a fist. Her abdomen had three delicately formed lines. Her ear-rings enhanced the beauty of her cheeks. Her face was pure and soothing like the moon. Her exquisite dress was like the abode of amatory sentiment (*shringar rasa*). Her gait (*gati*), smile (*smit*), speech (*bhanit*), behaviour (*kriti*), and movement (*vilas*) were perfectly graceful (*snagat*). She evinced eloquence in her speech and dignity in her behaviour. She was, indeed, attractive, spectacular, enchanting and mesmerizing.

She had unwavering adoration for her husband king Kunik, the son of Bhambhasar (Shrenik Bimbisar). She was not offended even when he was angry. She lead a happy life, enjoying with her husband all the desired pleasures of the five sense organs (speech, touch, taste, vision and smell).

कोणिक की राज्य सभा

१३. तस्स णं कोणियस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकयवित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेइ।

१३. राजा कोणिक के यहाँ एक ऐसा वार्त्ता-निवेदक पुरुष-(समाचार देने वाला) पर्याप्त वेतन पर नियुक्त था, जो भगवान महावीर के प्रतिदिन के विहार आदि के समाचार (प्रवृत्तियाँ) सूचित करता रहता था।

THE SERVANT

13. King Kunik had appointed a reporter, at good salary, who was assigned the duty of reporting about the day-to-day activities of Bhagavan Mahavir including his movements.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्णभतिभत्तवेयणा भगवओ पवित्तिवाउया, भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेंति।

१४. उसने अपने सहायक के रूप में अन्य अनेक व्यक्तियों को भोजन तथा वेतन पर नियुक्त कर रखा था, वे भगवान की प्रतिदिन की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उसे यथायोग्य सूचना देते रहते थे।

14. This reporter, in turn, had put in place a network of assistants appointed on wages and allowances. This network provided him up-to-date information about Bhagavan Mahavir's daily activities.

१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभसारपुत्ते बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए अणेग–गणणायग–दंडणायग–राईसर–तलवर–माडंबिय–कोडुंबिय–मंति–महामंति–गणग–दोवारिय–अमच्च–चेड–पीढमद्द–नगरनिगम–सेट्ठि–सेणावइ–सत्थवाह–दूय–संधिवाल–सद्धिं संपरिवुडे विहरइ।

१५. एक समय की बात है, भंभसार पुत्र कोणिक बाहरी **उपस्थानशाला**–(राजसभा) में बैठा था। उसके पास अनेक **गणनायक**–विशिष्ट जनसमूहों के नेता, **दण्डनायक**–उच्च आरक्षि–अधिकारी, **राजा**–मांडलिक (मंडलाधिकारी) नरपति, **ईश्वर**–ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशाली–पुरुष, **तलवर**–राज्य–सम्मानित विशिष्ट नागरिक, **मांडबिक**–जागीरदार, भूस्वामी, **कौटुम्बिक**–बड़े परिवारों के प्रमुख, मंत्री, **महामन्त्री**–मन्त्रिमण्डल के प्रधान, **गणक**–ज्योतिषी, द्वारपाल, **अमात्य**–राज्य कार्यों में परामर्शक (अठारह श्रेणियों के प्रमुख), **चेड**–सेवक, **पीठमर्द**–**परिपार्श्विक**–हर समय राजा के साथ रहने वाले अंगरक्षक, नागरिक, व्यापारी, श्रेष्ठी–लक्ष्मी के चिह्न से अंकित स्वर्णपट्ट से जिनका मस्तक सुशोभित रहता था वे श्रेष्ठी कहे जाते थे। **सेनापति**–रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल चतुरंगिणी–सेना के अधिनायक, **सार्थवाह**–दूसरे देशों में व्यापार करने वाले व्यवसायी, **दूत**–दूसरों के तथा राजा के आदेश–सन्देश पहुँचाने वाले, **सन्धिपाल**–राज्य की सीमाओं के रक्षक–सीमारक्षक अथवा शत्रु राजाओं के साथ सन्धि करने में चतुर आदि अनेक विशिष्ट जन बैठे थे।

15. During that period of time king Kunik, the son of Bhambhasar, was holding court in the outer assembly hall. In his attendance were a variety of prominent people including chieftains (*gananayag* or *gananayak*); administrators (*dandanayag* or *dandanayak*); princes and kings (*raisar* or *rajeshvar/yuvaraj*);

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

nobles; knights of honour (*talavar* or *pattadhari*); landlords (*madambiya* or *jamindar*); heads of prominent families and village-heads (*kodumbiya* or *chowdhary*); ministers (*manti* or *mantri*); chief ministers (*mahamanti* or *mahamantri*); astrologers (*ganaga* or *ganak*); gatekeepers or guards (*dovariya*); counselors heading eighteen different sections (*amachch* or *amatya*); attendants and servants (*ched* or *sevak*); bodyguards who are always at the back of the king (*peedhamadda* or *peethmard* or *pariparshvik*); citizens (*nagarnigam* or *nagarik*); merchants, specially those who wore golden headband marked with the sign of Lakshmi, the goddess of wealth (*setthi* or *shreshthi*); commander of the armed forces including the four sections of chariot, elephant, horse and foot-soldiers (*senavai* or *senapati*); caravan chiefs (*satthavaha* or *saarthavah*); emissaries and ambassadors (*duya* or *doot*); and border guards and diplomats (*sandhival* or *sandhipal*).

भगवान महावीर

१६. (क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे, तित्थगरे, सहसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे, पुरिससीहे, पुरिसवरपुंडरीए, पुरिसवरगंधहत्थी, अभयदए, चक्खुदए, मग्गदए, सरणदए, जीवदए, दीवो, ताणं, सरणं, गई, पइट्ठा, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी, अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे, विअट्टच्छउमे, जिणे, जाणए, तिण्णे, तारए, मुत्ते, मोयए, बुद्धे, बोहये, सव्वण्णू, सव्वदरिसी, सिवमयलमरुय-मणंतमक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावत्तअं सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपाविउकामे, अरहा, जिणे, केवली।

१६. (क) उस समय श्रमण भगवान महावीर **आदिकर**–अपने युग में धर्म के आदि प्रवर्त्तक, तीर्थंकर–चतुर्विध धर्मतीर्थ–के प्रतिष्ठापक, स्वयं–संबुद्ध, **पुरुषोत्तम**–पुरुषों में उत्तम, **पुरुषसिंह**–आत्म–शौर्य में पुरुषों में सिंह–सदृश, **पुरुषवरपुंडरीक**–मनुष्यों के बीच रहते हुए कमल की तरह निर्लेप, **पुरुषवरगन्धहस्ती**–पुरुषों में उत्तम गन्धहस्ती के समान (जिस प्रकार गन्धहस्ती के पहुँचते ही सामान्य हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार किसी क्षेत्र में जिनके प्रवेश करते ही दुर्भिक्ष, महामारी आदि अनिष्ट दूर हो जाते थे), **अभयदायक**–सभी प्राणियों के लिए अभयदान देने वाले, **चक्षुप्रदायक**–आन्तरिक नेत्र रूप सद्ज्ञान देने वाले, **मार्गप्रदायक**–सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप साधनामार्ग के उद्‌बोधक, **शरणप्रद**–जिज्ञासु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा मुमुक्षु जनों के लिए आश्रयभूत, **जीवनप्रद**–आध्यात्मिक जीवन के सहायक, **दीपक** के सदृश समस्त वस्तुओं के प्रकाशक अथवा संसार–सागर में भटकते जनों के लिए **द्वीप** के समान आश्रय–स्थान, प्राणियों के लिए आध्यात्मिक उद्‌बोधन देने वाले **शरण**, **गति** एवं **आधारभूत**, **धर्म चक्रवर्ती**–चक्रवर्ती के समान लोक में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करने वाले, **अप्रतिघात**–बाधा या आवरणरहित उत्तम ज्ञान, दर्शन आदि के धारक, **व्यावृत्तछद्‌मा**–अज्ञान आदि आवरण रूप छद्‌म से मुक्त, **जिन**–राग आदि के जेता, **ज्ञायक**–ज्ञाता अथवा ज्ञापक–राग आदि को जीतने का पथ बताने वाले, **तीर्ण**–संसार–सागर को पार कर जाने वाले, **तारक**–संसार–सागर से पार उतारने वाले, **मुक्त**–बाहरी और भीतरी ग्रन्थियों से मुक्त अज्ञान ग्रन्थियों से, **मोचक**–दूसरों को छुड़ाने वाले, **बुद्ध**–बोध प्राप्त, **बोधक**–दूसरों के बोध ज्ञान देने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, **शिव**–कल्याणमय, **अचल**–स्थिर, **अरूज**–रोगरहित, अन्तरहित, क्षयरहित, बाधारहित, **अपुनरावर्तक**–जहाँ से फिर जन्म–मरण रूप संसार में आगमन नहीं होता, ऐसी **सिद्धगति**–सिद्धावस्था नामक स्थिति पाने के लिए प्रवृत्त, **अर्हत्**–तीन लोक में पूजनीय एवं रागादि विजेता, जिन, केवली–केवलज्ञानयुक्त।

BHAGAVAN MAHAVIR

16. (a) At that period of time Shraman Bhagavan Mahavir arrived in Champa city. He was the first propounder of the *shrut dharma* (Jainism) of his time (*aaigare* or *aadikar*); the religious ford-maker or founder of the four-fold religious order (*Titthagare* or *Tirthankar*); the self-enlightened one (*sahasambuddhe* or *svayam-sambuddh*); supreme among men (*purisuttame* or *purushottam*); a lion among men because of his spiritual valour (*purisasihe* or *purush-simha*); unspoiled among men like a white lotus (*purisavar-pundariye* or *purushvar-pundareek*); a glorious elephant among men (*purisavar-gandhahatthi* or *purushvar-gandhahasti*) [ordinary elephants abandon the area where a bull elephant comes, likewise drought, epidemic and other such misfortunes disappeared from areas where he went]. He dispelled fear (*abhayadaye* or *abhayadayak*); gave spiritual vision (*chakkhudaye* or *chakshupradayak*); showed the path of liberation in the form of right knowledge, perception and conduct (*maggadaye* or *margapradayak*); provided refuge to the seekers of the right path (*sarandaye* or *sharanprad*); listed spiritual meaning to life (*jivadaye* or *jivanprad*). Like a lamp/island (*divo* or *deepak / dveep*),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

he was an anchor (*paittha* or *pratishtha*) of refuge (*saranam* or *sharanam*), succour (*taanam* or *tran*) and movement (*gai* or *gati*) for those fumbling in the darkness/sea of cycles of rebirth. He was the propagator of *dharma* in all corners of the world like the conquest of an emperor (*dhamma chakkavatti* or *dharma chakravarti*); the holder of unlimited unveiled knowledge and perception (*appadihaya* or *apratighat*); free of masks of ignorance and ambiguities (*viattachhaume* or *vyavrittachhadma*); the conqueror of attachment and aversion (*jine* or *jina*); the lamp of knowledge and beacon on the path of victory over attachment and aversion (*janaye* or *jnata/jnapak*). He had crossed the ocean of cycles of rebirth (*tinne* or *tirna*); and helped crossing the ocean of cycles of rebirth (*taraye* or *tarak*). He was the liberated (*mutte* or *mukta*); the liberator (*moyaye* or *mochak*); the enlightened (*buddhe* or *buddha*); the giver of enlightenment (*bohaye* or *bodhak*); all-knowing (*savvannu* or *sarvajna*); all-seeing (*savva dariso* or *sarvadarshi*); the epitome of beatitude (*siva* or *Shiva*); steadfast (*ayal* or *achal*); free of ailments (*arua* or *aruja*); infinite and eternal (*anant*); free of decay (*akkhaya* or *akshaya*); beyond all obstructions (*avvavaha* or *avyabadh*); the aspirant of and destined to attain the state of ultimate perfection (*siddha gai* or *siddha gati*) from where there is no return to the cycles of rebirth (*apunaravattiam* or *apunaravartak*); the object of worship in the three worlds (*araha* or *arhat*); the *Jina* and the omniscient (*kevali*).

भगवान का शरीर सौष्ठव

१६. (ख) सत्तहत्थूस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए, वज्जरिसहनारायसंघयणे,

अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणी कवोय–परिणामे,

सउणिपोसपिट्ठंतर रोरू–परिणए,

पउमुप्पलगंधसरिस निस्साससुरभिवयणे,

छवी, निरायंक–उत्तम–पसत्थ–अइसेयनिरुवमपले,

जल्ल–मल्ल–कलंक–सेय–रय–दोसवज्जियसरीरनिरुवलेवे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छाया–उज्जोइयंगमंगे, घण–निचिय–सुबद्ध–लक्खणुण्णय–कूडागारनिभ–पिंडियग्गसिरए,

सामलिबोंड–घणनिचियच्छोडिय–मिउविसय–पसत्थसुहुम–लक्खणसुगंधसुंदर–भुयमोयग–भिंग–नील–कज्जल–पहट्ठ भमरगणणिद्ध–निकुरुंबनिचियकुंचिय–पयाहिणावत्तमुद्धसिरए,

दालिमपुप्फप्पगास तवणिज्ज सरिसनिम्मलसुणिद्धकेसंत–केसभूमी,

छत्तागारुत्तिमंगदेसे,

णिव्वण–सम–लट्ठ–मट्ठ–चंदद्धसमणिडाले,

उडुवइपडिपुण्णसोमवयणे, अल्लीणपमाणजुत्तसवणे, सुस्सवणे,

पीण–मंसल–कवोलदेसभाए,

आणामिय चाव रुइल–किण्हब्भराइ–तणु कसिणणिद्ध भमुहे,

अवदालिय–पुंडरीयणयणे,

कोआसिय धवल–पत्तलच्छे,

गरुलाययउज्जतुंग–णासे,

उवचियसिलप्पवाल–बिंबफल–सण्णिभाहरोट्ठे,

पंडुर–ससिसयल–विमलणिम्मलसंख–गोक्खीरफेण–कुंद–दगरय–मुणालिया–धवलदंतसेढी,

अखंडदंते, अप्फुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते,

एगदंतसेढी विव अणेगदंते,

हुयवह–णिद्धंतधोयतत्ततवणिज्ज रत्ततलतालुजीहे,

अवट्ठियसुविभत्तचित्तमंसू,

मंसल–संठिय–पसत्थ–सद्दूलविउलहणुए,

चउरंगुल सुप्पमाण कंबुवरसरिसग्गीवे,

वरमहिस–वराह–सीह–सद्दूल–उसभ–नागवर–पडिपुण्णविउलक्खंधे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुगसन्निभपीण–रइयपीवरपउट्ठ–सुसंठिय–सुसिलिट्ठ–विसिट्ठ–घण–थिर–सुबद्धसंधिपुरवर–फलिहवट्टियभुए,

भुयगीसरविउलभोग आयाणपलिह उच्छूढदीहबाहू,

रत्ततलोवइय–मउय–मंसल–सुजाय–लक्खणपसत्थ–अच्छिद्दजालपाणी, पीवरकोमल–वरंगुली,

आयंब तंब तलिण–सुइरुइलणिद्धणखे,

चंदपाणिलेहे, संखपाणिलेहे, चक्कपाणिलेहे, दिसासोत्थियपाणिलेहे, चंद–सूर–संख–चक्क–दिसासोत्थियपाणिलेहे,

कणगसिलायलुज्जल – पसत्थ – समतल – उवचियविच्छिण्णपिहुलवच्छे, सिरिवच्छंक्किवच्छे,

अकरंडुय कणग रुययनिम्मल सुजायनिरुवहयदेहधारी,

अट्ठसहस्सपडिपुण्णवरपुरिसलक्खणधरे,

सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे, सुजायपासे, मियमाइय–पीणरइयपासे,

उज्जुय–समसहिय–जच्च–तणु–कसिण–णिद्ध–आइज्ज–लउह–रमणिज्जरोमराई,

झस–विहग–सुजायपीणकुच्छी,

झसोयरे, सुइकरणे,

पउमवियडणाभे, गंगावत्तगपयाहिणावत्त–तरंगभंगुर–रवि–किरण–तरुण–बोहियअकोसायंत–पउमगंभीर–वियडणाभे,

साहयसोणंद–मुसल दप्पण णिकरियवर–कणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमज्झे, पमुइयवरतुरग–सीहवर–वट्टियकडी,

वरतुरग सुजाय सुगुज्झदेसे,

आइण्णह उव्वणिरुवलेवे,

वरवारण तुल्लविक्क–मविलसियगई,

गय–ससणसुजायसन्निभोरू,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुग्ग–णिमग्गगूढजाणू, एणी–कुरुविंदावत्तवट्टाणपुव्वजंघे,

संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फे,

सुप्पइट्ठियकुम्मचारुचलणे,

अणुपुव्वसूसंहयंगुलीए,

उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खे,

रत्तुप्पल–पत्तमउयसुकुमालकोमलतले,

अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे,

नग–नगर–मगर–सागर–चक्क–कवरंग–मंगलंकियचलणे,

विसिट्ठरूवे, हुयवहनिद्धूमजलिय–तडितडिय–तरुणरविकिरणसरिसतेए।

१६. (ख) **सत्तहत्थूस्सेहे**–भगवान महावीर के शरीर की ऊँचाई सात हाथ थी, उनका संस्थान समचौरस था तथा शरीर की रचना वज्र–ऋषभ–नाराच–संहननयुक्त था।

अनुकूल वायुवेग–देह के अन्तर्वर्ती पवन के उचित वेग–गतिशीलता से युक्त, कंक पक्षी की तरह निर्दोष गुदाशययुक्त एवं कबूतर की तरह पाचन–शक्तियुक्त था।

उनका अपान–स्थान उसी तरह निर्लेप था जैसे पक्षी का, पीठ और पेट के नीचे के दोनों पार्श्व तथा जंघाएँ सुपरिणित–सुन्दर–सुगठित थे।

उनका मुख पद्म–कमल अथवा पद्म नामक सुगन्धित द्रव्य तथा उत्पल–नीलकमल जैसे सुरभिमय निःश्वास से युक्त था।

उनका शरीर, **छवि**–उत्तम छविमान्–दीप्तिमान, नीरोग, उत्तम, प्रशस्त, अत्यन्त श्वेत माँसयुक्त था।

जल्ल–(कठिनाई से छूटने वाला मैल), **मल्ल**–(आसानी से छूटने वाला मैल), **कलंक**–(दाग, धब्बे), **स्वेद**–पसीना तथा **रज–दोष**–मिट्टी लगने से विकृति–वर्जित, अतएव निरुपलेप–अत्यन्त स्वच्छ था।

प्रत्येक अंग दीप्ति से उद्योतित था। उनका मस्तक अत्यधिक सघन, सुबद्ध, स्नायुबंध सहित, उत्तम लक्षणमय पर्वत के शिखर के समान उन्नत था।

उनके मस्तक के बाल बारीक रेशों से भरे सेमल के फल फटने से निकलते हुए रुई के रेशों जैसे कोमल, प्रशस्त, सूक्ष्म, **श्लक्ष्ण**–मुलायम, सुरभित, सुन्दर तथा भुजमोचक, नीलम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौंग, नील, कज्जल, **प्रहृष्ट**–सुपुष्ट भ्रमरवृन्द जैसे चमकीले काले, घने, घुँघराले और छल्लेदार कुण्डलाकार थे।

जिस त्वचा पर उनके बाल उगे हुए थे, वह अनार के फूल तथा सोने के समान दीप्तिमय, लाल, निर्मल और चिकनी थी।

उनका उत्तमांग–मस्तक का ऊपरी भाग सघन, भरा हुआ और छत्र की तरह गोलाकार था।

उनका ललाट **निर्व्रण**–फोड़े–फुन्सी आदि के घाव–चिह्न से रहित, समतल तथा सुन्दर एवं अर्द्ध–चन्द्र के समान भव्य था।

उनका मुख पूर्ण चन्द्र के समान सौम्य था। उनके कान मुख के साथ सुन्दर रूप में संयुक्त और समुचित आकृति के थे, अतः वे बड़े सुहावने लगते थे।

उनके कपोल माँसल और परिपुष्ट थे।

उनकी काली एवं स्निग्ध भौंहें वक्र धनुष के समान सुन्दर–टेढ़ी, काले बादल की रेखा के समान पतली थीं।

खिले हुए पुण्डरीक–(सफेद कमल) के समान उनके नयन थे।

ये बरौनी (पत्रल) युक्त धवल आँखें अर्द्ध–विकसित कमल जैसी लगती थीं।

उनकी नासिका गरुड़ की चोंच की तरह लम्बी, सीधी और उन्नत थी।

उनके होठ संस्कारित या सुघटित मूँगे की पट्टी जैसे या बिम्ब फल के सदृश थे।

उनके दाँतों की श्रेणी शुभ निष्कलंक चन्द्रमा के टुकड़े, निर्मल से भी निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन (झाग), कुंद पुष्प, जलकण और कमल–नाल के समान उज्ज्वल थी।

दाँत अखण्ड, परिपूर्ण, अस्फुटित–सुदृढ़, टूट–फूटरहित, अविरल–परस्पर सटे हुए थे। वे सुस्निग्ध–चिकने–आभामय, सुजात–सुन्दराकार दीखते थे।

अनेक दाँत एक दन्त–श्रेणी की तरह प्रतीत होते थे।

जिह्वा और तालु अग्नि में तपाकर जल से धोये हुए स्वर्ण के समान लाल थे।

उनकी दाढ़ी–मूँछ **अवस्थित**–कभी नहीं बढ़ने वाली, **सुविभक्त**–(दो भागों में बराबर) बहुत हल्की–सी तथा अद्‌भुत सुन्दरता लिए हुए थी।

ठुड्डी माँसल–सुगठित, प्रशस्त तथा चीते की तरह विस्तीर्ण थी।

ग्रीवा–गर्दन चार अंगुल प्रमाण, चार अंगुल चौड़ी तथा उत्तम शंख के समान तीन रेखाओं से युक्त एवं उन्नत थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके सुपुष्ट कन्धे भैंसे, सूअर, सिंह, चीते, साँड़ तथा उत्तम हाथी के कन्धों जैसे परिपूर्ण एवं विस्तीर्ण थे।

उनकी भुजाएँ **युग**–गाड़ी के जुए अथवा **यूप**–यज्ञ स्तम्भ–यज्ञ के खूँटे की तरह गोल और लम्बी, सुदृढ़ दीखने में आनन्दप्रद, सुपुष्ट कलाइयों से युक्त, **सुश्लिष्ट**–सुसंगत, विशिष्ट, **घन**–ठोस, सुगठित, स्थिर, स्नायुओं से यथावत् रूप में सुबद्ध तथा नगर की अर्गला–आगल के समान गोलाई लिए हुए थीं।

उनके दीर्घ बाहु ऐसे लगते थे जैसे इच्छित वस्तु प्राप्त करने के लिए नागराज का फैला हुआ विशाल शरीर हो।

उनके **पाणि**–कलाई से नीचे के हाथ के भाग उन्नत, कोमल, माँसल तथा सुगठित एवं शुभ लक्षणों से युक्त थे। अंगुलियाँ मिलाने पर उनमें छिद्र दिखाई नहीं देते थे।

हाथों की अँगुलियाँ पुष्ट, कोमल एवं सुन्दर थीं। किंचिद् रक्त–कुछ लाली लिए पतले, शुद्ध, सुन्दर एवं चिकने नख थे।

उनके तल–हथेलियाँ ललाई लिए हुए, पतली, उजली, रुचिर–देखने में रुचिकर, स्निग्ध, सुकोमल थीं। उनकी हथेली में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, स्वस्तिक की शुभ रेखाएँ थीं।

उनका वक्षस्थल–स्वर्ण–शिला के तल के समान उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल, माँसल, विस्तीर्ण, चौड़ा, पृथुल–(विशाल) था, उस पर **श्रीवत्स**–स्वस्तिक का शुभ चिह्न था।

देह की माँसलता या परिपुष्टता के कारण रीढ़ की हड्डी **अकरण्डुक**–दिखाई नहीं देती थी।

उनका शरीर स्वर्ण के समान कान्तिमान्, निर्मल, सुन्दर, **निरुपहत**–रोग–दोष–वर्जित था तथा उसमें उत्तम पुरुष के १००८ लक्षण पूर्णतया विद्यमान थे।

उनकी देह के पार्श्व भाग–दोनों पसवाड़े नीचे की ओर क्रमशः सँकरे, देह के प्रमाण के अनुरूप, सुन्दर, सुनिष्पन्न, अत्यन्त समुचित परिमाण में माँसलता लिए हुए मनोहर थे।

उनके वक्ष और उदर पर रमणीय बालों (रोम राजि) की पंक्ति थी, जिनमें बाल सीधे, **समान संहित**–एक–दूसरे से मिले हुए, उत्कृष्ट कोटि के, सूक्ष्म–हल्के, काले, चिकने, उत्तम, लावण्यमय थे।

उनके कुक्षि–प्रदेश–उदर के नीचे के दोनों पार्श्व **मत्स्य**–मछली और पक्षी के समान **सुजात**–सुन्दर रूप में अवस्थित तथा परिपुष्ट थे।

उनका उदर मत्स्य जैसा सुन्दर और पतला था, उनके उदर का **करण**–आँतों का समूह **शुचि**–स्वच्छ और निर्मल था। (चूँकि आँतें सामान्यतः मलप्रवाही होती हैं, किन्तु भगवान के अतिशय के प्रभाव से आँतें मलरहित थीं।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी नाभि कमल की तरह **विकट**–गूढ़, गंगा के भँवर की तरह गोल, दाहिनी ओर चक्कर काटती हुई तरंगों की तरह घुमावदार, सुन्दर, चमकते हुए सूर्य की किरणों से विकसित होते कमल के समान खिली हुई थी।

उनकी देह का मध्य भाग, त्रिकाष्ठिका, मूसल व दर्पण के हत्थे के मध्य भाग के समान, तलवार की मूठ के समान तथा उत्तम वज्र के समान (पतला) था।

उनकी कमर गोल घेराव लिए रोग, शोकादि रहित स्वस्थ उत्तम घोड़े तथा उत्तम सिंह की कमर के समान थी।

उत्तम घोड़े के सुगठित गुप्तांग की तरह उनका गुह्य भाग था।

आकीर्ण जाति के उत्तम अश्व की तरह उनका शरीर 'मल–मूत्र' विसर्जन की क्रिया से निर्लेप था, उनकी **गति**–चाल श्रेष्ठ हाथी के समान पराक्रम और गम्भीरता लिए थी।

हाथी की सूँड़ की तरह उनकी जंघाएँ सुगठित थीं।

उनके घुटने डिब्बे के ढक्कन की तरह **निगूढ़** थे–माँसलता के कारण अच्छी प्रकार ढँके हुए–बाहर नहीं निकले हुए थे। उनकी पिण्डलियाँ हरिणी की पिण्डलियों, कुरुविन्द घास तथा कते हुए सूत की गेंढ़ी की तरह क्रमशः उतार सहित गोल आकार की थीं।

उनके टखने सुन्दर, सुगठित और निगूढ़ थे।

उनके चरण **सुप्रतिष्ठित**–सुन्दर रचनायुक्त तथा कछुए की तरह उठे हुए होने से मनोज्ञ प्रतीत होते थे।

उनके पैरों की अंगुलियाँ क्रमशः **आनुपूर्वीयुक्त**–क्रमिक छोटी–बड़ी एवं **सुसंहत**–सुन्दर रूप में एक–दूसरे से सटी हुई थीं।

उनके पैरों के नख उन्नत, पतले, ताँबे की तरह लाल, स्निग्ध–चिकने थे।

उनकी पगथलियाँ लाल कमल के पत्ते के समान मृदुल, सुकुमार तथा कोमल थीं।

उनके शरीर में उत्तम पुरुषों के योग्य १००८ शुभ लक्षण थे।

उनके चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा चक्र रूप उत्तम चिह्नों और स्वस्तिक आदि मंगल चिह्नों से अंकित थे।

उनका रूप विशिष्ट–असाधारण था, उनका तेज निर्धूम अग्नि की ज्वाला, विस्तीर्ण विद्युत् तथा अभिनव सूर्य की किरणों के समान था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

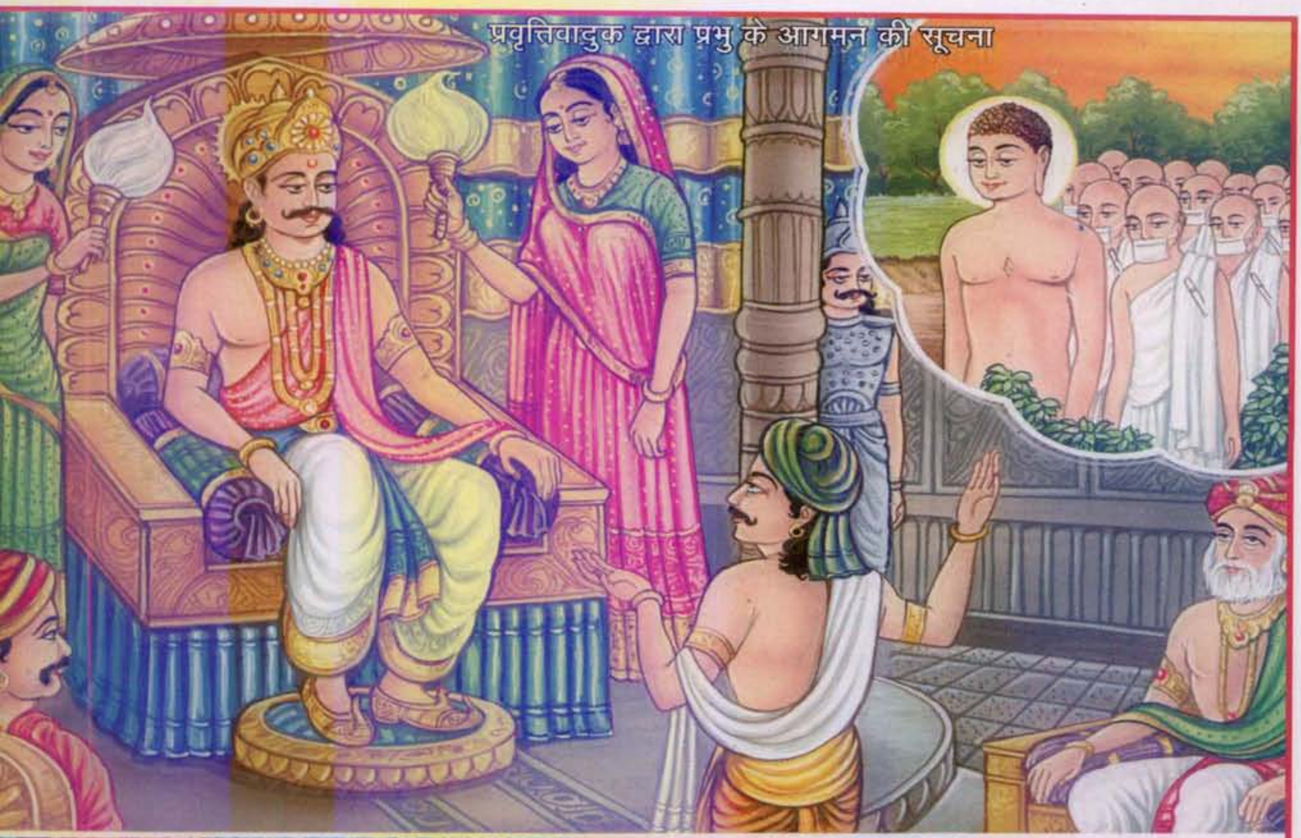

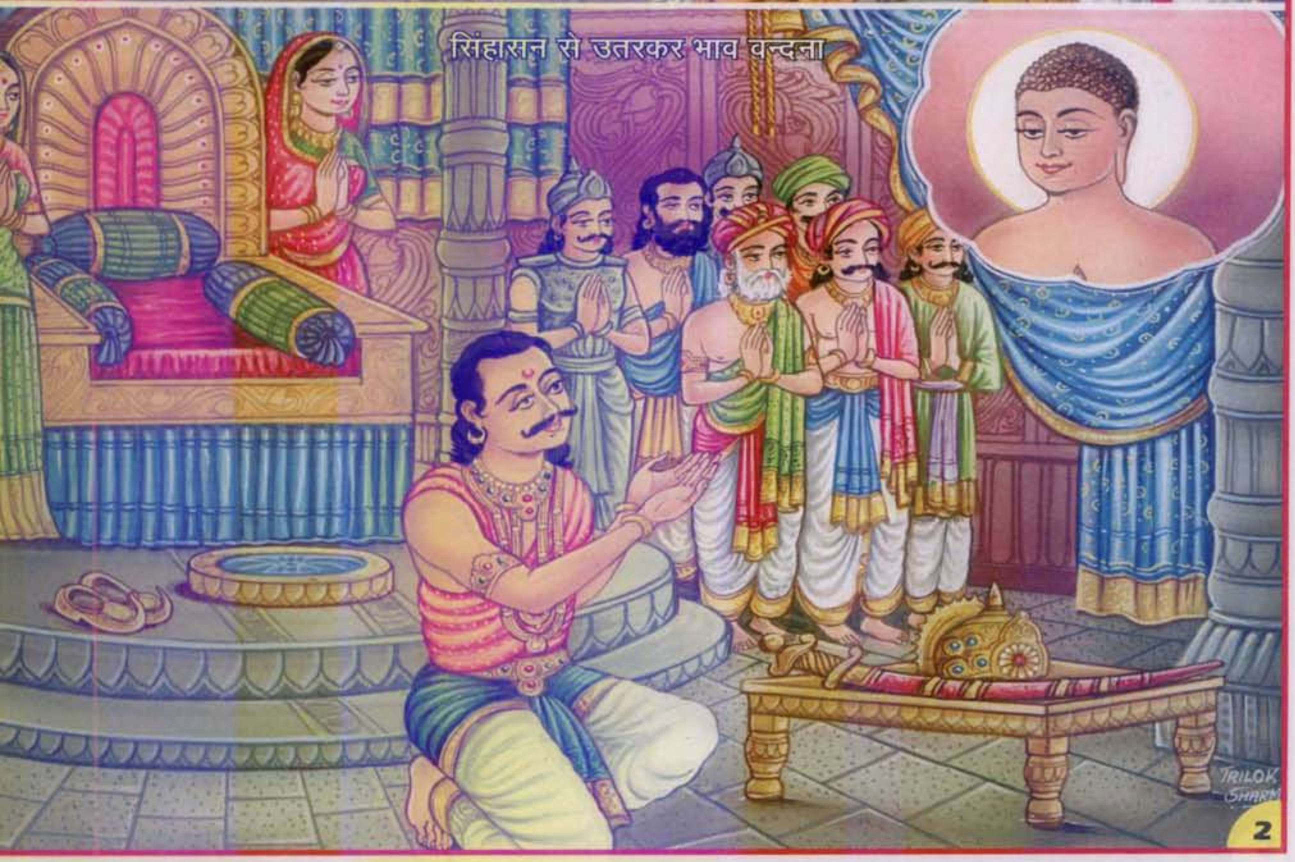

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-२

Illustration No. 2

कूणिक द्वारा भगवान की भाव वन्दना

राजा कूणिक की सभा में प्रवृत्ति निवेदक ने आकर सूचना दी- महाराज ! आप जिनके दर्शन की सदा इच्छा रखते हैं, प्रार्थना करते हैं, वे श्रमण भगवान महावीर अपने श्रमण-शिष्यों के साथ विहार करते हुए चम्पानगरी के उपनगर में पधार गये हैं। शीघ्र ही पूर्णभद्र चैत्य में पधारेंगे।

भगवान के आगमन का समाचार सुनते ही राजा कूणिक अत्यधिक हर्षित हुआ। उसके मुख व नेत्र कमल की तरह खिल उठे। अत्यधिक हर्ष वश रोम-रोम पुलक उठा। शीघ्र ही सिंहासन से उठा। पादुकाएँ (जूते) दूर उतारीं। खड्ग, छत्र, मुकुट व चँवर आदि हटाकर दूर रखे। दोनों हथेलियों का संपुट जोड़कर जिस दिशा में भगवान विराजमान थे उस दिशा में सात-आठ कदम सामने चलकर घुटने भूमि पर टिकाकर दोनों अंजलिपुट को मस्तक पर लगाकर नमोत्थुणं बोलते हुए भगवान की भाव वन्दना करता हुआ बोला-''श्रमण भगवान महावीर को मेरी वन्दना हो। मैं यहाँ स्थित आपको वन्दना करता हूँ। आप जहाँ विराजित हैं, वहाँ स्थित मुझ को देखें।''

उक्त विधिपूर्वक महाराज कूणिक ने भगवान को भाव वन्दना की। महामंत्री आदि सभी अधिकारी भी हाथ जोड़कर वन्दना करते हैं।

-सूत्र १९-२०

OBEISANCE OF BHAGAVAN BY KUNIK

The reporter came to the court of king Kunik and informed—Sire ! The person whom you always desire to and pray to behold, that Shraman Bhagavan Mahavir has arrived with his ascetic disciples in a suburb of Champa city. He will soon come to the Purnabhadra Chaitya.

On hearing and learning the news of the impending arrival of Bhagavan Mahavir from his reporter, King Kunik was delighted. His face and eyes elated like a lotus. Every pore in his body was filled with ecstasy. He rose from his throne, put off his slippers, and removed his sword, umbrella, crown, whisks, etc. placing them apart. Joining his palms he took seven to eight steps in the direction where *Bhagavan* was stationed. He squatted placing his right knee on the ground. Touching his forehead with joined palms he recited the *Namotthunam* prayer and said—"From my abode here I bow to Shraman Bhagavan Mahavir. Wherever he is stationed may he see me here."

With these words King Kunik paid obeisance mentally to *Bhagavan*. His prime minister and other officials also joined palms and paid homage.

—*Sutra 19-20*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16. (b) The height of Bhagavan Mahavir was seven cubits. The structure of his body was *sam-chauramsa* or *sam-chaturasra* (the anatomical structure of a human being where parallel lines drawn from the extremities of a body sitting cross-legged form a square and all the parts of body are of standard dimensions) and the constitution was of the *vajra-rishabh-narach* class (a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest).

He had a perfectly balanced movement of air inside the body. His anus was faultless like that of a *Kank* bird (white kite) and digestive system as efficient as that of a pigeon.

The lower portion of his torso was as smooth as that of birds. The lower portions of his back and abdomen as also the thighs were perfectly shaped.

His breath was as fragrant as the aroma of *kamal* (ordinary lotus) and *utpal* (blue lotus) flowers.

His complexion was smooth and glowing. His flesh was free of any infection, healthy, well formed and snow-white.

His body was free of any filth (*jalla*) or dirt (*malla*), spots, sweat and dust. Thus it was absolutely clean.

Every part of his body had a dazzling sheen. His head was solid, well set with sinews and nerves, and raised like the peak of a mountain bearing good signs and attributes.

The hair on his head were silky, healthy, fine, soft, fragrant and beautiful like fibres exploding out of the *semal* fruit (silk-cotton). They were thick, wavy, curly and shining black like *bhuj-mochak* gem, blue-sapphire, black-bee (*bhring*), indigo plant, collyrium and excited bumble-bees.

The scalp where the hair grew was bright, red, pure and smooth like pomegranate flower and molten gold.

His upper part or crown of the head was compact, well developed and round like an umbrella.

His forehead was free of any scars or bruises. It was flat, beautiful and grand like a crescent.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

His face was serene like full moon. He had a pair of well set and well shaped ears that looked charming on his face.

His cheeks were fleshy and plump.

His black and smooth eye-brows were beautiful and slanted like a bow and slim like a line of black clouds.

His eyes were white like white lotus.

These white eyes with eyelids and eye-lashes looked like a white lotus in partial bloom.

His nose was long, pointed and prominent like the beak of an eagle (*garud*).

His lips were red like a well shaped coral or a *bimb* fruit (*kundaru*).

The rows of his teeth were spotless and brilliant white like pieces of moon, purest conch-shells, cow's milk, foam, *kund* flower, drops of water and lotus stalk.

These teeth were unbroken, well formed, strong, free of cavities and cracks, and closely set. They looked smooth, shining and beautifully shaped.

Many teeth in a row appeared to be a single piece (so closely set).

His tongue and palate were red like molten gold.

His beard and moustache remained the same always (never growing), were well parted, light and exquisite.

His chin was well defined prominent and broad like that of a cheetah.

His neck measured four fingers in width. It was prominent and had three lines like the best of conch-shells.

His shoulders were strong, massive and broad like those of a buffalo, boar, lion, leopard, bull and bull elephant.

His arms were long, round, strong and shapely like a yoke or a *yupa* (the ceremonial pillar in a *yajna*). With powerful wrists the arms were well shaped, solid, perfectly structured and well jointed with sinews. They looked like the round chain-bolt of a city gate.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

These long arms looked as if a python had extended its huge body to grab a desired object.

His hands (*pani*) were full, soft, fleshy, well proportioned and bore auspicious signs. When joined, there were no gaps visible between the fingers.

The fingers were stout but soft and beautiful. The nails were thin, faultless, beautiful and smooth with a pink hue.

His palms were reddish, slim, clean, attractive, soft and delicate. These palms bore auspicious lines and signs of the moon, the sun, conch-shell, wheel, left sided conch-shell and swastika.

His chest was bright like the surface of a slab of gold, prominent, flat, fleshy, generous, broad and portly. It had the auspicious sign of *shrivatsa*.

Due to the fleshy and muscular structure of his body the mounds of the bones of the spinal column were not visible.

His complete body was radiant like gold, unblemished, beautiful, free of any ailment or deformity (*nirupahat*) and it carried all the 1008 auspicious marks and signs of a noble human being.

His flanks tapered from chest down and were well proportioned, beautiful, graceful with streamlined flesh cover and attractive.

On his chest and abdomen were rows of lovely hair that were straight, dense, gossamer, fine, black, gleaming and charming.

His groin was beautifully shaped and muscular like a fish or a bird.

His abdomen was beautiful and slim like a fish. The bulk of his intestines was pure and clean (normally the intestines carry excreta, however, in case of a *Tirthankar* they are free of excreta due to his supernatural attributes).

His navel was deep and arcane like a lotus, circular like a whirlpool in the Ganges, spiraling like waves turning clockwise and beautiful like a lotus blooming in scintillating rays of the sun.

His torso was slim like a trident, a mace, the middle of the handle of a mirror or a sword and thunder-bolt.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

His waist was round like that of a healthy and unwearied horse or a lion of finest breed.

The secret parts of his body were well built like those of a horse of finest breed.

Like a horse of *Akirna* breed his body was free of the need of excretion (passing urine or stool). His gait was spirited yet composed like that of an excellent elephant.

His thighs were perfectly formed like the trunk of an elephant.

His knees were like the lid of a round box, well covered with flesh and not protruding. His calves were round and tapered downward like those of a doe, like the *kuruvind* grass and a spindle of cotton yarn.

His ankles were beautiful, well shaped and covered.

His well formed and tortoise-like convex feet looked very attractive.

The well graduated digits of his feet were perfectly and closely set.

The nails on his toes were prominent, tender, smooth and copper-red in colour.

The soles of his feet were lovely, soft and tender like a leaf of red lotus.

His body carried all the 1008 auspicious marks and signs of a great man.

His feet had the best of the favourable marks including a mountain, a city, a crocodile, an ocean and a wheel (*chakra*) as also auspicious marks including the swastika.

He was exceptionally handsome. He had an aura as scintillating as a smokeless flame, extended lightening and the sun at dawn.

आत्मिक वैभव

१६. (ग) अणासवे, अममे, अकिंचणे, छिन्नसोए, निरुवलेवे,

ववगयपेम–राग–दोस–मोह,

निग्गंथस्स पवयणस्स देसए, सत्थनायगे, पइट्ठावए, समणगपई,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणगविंदपरियट्टिए,

चउत्तीसबुद्धवयणाइसेसपत्ते, पणतीससच्चवयणाइसेसपत्ते,

आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं चामराहिं, आगासफलियामएणं सपायपीढेणं सीहासणेणं, धम्मिज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं,

चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे,

पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे चंपाए नयरीए बहिया उवणगरग्गामं उवागए चंपं नगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउकामे।

१६. (ग) वे प्राणातिपात आदि आस्रवरहित, ममतारहित अकिंचन थे। वे भव-प्रवाह को नष्ट कर चुके थे-**निरुपलेप**-द्रव्य -दृष्टि से निर्मल देहधारी तथा भाव-दृष्टि से कर्मबन्ध के हेतु रूप लेप से रहित थे।

प्रेम, राग, द्वेष और मोह का क्षय कर चुके थे।

निर्ग्रन्थ-प्रवचन के उपदेष्टा, धर्म-शासन के नायक, प्रतिष्ठापक तथा श्रमणपति थे।

श्रमणवृन्द से घिरे रहते थे।

जिनेश्वरों के चौंतीस बुद्ध-अतिशयों से तथा पैंतीस सत्य-वचनातिशयों से युक्त थे। (विस्तार हेतु देखें-सचित्र तीर्थंकर चरित्र, परिशिष्ट ३)

चक्र, छत्र, चँवर तथा आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक से बने पाद-पीठ सहित सिंहासन एवं धर्मध्वज-ये उनके आगे आकाश से अन्तरिक्ष में चलते थे।

चौदह हजार साधु तथा छत्तीस हजार साध्वियों से **संपरिवृत**-घिरे हुए थे।

आगे से आगे चलते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पा के बाहरी उपनगर में पहुँचे, जहाँ से उन्हें चम्पा में पूर्णभद्र चैत्य में पधारना था।

THE SPIRITUAL GRANDEUR

16. (c) He was completely free of the inflow of *karmas* (*asrava*) like those acquired through destroying life. He was absolutely selfless (*mamtarahit*) and devoid of possessions (*akinchan*). He had destroyed the cyclic flow of rebirths for himself. He was absolutely unspoiled, in other words he had a clean body free of any dirt and a pristine soul free of *karmic* bondage.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

He had risen above all sentiments of love, attachment, aversion and fondness.

He was the propagator of the *nirgranth* sermon (the tenets of Jainism). He was the leader, founder and head of the religious order.

He remained surrounded by groups of ascetics.

He was endowed with the thirty four unique superlative attributes of a *Tirthankar* and the thirty five unique superlative attributes of speech. (For details see *Illustrated Tirthankar Charitra*, Appendix 3)

When moving he was heralded by divine felicitations in the sky, namely, a wheel, an umbrella, whisks, a throne with a footrest as transparent as clear sky and the flag of religion.

Fourteen thousand male ascetics (*sadhus*) and thirty six thousand female ascetics (*sadhvis*) accompanied him.

Wandering comfortably from one village to another he arrived in a suburb of Champa city on way to the Purnabhadra *Chaitya* in Champa.

विवेचन—इस सूत्र में भगवान महावीर के अत्यन्त प्रभावशाली, चित्ताकर्षक एवं मनोहर व्यक्तित्त्व के विविध रूपों को अनेक ललित उपमाओं से मण्डित कर हूबहू शब्द चित्र उपस्थित किया गया है। विश्व के प्रायः सभी धर्म-सम्प्रदायों ने अपने आराध्य महापुरुषों को सामान्य व्यक्तियों से पृथक् विशिष्ट रूप में चित्रित किया है। वे अनुपम शारीरिक सौन्दर्य-शुभ लक्षण, बल, बुद्धि तथा विशिष्ट आत्मिक वैभव से सम्पन्न होते हैं। तीर्थंकर विश्व में सबसे महान् लोकोत्तम महापुरुष होते हैं, उनका अद्‌भुत अद्वितीय शरीर-बल, असीम आत्म-बल होता है तथा शरीर में एक हजार आठ शुभ लक्षण होते हैं।

ऐसा कहा जाता है सामान्य व्यक्ति में एकाध शुभ लक्षण होता है। उससे बढ़कर किसी विरले में बत्तीस शुभ लक्षण पाये जाते हैं। उत्तम पुरुषों में एक सौ आठ शुभ लक्षण होते हैं। लौकिक सम्पदा के धनी चक्रवर्ती में एक हजार आठ शुभ लक्षण होते हैं, परन्तु वे कुछ अस्पष्ट होते हैं, जबकि तीर्थंकरों के शरीर पर वे शुभ लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं।

तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशय तथा ३५ वचनातिशय का विस्तृत कथन समवायांगसूत्र, समवाय ३४-३५ में उपलब्ध है तथा हिन्दी जैन तत्त्व कलिका (सम्पादक श्री अमर मुनि), प्रथम कलिका, पृष्ठ ९-१६ तक में विस्तारपूर्वक दिया गया है। पाठक वहाँ देख लें।

Elaboration—This aphorism presents a vivid verbal illustration of the extremely impressive, magnetic and spectacular personality of Bhagavan

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Mahavir, describing various facets of his personality with the help of numerous choicest metaphors. Almost all religions and sects in the world have described the great men they worship as extra-ordinary and superlative. They are endowed with unparalleled physical beauty, auspicious signs, power, intelligence and spiritual grandeur. The *Tirthankars* are said to be the best among the great men in the world. They have astonishing and unique physical and spiritual potency and have one thousand eight auspicious marks on the body.

It is said that an ordinary individual has one or two auspicious marks. There are very few who bear thirty two such marks. Highly accomplished individuals have one hundred eight such marks. A *chakravarti* (emperor), the owner of maximum mundane wealth, has one thousand eight such marks but they are blurred. In case of a *Tirthankar* all these marks are sharp and vivid.

The detailed description of the thirty four unique superlative attributes of a *Tirthankar* and the thirty five unique superlative attributes of speech is available in *Samvayanga Sutra* (*Samvaya* 34-35) and *Jain Tattva Kalika* (First Kalika, pp. 9-16) by Shri Amar Muni.

प्रवृत्ति–निवेदक द्वारा सूचना

१७. तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए, पीइमणे, परमसोमणस्सिए, हरिसवसविसप्पमाणहियए, ण्हाए, कयबलिकम्मे, कयकोउय–मंगल–पायच्छित्ते, सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता करयल–परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी–

१७. प्रवृत्ति–निवेदक को जब भगवान महावीर के पदार्पण का पता चला तो वह हर्षित एवं प्रसन्न हुआ। उसके मन में आनन्द तथा प्रीति–प्रसन्नता का भाव जगा। सौम्य मनोभाव व हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा। उसने स्नान किया, प्रतिदिन करने के कार्य किये, **कौतुक**–देहसज्जा की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आंजा, ललाट पर तिलक लगाया, **प्रायश्चित्त**–दुःस्वप्नादि दोष निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दही, अक्षत आदि से मंगलविधान किया, राजसभा में प्रवेशोचित–शुद्ध, उत्तम वस्त्र पहने, संख्या में कम, किन्तु बहुमूल्य आभूषणों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से शरीर को अलंकृत किया। यों तैयार होकर वह अपने घर से निकला। निकलकर चम्पा नगरी के बीच जहाँ राजा कूणिक का महल था, जहाँ बाहर में राजसभा–भवन था, जहाँ भंभसार–पुत्र राजा कूणिक आसीन था, वहाँ आया। (वहाँ) आकर उसने हाथ जोड़े, सिर के चारों ओर घुमाये, अंजलि बाँधी। "आपकी जय हो, विजय हो" इस प्रकार मंगल शब्दों से बधाया। तत्पश्चात् इस प्रकार बोला–

NEWS BY THE REPORTER

17. When the reporter (appointed by king Kunik) came to know of the arrival of Bhagavan Mahavir he was pleased and delighted. The rise of feelings of joy and happiness made his heart bloom with dignity and exhilaration. He took his bath and performed his daily chores including putting collyrium in eyes, auspicious mark on forehead (*kautuk*) and performing auspicious rituals using sandalwood, vermilion, curd, rice etc. to guard against ill omens like bad dreams. He then dressed himself in a clean and decent garb suitable for visiting the king's court and adorned himself with light but costly ornaments. After getting ready he left his house and came to the outer assembly hall, in the palace of king Kunik located at the center of Champa city, where king Kunik was sitting on a throne. After arriving there he waved his joined palms around his head and greeted the king with hails of the king's victory and glory. After this he said—

१८. जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणुप्पिया णामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठतुट्ठ जाव हरिसवस विसप्पमाणहियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं उवागए, चंपं णगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउकामे।

तं एवं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेदेमि, पियं ते भवउ।

१८. "देवानुप्रिय आप जिनके दर्शन की आकांक्षा करते हैं, स्पृहा करते हैं, दर्शन करने की इच्छा रखते हैं, दर्शन हों ऐसी प्रर्थना करते हैं। सुहृज्जनों से वैसे उपाय जानने की अपेक्षा रखते हैं, अभिलाषा करते हैं, जिनके दर्शन हेतु सन्मुख जाने की कामना करते हैं, जिनके नाम तथा गोत्र के श्रवण मात्र से हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं, सौम्य मनोभावों व हर्षातिरेक से हृदय खिल उठता है; वे श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए चम्पा नगरी के उपनगर में पधारे हैं। अब पूर्णभद्र चैत्य में पधारेंगे।

देवानुप्रिय ! आपके प्रीत्यर्थ–प्रसन्नता हेतु यह प्रिय समाचार मैं आपको निवेदित कर रहा हूँ। यह आपके लिए प्रियकर हो।''

18. "O Beloved of gods ! The person whom you always desire to, are eager to, wish to and pray for to get an opportunity to behold and from your well-wishers for expect and wish to know how best you could go about it; the person to behold whom you wish to step ahead; the person, mere hearing of whose name and *gotra* (dan name) gives you joy and contentment and makes your heart bloom with dignity and exhilaration; that Shraman Bhagavan, wandering from one village to another, has arrived in a suburb of Champa city. He will now come to the Purnabhadra *Chaitya*.

O Beloved of gods ! In order to enhance your joy I give you this good news. May this please you."

कूणिक हर्षित हो उठा

१९. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ हियए, वियसिय–वरकमलणयणवयणे, पयलियवरकडग–तुडिय–केऊर–मउडकुंडल–हार–विरायंतरइयवच्छे, पालंबपलंबमाण–घोलंतभूसणधरे। ससंभमं तुरियं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता अवहट्टु पंच रायक–कुहाइं, तं जहा– १. खग्गं, २. छत्तं, ३. उप्फेसं, ४. वाहणाओ, ५. वालवीयणं।

एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता आयंते, चोक्खे, परमसुइभूए, अंजलिमउलियहत्थे, तित्थगराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडग–तुडियथंभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी–

१९. तब भंभसार–पुत्र राजा कूणिक वार्त्ता–निवेदक (सन्देशवाहक) से भगवान के आगमन का समाचार सुनकर, उसे हृदयंगम कर हर्षित एवं आनन्दित हुआ। उसका मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा नेत्र श्रेष्ठ कमल के समान खिल उठे। अपार हर्ष के कारण राजा के दोनों हाथों के श्रेष्ठ कड़े, बाहुरक्षिका–भुजाओं को शोभित रखने वाली आभरण पट्टी, केयूर–बाजूबन्द मुकुट, दोनों कुण्डल तथा वक्षःस्थल पर शोभित अठारह लड़ का हार सहसा हिल उठे। राजा के गले में लम्बी माला लटक रही थी, आभूषण झूल रहे थे।

राजा आदरपूर्वक शीघ्र सिंहासन से उठा। (सिंहासन से) उठकर, पादपीठ (पैर रखने के पीढ़े) पर पैर रखकर नीचे उतरा, फिर पादुकाएँ उतारीं तथा (१) खड्ग, (२) छत्र, (३) मुकुट, (४) दोनों पैरों के जूता, और (५) चँवर–इन पाँच राजचिह्नों को अलग किया। उत्तरीय वस्त्र धारण किया। जल से आचमन करके स्वच्छ तथा परम शुचिभूत–शुद्ध हुआ। कमल दल की तरह दोनों हाथ जोड़े। जिस दिशा में तीर्थंकर भगवान महावीर विराजित थे, उस दिशा में सात–आठ कदम सामने गया। फिर अपने बायें घुटने को ऊँचा किया–दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाया, तीन बार अपना मस्तक जमीन से झुकाया। फिर थोड़ा ऊपर उठा, कंकण तथा बाहुरक्षिका से स्तम्भित भुजाओं को उठाया, हाथ जोड़े, अंजलि (जुड़े हुए दोनों हाथों) को मस्तक के चारों ओर घुमाकर इस प्रकार बोला–

KUNIK'S DELIGHT

19. On hearing and learning the news of the impending arrival of Bhagavan Mahavir from his reporter, king Kunik, the son of Bhambhasar, was pleased and delighted. His face and eyes elated like an exclusive lotus. With the surge of his joy his bangles, arm-bands (*bahurakshika*), armlets (*keyur*), crown, both the ear-rings and the eighteen string necklace on his chest suddenly quivered. The long garland on his neck and other ornaments also swayed.

The king rose from his throne respectfully, stepped on the foot-rest and got down. He put off his slippers and removed the five royal insignia namely—(1) sword, (2) umbrella, (3) crown, (4) *vahan* (shoes/carrier, including vehicle), and (5) whisk (*chamar*). He then put on a long scarf-like piece of cloth (*uttariya*) to cover his shoulders. He washed his hands and mouth clean and pure with water. He, then took seven to eight steps in the direction where *Tirthankar* Bhagavan Mahavir was stationed. He squatted folding his left knee and placing his right knee on the ground. He then bowed and touched his forehead to the ground three times. After this he rose slightly and raised his arms encumbered with bangles

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and armlets. Joining his palms and waving the joined palms around his head, he uttered—

भगवान को परोक्ष वन्दना

२०. णमोऽत्थु णं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थगराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं, लोगहियाणं लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवो, ताणं, सरणं, गई, पइट्ठा, अप्पडिहय–वरनाणदंसणधराणं, विअट्टछउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिण्णाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीणं, सिव–मयल–मरुयमणंतमक्खय–मव्वाबाह–मपुणरावत्तगं, सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं।

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स, आदिगरस्स, तित्थगरस्स जाव संपाविउकामस्स, मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ णमंसइ।

वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरगए, पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्टुत्तरं सयसहस्सं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता एवं वयासी–

२०. "अरिहंतों को नमस्कार है। आदिकर–तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुण्डरीक, पुरुषवर–गन्धहस्ती–उत्तम गन्धहस्ती के समान भगवान को नमस्कार है। **लोकोत्तम**–लोक के सभी प्राणियों में उत्तम, **लोकनाथ**–लोक के सभी भव्य प्राणियों के स्वामी, **लोकहितकर**–लोक का कल्याण करने वाले, **लोकप्रदीप**–ज्ञानरूपी दीपक द्वारा लोक का अज्ञान दूर करने वाले, **लोकप्रद्योतकर**–लोक में धर्म का उद्योत फैलाने वाले, अभयदायक, **चक्षुदायक**–आन्तरिक नेत्रदाता–सद्ज्ञान देने वाले, **मार्गदायक–शरणदायक–जीवनदायक**–आध्यात्मिक जीवन के संबल, **बोधिदायक**–सम्यक् बोध देने वाले, **धर्मदायक**–सम्यक् चारित्र रूप धर्म के दाता, **धर्मदेशक**–धर्मदेशना देने वाले, धर्मनायक, **धर्मसारथि**–धर्मरूपी रथ के चालक, **धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती**–चारों गतियों में धार्मिक जगत् के चक्रवर्ती, दीपक सदृश अथवा **द्वीप**–संसार–समुद्र में द्वीप के समान, **त्राण**–भव्य प्राणियों के रक्षक, **शरण**–आश्रय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति एवं प्रतिष्ठास्वरूप, प्रतिघात, बाधा या आवरणरहित उत्तम ज्ञान, दर्शन के धारक, **व्यावृत्तछद्मा**–अज्ञान आदि आवरण रूप छद्म से निवृत्त, **जिन**–राग के जेता, **ज्ञायक**–समस्त भावों के ज्ञाता, **तीर्ण**–संसार–सागर को पार कर जाने वाले, **तारक**–संसार–सागर से पार उतारने वाले, **बुद्ध**–बोध प्राप्त किये हुए, **बोधक**–औरों के लिए बोधप्रद, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, **शिव**–कल्याणमय, अचल–स्थिर, निरुपद्रव, अन्तरहित, क्षयरहित, बाधारहित, **अपुनरावर्तन**–जहाँ से फिर जन्म–मरण रूप संसार में आगमन नहीं होता, ऐसी सिद्धगति को प्राप्त सिद्धों को नमस्कार हो।

आदिकर, तीर्थंकर, सिद्धावस्था पाने के लिए प्रयत्नशील, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार हो।

मैं यहाँ अपने स्थान पर रहा हुआ वहाँ स्थित–(चम्पा के उपनगर में ठहरे हुए) भगवान को वन्दन करता हूँ। वहाँ स्थित भगवान अपने ज्ञान से यहाँ स्थित मुझको देखते हैं।''

इस प्रकार राजा कोणिक भगवान को वन्दन नमस्कार कर पूर्व की ओर मुँह किये अपने सिंहासन पर बैठा। (बैठकर) सन्देश देने वाले वार्त्ता–निवेदक को एक लाख आठ हजार रजत मुद्राएँ प्रीतिदान स्वरूप पारितोषिक के रूप में दीं। उत्तम वस्त्र आदि द्वारा उसका सत्कार किया, आदरपूर्ण वचनों से सम्मान किया। फिर राजा ने इस प्रकार कहा–

REMOTE PRAYER

20. "I bow and convey my reverence to the worthy ones (*Arihantanam*), the supreme ones (*bhagavantanam*), the first propounders or originators of the *shrut dharma* (Jainism) (*aaigaranam* or *aadikaranam*); the religious ford-makers or founders of the four-fold religious order (*Titthagaranam* or *Tirthankaranam*); the self-enlightened ones (*sahasambuddhanam* or *svayam-sambuddhanam*). My veneration is to those who are supreme among men (*purisuttamanam* or *purushottamanam*); lions among men because of their spiritual valour (*purisasihanam* or *purush-simhanam*); unspoiled among men like a white lotus (*purisavar-pundariyanam* or *purushvar-pundareekanam*); glorious elephants among men (*purisavargandhahatthinam* or *purush-var-gandhahastinam*). My veneration is to those who are eminent among all beings in the *lok*, or the occupied space, or all the worlds (*loguttamanam* or *lokottamanam*), masters of all the worthy beings of all the worlds (*loganahanam* or *lokanathanam*), benefactors of all

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the worlds (*logahiyanam* or *lokahitanam*), lamps of wisdom who dispel the darkness of ignorance in all the worlds (*logapaivanam* or *lokapradipanam*), spiritual illuminators of all the worlds (*logapajjoyagaranam* or *lokapradyotakaranam*). My veneration to those who dispel fear (*abhayadayanam* or *abhayadayakanam*); give spiritual vision (*chakkhudayanam* or *chakshudayakanam*); show the path of liberation in the form of right knowledge, perception and conduct (*maggadayanam* or *margadayakanam*); give refuge to the seekers of the right path (*sarandayanam* or *sharanadayakanam*); give spiritual meaning to life (*jivadayanam* or *jivanadayakanam*); steer one to enlightenment (*bohidayanam* or *bodhidayakanam*). I pay homage to those who are originators of *dharma* (*dhammadayanam* or *dharmadayak*); preceptors of *dharma* (*dhammadesayanam* or *dharmadeshakanam*); leaders of *dharma* (*dhammanayaganam* or *dharmanayakanam*); true guides of *dharma* (*dhammasarahinam* or *dharmasarathinam*); and also the emperors of *dharma* in all the four dimensions of life (*dhammavarachaurant-chakkavatthinam* or *dharmavarachaturanta-chakravartinam*). My veneration to those who like a lamp/island (*divo* or *deepak / dveep*) are anchors (*paittha* or *pratishtha*) of refuge (*saranam* or *sharanam*), succour (*taanam* or *tran*) and movement (*gai or gati*) for those fumbling in the darkness/sea of cycles of rebirth. I pay homage to the holders of unlimited unveiled knowledge and perception (*appadihaya* or *apratighat*) who are free of masks of ignorance and illusion (*viattachhaumanam* or *vyavrittachhadmaanam*). My homage to those who are the conquerors of attachment and aversion (*jinanam*); are the lamps of knowledge and beacons on the path of victory over attachment and aversion (*javayanam* or *jnayakama / jnapakanam*); who have crossed the ocean of cycles of rebirth (*tinnanam* or *tirnanam*) and help crossing the ocean of cycles of rebirth (*tarayanam* or *tarakanam*); who are the enlightened ones (*buddhanam*) and are the givers of enlightenment (*bohayanam* or *bodhakanam*); who are the liberated (*muttanam* or *muktanam*) and the liberator (*moyaganam* or *mochakanam*). My veneration to those who are all-knowing (*savvannunam* or *sarvajnanam*); all-seeing (*savva*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

darisinam or *sarvadarshinam*); epitomes of beatitude (*sivam* or *Shivam*); unwavering (*ayalam* or *achalam*); free of ailments (*aruam* or *arujam*); infinite and eternal (*anantam*); free of decay (*akkhayam* or *akshayam*); and unimpeded (*avvabaham* or *avyabadham*). I bow and pay homage to those who have attained the state of ultimate perfection, known as *siddhi gai* or *siddha gati*, from where there is no return to the cycles of rebirth (*apunaravattagam* or *apunaravartakam*).

I bow and pay homage to Shraman Bhagavan Mahavir who is the first propounder of the *shrut dharma* (Jainism) of his time (*aaigare* or *aadikar*); the religious ford-maker or founder of the four-fold religious order (*Titthagare* or *Tirthankar*);— and so on up to— the aspirant of and destined to attain the state of ultimate perfection (*siddha gai* or *siddha gati*); and who is my religious teacher and preceptor.

From my abode here I bow to Shraman Bhagavan Mahavir who is staying there (in a suburb of Champa city). Stationed there he sees me through his supreme knowledge."

With these words king Kunik bowed and paid homage to Bhagavan and resumed his throne facing east. He than rewarded the reporter with one hundred eight thousand silver coins. He also honoured him with exclusive robes and respectful words. After all this, he said to the reporter—

२१. जया णं देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे इहमागच्छेज्जा, इह समोसरिज्जा, इहेव चम्पाए णयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा, तया णं मम एयमट्ठं निवेदिज्जासित्ति कट्टु विसज्जिए।

२१. "देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर जब यहाँ पधार जायें, यहाँ समवसृत हों, चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में **यथाप्रतिरूप**–साधु–मर्यादा के अनुरूप आवास स्थान आदि ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजित हों, तब मुझे समाचार सूचित करना।" इस प्रकार कहकर राजा ने वार्त्ता–निवेदक को वहाँ से विदा किया।

21. "Beloved of gods ! When Shraman Bhagavan Mahavir arrives, sits in the *Samavasaran* (the divine assembly of a *Tirthankar*), takes his lodge according to the ascetic code and settles

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

down enkindling (*bhaavit*) his soul with ascetic-discipline and austerities, please inform me." With these words he allowed the reporter to go.

विवेचन—सम्राट् कूणिक : एक चिन्तन—चम्पा का अधिपति सम्राट् कूणिक था। कूणिक का प्रस्तुत आगम में विस्तार से निरूपण है। वह भगवान महावीर का परम भक्त था। उसकी भक्ति का जीता–जागता चित्र इसमें चित्रित है। उसी तरह कूणिक अजातशत्रु को बौद्ध परम्परा में भी बुद्ध का परम भक्त माना है। सामञ्जफलसुत्त के अनुसार तथागत बुद्ध के प्रथम दर्शन में ही वह बौद्ध धर्म को स्वीकार करता है। बुद्ध की अस्थियों पर स्तूप बनाने के लिए जब बुद्ध के भग्नावशेष बाँटे जाने लगे, तब अजातशत्रु ने कुशीनारा के मल्लों को कहलाया कि "बुद्ध भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ, अतः अवशेषों का एक भाग मुझे मिलना चाहिए।" द्रोणवीर की सलाह से उसे एक अस्थि भाग मिला और उसने उस पर एक स्तूप बनवाया।

यह सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि अजातशत्रु कूणिक जैन था या बौद्ध था? उत्तर में निवेदन है कि प्रस्तुत आगम में जो वर्णन है, उसके सामने सामञ्जफलसुत्त का वर्णन शिथिल है, उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। सामञ्जफलसुत्त में केवल इतना ही वर्णन है कि आज से भगवान मुझे अंजलिबुद्ध शरणागत उपासक समझें, पर प्रस्तुत आगम में श्रमण भगवान महावीर के प्रति अनन्य भक्ति कूणिक की प्रदर्शित की गई है। उसने एक प्रवृत्तिवादक (संवाददाता) व्यक्ति की नियुक्ति की थी। उसका कार्य था भगवान महावीर की प्रतिदिन की प्रवृत्ति से उसे अवगत कराते रहना। उसकी सहायता के लिए अनेक कर्मकर नियुक्त थे, उनके माध्यम से भगवान महावीर के प्रतिदिन के समाचार उस प्रवृत्तिवादक को मिलते और वह राजा कूणिक को बताता था। उसे कूणिक विपुल अर्थदान देता था। प्रवृत्तिवादक द्वारा समाचार ज्ञात होने पर भक्ति–भावना से विभोर होकर अभिवन्दन करना, उपदेश श्रवण के लिए जाना और निर्ग्रन्थ धर्म पर अपनी अनन्य श्रद्धा व्यक्त करना। इस वर्णन के सामने तथागत बुद्ध के प्रति जो उसकी श्रद्धा है, वह केवल औपचारिक है।

अजातशत्रु कूणिक का बुद्ध से साक्षात्कार केवल एक बार होता है, पर भगवान महावीर से उसका साक्षात्कार अनेक बार होता है। भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् भी महावीर के उत्तराधिकारी गणधर सुधर्मा की धर्मसभा में भी वह उपस्थित होता है और बहुत ही भावपूर्ण शब्दों में जिन–प्रवचन की श्रेष्ठता का कथन करता है।

डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है–"महावीर और बुद्ध की वर्तमानता में तो अजातशत्रु महावीर का ही अनुयायी था।" उन्होंने आगे चलकर यह भी लिखा है, जैसा प्रायः देखा जाता है, जैन अजातशत्रु और उदाईभद्द दोनों को अच्छे चरित्र का बतलाते हैं, क्योंकि दोनों जैनधर्म को मानने वाले थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थों में उनके चरित्र पर कालिख पोती गई।

बौद्ध साहित्य के ग्रन्थ अट्ठकथा, अवदान शतक, धम्मपद अट्ठकथा आदि के गम्भीर अनुशीलन से यह स्पष्ट नहीं होता कि वह तथागत के प्रति विशेष समर्पित था। कहीं–कहीं बुद्ध के प्रति उसके द्वेष–भाव की सूचना भी मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारांश यह है, अजातशत्रु कूणिक के अन्तर्मानस पर उसकी माता चेलना के संस्कारों का असर था। चेलना के प्रति उसके मानस में गहरी निष्ठा थी। चेलना ने ही कूणिक को यह बताया था कि तेरे पिता राजा श्रेणिक का तेरे प्रति कितना स्नेह था। उन्होंने तेरे लिए कितने कष्ट सहन किये थे। आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र प्रभृति जैन ग्रन्थों में उसका अपर नाम 'अशोकचन्द्र' भी मिलता है। चेलना भगवान महावीर के प्रति अत्यन्त निष्ठावान थी। चेलना के पूज्य पिता राजा 'चेटक' महावीर के परम उपासक थे, इसलिए अजातशत्रु कूणिक जैन था यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है।

Elaboration—King Kunik : A View—The ruler of Champa was Emperor Kunik. In this Agam he has been described in great detail. He was a staunch devotee of Bhagavan Mahavir. A vivid description of his devotion is detailed in this work. In the same way in the Buddhist tradition Kunik Ajatshatru is believed to be a great devotee of the Buddha. According to *Samanjaphala Sutta* he converted to Buddhism when he first beheld the Buddha. When the ashes of the Buddha were being distributed for constructing *stupas*, Ajatshatru conveyed to the Mallas of Kushinara—"The Buddha was a *Kshatriya* and so am I, therefore, I should get a portion of the ashes." On the advise of Dronavira he was given a portion of the ashes and he constructed a *stupa* thereon.

Naturally a question arises whether Ajatshatru Kunik was Jain or Buddhist ? The answer can be inferred from the fact that the description of Kunik in this *Agam* is much more impressive and vivid as compared to that in *Samanjaphala Sutta*. The only information available in the Buddhist text is that Ajatshatru submits that since that moment (the moment of beholding the Buddha) he should be accepted by Bhagavan as a devotee who had with all humility taken his refuge. In contrast, this *Agam* provides much more detailed information about the devotion of king Kunik for Shraman Bhagavan Mahavir. He had appointed a special reporter to inform him about every routine and activity of Bhagavan Mahavir. Not only that, he had given him many assistants for collecting all information about Bhagavan Mahavir's sojourn to be conveyed to the king through the chief reporter. Kunik amply rewarded him. On getting all the news from the reporter, he would effuse with feelings of devotion, pay homage, go to attend the discourse, and express his exclusive faith in the *Nirgranth* religion. As compared to these details his devotion for the Buddha appears to be a mere formality.

Ajatshatru met the Buddha just once, but he met Mahavir several times. Even after the *nirvana* of Bhagavan Mahavir he attended the religious assembly of Ganadhar Sudharma, the successor of Mahavir, and praised the sermons of the *Jina* with great eloquence and feeling.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Dr. Radhakumud Mukherji writes—"Contemporaneous to Mahavir and the Buddha, Ajatshatru was, indeed, a follower of Mahavir." He also informs that it is commonly seen that Jains show Ajatshatru and Udaibhadda as persons of good conduct and character. This is because these two were followers of Jain religion. And that same appears to be the reason that Buddhist scriptures have criticized and slandered them.

A serious study of the Buddhist texts like *Attakatha, Avadan Shatak* and *Dhammapad Attakatha* hardly reveals that Ajatshatru was specially devoted to the Buddha. At some places evidence of his antagonism for the Buddha can also be seen.

It can be conclusively said that Ajatshatru's sentiments were influenced by his mother Chelana. He had great faith in mother Chelana. It was Chelana who informed him about the profound love of Shrenik, his father, for him; and what pains Shrenik had suffered for his son. In *Avashayak Churni, Trishashtishalaka Purush Charitra* and many other works we find a mention of his another name Ashok Chandra. Chelana was a devout follower of Bhagavan Mahavir. Chelana's father king Chetak too was a great devotee of Bhagavan Mahavir. All this clearly indicates that Ajatshatru Kunik was, indeed, a Jain.

भगवान का चम्पा में आगमन

२२. तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, फुल्लुप्पल-कमलकोमलुम्मिलियंमि अहपंडुरे पहाए, रत्तासोगप्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिमिं दिणयरे तेयसा जलंते, जेणेव चंपा णयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

२२. तत्पश्चात् अगले दिन, रात बीत जाने पर, प्रभात हो जाने पर, जब नीले तथा अन्य कमल सुहावने रूप में खिल उठे थे, उज्ज्वल प्रभायुक्त एवं अशोक, पलाश, तोते की चोंच, घुँघची के आधे भाग के समान लालिमा लिए हुए, कमलवन को विकसित करने वाला, सहस्रकिरणयुक्त, दिन का प्रादुर्भाव करने वाला सूर्य उदित हो गया, अपने तेज से उद्दीप्त हो चुका, तब श्रमण भगवान महावीर (अपने श्रमण परिवार के साथ) चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। पधारकर यथाप्रतिरूप अवग्रह-कल्प के अनुसार स्थान आदि ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

22. Then next day when the night ended and the dawn broke, when the blue and other lotuses bloomed beautifully, when the sun rose with its crimson glow like Ashoka and *Palash* flowers, a parrot's beak and red-half of *gunja* seed, causing the multitude of lotuses to blossom, and attained brilliance with its thousand rays, Shraman Bhagavan Mahavir (with the group of his ascetic disciples) arrived at Purnabhadra *Chaitya* in Champa city. Reaching there he took his lodge according to his predetermined resolve and ascetic code, and settled down enkindling (*bhaavit*) his soul with ascetic-discipline and austerities.

भगवान के अन्तेवासी श्रमण

२३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया, भोगपव्वइया, राइण्ण–णाय–कोरव्वखत्तियपव्वइया, भडा, जोहा, सेणावई पसत्थारो, सेट्ठी, इब्भा।

अण्णे य बहवे एवमाइणो उत्तमजाइ–कुल–रूव विणयविण्णाण–वण्ण–लावण्णविक्कम–पहाणसो–भग्गकंतिजुत्ता, बहुधण–धण्ण–णिचय–परियालफिडिया, णरवइगुणाइरेगा, इच्छियभोगा, सुहसंपललिया किंपागफलोवमं च मुणिय विसय–सोक्खं जलबुब्बुयसमाणं, कुसग्गजलबिंदुचंचलं जीवियं य णाऊण अद्धुवमिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं चइत्ता हिरण्णं जाव (चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं–एवं धण्णं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं रज्जं रट्ठं पुरं अन्तेउरं चिच्चा, विउलधण–कणग–रयण–मणि–मोत्तिय–संख–सिल–प्पवाल–रत्तरयणमाइयं संतसारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता, मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइया।

अप्पेगइया अद्धमासपरियाया, अप्पेगइया मासपरियाया–एवं दुमास–तिमास जाव एक्कारस–मास परियाया, अप्पेगइया वासपरियाया, दुवासपरियाया, तिवासपरियाया अप्पेगइया अणेगवासपरियाया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

२३. उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी–(शिष्य) बहुत से श्रमण संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। अर्थात् संयम एवं तप की आराधना में लीन थे। उनमें अनेक ऐसे थे, जो उग्र–आरक्षक दल के अधिकारी कुल में उत्पन्न हुए–(अथवा आरक्षी वर्ग के थे), अनेक भोग–राजा के मंत्रिमंडल के सदस्य, राजन्य–राजा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परामर्शमंडल के सदस्य, **ज्ञात**–ज्ञातवंशीय, कुरुवंशीय, क्षत्रिय, राजकर्मचारी, सुभट, योद्धा–(सैनिक), सेनापति, **प्रशास्ता**–प्रशासन अधिकारी, सेठ, **इभ्य**–अत्यन्त धनिक–इन सभी वर्गों में से दीक्षित हुए थे।

और भी बहुत से उत्तम जाति, उत्तम कुल, सुन्दर रूप, विनय, दीप्ति, **वर्ण**–दैहिक आभा, **लावण्य**–शरीर की सुन्दरता, **विक्रम**–पराक्रम, सौभाग्य तथा **कान्ति**–दीप्ति से सुशोभित, विपुल धन–धान्य के संग्रह और पारिवारिक सुख–समृद्धि से युक्त परिवार वाले, राजा से प्राप्त अतिशय वैभव सन्मान आदि से युक्त, इच्छित भोग–प्राप्त तथा सुख में फूले–फूले थे। जिन्होंने सांसारिक भोगों के सुखों को किंपाक फल के समान दुःखद परिणाम वाला समझकर, जीवन को जल के बुलबुले तथा कुश के सिरे पर स्थित जल की बूँद की तरह चंचल जानकर वैराग्य प्राप्त किया, सांसारिक अस्थिर पदार्थों को वस्त्र पर लगी हुई रज के समान झाड़ दिया, **हिरण्य**–रौप्य या रूपा (**सुवर्ण**–सोने के आभूषण, **धन**–गायें आदि, धान्य, **बल**–चतुरंगिणी सेना, वाहन, **कोश**–खजाना, **कोष्ठागार**–धान्य भण्डार, राज्य, राष्ट्र, **पुर**–नगर, अन्तःपुर, प्रचुर धन, **कनक**–बिना घड़ा हुआ सुवर्ण, रत्न, मणि, मुक्ता, शंख, मूँगे, **लाल रत्न**–मानिक आदि बहुमूल्य सम्पत्ति का परित्याग किया। उस धन का वितरण किया, दान योग्य व्यक्तियों को दान कर फिर मुण्डित होकर **अगार**–गृह जीवन का त्याग **अनगार**–श्रमण जीवन में) दीक्षित हुए।

कइयों को दीक्षित हुए आधा महीना, कइयों को एक महीना, दो महीने, तीन महीने, यावत् ग्यारह महीने हुए थे, कइयों को एक वर्ष, कइयों को दो वर्ष, कइयों को तीन वर्ष तथा कइयों को अनेक वर्ष हो चुके थे।

THE ACCOMPANYING ASCETICS

23. During that period of time, numerous ascetic disciples (*antevasi*) of Shraman Bhagavan Mahavir moved about enkindling (*bhaavit*) their souls with ascetic discipline and austerities. In other words they remained engrossed in practicing ascetic discipline and austerities. Many of those who got initiated belonged to diverse clans, families and groups including *Ugra* (warrior families), *Bhog* (king's ministers), *Rajanya* (king's advisors), *Jnata clan, Kuru* clan, *Kshatriya* clans, *Subhat* (guards), *Yoddha* (soldiers), *Senapati* (army commanders), *Prashasta* (administrative officers), *Seth* (merchants) and *Ibhya* (affluent).

There were many others from high castes and good families endowed with good personality, modesty, brilliance, good complexion (*varna*), charm (*lavanya*), valour (*parakram*), good luck

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and radiance. They came from rich and prosperous families bestowed with royal rewards and honours, and leading a comfortable and luxurious life. Considering mundane pleasures to be the harbingers of consequences as painful as a poisonous fruit (*kimpak phal*), considering life to be as ephemeral as a bubble in water or a dew drop on grass, they got detached and discarded all transient mundane things like particles of dust from a piece of cloth. They renounced their wealth including silver (*hiranya*), gold ornaments (*suvarna*), herds of cattle (*dhan*), stock of grains (*dhanya*), four pronged army (*bal*), vehicles, treasury (*kosh*), silos (*koshtagar*), kingdoms, states, cities (*pur*), women (*antahpur*), abundant cash, bullion (*kanak*), gems, beads, pearls, conch-shells, corals, rubies and all other valuables. They distributed and donated all this wealth to the worthy. After this, shaving their heads and abandoning the householder's life (*agar*) they got initiated into the homeless (*anagar*) life of an ascetic.

Some of these got initiated a fortnight back, some a month back, some two, three (and so on), eleven months back, some a year, two or three back, and some many years back.

विवेचन—यह वर्णन पढ़ने से पता चलता है कि भगवान महावीर के श्रमणसंघ में प्रव्रजित श्रमण कोई ऐरे-गैरे सामान्य दरिद्रता आदि से पीड़ित पेट भरने वाले नहीं थे। किन्तु वे उच्च कुलों में जन्मे, सम्मानित सम्पन्न परिवारों को छोड़कर साधना की प्रदीप्त तेजस्वितायुक्त थे। अगले सूत्रों के वर्णन से स्पष्ट होता है कि उनमें ज्ञान व तपोजन्य विभूतियाँ तथा उग्र तपश्चरण की कितनी उत्कृष्टता थी।

Elaboration—This description informs us that the ascetics initiated into the order of Bhagavan Mahavir were not ordinary destitute who get initiated for want of food. They came from high class, honoured and prosperous families and were inspired by a burning desire for spiritual quest. Following details throw light on their accomplishments through a high degree of knowledge and austerities.

श्रमणों की आत्म-ऋद्धि का वर्णन : ज्ञान बली

२४. (क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे निग्गंथा भगवंतो अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी।

अप्पेगइया मणबलिया, वयबलिया, कायबलिया। अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गहसमत्था एवं-वएणं काएणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. (क) श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से निर्ग्रन्थ संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे। उनमें कई मतिज्ञानी (श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी) तथा केवलज्ञानी थे। अर्थात् कई मति, श्रुत, अवधि यों तीन ज्ञान के धारक तथा कई मति, श्रुत एवं मनःपर्यव, कई मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यव–यों चार ज्ञानों के धारक एवं कई केवलज्ञान के धारक थे।

कई **मनोबली**–मनोबल या मनःस्थिरता के धारक दृढ़ संकल्पव्रती तथा रागोत्पादक अनुकूल परीषहों में दृढ़ रहने वाले; **वचनबली**–प्रतिज्ञा, व्रत, वचन आदि के निर्वाह में दृढ़ या दूसरों को प्रभावित करने वाली वचन-शक्ति के धारक; तथा **कायबली**–भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि प्रतिकूल शारीरिक उपसर्गों को अग्लान भाव से सहने में समर्थ थे। तथा कइयों में मनोबल, वचनबल तथा कायबल तीनों ही प्रबल थे, कइयों में वचनबल तथा कायबल और कइयों में कायबल की विशिष्टता थी।

THE SPIRITUAL WEALTH OF SHRAMANS

24. (a) During that period of time numerous ascetic disciples (*antevasi*) of Shraman Bhagavan Mahavir moved about enkindling (*bhaavit*) their souls with ascetic discipline and austerities. Of these, many were *mati-jnanis* and so on, up to *Keval-jnanis*. This means some were endowed with *mati, shrut* and *avadhi jnana*; some with *mati, shrut* and *manah-paryav jnana*, some with *mati, shrut, avadhi* and *manah-paryav jnana*, and some with *Keval-jnana*. (*mati-jnana* = sensory knowledge or to know the apparent form of things coming before soul by means of five sense organs and the mind; *shrut-jnana* = scriptural knowledge; *avadhi-jnana* = extrasensory perception of the physical dimension, something akin to clairvoyance; *manah-paryav jnana* = extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings, something akin to telepathy; and *Keval-jnana* = omniscience.)

Many of them were endowed with strength of mind which included stability, unwavering resolve even in face of allurements (*manobali*); many with strength of speech which included resolutely sticking to promise, vow or word as also the power to influence others with speech (*vachanbali*); many with strength of body which included the untiring capacity to endure hunger, thirst, heat, cold and other torments (*kayabali*). And many of them were equally

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

strong in all the three aspects and many were specially strong in any one or two of the three.

विविध लब्धिधारी श्रमण

२४. (ख) अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता एवं जल्लोसहिपत्ता, विप्पोसहिपत्ता, आमोसहिपत्ता, सव्वोसहिपत्ता।

अप्पेगइया कोट्ठबुद्धी एवं बीयबुद्धी, पडबुद्धी। अप्पेगइया पयाणुसारी। अप्पेगइया संभिन्नसोया, अप्पेगइया खीरासवा, महुआसवा, अप्पेगइया सप्पिआसवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया।

एवं उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई, विउव्वणिड्ढिपत्ता, चारणा, विज्जाहरा, आगासाइवाईणो।

२४. **(ख)** कई श्रमण मन से **शाप** तथा **अनुग्रह**—वरदान देने या पर–उपकार करने का सामर्थ्य रखते थे, कई वचन द्वारा शाप एवं वरदान देने में सक्षम थे तथा कई शरीर द्वारा अपकार व उपकार करने में समर्थ थे। कई विभिन्न लब्धि–सम्पन्न थे, जैसे–

(१) **खेलौषधि लब्धि**–जिस लब्धि के प्रभाव से साधक का श्लेष्म सुगन्धित एवं रोगनाशक होता है।

(२) **जल्लौषधि लब्धि**–जिस लब्धि के प्रभाव से साधक के कान, नाक, आँख, जीभ एवं शरीर का मैल सुगन्धित एवं रोगनाशक होता है।

(३) **विप्रुडौषधि लब्धि**–'विप्रुड्' का अर्थ है अवयव अर्थात् मूत्र व पुरीष (विष्ठा) के अवयव। जिस लब्धि के प्रभाव से मूत्र–पुरीष के अवयव सुगन्धित तथा स्व–पर का रोग शमन करने में समर्थ होते हैं वह विप्रुडौषधि लब्धि है।

(४) **आमर्षौषधि लब्धि**–आमर्ष अर्थात् स्पर्श। जिस लब्धि के प्रभाव से लब्धि–सम्पन्न आत्मा के कर आदि का स्पर्श होने पर स्व और पर के रोग शान्त हो जाते हैं वह आमर्षौषधि लब्धि कहलाती है।

(५) **सर्वौषधि लब्धि**–जिस लब्धि के प्रभाव से साधक के मल–मूत्र, श्लेष्म, नाक, कान आदि का मैल, केश और नख सभी सुगन्धित एवं रोगापहारी होते हैं।

(६) **स्मृति सम्बन्धी लब्धियाँ**–कई श्रमण भिन्न–भिन्न प्रकार की बुद्धियों के धारक थे, जैसे–**कोष्ठ बुद्धि**–कोठी में रखे हुए सुरक्षित अन्न भण्डार की तरह सूत्र एवं अर्थ ज्ञान को चिरकाल तक ज्यों का त्यों धारण करने में समर्थ, कई **बीज बुद्धि**–बीज की तरह सूत्र रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान को सुनकर अर्थ रूप विशाल वृक्ष की भाँति विस्तार देने वाली बुद्धि। जैसे गणधर तीर्थंकरों के मुख से त्रिपदी को सुनकर सम्पूर्ण द्वादशांगी की रचना कर देते हैं। **पट बुद्धि**–पट अर्थात् वस्त्र, जिस प्रकार वस्त्र विस्तृत तन्तुओं को अपने में समेटे हुए रहता है उसी प्रकार प्रचुर सूत्रज्ञान को स्मृति में संग्रहीत किये रखने में समर्थ। **पदानुसारी बुद्धि**–सूत्र के एक पद या एक वाक्य को सुनकर उसके सैकड़ों पदों का अनुसरण (ज्ञान प्राप्त) करने में समर्थ।

(७) **संभिन्न स्रोतो लब्धि**–जिस लब्धि के प्रभाव से शरीर के सभी प्रदेशों में श्रवण-शक्ति उत्पन्न हो जाती है अथवा जिस लब्धि के प्रभाव से पाँच-इन्द्रियों से ग्राह्य-विषय को एक ही श्रोत्र इन्द्रिय से ग्रहण करने की शक्ति पैदा हो जाती है, अथवा जिस लब्धि से बारह योजन तक विस्तृत चक्रवर्ती के सैन्य में बजने वाले विविध वाद्यों व विविध स्वरों को एक ही साथ अलग-अलग करके सुना जा सकता है, ऐसी अद्‌भुत श्रोत्र (श्रवण) लब्धि से सम्पन्न।

(८) **क्षीर–मधु–सर्पिरास्रव लब्धि**–जिस लब्धि के प्रभाव से वक्ता का वचन, श्रोता को दूध, मधु और घृत के स्वाद की तरह मधुर व आल्हादकारी लगता है। (कहा जाता है–गन्ने का चारा चरने वाली एक लाख गायों का दूध पचास हजार गायों को, उनका दूध पच्चीस हजार गायों को, इस प्रकार आधा-आधा करके अन्त में एक गाय को पिलाने पर उसका दूध एवं उससे बना मंद आँच पर पकाया हुआ घी जैसा मधुर होता है, उससे भी अधिक मधुर वचन इस लब्धि के प्रभाव से मिलता है। ऐसा दूध और घी मन की संतुष्टि एवं शरीर की पुष्टि करने वाला होता है, वैसे इस लब्धि से सम्पन्न आत्मा का वचन, श्रोता के तन-मन को आह्लादित करता है।)

(९) कई **अक्षीणमहानसिक** लब्धिधारी थे। (जिस घर से मुनि भिक्षा ले आयें, उस घर की बची हुई भोजन सामग्री जब तक भिक्षा देने वाला स्वयं भोजन नहीं कर लेता है, तब तक लाखों मनुष्यों को भोजन करा देने पर भी समाप्त नहीं होती। पात्र तभी खाली होता है, जब लब्धिधारी स्वयं उस भिक्षा का उपयोग कर लेता है।)

(१०) कई ऋजुमति तथा कई विपुलमति मनःपर्यवज्ञान के धारक थे।

(११) कई **विकुर्वणा**–वैक्रियलब्धि (भिन्न-भिन्न रूप बना लेने के शक्ति) से युक्त थे।

(१२) कई **चारण**–गति सम्बन्धी विशिष्ट क्षमता लिए हुए थे।

(१३) कई विद्याधरप्रज्ञप्ति आदि विद्याओं के धारक थे।

(१४) कई **आकाशातिपाती**–आकाशगामिनी शक्ति-सम्पन्न थे। (अथवा आकाश से हिरण्य आदि इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थों की वर्षा कराने की क्षमता-सम्पन्न थे।)

(१५) कई **आकाशातिवादी**–आकाश आदि अमूर्त्त पदार्थों को सिद्ध करने में समर्थ थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

24. (b) Many of these *Shramans* were endowed with the mental power to cast spells, curse and bless others; many with the vocal power to curse and bless others; and many with the physical power to harm and benefit others. Many of these *Shramans* were endowed with special miraculous or supernatural powers (*labdhi*) listed here—

(1) Khelaushadhi labdhi—This power turned the phlegm of the adept fragrant and medicinal.

(2) Jallaushadhi labdhi—This power turned the slime or mucous from the adept's ears, nose, eyes, tongue and body fragrant and medicinal.

(3) Viprudaushadhi labdhi—*Viprud* means constituents. This power turned the constituents of urine and faeces of the adept fragrant and medicinal.

(4) Amarshaushadhi labdhi—This power turned the touch of the adept curative.

(5) Sarvaushadhi labdhi—This power turned the phlegm, slime from every part of the body as also the nails and hair of the adept fragrant and medicinal.

(6) Powers related to memory—Many *Shramans* had different types of powers of memory such as—*Koshth buddhi* (the capacity to remember text and meaning eternally like grains stored in a silo or *koshth*), *Beej buddhi* (capacity to elaborate the meaning of an aphorism like growing of a large tree from a seed or *beej*; just as the *Ganadhars* on hearing the three word aphorism from a *Tirthankar* elaborate it into the twelve volume canon), *Pata buddhi* (the capacity to contain the voluminous scriptural knowledge in memory just as a piece of cloth or *pata* contains infinite fibres within and *Padanusari buddhi* (the capacity to acquire knowledge of hundreds of verses of a scripture just by hearing a single verse (*pad*).

(7) Sambhinnashroto labdhi—This power gave every part of the body the capacity to hear. Another interpretation is that it gave the organ of hearing the capacity to function as all the sense organs in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

acquiring information. A third interpretation is that it increased the capacity of the organ of hearing to such an extant that the adept could distinctively hear every sound and every note emanating from a wide number and variety of musical instruments played in the twelve *yojan* spread of the army of a *Chakravarti*.

(8) Kshir-Madhu-Sarpirasav labdhi—This power turned the speech of the adept a sweet and delightful as the taste of milk, honey and butter. It is said that when the milk of one hundred thousand cows consuming sugar-cane is fed to fifty thousand cows, their milk in turn is fed to twenty five thousand cows and this process is continued till just one cow is left. The milk of this cow and the butter extracted from the milk of this cow is ultimate in sweetness and nourishment. The speech of a person endowed with this power has the same qualities of satiation and nourishment.

(9) Akshinamahanasik labdhi—When an ascetic endowed with this power collects alms from a kitchen, the remaining food in that kitchen would not exhaust even if hundreds of thousands of people were fed from it. The food in this kitchen would exhaust only when either the donor himself has eaten or that ascetic has eaten the alms he collected.

(10) Many of these *Shramans* had acquired *Rijumati* (limited range) *manahparyava-jnana* and many *vipulmati* (wide range) *manahparyava-jnana*.

(11) Many of them were endowed with *Vikurvana* or *Vaikriya labdhi* (having power of self-mutation or that of acquiring different forms of body).

(12) Many had *Charan labdhi* (special power of movement and speed).

(13) Many had *Vidyadhar prajnapti labdhi*.

(14) Many had *Akash pratipati labdhi* (the power to fly or to shower good or bad objects from the sky).

(15) Many had *Akashativadi labdhi* (power to control formless things like sky).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. (ग) अप्पेगइया कणगावलितवोकम्मं पडिवण्णा, एवं एगावलिं खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, अप्पेगइया महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, भद्दपडिमं, महाभद्दपडिमं, सव्वओभद्दपडिमं, आयंबिलवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा।

मासियं भिक्खुपडिमं एवं दोमासियं पडिमं, तिमासियं पडिमं जाव सत्तमासियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, पढमं सत्तराइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा जाव तच्चं सत्तराइंदियभिक्खुपडिमं पडिवण्णा, अहोराइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, एक्कराइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं, अट्ठअट्ठमियं भिक्खुपडिमं, णवणवमियं भिक्खुपडिमं, दसदसमियं भिक्खुपडिमं, खुड्डिय मोयपडिमं पडिवण्णा, महल्लियं मोयपडिमं पडिव्रण्णा, जवमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा, वइरमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा संजमेण, तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

२४. (ग) कई श्रमण कनकावली तप करते थे, कई एकावली तप करते थे, कई लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप करने वाले थे तथा कई महासिंहनिष्क्रीड़ित तप करने में संलग्न थे। कई भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा तथा आयंबिल-वर्द्धमान तप करते थे।

कई एकमासिक भिक्षुप्रतिमा, इसी प्रकार द्वैमासिक भिक्षुप्रतिमा, यावत् सप्तमासिक भिक्षुप्रतिमा ग्रहण किये हुए थे। कई प्रथम **सप्तरात्रिन्दिवा**—सात रात-दिन की भिक्षुप्रतिमा, (कई द्वितीय सप्तरात्रिन्दिवा) तथा कई तृतीय सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। कई एक रात-दिन की भिक्षुप्रतिमा ग्रहण किये हुए थे। कई **सप्तसप्तमिका**—सात-सात दिनों की सात इकाइयों या सप्ताहों की भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। कई **अष्टअष्टमिका**—आठ-आठ दिनों की आठ इकाइयों की भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। कई **नवनवमिका**—नौ-नौ दिनों की नौ इकाइयों की भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। कई **दशदशमिका**—दश-दश दिनों की दश इकाइयों की भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। कई **लघुमोकप्रतिमा** (प्रस्रवण सम्बन्धी प्रतिमा) कई **महामोकप्रतिमा** कई **यवमध्यचन्द्रप्रतिमा** तथा कई **वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा** के धारक थे।

SHRAMANS WITH WEALTH OF AUSTERITIES

24. (c) Many of these *Shramans* indulged in austerities like *Kanakavali-tap, Ekavali-tap, Laghusimhanishkridit-tap* and *Mahasimhanishkridit-tap*. Many others indulged in austerities like *Bhadrapratima, Mahabhadrapratima, Sarvatobhadrapratima* and *Ayambil-vardhaman-tap*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Many of the *Shramans* were performing austerities like *Bhikshupratima* of one month duration, two month duration and so on up to seven month duration. Many were indulging in austerities like *Pratham Saptaratrindiva* (one week duration) *Bhikshupratima, Dvitiya Saptaratrindiva* (two one week duration) *Bhikshupratima, Tritiya Saptaratrindiva* (three one week duration) *Bhikshupratima*. The other austerities these Shramans were performing are—*Saptasaptamika* (seven-seven day duration *Bhikshupratima*), *Ashtaashtamika* (eight-eight day duration *Bhikshupratima*), *Navanavamika* (nine-nine day duration *Bhikshupratima*), *Dashadashamika* (ten-ten day duration *Bhikshupratima*), *Laghumokapratima, Mahamokapratima, Yavamadhyachandrapratima* and *Vajramadhyachandrapratima*.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में श्रमणों की लब्धि–सम्पन्नता का संक्षेप में सूचन मात्र किया है। इस सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि यहाँ लब्धि का अर्थ है–तप आदि द्वारा कर्मक्षय होने पर विशिष्ट आत्म–शक्ति की उपलब्धि। लब्धि–प्राप्ति के मुख्य तीन कारण हैं–शुभ परिणाम, उत्कृष्ट तपःसाधना तथा निर्मल संयम आराधना। जैसा कहा है–

"परिणाम तव वसेण इयाइं हुंति लद्धीओ।" –प्रवचन–सारोद्धार २७०/१४९५

मूल आगम तथा उत्तरवर्ती ग्रन्थों में लब्धियों के विषय में बहुत विस्तृत वर्णन है। कहीं इसके दस भेद बताये हैं, कहीं अट्ठाईस, कहीं उनतीस तथा कहीं इससे भी अधिक। भगवतीसूत्र, शतक ९, उद्देशक २ में **दसविहा लद्धी पण्णत्ता**–दस प्रकार की लब्धि कही है। इनका विस्तार करके उनतीस भेद टीका में बताये हैं। यहाँ पर जिन तपोजन्य लब्धियों का वर्णन है उनके विषय में यह माना जाता है कि ये विशिष्ट तपःसाधना द्वारा कर्मों की विशेष निर्जरा होने पर आत्मा में शक्ति रूप में प्रकट होती हैं परन्तु तपस्वी श्रमण जब मन में संकल्प करके इनका परोपकारार्थ उपयोग करना चाहे तभी ये प्रभावकारी होती हैं। जैसा आवश्यकचूर्णि में कहा है–

"आमोसहिपत्ताणं रोगाभिभूतं अत्ताणं परं वा जवेवि तिगिच्छामी।
ति संचित्तेऊण आसुरति ते तक्खणा चेव ववगयरोगातंकं करोति॥" –आवश्यकचूर्णि १

आमर्षौषधि प्राप्त श्रमण जब अपने लिए या दूसरे के लिए यह संकल्प करता है कि "मैं इसे स्वस्थ करूँ" तभी वह उसका स्पर्श कर उसे रोगमुक्त करता है, अर्थात् जब तक संकल्प नहीं करता वह लब्धि औषधि रूप में कार्य नहीं करती, किन्तु कुछ तपस्वियों के मल, मूत्र, पसीना आदि की गंध या स्पर्श से सहज ही दूसरे रोग मुक्त हो जाते हैं, ऐसे भी अनेक उदाहरण ग्रन्थों में मिलते हैं। विशेष वर्णन के लिए प्रवचन–सारोद्धार, द्वार २७१ की टीका व व्याख्या देखना चाहिए।

सूत्र में वर्णित रत्नावली, कनकावली, एकावली आदि तपों का विस्तृत वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र के अष्टम वर्ग में प्राप्त है। पाठक सचित्र अन्तकृद्दशासूत्र, पृष्ठ ३५६–३५८ में देखें तथा भद्र, महाभद्र आदि प्रतिमाओं का वर्णन उसी सूत्र में पृष्ठ ३८४–३९२ में देखना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का वर्णन दशाश्रुतस्कंधसूत्र आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज कृत व्याख्या, सम्पादन–डॉ. सुव्रत मुनि, पृष्ठ २३७–२८५ पर देखना चाहिए।

लघुमोकप्रतिमा, महामोकप्रतिमा–दोनों मूत्र सम्बन्धी प्रतिमा हैं। आज वर्तमान में स्वमूत्र चिकित्सा पर बहुत प्रयोग किये जा रहे हैं। आगमों में इनका अनेक रूपों में उल्लेख मिलता है।

Elaboration—This aphorism briefly states the special powers the *Shramans* were endowed with. Here *labdhi* means the special spiritual powers acquired as a consequence of shedding of *karmas* through practice of austerities and other means. There are three main causes of acquiring such special powers—pious attitudes and indulgences, high degree of accomplishment in observing austerities, and purity of ascetic discipline (as is mentioned in *Pravachana-saroddhar* 270/14495).

Detailed description about *labdhis* is available in the main *Agams* as well as in later works. At some places there is a mention of ten kinds of *labdhi* and at others twenty eight, twenty nine and even more. *Bhagavati Sutra* (9/2) mentions ten kinds of *labdhi*. Elaborating these, the commentary mentions of twenty nine kinds. It is believed about the *labdhis*, acquired through austerities, mentioned here that they appear as spiritual power when some specific *karmas* are shed as a consequence of some specific austerity. However they are effective only when the ascetic wishes and resolves to use them for the benefit of others. As is stated in *Avashayak Churni* 1—

A *shraman* endowed with *Amarshaushadhi labdhi* can cure a person or himself by his touch only when he resolves—"I wish to cure him." As long as he does not resolve thus this power does not become effective as a cure. However, in many scriptures there are mentions of instances where the smell or touch of the excreta of some accomplished ascetics naturally cure many diseases. More details on this subject are available in commentaries (*Tika* and *Vyakhya*) of *Dvar* 271 of *Pravachana-saroddhar*.

Detailed description of the practices of austerities like *Ratnavali*, *Kanakavali* and *Ekavali* are available in the Eighth section of *Antakriddasha Sutra*. (see pp 356-358 of *Illustrated Antakriddasha Sutra*; and pp. 384-392 for description of *Bhadrapratima*, *Mahabhadrapratima* etc.)

The description of the twelve *Bhikshupratimas* can be seen in *Dashashrutskandh Sutra* commentary (*Vyakhya*) by Acharya Shri Atmaram ji M., edited by Dr. Suvrat Muni (pp. 237-285).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Laghumokapratima and *Mahamokpratima* are two practices related to urine. Today a variety of experiments are being done in the field of auto-urine therapy. This topic finds mention many ways in the *Agam* literature.

स्थविरों के गुण वर्णन

२५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा बलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा।

ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी, जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जिइंदिया जियणिद्दा जियपरीसहा जीवियास–मरणभयविप्पमुक्का।

वयप्पहाणा गुणप्पहाणा करणप्पहाणा चरणप्पहाणा णिग्गहप्पहाणा निच्छयप्पहाणा अज्जवप्पहाणा मद्दवप्पहाणा लाघवप्पहाणा खंतिप्पहाणा मुत्तिप्पहाणा विज्ञाप्पहाणा मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा बंभप्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा। चारुवण्णा लज्जा तवस्सी जिइंदिया सोही अणियाणा अप्पोसुया अबहिल्लेसा अप्पडिलेस्सा सुसामण्णरया दंता इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओकाउं विहरंति।

२५. श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से स्थविर भगवान, जाति–सम्पन्न, कुल–सम्पन्न, **बल–सम्पन्न**–उत्तम दैहिक शक्तियुक्त, रूप–सम्पन्न, विनय–सम्पन्न, ज्ञान–सम्पन्न, दर्शन–सम्पन्न, चारित्र–सम्पन्न, लज्जा–सम्पन्न (पाप करने में लज्जायुक्त), **लाघव–सम्पन्न**–भौतिक पदार्थों तथा कषाय आदि के भार से रहित थे।

वे ओजस्वी–(तप–संयमजन्य प्रभावयुक्त), तेजस्वी–(तपोजन्य दीप्तियुक्त), **वचस्वी**–प्रशस्तभाषी अथवा **वर्चस्वी**–वर्चस् या प्रभायुक्त, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, इन्द्रियजयी, निद्राजयी, परीषहजयी, जीवन की इच्छा और मृत्यु के भय से रहित थे।

वे श्रमण व्रतप्रधान, **गुणप्रधान**–संयम आदि गुणों की विशेषता से युक्त, **करणप्रधान**–आहारविशुद्धि आदि की विशेषता सहित, **चारित्रप्रधान**–उत्तम चारित्र–सम्पन्न–दशविध यतिधर्म से युक्त, **निग्रहप्रधान**–मन एवं इन्द्रिय आदि का निग्रह करने वाले, **निश्चयप्रधान**–सत्य तत्त्व के निश्चित विश्वासी या कर्मफल में आस्था रखने वाले, **आर्जवप्रधान**–सरलतायुक्त, **मार्दवप्रधान**–मृदुतायुक्त (अहंकाररहित), **लाघवप्रधान**–(द्रव्य से अल्प–उपधि वाले, भाव से तीन प्रकार के गौरव से रहित), **क्षान्तिप्रधान**–क्षमाशील, **गुप्तिप्रधान**–मानसिक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचिक तथा कायिक प्रवृत्तियों का विवेकपूर्वक उपयोग करने वाले, **मुक्तिप्रधान**–कामनाओं से दूर रहने वाले, **विद्याप्रधान**–ज्ञान की विविध शाखाओं के पारगामी, **मन्त्रप्रधान**–चिन्तना या विचारणायुक्त, **वेदप्रधान**–वेद आदि लौकिक, लोकोत्तर शास्त्रों के ज्ञाता, ब्रह्मचर्यप्रधान, **नयप्रधान**–नैगम आदि नयों के ज्ञाता, **नियमप्रधान**–नियमों के पालक, सत्यप्रधान, **शौचप्रधान**–आत्मा की शुचिता एवं पवित्रतायुक्त थे एवं–**चारुवर्ण**–सुन्दर वर्णयुक्त अथवा उत्तम कीर्तिमान, **लज्जा**–संयम की विराधना में लज्जालु तथा तपःश्री–तप की आभा या तप के तेजयुक्त, जितेन्द्रिय थे, **शोधि**–शुद्ध या अकलुषित हृदय वाले, **अनिदान**–निदानरहित–**अल्पौत्सुक्य**–भोगों की उत्सुकता रहित, **अबहिःलेश्या**–लेश्याओं तथा मनोवृत्तियों को संयम से बाहर नहीं जाने देते थे। सदा शुभ मनोवृत्ति वाले थे। श्रमण जीवन की शुद्ध आराधना में संलग्न थे, **दान्त**–इन्द्रिय, मन आदि का दमन करने वाले थे, वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित **प्रवचन**–धर्मानुशासन को आगे रखकर उसे ही प्रमाणभूत मानकर विचरण करते थे।

THE QUALITIES OF STHAVIRS

25. During that period of time numerous *sthavir* (senior ascetic) disciples (*antevasi*) of Shraman Bhagavan Mahavir were *jatisampanna* (belonged to high castes), *kulasampanna* (came from noble families), *balasampanna* (rich in physical strength), *roopsampanna* (handsome), *vinayasampanna* (modest), *jnanasampanna* (rich in knowledge), *darshansampanna* (having profound perception/faith), *charitrasampanna* (strict adherents of ascetic-conduct), *lajjasampanna* (shy of indulging in sinful activities) and *laghavsampanna* (having minimum possessions as well as passions).

They were brilliant and radiant with power and aura gained through austerities and ascetic-discipline, eloquent, influential and famous. They had conquered their anger, conceit, deceit, greed, senses, sleep and pain of torments. They were free of the desire of life and fear of death.

These *Shramans* were highly proficient in various fields and virtues like—self-control and ascetic-discipline; purity of actions including alms collection; the ten fold ascetic-conduct; subduing of mind and senses; faith in truth and doctrine of *karma*; simplicity; modesty; humbleness (having minimum possessions and free of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

three kinds of pride); forgiveness; restraint over mental, vocal and physical indulgences; independence from ambitions; various branches of knowledge; skill of mantra and contemplation; knowledge of the *Vedas* and other scriptures; celibacy; subjects like logic and *naya* (system of variant perspectives); adherence to rules; truth and purity of soul. They also had qualities like good complexion; reluctance in transgressing ascetic-discipline; aura of austerities; command over senses; purity of heart; independence from sleep and freedom from mundane curiosity. They never allowed their desires or *leshyas* (complexion of soul) to go out of control. Their attitude always remained pious. They immaculately followed the ascetic life with all purity and subdued their desires and senses. They moved about following the word of the *Vitarag* and considering his *sermon* to be the commandment.

२६. तेसि णं भगवंताणं आयावाया वि विदित्ता भवंति, परवाया वि विदित्ता भवंति, आयावायं जमइत्ता नलवणमिव मत्तमातंगा, अच्छिद्दपसिणवागरणा, रयणकरंडगसमाणा, कुत्तियावणभूया।

परवाइपमद्दणा, दुवालसंगिणो, समत्तगणिपिडगधरा, सव्वक्खरसण्णिवाइणो, सव्वभासाणुगामिणो, अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

२६. वे स्थविर भगवान **आत्मवाद**–स्व–सिद्धान्तों में वर्णित विविध तत्त्वों के ज्ञाता थे। **परवाद**–दूसरे के सिद्धान्तों के भी वेत्ता थे। जिस प्रकार कमलवन में पुनः–पुनः क्रीड़ा करने वाला हाथी कमलवन से भलीभाँति परिचित रहता है उसी प्रकार वे अपने सिद्धान्तों के पुनः–पुनः अभ्यास या परावर्तना के कारण उनसे सुपरिचित थे। जब कोई उनसे प्रश्न पूछता तो वे **अच्छिद्र**–अखण्डित रूप में उनका उत्तर देने में समर्थ थे। वे रत्नों की पिटारी के सदृश ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि दिव्य रत्नों से परिपूर्ण थे। वे कुत्रिकापण तुल्य थे। (कुत्रिकापण में जिस प्रकार सभी मन इच्छित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार वे अपने मन इच्छित कार्य पूर्ण करने में समर्थ थे।)

वे परवादियों के मत का निराकरण (खण्डन) करने में सक्षम थे। आचारांग, सूत्रकृतांग आदि बारह अंगों के ज्ञाता थे। समस्त गणिपिटक (जिन–प्रवचन) के धारक, अक्षरों–स्वर एवं व्यंजनों के सभी प्रकार के संयोग के ज्ञाता, सब प्रकार की भाषाओं के जानकार थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे जिन–सर्वज्ञ न होते हुए भी सर्वज्ञ तुल्य थे। वे सर्वज्ञों की तरह अवितथ–यथार्थ प्ररूपणा करते हुए, संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

26. These *Sthavir Bhagavans* (most venerated senior ascetics) had profound knowledge of their own tenets and scriptures as well as those of others. Thoroughly honing their knowledge of their own doctrines through repeated study, they roamed around in their spiritual world like a bull elephant completely at ease in a lotus forest it playfully frequents. They were capable of answering all questions put forth to them without any hesitation. Like a box of gems they were rich with divine gems including right knowledge, perception/faith and conduct. They were like a *kutrikapan* (a divine store where all coveted things are available).

They were capable of defeating their adversaries in debate. They were masters of the twelve *Angas* including *Acharanga* and *Sutrakritanga*. They had all the knowledge of the complete *Ganipitak* (the corpus of basic Jain canon). They knew all the combinations of all the consonants and vowels as well as all languages. Though not yet *Jina* themselves, they were almost like omniscients. Like omniscients they propagated the true fundamentals and moved about enkindling (*bhaavit*) their souls with ascetic-discipline and austerities.

गुण–सम्पन्न अणगारों की बाईस उपमाएँ

२७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवंतो इरियासमिया, भासासमिया, एसणासमिया, आयाण–भंडमत्तनिक्खेवणासमिया, उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण–जल्ल–पारिट्ठावणियासमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया, गुत्तबंभयारी, अममा, अकिंचणा, छिण्णग्गंथा, छिण्णसोया, निरुवलेवा–

१. कंसपाईव मुक्कतोया, २. संख इव निरंगणा, ३. जीवो विव अप्पडिहयगई, ४. जच्चकणगं पिव जायरूवा, ५. आदरिसफलगा इव पागडभावा, ६. कुम्मो इव गुत्तिंदिया, ७. पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा, ८. गगणमिव निरालंबणा, ९. अणिलो इव निरालया, १०. चंदो इव सोमलेसा, ११. सूरो इव दित्ततेया, १२. सागरो इव गंभीरा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का, १४. मंदरो इव अप्पकंपा, १५. सारयसलिलं व सुद्धहियया, १६. खग्गिविसाणं इव एगजाया, १७. भारंडपक्खी इव अप्पमत्ता, १८. कुंजरो इव सोंडीरा, १९. वसभो इव जायत्थामा, २०. सीहो इव दुद्धरिसा, २१. वसुंधरा इव सव्वफासविसहा, २२. सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंता।

२७. श्रमण भगवान महावीर के वे अन्तेवासी अनगार भगवान ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान–भांड मात्र निक्षेपणा समिति तथा उच्चार–प्रस्रवण समिति से समित–समिति की आराधना में यतनाशील थे। वे मनोगुप्त, वचोगुप्त, कायगुप्त–मन, वचन तथा शरीर की क्रियाओं का संयम करने वाले थे। वे गुप्त विषयों से विरक्त रागरहित–अन्तर्मुख थे, **गुप्तेन्द्रिय**–इन्द्रियों को निग्रह करने में तत्पर, गुप्त ब्रह्मचारी–नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने वाले, **अमम**–ममत्वरहित, **अकिंचन**–परिग्रहरहित, **छिन्नग्रन्थ**–संसार से जोड़ने वाले पदार्थ रूप ग्रन्थियों से विमुख, **छिन्नस्रोत**–लोकप्रवाह में नहीं बहने वाले, **निरुपलेप**–कर्मबन्ध के लेप से रहित थे।

जिस प्रकार (१) काँसे के पात्र में पानी नहीं लगता, उसी प्रकार वे अनगार स्नेह, आसक्ति आदि के लगाव से रहित थे, (२) शंख के समान **निरंगण**–राग आदि के रंग से अलिप्त (शंख पर कोई रंग नहीं लगता है, उसी प्रकार क्रोध, द्वेष, राग, प्रेम, प्रशंसा, निन्दा आदि से अप्रभावित रहते थे), (३) जीव को गति करने में जैसे कहीं कोई अवरोध नहीं रहता, उसी प्रकार वे अप्रतिहतगति थे, (४) **जात्य**–उत्तम जाति के, शुद्ध स्वर्ण के समान जातरूप–निर्मल चारित्र–सम्पन्न थे, (५) दर्पण के सदृश–छल व कपटरहित शुद्ध पारदर्शी जीवन जीने वाले, (६) कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय–निवृत्ति–भाव में स्थित रहने वाले, (७) कमलपत्र के समान निर्लेप, (८) आकाश के तुल्य निरालम्ब–पराश्रय से निरपेक्ष, (९) वायु की तरह निरालय–गृहरहित, (१०) चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यायुक्त, (११) सूर्य के समान दीप्ततेज–शारीरिक तथा आत्मिक तेजयुक्त, (१२) समुद्र के समान गम्भीर, (१३) पक्षी की तरह सर्वथा विप्रमुक्त–परिवार, परिजन आदि से मुक्त तथा निश्चित निवासरहित, (१४) मेरु पर्वत के समान अप्रकम्प–अनुकूल, प्रतिकूल परीषहों में अविचल, (१५) शरद ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदय, (१६) गेंडे के सींग के समान **एकजात**–राग आदि भावों से रहित एक मात्र आत्मनिष्ठ, (१७) भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त–प्रमादरहित, जागरूक, (१८) हाथी के सदृश शौण्डीर–कषाय आदि को जीतने में शूरवीर, बलशाली, (१९) वृषभ के समान धैर्यशील, (२०) सिंह के समान दुर्धर्ष–परीषहों व कष्टों से अपराजेय, (२१) पृथ्वी के समान सभी शीत, उष्ण, अनुकूल, प्रतिकूल स्पर्शों को समभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सहने में समर्थ, तथा (२२) घृत द्वारा भलीभाँति हवन की हुई अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान–ज्ञान तथा तप के तेज से दीप्तिमान थे।

TWENTY TWO METAPHORS FOR ANAGARS

27. During that period of time numerous *sthavir* (senior ascetic) disciples (*antevasi*) of *Shraman* Bhagavan Mahavir were sincerely pursuing the practices of five *samitis* (regulations) prescribed for movement (*irya*), speech (*bhasha*), alms seeking (*eshana*), maintaining ascetic equipment including bowls (*adan-bhand-matra nikshepan*) and excreta disposal (*uchchar-prasravan*). They also practiced the three *guptis* (restraints) of mind, speech and body. They were introvert and detached (*gupta*) and exercised complete restraint over sense organs (*guptindriya*). They practiced celibacy with nine fences (*gupta brahmachari*). They were selfless (*amam*) and devoid of possessions (*akinchan*). They were free from any bonds in the form of attachment for material things (*chhinnagranth*) and all other mundane activities (*chhinnapravah*) as well as the coating in the form of bondage of *karmas* (*nirupalep*).

(1) Like a bronze vessel, on which water does not stick, they were free of fondness and attachment. (2) Like a conch-shell they could not be tarnished with any colour (anger, aversion, attachment, love, praise, criticism etc.). (3) Like a soul they were unhindered in their movement. (4) Like refined gold they were endowed with purity of conduct. (5) Like a mirror their life was transparent and free of any aberrations of deceit and complicity. (6) Like a tortoise their senses were concealed by the cover of abstinence and introversion. (7) They were unspoiled like a lotus leaf. (8) Like sky they were without a support or free of any outside dependence. (9) They were abodeless like air. (10) Like moon they had serene and soothing glow. (11) Like sun they were scintillating (physically as well as spiritually). (12) They were endowed with the depth of an ocean. (13) Like birds they were untethered or free of family, friends and permanent settlement. (14) Like Mount Meru they were unwavering and firm in face of afflictions. (15) They were pure at heart like the autumn water. (16) Like a rhinocerous horn they were uniform or

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

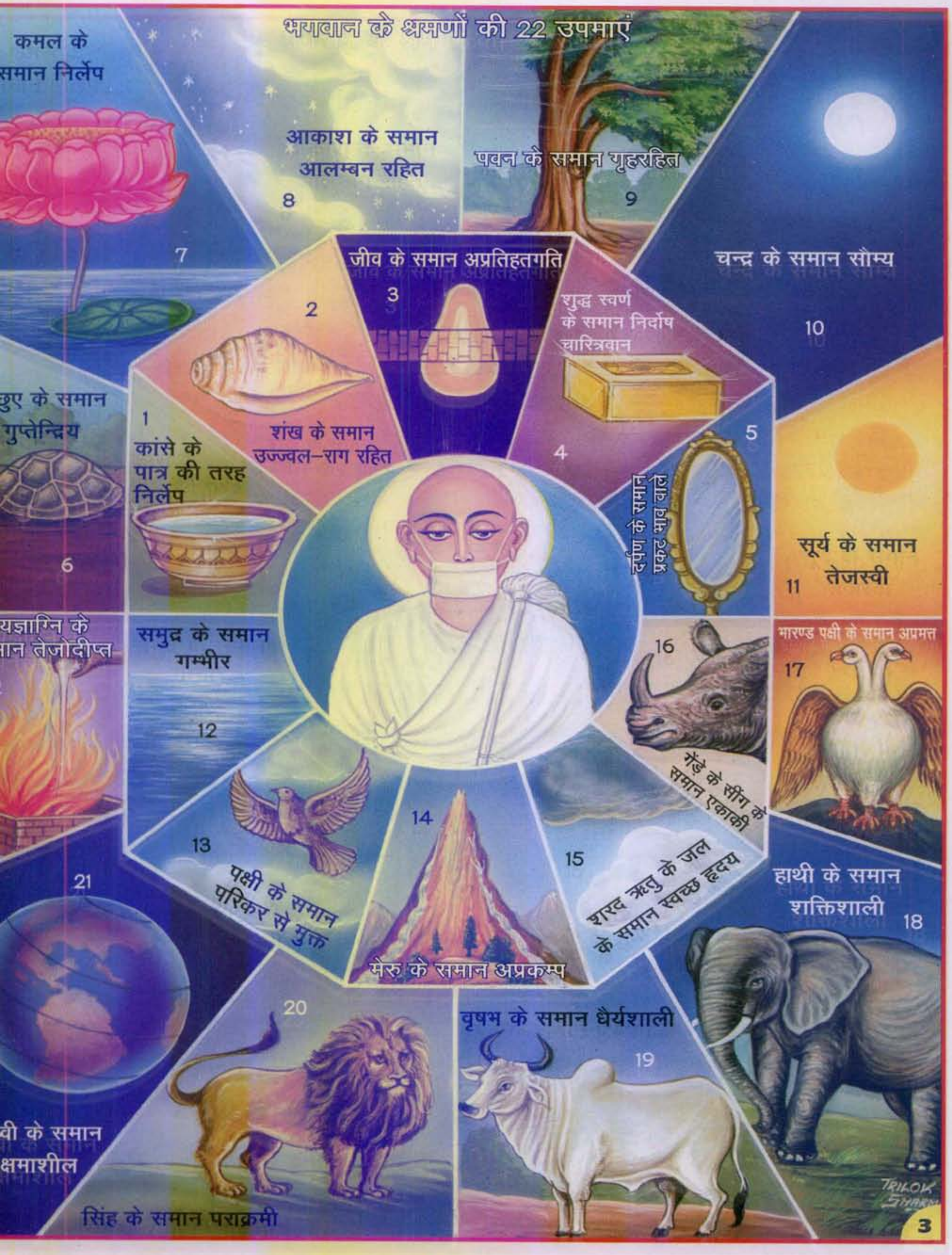

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-३

Illustration No. 3

भगवान के श्रमणों की २२ उपमाएँ

श्रमण भगवान महावीर के श्रमण भगवान इस प्रकार की विशेषताओं से युक्त थे-

(१) कांसे के पात्र की तरह निर्लेप।
(२) शंख के समान उज्ज्वल-राग रहित।
(३) जीव के समान अप्रतिहतगति।
(४) शुद्ध स्वर्ण के समान निर्दोष चारित्रवान।
(५) दर्पण के समान प्रकट भाव वाले।
(६) कछुए के समान गुप्तेन्द्रिय।
(७) कमल के समान निर्लेप।
(८) आकाश के समान आलम्बन रहित।
(९) पवन के समान गृहरहित।
(१०) चन्द्र के समान सौम्य।
(११) सूर्य के समान तेजस्वी।
(१२) समुद्र के समान गम्भीर।
(१३) पक्षी के समान परिकर से मुक्त।
(१४) मेरु के समान अप्रकम्प।
(१५) शरद ऋतु के जल के समान स्वच्छ हृदय।
(१६) गेंड़े के सींग के समान एकाकी।
(१७) भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त।
(१८) हाथी के समान शक्तिशाली।
(१९) वृषभ के समान धैर्यशाली।
(२०) सिंह के समान पराक्रमी।
(२१) पृथ्वी के समान क्षमाशील।
(२२) यज्ञाग्नि के समान तेजोदीप्त।

-सूत्र २७

TWENTY TWO METAPHORS FOR THE ASCETIC DISCIPLES OF BHAGAVAN

The ascetic disciples of Shraman Bhagavan Mahavir were endowed with these qualities :

(1) Free of blemish like a bronze vessel.
(2) Clean and detached like a conch-shell.
(3) Unhindered in movement like a soul.
(4) Endowed with purity of conduct like refined gold.
(5) Transparent like a mirror.
(6) With concealed senses like a tortoise.
(7) Unspoiled like a lotus leaf.
(8) Without a support like sky.
(9) Abodeless like air
(10) Soothing like the moon.
(11) Scintillating like the sun.
(12) Serene like an ocean.
(13) Untethered like birds.
(14) Unwavering like Mount Meru.
(15) Pure at heart like the autumn water
(16) Unidirectional like a rhinocerous horn.
(17) Ever alert like a Bharand bird.
(18) Strong like an elephant.
(19) Patient like a bull.
(20) Invincible like a lion.
(21) Tolerant like the earth.
(22) Glowing like the flames of a *yajna*-pyre.

—Sutra 27

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

unidirectional towards spirituality. (17) Like a *Bharand* bird they were ever alert. (18) They were strong like an elephant in winning over passions. (19) They were patient like a bull. (20) Like a lion they were invincible to pain or torments. (21) In enduring heat, cold and other favourable and unfavourable conditions they were like the earth. (22) Like flames of a pyre saturated with butter they were ever glowing with the fire of knowledge and austerities.

विवेचन—ऐसा माना जाता है, भारण्ड पक्षी एक विशालकाय विशिष्ट बली पक्षी होता है। उसके एक शरीर, दो सिर, दो आँखें तथा तीन पैर होते हैं। उसकी दोनों ग्रीवाएँ–(मुख) अलग-अलग होती हैं। उसे अपने जीवन-निर्वाह हेतु खानपान आदि क्रियाओं में अत्यन्त प्रमादरहित या जागरूक रहना होता है। मुनि को भारंड पक्षी की तरह सदा जागरूक व अन्तर्मुख रहना चाहिए।

Elaboration—It is said that *Bharand*, a mythical bird of giant proportions, has one body, two heads, two eyes and three legs. The two heads are on separate necks. For sustenance it has to be extremely alert and selfish in finding and collecting food. An ascetic should always be as alert and introvert as a *Bharand* bird.

प्रतिबंध-मुक्त अणगार

२८. नत्थि णं तेसि णं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे भवइ।

से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

१. दव्वओ णं सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु। २. खेत्तओ गामे वा णयरे वा रण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा। ३. कालओ समए वा, आवलियाए वा, जाव (आणापाणुए वा थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा) अयणे वा, अण्णयरे वा दीहकालसंजोगे। ४. भावओ कोहे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा। एवं तेसिं णं भवइ।

२८. श्रमण भगवान महावीर के उन श्रमण भगवंतों के किसी प्रकार का प्रतिबन्ध–रुकावट या आसक्ति का बंधन नहीं था।

प्रतिबन्ध चार प्रकार का कहा है–द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल की अपेक्षा से तथा भाव की अपेक्षा से।

(१) द्रव्य की अपेक्षा से सचित्त, अचित्त तथा मिश्रित द्रव्यों में, (२) क्षेत्र की अपेक्षा से गाँव, नगर, खेत, खलिहान, घर तथा आँगन में, (३) काल की अपेक्षा से समय आवलिका, असंख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय (आन-प्राण-एक उच्छ्वास-निःश्वास का काल), **थोव-स्तोक**-(सात उच्छ्वास-निःश्वास का काल), **लव**-(सात थोव), **मुहूर्त**-(सतत्तर लव) दिन-रात, पक्ष, मास, **अयन**-छह मास एवं अन्य दीर्घकालिक संयोग में, तथा (४) भाव की अपेक्षा से क्रोध, अहंकार, माया, लोभ, भय या हास्य में उनका किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध व आसक्ति भाव नहीं था।

UNRESTRICTED ANAGARS

28. These *Shraman Bhagavants* of Bhagavan Mahavir's order were not encumbered by any restriction, obstruction or obsession in their spiritual pursuits.

Restrictions are said to be of four kinds—related to substance, related to area, related to time and related to attitude.

(1) In relation to substance the obstruction is from *sachit* (living), *achit* (non-living) and mixed substances. (2) In relation to area the restriction is of village, city, farm, farm-yard, house and courtyard. (3) In relation to time the restriction is of *Samaya* (the smallest indivisible unit of time), *Avalika, Asamkhyat Samaya, Stok, Lav, Muhurt,* day and night, fortnight, month, *Ayan* and other longer units of time (refer to Illustrated *Anuyogadvar Sutra*, pp. 290-292 for details about these units). 4. In relation to attitude the obsession is of anger, conceit, deceit, greed, fear or mirth. They were not restricted by or obsessed with any of these on the spiritual path.

विहार चर्या

२९. ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतियाणि मासाणि गामे एगराइया, णयरे पंचराइया।

वासीचंदणसमाणकप्पा, समलेट्ठु-कंचणा, समसुह-दुक्खा, इहलोग-परलोग अप्पडिबद्धा, संसारपारगामी, कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरंति।

२९. वे साधु भगवान वर्षावास-चातुर्मास के चार महीने छोड़कर ग्रीष्म तथा हेमन्त (शीतकाल) दोनों ऋतुओं के आठ महीनों तक किसी गाँव में एक रात तथा नगर में पाँच रात निवास करते थे।

वे चन्दन के समान अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करने की वृत्ति रखते थे अथवा बसूले के समान क्रूर व्यवहार करने वाले-अपकारी तथा चन्दन के समान सौम्य व्यवहार करने वाले-उपकारी-दोनों के ही प्रति राग-द्वेषरहित समान भाव धारण किये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहते थे। वे मिट्टी के ढेले और स्वर्ण को एक समान दृष्टि से देखते थे। सुख और दुःख में समान भाव रखते थे। वे इहलौकिक तथा पारलौकिक आसक्ति से बँधे हुए नहीं थे। वे संसारपारगामी–चतुर्गति रूप संसार के पार पहुँचने वाले–तथा कर्मों का **निर्घातन**–नाश करने हेतु अभ्युत्थित–प्रयत्नशील होकर विचरण करते थे।

ASCETIC PRAXIS

29. In a year, except for the monsoon-stay (four months of the monsoon season), for eight months of summer and winter seasons these *Shraman Bhagavants* never stayed in a village for more than one night and in a city for more than five nights.

Like sandal-wood they were benevolent even for those who harmed them. In other words, they were beyond any feelings of attachment and aversion for things painful like a sharp edged cutting tool or soothing like sandal-wood. To them a lump of sand or that of gold were same. They were equanimous in pleasure and pain. They were free of any obsessions related to this life and the other. They were destined to cross the ocean of cycles of rebirth in the four *gatis* (dimension or realm of birth) namely, divine, human, animal and infernal. They led a peripatetic life in their endeavour to destroy the bondage of *karmas*.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में साधुओं के लिए ग्राम में एकरात्रिक तथा नगर में पंचरात्रिक प्रवास का उल्लेख हुआ है। साधारणतः साधुओं के लिए मासकल्प विहार विहित है।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि के कथनानुसार–**एतच्च प्रतिमा कल्पिकानामाश्रित्योक्तम्** (वृत्ति पत्र ३६) यह कल्प प्रतिमाधारी श्रमणों को लक्ष्य करके कहा गया है। आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज ने अपनी टीका में गाँव में एक रात्रि से, एक दिन से एक सप्ताह तक तथा नगर में पाँच रात्रि से–एक सप्ताह से पाँच सप्ताह अर्थात् उनतीस दिन तक निवास करने की प्राचीन परम्परा का उल्लेख किया है। **यस्मिन् दिवसेऽनगारा ग्राममागच्छन्ति स दिवसः पुनर्यावन्नावर्तते पर्यन्तः काल एक रात्र शब्देन गृह्यते तेनैक सप्ताह निवासिन इत्यर्थः। नगरे पंचरात्रिकाः–यस्मिन् दिवसेऽनगारा नगरमागच्छन्ति स दिवसः पंचवारमावर्तितः पंचरात्रमुच्यते, तेवैकोनत्रिंशदिवसवासिन इत्यर्थः** (पी. व. टीका, पृष्ठ २००)

Elaboration—This aphorism informs about the one night village-stay and five night city-stay for ascetics. However, in general the code of month long stay is in practice.

According to the commentator (*Vritti*) Abhayadev Suri the aforesaid rule is for the *Shramans* who are practicing *pratimas* (special codes and resolutions for an ascetic). In his commentary (*Tika*), Acharya Ghasilal ji

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

M. states about the ancient tradition of village stay of one night to one week duration and city stay of five nights to five weeks duration. (p. 200)

तप वर्णन

३०. (क) तेसिं णं भगवंताणं एएणं विहारेणं विहरमाणाणं इमे एयारूवे अब्भिंतर-बाहिरए तवोवहाणे होत्था। तं जहा—अब्भिंतरए छव्विहे, बाहिरए वि छव्विहे।

से किं तं बाहिरए ?

बाहिरए छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—१. अणसणे, २. ओमोयरिया, ३. भिक्खायरिया, ४. रसपरिच्चाए, ५. कायकिलेसे, ६. पडिसंलीणया।

३०. **(क)** इस प्रकार ग्रामानुग्राम विहार करने वाले वे श्रमण भगवान आभ्यन्तर तप तथा बाह्य तपमूलक आचार का पालन करते थे। आभ्यन्तर तप छह प्रकार का है तथा बाह्य तप भी छह प्रकार का कहा है।

बाह्य तप क्या है-कौन-कौन से हैं ?

बाह्य तप छह प्रकार के हैं-यथा-(१) **अनशन**-आहार एवं आहार की आसक्ति का त्याग करना, (२) **अवमोदरिका**-भूख से कम खाना या साधनों का उपयोग सीमित करके, (३) **भिक्षाचर्या**-भिक्षा से प्राप्त-संयम-जीवनोपयोगी आहार, वस्त्र, पात्र, औषध आदि शुद्ध एषणीय वस्तुएँ ग्रहण करना, इसे वृत्तिसंक्षेप भी कहते हैं, (४) **रस-परित्याग**-सरस पदार्थों का त्याग करना, (५) **कायक्लेश**-इन्द्रिय-दमन करना तथा सुकुमारता, आरामतलबी छोड़ने हेतु तदनुरूप कष्टमय अनुष्ठान द्वारा शरीर को साधना के लिए तैयार करना, (६) **प्रतिसंलीनता**-अन्तर्मन की आभ्यन्तर तथा शरीर की बाह्य चेष्टाओं का संकोच करना।

AUSTERITIES

30. (a) During their wanderings from one village to another these *Bhagavants* adhered to their ascetic conduct based on inner and outer austerities. The inner austerities are of six kinds and the outer austerities are also of six kinds.

What are these outer austerities ?

The outer austerities are of six kinds—(1) *Anashan* or to abandon food as well as desire for food. (2) *Avamodarika* or eating less than appetite and also to limit use of other utilities. (3) *Bhikshacharya* or to live on alms (prescribed and acceptable) including food, clothes, utensils etc. (4) *Rasa parityag* or give up

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

use of tasty and desirable things. (5) *Kayaklesh* or to discipline senses and undergo physical hardship avoiding comfortable and luxurious living in order to prepare body for spiritual practices. (6) *Pratisamlinata* or to hold back and limit internal (of mind) as well as external (of body) efforts.

(१) अनशन तप

३०. (ख) से किं तं अणसणे ?

अणसणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. इत्तरिए य, २. आवकहिए य।

से किं तं इत्तरिए ?

अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. चउत्थभत्ते, २. छट्ठभत्ते, ३. अट्ठमभत्ते, ४. दसमभत्ते, ५. बारसभत्ते, ६. चउद्दसभत्ते, ७. सोलसभत्ते, ८. अद्धमासिए भत्ते, ९. मासिए भत्ते, १०. दोमासिए भत्ते, ११. तेमासिए भत्ते, १२. चउमासिए भत्ते, १३. पंचमासिए भत्ते, १४. छम्मासिए भत्ते, से तं इत्तरिए।

से किं तं आवकहिए ?

आवकहिए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. पाओवगमणे य, २. भत्तपच्चक्खाणे य।

से किं तं पाओवगमणे ?

पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. वाघाइमे य, २. निव्वाघाइमे य नियमा अप्पडिकम्मे। से तं पाओवगमणे।

से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?

भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. वाघाइमे य, २. निव्वाघाइमे य णियमा सपडिकम्मे। से तं भत्तपच्चक्खाणे, से तं अणसणे।

३०. **(ख)** अनशन तप क्या है–कितने प्रकार का है?

अनशन तप दो प्रकार का है–१. **इत्वरिक**–मर्यादित समय के लिए आहार का त्याग। २. **यावत्कथिक**–जीवनभर के लिए आहार–त्याग।

इत्वरिक तप क्या है–कितने प्रकार का है?

इत्वरिक तप अनेक प्रकार का है, जैसे–(१) **चतुर्थ भक्त**–एक दिन–रात के लिए आहार का त्याग–उपवास, (२) **षष्ठ भक्त**–निरन्तर दो उपवास–बेला, (३) **अष्टम भक्त**–तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपवास–तेला, (४) **दशम भक्त**–चार दिन का उपवास, (५) **द्वादश भक्त**–पाँच दिन का उपवास, (६) **चतुर्दश भक्त**–छह दिन का उपवास, (७) **षोडश भक्त**–सात दिन का उपवास, (८) **अर्द्धमासिक भक्त**–आधे महीना या पन्द्रह दिन का उपवास, (९) **मासिक भक्त**–एक महीने का उपवास, (१०) **द्वैमासिक भक्त**–दो महीनों का उपवास, (११) **त्रैमासिक भक्त**–तीन महीनों का उपवास, (१२) **चातुर्मासिक भक्त**–चार महीनों का उपवास, (१३) **पाँचमासिक भक्त**–पाँच महीनों का उपवास, (१४) **षाण्मासिक भक्त**–छह महीनों का उपवास। यह इत्वरिक तप का विस्तार है।

(आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज के कथनानुसार भगवान आदिनाथ के शासन में इसकी मर्यादा नवकारसी से एक वर्ष पर्यन्त, शेष बावीस तीर्थंकरों के समय में अष्टमास पर्यन्त तथा भगवान महावीर के शासन में छह मास पर्यन्त अवधि थी।)

यावत्कथिक तप क्या है?

यावत्कथिक (आजीवन) तप दो प्रकार का है–(१) **पादपोपगमन**–कटे हुए वृक्ष की तरह शरीर को स्थिर रखते हुए जीवन–पर्यन्त आहार का त्याग, (२) **भक्तप्रत्याख्यान**–जीवन–पर्यन्त आहार का त्याग।

पादपोपगमन तप क्या है?

पादपोपगमन तप के दो भेद हैं–(१) **व्याघातिम**–व्याघातवत् या विघ्नयुक्त (सिंह आदि हिंसक प्राणी या दावानल आदि का उपद्रव हो जाने पर जीवनभर के लिए आहार–त्याग करना), (२) **निर्व्याघातिम**–निर्व्याघातवत्–(विघ्नरहित–किसी प्रकार का बाह्य उपद्रव न होने पर भी मृत्युकाल समीप जानकर अपनी इच्छा से जीवनभर के लिए आहार त्याग करना।)

पादपोपगमन (अनशन) में **प्रतिकर्म**–शरीर संस्कार, औषधोपचार हलन–चलन आदि क्रिया का त्याग रहता है। इस प्रकार पादपोपगमन यावत्कथिक अनशन होता है।

भक्तप्रत्याख्यान तप क्या है–कितने भेद हैं?

भक्तप्रत्याख्यान तप के दो भेद हैं–(१) व्याघातिम, (२) निर्व्याघातिम। इसमें प्रतिकर्म का त्याग नहीं होता।

यह भक्तप्रत्याख्यान अनशन का विवेचन है।

(1) ANASHAN TAP

30. (b) What is this *Anashan tap* ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Anshan tap or abstaining from food intake is of two types—(1) *Itvarik*—abstaining from food intake for a specific period of time or temporary fasting. (2) *Yavatkathit*—abstaining from food intake for whole life or lifelong fasting.

What is this *Itvarik tap* ?

Itvarik tap (temporary fasting) is of many types—(1) *Chaturth Bhakt*—giving up four meals or fasting for a day. (2) *Shasht Bhakt*—giving up six meals or fasting for two days. (3) *Ashtam Bhakt*—giving up eight meals or fasting for three days. (4) *Dasham Bhakt*—giving up ten meals or fasting for four days. (5) *Dvadash Bhakt*—giving up twelve meals or fasting for five days. (6) *Chaturdash Bhakt*—giving up fourteen meals or fasting for six days. (7) *Shodash Bhakt*—giving up sixteen meals or fasting for seven days. (8) *Ardhamasik Bhakt*—fasting for a fortnight. (9) *Masik Bhakt*—fasting for a month. (10) *Dvaimasik Bhakt*—fasting for two months. (11) *Traimasik Bhakt*—fasting for three months. (12) *Chaturmasik Bhakt*—fasting for four months. (13) *Panchamasik Bhakt*—fasting for five months. (14) *Shatamasik Bhakt*—fasting for six months. This concludes the description of *Itvarik tap* (temporary fasting).

(According to Acharya Shri Ghasilal ji M. the maximum duration of this was one year during the period of influence of Bhagavan Rishabhdeva, eight months during the period of influence of twenty two *Tirthankars* following him and six months during the period of influence of Bhagavan Mahavir.)

What is this *Yavatkathit* tap (lifelong fasting) ?

Yavatkathit tap (lifelong fasting) is of two types—(1) *Padapopagaman*—lifelong fasting keeping the body motionless like a fallen tree. (2) *Bhakt pratyakhyan*—lifelong fasting.

What is this *Padapopagaman tap* ?

Padapopagaman tap is of two types—(1) *Vyaghatim*—affliction based lifelong fasting. To abstain from food intake unto death and remain motionless in a tormenting situation like attack of a ferocious animal like lion or during a forest fire. (2) *Nirvyaghatim*—lifelong fasting in absence of any affliction.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Even in absence of a tormenting situation, to abstain from food intake unto death and remain motionless voluntarily when one realizes that death is imminent.)

In *Padapopagaman tap*, one also abstains from *pratikarm* or other activities including cleaning the body, undergoing treatment and medicine intake. This concludes the description of *Padapopagaman tap*.

What is this *Bhakt pratyakhyan tap* ?

Bhakt pratyakhyan tap is of two types—(1) *Vyaghatim*, (2) *Nirvyaghatim*. (details same as the preceding *tap*)

In this, one need not abstain from *pratikarm*. This concludes the description of *Bhakt pratyakhyan tap*. (The ascetic disciples of Bhagavan Mahavir observed the aforesaid austerities.)

(२) अवमोदरिका तप

३०. (ग) से किं तं ओमोयरियाओ ?

ओमोयरिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा–१. दव्वोमोयरिया य, २. भावोमोयरिया य।

से किं तं दव्वोमोयरिया ?

दव्वोमोयरिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा–१. उवगरणदव्वोमोयरिया य, २. भत्तापाणदव्वोमोयरिया य।

से किं तं उवगरणदव्वोमोयरिया ?

उवगरणदव्वोमोयरिया तिविहा पण्णत्ता। तं जहा–१. एगे वत्थे, २. एगे पाए, ३. चियत्तोवकरणसाइज्जणया, से तं उवगरणदव्वोमोयरिया।

से किं तं भत्तपाणदव्वोमोयरिया ?

भत्तपाणदव्वोमोयरिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा–

१. अट्ठकुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे अप्पाहारे,

२. दुवालस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे अवड्ढोमोयरिया,

३. सोलस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे दुभागपत्तोमोयरिया,

४. चउवीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे पत्तोमोयरिया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. एक्कतीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे किंचूणोमोयरिया,

६. बत्तीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे पमाणपत्ता,

७. एत्तो एगेण वि घासेणं ऊणयं आहारमाहारेमाणे समणे णिग्गंथे णो पकामरसभोइत्ति वत्तव्वं सिया। से तं भत्तपाणदव्वोमोयरिया, से तं दव्वोमोयरिया।

से किं तं भावोमोयरिया ?

भावोमोयरिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा–अप्पकोहे, अप्पमाणे, अप्पमाए, अप्पलोहे, अप्पसद्दे, अप्पझंझे। से तं भावोमोयरिया, से तं ओमोयरिया।

३०. (ग) अवमोदरिका तप क्या है?

अवमोदरिका तप के दो भेद हैं–(१) द्रव्य–अवमोदरिका, (२) भाव–अवमोदरिका।

द्रव्य–अवमोदरिका तप क्या है?

द्रव्य–अवमोदरिका तप के दो भेद हैं–(१) **उपकरण–द्रव्य–अवमोदरिका**–वस्त्र आदि शरीरोपयोगी पात्र, आसन सामग्री का कम उपयोग करना। (२) **भक्तपान–द्रव्य–अवमोदरिका**–खाद्य, पेय आदि पदार्थों का कम मात्रा में उपयोग करना, भूख से कम खाना।

उपकरण–द्रव्य–अवमोदरिका क्या है?

उपकरण–द्रव्य–अवमोदरिका के तीन भेद हैं–(१) एक वस्त्र रखना, (२) एक पात्र रखना, (३) उपकरण आदि में मूर्च्छा नहीं रखना। यह उपकरण–द्रव्य–अवमोदरिका तप है।

भक्तपान–द्रव्य–अवमोदरिका क्या है?

भक्तपान–द्रव्य–अवमोदरिका के अनेक भेद बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं–

(१) मुर्गी के अण्डे के जितना बड़ा एक ग्रास, वैसे केवल आठ ग्रास भोजन करना अल्पाहार–अवमोदरिका है।

(२) मुर्गी के अण्डे के परिमाण वाला बारह ग्रास भोजन करना अपार्ध–(अर्ध से कम) अवमोदरिका है।

(३) मुर्गी के अण्डे के परिमाण वाला सोलह ग्रास भोजन करना द्विभाग प्राप्त या अर्ध–अवमोदरिका है।

(४) मुर्गी के अण्डे के परिमाण वाला चौबीस ग्रास भोजन करना–चौथाई अवमोदरिका है।

(५) मुर्गी के अण्डे के परिमाण वाला इकतीस ग्रास भोजन करना किंचित् न्यून–(कुछ कम) अवमोदरिका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) मुर्गी के अण्डे के परिमाण वाला बत्तीस ग्रास भोजन करने वाला प्रमाण प्राप्त–पूर्ण आहार करने वाला है। अर्थात् बत्तीस ग्रास भोजन परिपूर्ण आहार है।

(७) इससे एक ग्रास भी कम आहार करने वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ अधिक आहार करने वाला नहीं है। वह प्रकामभोजी नहीं है। यह भक्तपान–द्रव्य–अवमोदरिका है। यह द्रव्य–अवमोदरिका है।

भाव–अवमोदरिका क्या तप है ?

भाव–अवमोदरिका अनेक प्रकार की है, जैसे–क्रोध, मान, माया और लोभ का अल्प अल्पतर करना, **अल्पशब्द**–क्रोध आदि के आवेश में होने वाली शब्द–प्रवृत्ति का वर्जन करना, **अल्पझंझ**–कलहोत्पादक वचन आदि का वर्जन करना। यह भाव–अमोदरिका तप है। यह अवमोदरिका तप है।

(2) AVAMODARIKA TAP

30. (c) What is this *Avamodarika tap* ?

Avamodarika tap (austerity of restriction) is of two kinds—(1) *Dravya Avamodarika* (physical restriction), (2) *Bhaava Avamodarika* (mental restriction).

What is this *Dravya avamodarika tap* ?

Dravya avamodarika tap is of two kinds—(1) *Upakaran dravya avamodarika* or restricted (minimum) use of ascetic equipment (dress, bowls, mattress etc.), (2) *Bhakt paan dravya avamodarika* or restricted (minimum) consumption of food items (to eat less than one's appetite).

What is this *Upakaran dravya avamodarika tap* ?

Upakaran dravya avamodarika tap is of three kinds—(1) To have one piece of cloth, (2) To have one bowl, (3) To have no attachment for any ascetic equipment. This concludes the description of *Upakaran dravaya avamodarika tap*.

What is this *Bhakt paan dravya avamodarika tap* ?

Bhakt paan dravya avamodarika tap is of many kinds—

(1) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking eight morsels of food is called *alpahar avamodarika*.

(2) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking twelve morsels of food is called *apardh* (less than half) *avamodarika*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(3) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking sixteen morsels of food is called *dvibhag* or *ardh* (half) *avamodarika*.

(4) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking twenty four morsels of food is called *chauthai* (quarter) *avamodarika*.

(5) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking thirty one morsels of food is called *kinchit nyun* (slightly less) *avamodarika*.

(6) Considering one morsel to be equivalent to a fowl's egg, taking thirty two morsels of food is called *praman prapt* (full standard meal).

(7) An ascetic taking even a single morsel less than this cannot be called a glutton. He is a restricted consumer of food. This concludes the description of *Bhakta paan dravya avamodarika tap*. This also concludes the *dravya avamodarika tap*.

What is this *Bhaava avamodarika tap* ?

Bhaava avamodarika tap is of many kinds—to gradually moderate passions like anger, conceit, deceit and greed, and expression of these feelings in words as well as causing disharmony through such expression. This concludes the description of *Bhaava avamodarika tap*. This also concludes the description of *Avamodarika tap*. (The ascetic disciples of Bhagavan Mahavir observed the aforesaid austerities.)

(३) भिक्षाचर्या तप

३०. (घ) से किं तं भिक्खायरिया ?

भिक्खायरिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—१. दव्वाभिग्गहचरए, २. खेत्ताभिग्गहचरए, ३. कालाभिग्गहचरए, ४. भावाभिग्गहचरए, ५. उक्खित्तचरए, ६. णिक्खित्तचरए, ७. उक्खित्त—णिक्खित्तचरए, ८. णिक्खित्त—उक्खित्तचरए, ९. वट्टिज्जमाणचरए, १०. साहरिज्जमाणचरए, ११. उवणीयचरए, १२. अवणीयचरए, १३. उवणीय—अवणीयचरए, १४. अवणीय—उवणीयचरए, १४. संसट्ठचरए, १६. असंसट्ठचरए, १७. तज्जायसंसट्ठचरए, १८. अण्णायचरए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. मोणचरए, २०. दिट्ठलाभिए, २१. अदिट्ठलाभिए, २२. पुट्ठलाभिए, २३. अपुट्ठलाभिए, २४. भिक्खालाभिए, २५. अभिक्खालाभिए, २६. अण्णगिलायए, २७. ओवणिहिए, २८. परिमियपिंडवाइए, २९. सुद्धेसणिए, ३०. संखादत्तिए।

से तं भिक्खायरिया।

३०. (घ) भिक्षाचर्या क्या है ?

भिक्षाचर्या अनेक प्रकार की है, जैसे–(१) **द्रव्याभिग्रह चर्या**–अमुक प्रकार की अमुक वस्तु अमुक स्थिति में मिले तो ग्रहण करना अन्यथा नहीं, ऐसा संकल्प करने वाला मुनि द्रव्याभिग्रहचरक होता है, (२) **क्षेत्राभिग्रह चर्या**–अमुक ग्राम, नगर, स्थान आदि में मिले तो लेना, ऐसी प्रतिज्ञा स्वीकार करना, (३) **कालाभिग्रह चर्या**–प्रथम पहर, दूसरा पहर आदि अमुक समय से सम्बन्धित प्रतिज्ञा स्वीकार करना, (४) **भावाभिग्रह चर्या**–हास, गान, विनोद आदि भावों में संलग्न दाता मिले तो लेना, अन्यथा नहीं, इस प्रकार का अभिग्रह करना, (५) **उत्क्षिप्त चर्या**–भोजन पकाने के बर्तन से गृहस्थ द्वारा अपने प्रयोजन हेतु निकाला हुआ आहार लेने का अभिग्रह, (६) **निक्षिप्त चर्या**–भोजन पकाने के बर्तन से नहीं निकाला हुआ आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करना, (७) **उत्क्षिप्त–निक्षिप्त चर्या**–भोजन पकाने के बर्तन से निकालकर उसी जगह या दूसरी जगह रखा हुआ आहार अथवा अपने प्रयोजन से निकाला हुआ या नहीं निकाला हुआ–दोनों प्रकार का आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (८) **निक्षिप्त–उत्क्षिप्त चर्या**–भोजन पकाने के बर्तन में से निकालकर अन्य स्थान पर रखा हुआ, फिर उसी में से दिया आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (९) **वर्तिष्यमाण चर्या**–खाने के लिए थाली में परोसे हुए भोजन में से मिलेगा तो लूँगा ऐसी प्रतिज्ञा, (१०) **संह्रियमाण चर्या**–दाता ने जो भोजन ठण्डा करने के लिए पात्र आदि में फैलाया हो, फिर समेटकर पात्र आदि में डाला हो, ऐसे (भोजन) में से आहार आदि लेने की प्रतिज्ञा, (११) **उपनीत चर्या**–दाता के लिए अन्य किसी के द्वारा उपहार रूप में भेजी गई भोजन–सामग्री में से भिक्षा मिलेगी तो लूँगा ऐसी प्रतिज्ञा, (१२) **अपनीत चर्या**–किसी को देने के लिए रखी खाद्य–सामग्री में से निकालकर अन्यत्र रखी सामग्री में से ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (१३) **उपनीतापनीत चर्या**–किसी ने दाता के लिए भोजन–सामग्री भेजी हो, उस उपहार में आयी सामग्री में से मिले तो आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा अथवा पहले जिसका गुणगान किया हो और फिर आलोचना करके लेना, (१४) **अपनीतोपनीत चर्या**–किसी के लिए उपहार रूप में भेजने हेतु पृथक् रखी हुई भोजन–सामग्री में से भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा अथवा पहले जिसकी आलोचना की हो और फिर गुणगान करके आहार ग्रहण करना, (१५) **संसृष्ट चर्या**–खाद्य वस्तु से लिप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ व कुड़छी आदि से दी जाने वाली भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा, (१६) **असंसृष्ट चर्या**–अलिप्त या स्वच्छ हाथ आदि से दी जाने वाली भिक्षा स्वीकार करने की प्रतिज्ञा, (१७) **तज्जातसंसृष्ट चर्या**–हाथ जिस वस्तु से संसृष्ट–भरा होगा वही वस्तु देगा तो लेने की प्रतिज्ञा, (१८) **अज्ञात चर्या**–अपने को अज्ञात–अपरिचित रखकर निरवद्य भिक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (१९) **मौन चर्या**–स्वयं मौन रहते हुए भिक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (२०) **दृष्ट लाभ**–जो भोजन सबसे पहले दिखाई दे या देखा हुआ आहार लेने की प्रतिज्ञा अथवा पूर्व काल में देखे हुए दाता के हाथ से भिक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (२१) **अदृष्ट लाभ**–पहले नहीं देखा, वस्त्र आदि से ढका होने के कारण, आहार, अथवा पूर्व काल में नहीं देखे हुए दाता द्वारा दिया जाता आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (२२) **पृष्ट लाभ**–"भिक्षो ! आपको क्या चाहिए?" यों पूछकर दिया जाने वाला आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (२३) **अपृष्ट लाभ**–दाता यदि नहीं कुछ पूछे तभी आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (२४) **भिक्षा लाभ**–भिक्षा में माँगा हुआ जैसा तुच्छ आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा अथवा दाता जो भिक्षा में माँगकर लाया हो, उसमें से या उस द्वारा तैयार किये भोजन में से आहार लेने की प्रतिज्ञा, (२५) **अभिक्षा लाभ**–दाता जो पदार्थ माँगकर नहीं लाया होगा, इसी में से देगा तो लेने की प्रतिज्ञा, (२६) **अन्नग्लायक**–रात का ठण्डा, बासी आहार लेने की प्रतिज्ञा, (२७) **उपनिहित**–भोजन करते हुए गृहस्थ के अपने पास रखे हुए आहार में से भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा, (२८) **परिमितपिण्डपातिक**–परिमित या सीमित–अल्प आहार अथवा एक ही घर में से आहार लेने की प्रतिज्ञा, (२९) **शुद्धैषणिक**–आधा कर्म व शंका आदि दोषों से वर्जित शुद्ध एषणीय आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा, (३०) **संख्यादत्तिक**–पात्र में आहार–क्षेपण की सांख्यिक (गणना) मर्यादा के अनुकूल कड़छी, कटोरी आदि से अविच्छिन्न धारा पात्र में जितनी गिर जायेगी उतनी ही भिक्षा स्वीकार करने की मर्यादा व प्रतिज्ञा।

उपरोक्त तीस भेद भिक्षाचर्या के हैं–यह भिक्षाचर्या तप का स्वरूप है।

(3) BHIKSHACHARYA TAP

30. (d) What is this *Bhikshacharya* ?

Bhikshacharya (code of alms-seeking) is of many types—**(1) Dravyabhigrah charya**—To resolve to accept alms only when a specific thing is available under some specific conditions. **(2) Kshetrabhigrah charya**—To resolve to accept alms only from a specific place like village, city or any other predetermined area. **(3) Kaalabhigrah charya**—To resolve to accept alms only at a specific time like first quarter of the day, second quarter of the day

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or any other predetermined time. **(4) Bhaavabhigrah charya**—To resolve to accept alms only if a donor displays a specific sentiment or activity such as mirth, singing, entertaining himself etc. **(5) Utkshipt charya**—To resolve to accept alms only from the portion the donor has taken out for himself from cooking pots. **(6) Nikshipt charya**—To resolve to accept alms only from the portion that has not been taken out from the cooking pots. **(7) Utkshipt-nikshipt charya**—This has two interpretations—(1) To resolve to accept alms only from the portion that has been transferred from the cooking pot to some other pot and is placed near or away from the cooking area. (2) To resolve to accept alms only from the portion taken out from the cooking pot irrespective of its being meant for the alms seeker or not. **(8) Nikshipt-utkshipt charya**—To resolve to accept alms only from the portion taken out from the cooking pot and placed at a different place. **(9) Vartishyaman charya**—To resolve to accept alms only from the portion already served in a plate for eating. **(10) Samhriyaman charya**—To resolve to accept alms only from the portion that the donor has put in a pot after cooling it by spreading in a bowl. **(11) Upaneet charya**—To resolve to accept alms only from the food a donor has received as gift from someone. **(12) Apaneet charya**—To resolve to accept alms only from the portion separated and kept away for gifting or donating to a person other than the seeker. **(13) Upaneetapaneet charya**—To resolve to accept alms only from the food which is *Upaneet* and *Apaneet* and also the food which is first extolled and then decried. **(14) Apaneetopaneet charya**—To resolve to accept alms only from the food which is *Apaneet* or *Upaneet* and also the food which is first decried and then extolled. **(15) Sansrisht charya**—To resolve to accept alms only if served with hands or spoons soiled with the food. **(16) Asansrisht charya**—To resolve to accept food only if served with clean hands or spoons unsoiled with the food. **(17) Tajjat sansrisht charya**—To resolve to accept food only if hands are soiled specifically with the dish being offered. **(18) Ajnat charya**—To resolve to accept food only if it is offered by a stranger and that too without revealing his identity. **(19) Mauna charya**—To resolve to accept food observing complete silence. **(20) Drisht laabh**—To resolve to accept food seen first of all

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or from the donor seen first of all. **(21) Adrisht laabh**—To resolve to accept food not seen earlier or from a donor never seen before. **(22) Prisht laabh**—To resolve to accept food only if addressed—"O ascetic ! What may I offer you ?" **(23) Aprisht laabh**—To resolve to accept food only if not so addressed. **(24) Bhiksha laabh**—To resolve to accept food only when it is so lowly as to be worthy of a beggar or that which the donor himself has collected as alms or cooked from collected alms. **(25) Abhiksha laabh**—To resolve to accept food only if it does not fall in the category of *Bhiksha laabh*. **(26) Annaglyayak**—To resolve to accept food only if it was cooked on the previous day. **(27) Upanihit**—To resolve to accept food only if it is placed near the donor who himself is eating. **(28) Parimit pindapatik**—To resolve to accept food only in limited quantity or from one house. **(29) Shuddhaishanik**—To resolve to accept food only if it is pure, free of all faults and acceptable according to the ascetic code. **(30) Samkhyadatik**—To resolve to accept food only in counted units such as one piece or one spoon or one unbroken pouring.

This concludes the description of *Bhikshacharya tap*. (The ascetic disciples of Bhagavan Mahavir observed the aforesaid austerities.)

(४) रस-परित्याग तप

३०. (ङ) से किं तं रसपरिच्चाए ?

रसपरिच्चाए अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा-१. निव्वीइए, २. पणीयरसपरिच्चाए, ३. आयंबिलिए, ४. आयामसित्थभोई, ५. अरसाहारे, ६. विरसाहारे, ७. अंताहारे, ८. पंताहारे, ९. लूहाहारे, से तं रसपरिच्चाए।

३०. (ङ) रस-परित्याग क्या है ?

रस-परित्याग अनेक प्रकार का है, जैसे-(१) **निर्विकृतिक**-घृत, तेल, दूध, दही, गुड़, शक्कर (चीनी) आदि छह विकृतियों से रहित आहार करना, (२) **प्रणीतरस-परित्याग**-जिससे घृत, दूध, चासनी आदि की बूँदें टपकती हों, ऐसे स्निग्ध विकारवर्धक आहार का त्याग करना, (३) **आयंबिल (आचामाम्ल)**-गेहूँ की रोटी, चावल, चना आदि एक ही प्रकार का रूखा-सूखा पदार्थ या भूना हुआ अन्न अचित्त पानी में भिगोकर दिन में एक ही बार खाना, (४) **आयामसिक्थभोजी**-ओसामन (धोवन) तथा उसमें रहे अन्न-कण, सीथ (अंश)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्र का अल्प आहार करना, (५) **अरसाहार**–रसरहित अथवा हींग, जीरा आदि से बिना छोंका हुआ आहार करना, (६) **विरसाहार**–बहुत पुराने अन्न से जो स्वभावतः रस या स्वादरहित हो गया हो, बना हुआ आहार करना, (७) **अन्ताहार**–अत्यन्त हल्की किस्म (जाति) के अन्न से बना हुआ आहार करना, (८) **प्रान्ताहार**–भोजन के लेने के बाद बर्तन में लगा बचा-खुचा आहार लेना (अथवा भोजन के बाद बचा भोजन), (९) **रूक्षाहार**–रूखा-सूखा सारहीन आहार करना।

यह रस-परित्याग तप का विस्तार है।

(4) RASA PARITYAG TAP

(e) What is this *Rasa parityag tap* ?

Rasa parityag tap (austerity of avoiding tasty food) is of many types—**(1) Nirvikritik**—To give up food containing butter, oil, milk, curd, jaggery and sugar. **(2) Pranitarasa parityag**—To give up food from which liquids (harmful fats and carbohydrates) like butter, oil, milk and syrup are dropping. **(3) Ayambil (achamamla)**—Eating once in a day, food cooked or baked with a single ingredient and even without any salt or other condiments. **(4) Ayamasikth bhoji**—To consume meager quantities of grain-wash and the few left over grains in it. **(5) Arasahar**—To eat tasteless and flavourless food. **(6) Virasahar**—To eat food prepared from very old, flat and fetid grains. **(7) Antahar**—To eat food prepared from cheap and low quality of grains. **(8) Prantahar**—To eat leftover or remnants of food or scrapings from cooking utensils. **(9) Rukshahar**—To eat dry and non-nutritious food.

This concludes the description of *Rasa parityag tap*. (The ascetic disciples of Bhagavan Mahavir observed the aforesaid austerities.)

(५) काय-क्लेश तप

३०. (च) से किं तं कायकिलेसे ?

कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. ठाणट्ठिइए, २. उक्कुडुयासणिए, ३. पडिमट्ठाई, ४. वीरासणिए, ५. नेसज्जिए, ६. आयावए, ७. अवाउडए, ८. अकंडुयए, ९. अणिट्ठूहए, १०. सव्वगायपरिकम्मविभूसविप्पमुक्के।

से तं कायकिलेसे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. (च) काय-क्लेश क्या है ?

काय-क्लेश अनेक प्रकार का है, जैसे-(१) **स्थानस्थितिक**-एक ही तरह से खड़े या एक ही आसन से बैठे रहना (कायोत्सर्ग करना), (२) **उत्कुटुकासनिक**-उकडू आसन से बैठना [इस आसन में दोनों चरणों के तलों को भूमि पर जमाया जाता है और बैठक (जंघाएँ-पुट्ठे) भूमि को स्पर्श भी करती हुई रहती हैं। साथ ही दोनों हाथों की अंजलि बाँधे रहना], (३) **प्रतिमास्थायी**-मासिक आदि बारह प्रतिमाएँ धारण करना, (४) **वीरासनिक**-वीरासन में स्थित रहना (पृथ्वी पर पैर टिकाकर सिंहासन के समान बैठने की स्थिति में रहना, उदाहरणार्थ-जैसे कोई पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ हो, उसके नीचे से सिंहासन निकाल लेने पर वह वैसी ही स्थिति में स्थिर रहे, वह वीरासन है), (५) **नैषधिक**-पुट्ठे टिकाकर या पलाथी लगाकर बैठना, (६) **आतापक**-सूर्य (धूप) आदि की आतापना लेना, (७) **अप्रावृतक**-देह को खुली रखना, (८) **अकण्डूयक**-खुजली चलने पर भी देह को नहीं खुजलाना, (९) **अनिष्ठीवक**-थूक आने पर भी नहीं थूकना, (१०) **सर्वगात्र-परिकर्म-विभूषा-विप्रमुक्त**-देह के सभी संस्कार, सज्जा, विभूषा आदि से मुक्त रहना।

यह काय-क्लेश तप का वर्णन है। (भगवान महावीर के श्रमण उक्त रूप में काय-क्लेश तप का अनुष्ठान करते थे।)

(5) KAYAKLESH TAP

30. (f) What is this *Kayaklesh tap* ?

Kayaklesh tap (mortification of body) is of many types—**(1) Sthanasthitik**—To remain in a fixed posture, sitting or standing (perform *kayotsarg*). **(2) Utkutukasanik**—To sit in *Utkutuk* posture (to squat with feet flat on the ground and keep both palms joined). **(3) Pratimasthayi**—To observe any of the twelve ascetic-*pratimas* including the monthly one. **(4) Virasanik**—To sit in *Vira* posture (half squatting as if sitting on a chair with feet flat on the ground and retaining the posture when the chair is removed). **(5) Naishadyik**—To sit cross-legged. **(6) Atapak**—To remain exposed to the sun or other sources of heat. **(7) Apravritak**—To remain unclad. **(8) Akanduyak**—To resolve not to scratch any part of the body when itching. **(9) Anishthivak**—To resolve not to spit. **(10) Sarvagatra-parikarm-vibhusha-vipramukt**—To resolve to refrain from any and all cosmetic care of the body (bath, dress, paint, perfume, embellish etc.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This concludes the description of *Kayaklesh tap*. (The ascetic disciples of Bhagavan Mahavir observed the aforesaid austerities.)

विवेचन–काय-क्लेश के अन्तर्गत किन्हीं प्रतियों में नैषधिक (नेसज्जिए) के पश्चात् दण्डायतिक (दंडायइए) तथा लकुटशायी (लउडसाई) पद और प्राप्त होते हैं। दण्डायतिक का अर्थ है–दण्ड की तरह सीधा लम्बा होकर खड़ा रहना। लकुटशायी का अर्थ है, लकुट–वक्र काष्ठ या टेढ़े लक्कड़ की तरह सोना, इस आसन में मस्तक को तथा दोनों पैरों की एड़ियों को जमीन पर टिकाकर, देह के मध्य भाग को ऊपर उठाकर सोया जाता है। ऐसा करने से देह वक्र काष्ठ की तरह टेढ़ी हो जाती है।

इस तप को 'काय-क्लेश' कहने का अभिप्राय यह लगता है कि दीखने में यह शरीर को कष्ट प्रतीत होता है, सामान्य व्यक्ति इसीलिए इन्हें कष्टकारी मानते हैं, परन्तु जो आत्मलक्षी दृष्टि रखता है, शरीर से भिन्न आत्मा के शुद्ध चैतन्य का दर्शन करता है, वह आत्म-संयम, इन्द्रिय-निग्रह तथा सहिष्णुता की वृद्धि के लिए इन सब उपायों को कष्टदायी नहीं मानता। वह तप के साथ किसी प्रकार के क्लेश की अनुभूति नहीं करता अपितु आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव करता है। यदि इन तपों में केवल दैहिक-कष्ट की भावना रहेगी तो ये योग की क्रिया मात्र रह जायेंगे, तप कोटि में नहीं आयेगा।

Elaboration—In some alternative texts under the heading of *Kayaklesh* after *Naishadyik* (5) we also find *Dandayaiye* (*Dandayatik*) and *Laudasaiye* (*Lakutashayi*). *Dandayaiye* (*Dandayatik*) means to remain standing ramrod straight. *Laudasaiye* (*Lakutashayi*) means to lie like a curved piece of wood. This posture is defined as—keep the body raised placing head and heals on the ground. This gives an appearance of curved piece of wood.

The reason for classifying this group of austerities as *Kayaklesh* (mortification of the body) appears to be that these austerities seem to be tortuous and painful to the body. It is so, indeed, for an ordinary person. But an aspirant who pursues the spiritual path and perceives the soul as pure consciousness separate from the body, considers these austerities to be the means of enhancing inner discipline, self control and endurance rather than painful. He does not feel any inconvenience in performing these austerities, on the contrary he experiences bliss. If these austerities are performed for the purpose of mortifying the body, they no longer remain austerities but just ritual yogic practices.

(६) प्रतिसंलीनता तप

३०. (छ) से किं तं पडिसंलीणया ?

पडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा–१. इंदियपडिसंलीणया, २. कसायपडिसंलीणया, ३. जोगपडिसंलीणया, ४. विवित्तसयणासणसेवणया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(i) से किं तं इंदियपडिसंलीणया ?

इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा–१. सोइंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, सोइंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा, २. चक्खिंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, चक्खिंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा, ३. घाणिंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, घाणिंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा, ४. जिब्भिंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, जिब्भिंदियविसयपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा, ५. फासिंदियविसयप्पयारनिरोहो वा, फासिंदियविसयप्पयारपत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा।

से तं इंदियपडिसंलीणया।

(ii) से किं तं कसायपडिसंलीणया ?

कसायपडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा–१. कोहस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं, २. माणस्सुदयनिरोहो वा उदयपत्तस्स वा माणस्स विफलीकरणं, ३. मायाउदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा मायाए विफलीकरणं, ४. लोहस्सुदयणिरोहो वा उदयपत्तस्स वा लोहस्स विफलीकरणं।

से तं कसायपडिसंलीणया।

(iii) से किं तं जोगपडिसंलीणया ?

जोगपडिसंलीणया तिविहा पण्णत्ता। तं जहा–१. मणजोगपडिसंलीणया, २. वयजोगपडिसंलीणया, ३. कायजोगपडिसंलीणया।

से किं तं मणजोगपडिसंलीणया ?

१. अकुसलमणणिरोहो वा, २. कुसलमणउदीरणं वा, से तं मणजोगपडिसंलीणया।

से किं तं वयजोगपडिसंलीणया ?

१. अकुसलवयणिरोहो वा, २. कुसलवयउदीरणं वा, से तं वयजोगपडिसंलीणया।

से किं तं कायजोगपडिसंलीणया ?

कायजोगपडिसंलीणया जं णं सुसमाहियपाणिपाए कुम्मो इव गुत्तिंदिए सव्वगायपडिसंलीणे चिट्ठइ।

से तं कायजोगपडिसंलीणया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

***(iv)* से किं तं विवित्तसयणासणसेवणया ?**

विवित्तसयणासणसेवणया जं णं आरामेसु, उज्जाणेसु, देवकुलेसु, सहासु, पवासु, पणियगिहेसु, पणियसालासु, इत्थी–पसु–पंडगसंसत्तविरहियासु बसहीसु फासुएसणिज्जं पीढ–फलग–सेज्जा–संथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

से तं पडिसंलीणया, से तं बाहिरए तवे।

३०. **(छ)** प्रतिसंलीनता तप क्या है?

(इन्द्रिय, कषाय आदि बाह्य भावों का त्याग कर आत्मा में लीन होना–प्रतिसंलीनता है।)

प्रतिसंलीनता चार प्रकार की है–(१) **इन्द्रिय– प्रतिसंलीनता**–इन्द्रियों की चेष्टाओं का निरोध या संयम, (२) **कषाय–प्रतिसंलीनता**–क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों या आवेगों का निरोध, (३) **योग–प्रतिसंलीनता**–कायिक, वाचिक तथा मानसिक प्रवृत्तियों का निग्रह, (४) **विविक्त–शयनासन–सेवनता**–एकान्त स्थान में निवास करना।

(i) इन्द्रिय–प्रतिसंलीनता क्या है–कितने प्रकार की है?

इन्द्रिय–प्रतिसंलीनता पाँच प्रकार की है–(१) **श्रोत्रेन्द्रिय–विषय–प्रचार–निरोध**–मन को तथा श्रोत्रेन्द्रिय को शब्द विषय में प्रवृत्ति करने से रोकना अथवा श्रोत्रेन्द्रिय को शब्द रूप में प्राप्त हुए–अप्रिय, अनुकूल–प्रतिकूल विषयों में राग–द्वेष नहीं करना, (२) **चक्षुरिन्द्रिय–विषय–प्रचार–निरोध**–नेत्रों के विषय–रूप में प्रवृत्ति को रोकना तथा प्रिय–अप्रिय, सुन्दर–असुन्दर रूपात्मक विषयों में राग–द्वेष का नहीं करना, (३) **घ्राणेन्द्रिय–विषय–प्रचार–निरोध**–नासिका के विषय–'गन्ध' में प्रवृत्ति को रोकना तथा राग–द्वेष को रोकना, (४) **जिह्वेन्द्रिय–विषय–प्रचार–निरोध**–जीभ के विषयों में प्रवृत्ति को रोकना अथवा स्वादु–अस्वादु रसात्मक विषयों, पदार्थों में राग–द्वेष नहीं करना, (५) **स्पर्शेन्द्रिय–विषय–प्रचार–निरोध**–त्वचा (स्पर्श) के विषय में प्रवृत्ति को रोकना अथवा स्पर्शेन्द्रिय को प्राप्त सुख–दुःखात्मक, अनुकूल–प्रतिकूल विषयों में राग–द्वेष से विरक्त रहना।

यह **इन्द्रिय–प्रतिसंलीनता** का विवेचन है।

(ii) कषाय–प्रतिसंलीनता क्या है?

कषाय–प्रतिसंलीनता चार प्रकार की कही है। वह इस प्रकार है–(१) **क्रोध के उदय का निरोध**–क्रोध को नहीं उठने देना, अथवा उदय–प्राप्त क्रोध को विफल–बनाना, (२) **मान के उदय का निरोध**–अहंकार को नहीं उठने देना अथवा उदय–प्राप्त अहंकार को विफल–निष्प्रभावी बनाना, (३) **माया के उदय का निरोध**–माया को उभार में नहीं आने देना अथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय–प्राप्त माया को विफल–प्रभावरहित बना देना, (४) **लोभ के उदय का निरोध**–लोभ को नहीं उभरने देना अथवा उदय–प्राप्त लोभ को निष्प्रभावी बना देना।

यह **कषाय–प्रतिसंलीनता** का विवेचन है।

(iii) योग–प्रतिसंलीनता क्या है ?

योग–प्रतिसंलीनता तीन प्रकार की है–(१) मनोयोग–प्रतिसंलीनता, (२) वाग्योग–प्रतिसंलीनता, (३) काययोग–प्रतिसंलीनता।

(१) मनोयोग–प्रतिसंलीनता क्या है ?

(क) अकुशल–अशुभ–मन का निरोध करना, तथा **(ख) कुशल–शुभ**–सद्विचारपूर्ण मन का प्रवर्तन करना मनोयोग–प्रतिसंलीनता है।

(२) वाग्योग–प्रतिसंलीनता क्या है ?

(क) अकुशल–अशुभ वचन योग का निरोध करना, दुर्वचन नहीं बोलना, तथा **(ख) कुशल वचन**–सद्वचन बोलने का अभ्यास करना वाग्योग–प्रतिसंलीनता है।

(३) काययोग–प्रतिसंलीनता क्या है ?

हाथ, पैर आदि को सुसमाहित–सुस्थिर कर, कछुए के समान अपनी इन्द्रियों को विषयों की प्रवृत्ति से गुप्त कर, सारे शरीर को संवृत्त कर–सुस्थिर होना काययोग–प्रतिसंलीनता है।

यह **योग–प्रतिसंलीनता** का विवेचन है।

(iv) विविक्त–शय्यासन–सेवनता क्या है ?

स्त्री–पुरुष–नपुंसकों से रहित स्थान, जैसे–**आराम**–(पुष्प–प्रधान बगीचा पुष्प–वाटिका), **उद्यान**–फूल–फल सहित बड़े–बड़े वृक्षों से युक्त बगीचा, **देवकुल**–देव–मन्दिर, छतरियाँ, **सभा**–लोगों के बैठने या विचार–विमर्श हेतु एकत्र होने का स्थान, **प्रपा**–जल पिलाने का स्थान, प्याऊ, **पणित–गृह**–बर्तन आदि क्रय–विक्रय की वस्तुएँ रखने के घर–गोदाम, **पणितशाला**–क्रय–विक्रय करने वाले लोगों के ठहरने योग्य स्थान, **वसति**–सामान्य गृहस्थ जनों के घरों में, **प्रासुक**–निर्जीव, अचित्त, **एषणीय**–संयमी पुरुषों द्वारा ग्रहण करने योग्य, निर्दोष **पीठ, फलक**–काष्ठपट्ट, **शय्या**–पैर फैलाकर सोया जा सके, ऐसा बिछौना, तृण, घास आदि का **संस्तारक**–कुछ छोटा बिछौना प्राप्त कर विचरना विविक्त–शय्यासन–सेवनता है।

यह प्रतिसंलीनता का विवेचन है, इसके साथ बाह्य तप का वर्णन पूर्ण होता है। (श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अनगार उपर्युक्त विविध प्रकार के बाह्य तप का अनुष्ठान करते थे।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

30. (g) What is this *Pratisamlinata tap* ?

Pratisamlinata tap (to restrain the extrovert attitudes related to senses, passions etc. and focus on the soul) is of four kinds—**(i) Indriya Pratisamlinata** or restraint of activities of sense organs. **(ii) Kashaya Pratisamlinata** or restraint of passions like anger, conceit, deceit and greed. **(iii) Yoga Pratisamlinata** or restraint over physical, vocal and mental activities. **(iv) Vivikta-shayanasan-sevanata** or to retire into solitude.

(i) What is this *Indriya Pratisamlinata* ?

Indriya Pratisamlinata (restraint of activities of sense organs) is of five types—**(1) Shrotrendriya-vishaya-prachar-nirodh**—To restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of hearing and to be equanimous towards the desirable and undesirable sounds and words received through the organ of hearing and their sources. **(2) Chakshurindriya-vishaya-prachar-nirodh**—To restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of seeing and to be equanimous towards the desirable and undesirable forms and colours received through the organ of seeing and their sources. **(3) Ghranendriya-vishaya-prachar-nirodh**—To restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of smelling and to be equanimous towards the desirable and undesirable smells received through the organ of smelling and their sources. **(4) Jihvendriya-vishaya-prachar-nirodh**—To restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of tasting and to be equanimous towards the desirable and undesirable tastes received through the organ of tasting and their sources. **(5) Sparshendriya-vishaya-prachar-nirodh**—To restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of touch and to be equanimous towards the desirable and undesirable touch received through the organ of touch and their sources.

This concludes the description of *Indriya Pratisamlinata* (restraint of activities of sense organs).

(ii) What is this *Kashaya Pratisamlinata* ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Kashaya Pratisamlinata (restraint of passions) is of four types—(1) To restrain the rise of the feeling of anger and to make already active anger ineffective. (2) To restrain the rise of the feeling of conceit and to make already active conceit ineffective. (3) To restrain the rise of the feeling of deceit and to make already active deceit ineffective. (4) To restrain the rise of the feeling of greed and to make already active greed ineffective.

This concludes the description of *Kashaya Pratisamlinata* (restraint of passions).

(iii) What is this *Yoga Pratisamlinata* ?

Yoga Pratisamlinata (restraint over physical, vocal and mental activities) is of three types—(1) *Manoyoga Pratisamlinata*, (2) *Vagyoga Pratisamlinata*, (3) *Kayayoga Pratisamlinata*.

(1) What is this *Manoyoga Pratisamlinata* ?

This includes (a) restraining evil thoughts, and (b) cultivating noble thoughts. This concludes the description of *Manoyoga Pratisamlinata* (restraint over mental activities).

(2) What is this *Vagyoga Pratisamlinata* ?

This includes (a) restraining use of abject words or speech, and (b) cultivating use of noble words or speech. This concludes the description of *Vagyoga Pratisamlinata* (restraint over vocal activities).

(3) What is this *Kayayoga Pratisamlinata* ?

This includes turning absolutely still by making the limbs completely motionless and, like a tortoise, withdrawing the sense organs from their respective activities.

This concludes the description of *Kayayoga Pratisamlinata* (restraint over physical activities).

(iv) What is this *Vivikta-shayanasan-sevanata* ?

Vivikta-shayanasan-sevanata is to retire into solitude as prescribed in the ascetic code. This includes places like *aram* or garden, *udyan* or orchard, *devakul* or temple, *sabha* or assembly hall, *prapa* or water-hut, *panit-griha* or store, *panit-shala* or business center and *vasati* or living quarters that are free from the presence of men, women, eunuchs and animals. This also includes

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

use of *prasuk* or lifeless, *eshaniya* or acceptable for ascetics, and faultless *peeth* or seat, *phalak* or wooden plank, *shayya* or bed and *samstarak* or smaller bed or cushion just enough to stretch legs.

This concludes the description of *Pratisamlinata*. This also concludes the description of *Vahya tap*.

(७) आभ्यन्तर तप

३०. (ज) से किं तं अब्भिंतरए तवे ?

अब्भिंतरए छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा-१. पायच्छित्तं, २. विणए, ३. वेयावच्चं, ४. सज्झाओ, ५. झाणं, ६. विउस्सग्गो।

३०. (ज) आभ्यन्तर तप क्या है-कितने प्रकार का है ?

आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा है-(१) **प्रायश्चित्त**-व्रत-पालन में लगे अतिचार या दोष की विशुद्धि, (२) **विनय**-विनम्र व्यवहार, (३) **वैयावृत्य**-संयमी पुरुषों की आहार आदि द्वारा सेवा, (४) **स्वाध्याय**-आत्मोपयोगी सत् शास्त्रों का पठन-पाठन, (५) **ध्यान**-एकाग्रतापूर्वक सत्-चिन्तन, चित्तवृत्तियों का निरोध, तथा (६) **व्युत्सर्ग**-हेय या त्यागने योग्य पदार्थों का त्याग।

(7) INNER AUSTERITIES

30. (h) What is this *Abhyantar tap* ?

Abhyantar tap (inner austerities) is of six types— **(1) Prayashchit**—Atonement for the faults and transgressions committed during observing vows. **(2) Vinaya**—Modesty. **(3) Vaiyavritya**—To offer food and other services to fellow ascetics and seniors. **(4) Svadhyaya**—Study and teaching of spiritual scriptures. **(5) Dhyan**—Meditation, concentration, and restraint of feelings and attitudes. **(6) Vyutsarg**—To renounce evil and mundane things.

(१) प्रायश्चित्त तप

३०. (झ) से कि तं पायच्छित्ते ?

पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते। तं जहा-१. आलोयणारिहे, २. पडिक्कमणारिहे, ३. तदुभयारिहे, ४. विवेगारिहे, ५. विउस्सग्गारिहे, ६. तवारिहे, ७. छेदारिहे, ८. मूलारिहे, ९. अणवट्ठप्पारिहे, १०. पारंचियारिहे, से णं पायच्छित्ते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. (झ) प्रायश्चित्त तप क्या है–कितने प्रकार का है ?

प्रायश्चित्त तप (कर्मों से मलिन चित्त–चैतन्य रूप आत्मा का शोधन करने की स्वतः प्रेरित प्रक्रिया प्रायश्चित्त है) दस प्रकार का कहा है, जो इस प्रकार है–(१) **आलोचनार्ह–** आलोचन योग्य–दोष को प्रकट करने मात्र से होने वाला प्रायश्चित्त। (गमन, आगमन, भिक्षा, प्रतिलेखन आदि दैनिक कार्यों में लगने वाले दोषों को गुरु या ज्येष्ठ साधु के समक्ष प्रकट करने, उनकी आलोचना करने से दोष–शुद्धि हो जाती है।) (२) **प्रतिक्रमणार्ह–**पाप या अशुभ योग में प्रवृत्त आत्मा को उनसे पीछे लौटाने वाला प्रायश्चित्त। (पाँच समिति तथा तीन गुप्ति के पालन में अकस्मात् या अनुपयोग से लगने वाले दोषों को लेकर **'मिच्छामि दुक्कडं'**–मेरा दुष्कृत या पाप मिथ्या हो–निष्फल हो, यों चिन्तनपूर्वक प्रायश्चित्त करने से दोष–शुद्धि हो जाती है।) (३) **तदुभयार्ह–**जिसमें आलोचना तथा प्रतिक्रमण–दोनों की अपेक्षा रहती हो। (४) **विवेकार्ह–**(साधु यदि अज्ञानवश सदोष आहार आदि ले ले तथा फिर उसे पता चल जाये, तब उसे अपने उपयोग में न लेकर) विवेक करके त्याग देने से यह प्रायश्चित्त होता है। (५) **व्युत्सर्गार्ह–**कायोत्सर्ग द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त। (नदी पार करने में, उच्चार–मल, मूत्र आदि परठने में लगने वाले दोषों की शुद्धि के लिए यह प्रायश्चित्त है।) (६) **तपोऽर्ह–**तप द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त। (सचित्त वस्तु को छूने, आवश्यक आदि समाचारी, प्रतिलेखन, प्रमार्जन आदि नहीं करने से लगने वाले दोषों की शुद्धि के लिए यह प्रायश्चित्त है। यह नवकारसी से लेकर छह मास तक का होता है।) (७) **छेदार्ह–**दीक्षा–पर्याय कम कर देने से होने वाला प्रायश्चित्त। (सचित्त–विराधना, प्रतिक्रमण नहीं करना आदि कारणों से लगने वाले दोषों की शुद्धि के लिए यह प्रायश्चित्त है। इसमें पाँच दिन से लेकर छह मास तक के दीक्षा–पर्याय का छेदन करने का विधान है।) (८) **मूलार्ह–**पुनः दीक्षा देने से होने वाला प्रायश्चित्त। (अनाचार–सेवन, चारित्र–भंग तथा जानबूझकर महाव्रत–खण्डन से लगने वाले दोषों की शुद्धि के लिए यह प्रायश्चित्त है।) (९) **अनवस्थाप्यार्ह–**प्रायश्चित्त के रूप में दिया गया विशिष्ट तप, जब तक न कर लिया जाये, तब तक उस साधु को संघ से अवस्थापित करना–सम्बन्ध–विच्छेद रखना तथा उसे पुनः दीक्षा नहीं देना, यह अनवस्थाप्यार्ह प्रायश्चित्त है। (साधर्मिक साधु–साध्वियों की चोरी करना, अन्यतीर्थिक की चोरी करना, गृहस्थ की चोरी करना, परस्पर मारपीट करना आदि से साधु को यह प्रायश्चित्त आता है।) (१०) **पाराञ्चिकार्ह–**तप के द्वारा अपने कृत पापों से पार पहुँचने की भावना से किया जाने वाला प्रायश्चित्त। (इसमें संघ से सम्बन्ध विच्छिन्न कर, तप–विशेष का अनुष्ठान कराकर गृहस्थभूत बनाकर, पुनः व्रतों में स्थापित करने का विधान है। कषाय–दुष्ट, विषय–दुष्ट, महाप्रमादी–मद्यपायी, स्त्यानर्द्धि निद्रा में प्रमादपूर्ण कर्म करने वाले तथा समलैंगिक विषयसेवी को यह प्रायश्चित्त आता है। विशेष वर्णन के लिए देखें–बृहत्कल्प, उद्देशक ४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

30. (i) What is this *Prayashchit tap* ?

Prayashchit tap (the conscious activity of purifying the soul tarnished with *karmic* filth in order to regain its pristine form through atonement for the faults and transgressions committed) is of ten types—(1) **Alochanarh**—The atonement made simply by revealing a censurable fault. (Simple transgressions in daily ascetic routine, such as movement and alms collection, are atoned simply by revealing them before the guru or a senior ascetic and repenting for them.) **(2) Pratikramanarh**—The atonement required for withdrawing the soul involved in sinful and evil activities. (Faults committed accidentally or due to negligence during observance of five restraints and three regulations are atoned by critical review accompanied by an earnest desire—*"michchami dukkadam"* or "may my improper actions be without consequence or may my faults be undone.") **(3) Tadubhayarh**—A combination of the aforesaid two or the atonement where both repenting and critical review are required. **(4) Vivekarh**—The atonement by abandoning a thing or activity with discerning attitude. (For example if a monk collects faulty alms due to negligence or ignorance but becomes aware of the mistake later, he should atone by not using and rejecting those things.) **(5) Vyutsargarh**—The atonement done by *kayotsarg* (dissociating mind from the body). (This is generally prescribed for faults committed while crossing a river and disposing excreta and other things.) **(6) Tapoarh**—The atonement done through austerities. (This is generally prescribed for faults such as touching *sachit* or living things and negligence in performing regular duties including the essential duties, inspection and cleaning of ascetic equipment etc. Its duration can be from *a navakarsi* or forty eight minutes period to six months.) **(7) Chhedarh**—The atonement done by curtailing some period from ascetic-state. (This atonement is prescribed for faults such as harming living beings, not doing *pratikraman* etc. It is done by banishing the defaulter from the ascetic order for a specific period ranging from five days to six months.) **(8) Mularh**—The atonement done by re-initiation. (This atonement is prescribed for those who indulge in evil activities,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

commit gross transgression of ascetic conduct and willingly break the great vows.) **(9) Anavasthapyarh**—The atonement that includes banishment of the defaulter from the ascetic order and not re-initiating him as long as he does not successfully perform the specified austerities prescribed for atonement. (This atonement is prescribed for those who steal things belonging to co-religionist or other ascetics or even householders and who fight among each other.) **(10) Paranchikarh**—The atonement done with an earnest desire to rise above one's sinful doings with the help of austerities. (This involves banishing from the order, performing the prescribed austerities as a householder, and retaking the vows. This atonement is prescribed for an ascetic with intense passions; who is an evil doer, extremely torpid and alcoholic; and who indulges in sinful deeds including sodomy in his state of stupor. For more details consult *Brihatkalp*, 4)

विवेचन—आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज ने टीका में अनवस्थाप्यार्ह प्रायश्चित्त के दो भेदों का उल्लेख किया है–

(क) **आशातनाऽनवस्थाप्य**—जो तीर्थंकर, संघ, श्रुत, आचार्य, उपाध्याय, गणधर एवं लब्धिधारियों की आशातना करता है, उसे उस दोष की विशुद्धि हेतु यह नवम् प्रायश्चित्त दिया जाता है। इसमें जघन्य छह मास तथा उत्कृष्ट एक वर्ष तक तप कराया जाता है।

(ख) **प्रतिसेवनाऽनवस्थाप्यार्ह**—जो स्वधर्मी तथा अन्य धर्मी की चोरी करता है, क्रूरतापूर्वक मारपीट करता है, उसे प्रतिसेवनाऽनवस्थाप्यार्ह प्रायश्चित्त आता है। यह प्रायश्चित्त जघन्य एक वर्ष तथा उत्कृष्ट बारह वर्ष का होता है। पारांचिकार्ह तप के भी नवम् प्रायश्चित्त की तरह आशातना पारांचिकार्ह तथा प्रतिसेवना पारांचिकार्ह ये दो भेद हैं। विस्तृत विवरण के लिए देखें–आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज कृत पीयूषवर्षिणी टीका, पृष्ठ २४२–२५६)

Elaboration—In his commentary (*Tika*) Acharya Shri Ghasilal ji M. has mentioned two types of *Anavasthapyarh* atonement—

(a) Ashatanaanavasthapya—This atonement is prescribed for the fault of committing acts of disrespect to *Tirthankar, Sangh* (religious organization), scriptures, *Acharya* (head of the order), *Upadhyaya* (teacher of scriptures), *Ganadhar* (chief disciple of a *Tirthankar*) and ascetics endowed with special powers. Its duration is minimum six months and maximum one year.

(b) Pratisevanaanavasthapyarh—This atonement is prescribed for those who indulge in theft and fierce fighting. Its duration is minimum

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

one year and maximum twelve years. The *Paranchikarh* atonement too has these two sub-categories. For more details consult *Piyushavarshini Tika* by Acharya Shri Ghasilal ji M., pp 242-256)

(२) विनय तप

३०. (अ) से किं तं विणए ?

विणए सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. णाणविणए, २. दंसणविणए, ३. चरित्तविणए, ४. मणविणए, ५. वइविणए, ६. कायविणए, ७. लोगोवयारविणए।

(i) से किं तं णाणविणए ?

णाणविणए पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. आभिणिबोहियणाणविणए, २. सुयणाणविणए, ३. ओहिणाणविणए, ४. मणपज्जवणाणविणए, ५. केवलणाणविणए।

(ii) से किं तं दंसणविणए ?

दंसणविणए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. सुस्सूसणाविणए, २. अणच्चासायणाविणए।

से किं तं सुस्सूसणाविणए ?

सुस्सूसणाविणए अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. अब्भुट्ठाणे इ वा, २. आसणाभिग्गहे इ वा, ३. आसणप्पदाणे इ वा, ४. सक्कारे इ वा, ५. सम्माणे इ वा, ६. किइकम्मे इ वा, ७. अंजलिप्पग्गहे इ वा, ८. एतंस्स अणुगच्छणया, ९. ठियस्स पज्जुवासणया, १०. गच्छंतस्स पडिसंसाहणया, से तं सुस्सूसणाविणए।

से किं तं अणच्चासायणाविणए ?

अणच्चासायणाविणए पणयालीसविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. अरहंताणं अणच्चासायणया, २. अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अणच्चासायणया, ३. आयरियाणं अणच्चा सायणया एवं ४. उवज्झायाणं, ५. थेराणं, ६. कुलस्स, ७. गणस्स, ८. संघस्स, ९. किरियाणं, १०. संभोगस्स, ११. आभिणिबोहियणाणस्स, १२. सुयणाणस्स, १३. ओहिणाणस्स, १४. मणपज्जवणाणस्स, १५. केवलणाणस्स, १६–३०. एएसिं चेव भत्तिबहुमाणे, ३१–४५, एएसिं चेव वण्णसंजलणया, से तं अणच्चासायणाविणए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(*iii*) से किं तं चरित्तविणए ?

चरित्तविणए पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. सामाइयचरित्तविणए, २. छेदोवट्ठावणियचरित्तविणए, ३. परिहारविसुद्धिचरित्तविणए, ४. सुहुमसंपरायचरित्तविणए, ५. अहक्खाय–चरित्तविणए, से तं चरित्तविणए।

(*iv*) से किं तं मणविणए ?

मणविणए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. पसत्थमणविणए, २. अपसत्थमणविणए।

से किं तं अपसत्थमणविणए ?

अपसत्थमणविणए जे य मणे १. सावज्जे, २. सकिरिए, ३. सकक्कसे, ४. कडुए, ५. णिट्ठुरे, ६. फरुसे, ७. अण्हयकरे, ८. छेयकरे, ९. भेयकरे, १०. परितावणकरे, ११. उद्दवणकरे, १२. भूओवघाइए, तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा, से तं अपसत्थमणोविणए।

से किं तं पसत्थमणोविणए ?

पसत्थमणोविणए तं चेव पसत्थं णेयव्वं।

एवं चेव वइविणओवि एएहिं पएहिं चेव णेयव्वो, से तं वइविणए।

(*v*) से किं तं कायविणए ?

कायविणए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. पसत्थकायविणए, २. अपसत्थकायविणए।

से किं तं अपसत्थकायविणए ?

अपसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. अणाउत्तं गमणे, २. अणाउत्तं ठाणे, ३. अणाउत्तं निसीदणे, ४. अणाउत्तं तुयट्टणे, ५. अणाउत्तं उल्लंघणे, ६. अणाउत्तं पलंघणे, ७. अणाउत्तं सव्विंदिय–कायजोगजुंजणया, से तं अपसत्थकायविणए।

(*vi*) से किं तं पसत्थकायविणए ?

पसत्थकायविणए एवं चेव पसत्थं भाणियव्वं। से तं पसत्थ कायविणए, से तं कायविणए।

(*vii*) से किं तं लोगोवयारविणए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. अब्भासवत्तियं, २. परच्छंदाणुवत्तियं, ३. कज्जहेउं, ४. कयपडिकिरिया, ५. अत्तगवेसणया, ६. देसकालण्णुया, ७. सव्वट्ठेसु अप्पडिलोमया।

से तं लोगोवयारविणए, से तं विणए।

३०. (ञ) विनय तप क्या है?

(जो आत्मा पर लगे कर्मों को दूर-विनयन करता है, वह विनय गुरु आदि का सत्कार, वन्दना, शुश्रूषा भक्ति के रूप में अनेकविध है।) विनय सात प्रकार का कहा है– (१) ज्ञानविनय, (२) दर्शनविनय, (३) चारित्रविनय, (४) मनोविनय, (५) वचनविनय, (६) कायविनय, (७) लोकोपचारविनय।

(i) ज्ञानविनय क्या है?

(जिसमें ज्ञान का सत्कार व बहुमान किया जाता है) वह ज्ञानविनय पाँच प्रकार का है– (क) आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान) विनय, (ख) श्रुतज्ञानविनय, (ग) अवधिज्ञानविनय, (घ) मनःपर्यवज्ञानविनय, (ङ) केवलज्ञानविनय। इन ज्ञानों की यथार्थता स्वीकार करते हुए इनके लिए विनीत भाव से यथाशक्ति पुरुषार्थ या प्रयत्न करना।

(ii) दर्शनविनय क्या है?

दर्शनविनय दो प्रकार का है–(क) शुश्रूषाविनय, (ख) अनत्याशातनाविनय।

(क) शुश्रूषा विनय क्या है?

(गुरु आदि के समीप रहकर विधिपूर्वक सेवा करना) शुश्रूषाविनय के अनेक प्रकार हैं, जो इस प्रकार हैं–(१) **अभ्युत्थान**–गुरुजनों या गुणीजनों के आने पर उन्हें आदर देने हेतु खड़े होना, (२) **आसनाभिग्रह**–गुरुजन जहाँ बैठना चाहें वहाँ आसन लेकर उपस्थित रहना, (३) **आसन–प्रदान**–गुरुजनों को आने पर बैठने के लिए आसन देना, (४) गुरुजनों का सत्कार करना, (५) सम्मान करना, (६) **(कृतिकर्म)** यथाविधि वन्दन–प्रणमन करना, (७) कोई बात स्वीकार या अस्वीकार करते समय हाथ जोड़ना, (८) आते हुए गुरुजनों के सामने जाकर सम्मान करना, (९) बैठे हुए गुरुजनों के समीप बैठना, उनकी सेवा करना, (१०) जाते हुए गुरुजनों को पहुँचाने जाना। यह **शुश्रूषाविनय** है।

(ख) अनत्याशातनाविनय क्या है?

(आत्म–गुणों का नाश करने वाले अवहेलनापूर्ण कार्य नहीं करना) अनत्याशातन अनत्यनाविनय के पैंतालीस भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–(१) अर्हतों की आशातना (अवहेलना–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवज्ञा) नहीं करना, (२) अर्हत्-प्रज्ञप्त-धर्म की आशातना नहीं करना, (३) आचार्यों की आशातना नहीं करना, (४) उपाध्यायों की आशातना नहीं करना, (५) स्थविरों-ज्ञानवृद्ध, चारित्रवृद्ध, वयोवृद्ध श्रमणों की आशातना नहीं करना, (६) कुल की आशातना नहीं करना, (७) गण की आशातना नहीं करना, (८) संघ की आशातना नहीं करना, (९) क्रियावान की आशातना नहीं करना, (१०) सांभोगिक-जिसके साथ वन्दन, नमन, भोजन आदि पारस्परिक व्यवहार हों, उस गच्छ के श्रमण या समान आचार वाले श्रमण की आशातना नहीं करना, (११) मतिज्ञान की आशातना नहीं करना, (१२) श्रुतज्ञान की आशातना नहीं करना, (१३) अवधिज्ञान की आशातना नहीं करना, (१४) मनःपर्यवज्ञान की आशातना नहीं करना, (१५) केवलज्ञान की आशातना नहीं करना, (१६-३०) इन पन्द्रह की भक्ति, उपासना, बहुमान करना, (३१-४५) गुणों के प्रति तीव्र भावानुरागरूप पन्द्रह भेद तथा इन पन्द्रह की यश, प्रशस्ति एवं गुणकीर्तन करना। ये पन्द्रह भेद-इस प्रकार अनत्याशातनाविनय के कुल पैंतालीस भेद होते हैं।

(iii) चारित्रविनय का स्वरूप क्या है?

चारित्रविनय पाँच प्रकार का है-(क) सामायिकचारित्रविनय, (ख) छेदोपस्थापनीय-चारित्रविनय, (ग) परिहारविशुद्धि-चारित्रविनय, (घ) सूक्ष्मसंपरायचारित्रविनय, (ङ) यथाख्यातचारित्रविनय। यह चारित्रविनय है। (पाँच चारित्र के विशद् वर्णन हेतु सचित्र अनुयोगद्वारसूत्र, भाग २, सूत्र ४७२, पृष्ठ ३०७ से ३१५ देखें।)

(iv) मनोविनय का स्वरूप क्या है?

मनोविनय दो प्रकार का है-(क) प्रशस्त मनोविनय, (ख) अप्रशस्त मनोविनय।

अप्रशस्त मनोविनय क्या है?

जो मन (१) **सावद्य**-पापकर्मयुक्त, (२) **सक्रिय**-प्राणातिपात आदि आरम्भ क्रिया सहित, (३) **कर्कश**-कठोर, प्रेमभावरहित, (४) **कटुक**-उद्वेजक-अपने लिए तथा औरों के लिए पीड़ाकारी, (५) **निष्ठुर**-दयारहित, (६) **परुष**-स्नेहरहित, (७) **आस्रवकर**-अशुभ कर्म और उपार्जन करने वाला है, (८) **छेदकर**-किसी के अंगों को काट देने, दुर्भाव रखने वाला, (९) **भेदकर**-नासिका आदि अंग काट डालने का मलिन भाव रखने वाला, असमाधि उत्पन्न करने वाला, (१०) **परितापनकर**-प्राणियों को संताप उत्पन्न करने के भाव रखने वाला, (११) **उपद्रवणकर**-मारणान्तिक कष्ट देने अथवा धन-सम्पत्ति हर लेने का बुरा विचार रखने वाला, (१२) **भूतोपघातिक**-जीवों का घात करने का दुर्भाव रखने वाला होता है, वह अप्रशस्त मन है। मन की वैसी स्थिति अप्रशस्त मनोविनय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्त मनोविनय किसे कहते हैं ?

जैसे अप्रशस्त मनोविनय का वर्णन किया है, उसी के आधार पर प्रशस्त मनोविनय का स्वरूप समझना चाहिए। अप्रशस्त मन से विपरीत प्रशस्त मन होता है।

(v) वचनविनय को भी इन्हीं पदों से समझना चाहिए। अर्थात् अप्रशस्त वचनविनय तथा प्रशस्त वचनविनय के रूप में वचनविनय दो प्रकार का है। अप्रशस्त मन तथा प्रशस्त मन के जो विशेषण हैं, वे ही क्रमशः अप्रशस्त वचन तथा प्रशस्त वचन के साथ जोड़ देने चाहिए। यह वचनविनय का वर्णन है।

(vi) कायविनय का स्वरूप क्या है ?

कायविनय दो प्रकार का है-(क) प्रशस्त कायविनय, (ख) अप्रशस्त कायविनय।

अप्रशस्त कायविनय का स्वरूप क्या है ?

अप्रशस्त कायविनय के सात भेद इस प्रकार कहे हैं-(१) **अनायुक्तगमन**-जागरूकता या सावधानी के बिना चलना, (२) **अनायुक्त स्थान**-उपयोग बिना स्थित होना-ठहरना, खड़ा होना, (३) **अनायुक्त निषीदन**-बिना उपयोग बैठना, (४) **अनायुक्त त्वग्वर्तन**-बिना उपयोग बिछौने पर करवट आदि बदलना, (५) **अनायुक्त उल्लंघन**-बिना उपयोग कीचड़ आदि लाँघना, (६) **अनायुक्त प्रोल्लंघन**-बिना उपयोग बार-बार लाँघना, (७) **अनायुक्त सर्वेन्द्रियकाययोग-योजनता**-बिना उपयोग समस्त इन्द्रियों तथा काययोग की प्रवृत्ति करना। यह अप्रशस्त कायविनय है।

प्रशस्त कायविनय क्या है ?

प्रशस्त कायविनय का स्वरूप अप्रशस्त कायविनय की तरह समझ लेना चाहिए। अर्थात् अप्रशस्त कायविनय में अनुपयुक्त अवस्था में होने वाली काययोग की क्रियाएँ रोकी जाती हैं तथा प्रशस्त कायविनय में शरीर सम्बन्धी सभी क्रियाएँ उपयोगपूर्वक की जाती हैं। यह प्रशस्त कायविनय है। इस प्रकार यह कायविनय का वर्णन है।

(vii) लोकोपचारविनय में लोकोपचार का विनय का स्वरूप क्या है ?

(लोक-व्यवहार का साधन) लोकोपचारविनय सात प्रकार का है, जैसे-(१) **अभ्यासवर्तिता**-गुरुजनों व सत्पुरुषों के समीप स्थिर होकर बैठना, (२) **परच्छन्दानुवर्तिता**-गुरुजनों आदि के इच्छानुरूप प्रवृत्ति करना, (३) **कार्य हेतु**-विद्या आदि प्राप्त करने हेतु अथवा जिनसे विद्या प्राप्त की, उनकी सेवा-परिचर्या करना, (४) **कृत**-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रिया–अपने प्रति किसी ने उपकार किया हो तो उन उपकारों के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हुए उपयुक्त व्यवहार व सेवा करना, (५) **आर्त्त–गवेषणता**–रोग, वृद्धावस्था आदि से पीड़ित संयत जनों व गुरुजनों की औषधि, पथ्य आदि द्वारा सेवा–शुश्रूषा करना, (६) **देशकालज्ञता**–देश तथा समय को ध्यान में रखते हुए अनुकूल आचरण करना, (७) **सर्वार्थाऽप्रतिलोमता**–सभी कार्यों में विपरीत आचरण न करना, अर्थात् अनुकूल आचरण करना।

यह लोकोपचारविनय है। इस प्रकार यह विनय का स्वरूप बताया है।

(2) VINAYA TAP

30. (j) What is this *Vinaya tap* ?

Vinaya tap (to cleanse the soul of the *karmic* filth through modesty in behaviour including acts of offering respect, homage, devotion, services etc.) is of seven types—(i) *Jnana vinaya* (modesty of knowledge), (ii) *Darshan vinaya* (modesty of perception/faith), (iii) *Charitra vinaya* (modesty of conduct), (iv) *Mano vinaya* (modesty of mind), (v) *Vachan vinaya* (modesty of speech), (vi) *Kaya vinaya* (modesty of body), (vii) *Lokopachar vinaya* (modesty of social behaviour).

(i) What is this *Jnana vinaya* ?

Jnana vinaya (modesty of knowledge including displaying respect and honour for knowledge) is of five types—(a) *Abhinibodhik (mati)-jnana vinaya*, (b) *Shrut-jnana vinaya*, (c) *Avadhi-jnana vinaya*, (d) *Manahparyava-jnana vinaya*, and (e) *Kevala-jnana vinaya*. To accept the reality of these kinds of knowledge and to endeavour to acquire them with all modesty is *jnana vinaya*.

(ii) What is this *Darshan vinaya* ?

Darshan vinaya (modesty of perception/faith) is of two types—(a) *Sushrusha vinaya* (modesty of service), (b) *Anatyashatana vinaya* (avoiding disrespect).

(a) What is this *Sushrusha vinaya* ?

Sushrusha vinaya (modesty of service or to be near seniors and to serve them with all humility following the code) is of many

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

types—(1) To stand up to show respect to elders and masters when they arrive (*abhyutthan*). (2) To carry cushion or mattress for elders to sit on (*asanabhigrah*). (3) To provide seat to elders when and where they want to sit (*asan-pradan*). Also included in this are—(4) to show them respect (*satkar*), (5) to honour them (*samman*), (6) to offer them homage and obeisance in prescribed manner (*kritikarma*), (7) to join palms at the time of agreeing or disagreeing with them, (8) to step ahead to receive them when they arrive, (9) To sit near them while they are sitting and to extend all services to them, (10) to see them off respectfully by accompanying them some distance. This concludes the description of *Sushrusha vinaya*.

(b) What is this *Anatyashatana vinaya* ?

Anatyashatana vinaya (avoiding disrespect and all other deeds that are detrimental in any way to spirituality) is of forty five types—avoiding negligence and disrespect to (1) *Arhats*, (2) Religion propounded by *Arhats*, (3) *Acharyas*, (4) *Upadhyayas*, (5) *Sthavirs* or ascetics senior in terms of knowledge, initiation and age, (6) *Kula* (ascetic family), (7) *Gana* (ascetic group), (8) *Sangh* (religious organization), (9) *Kriyavan* (ascetics immaculately following the code), (10) *Sambhogik* (ascetics of the same group or those following the same codes), (11) *Mati-jnana*, (12) *Shrut-jnana*, (13) *Avadhi-jnana*, (14) *Manahparyava-jnana*, and (15) *Kevala-jnana*. (16-30) To have devotion for and to worship with profound sincerity the aforesaid fifteen. (31-45) To praise and sing panegyrics for the aforesaid fifteen. This concludes the description of *Anatyashatana vinaya*.

(iii) What is this *Charitra vinaya* ?

Charitra vinaya (modesty of conduct) is of five types—(a) *Samayik charitra vinaya*, (b) *Chhedopasthapaniya charitra vinaya*, (c) *Pariharavishuddhi charitra vinaya*, (d) *Sukshmasamparaya charitra vinaya*, and (e) *Ythakhyat charitra vinaya*. This concludes the description of *Charitra vinaya*. (For full details of the five *Charitras* consult *Illustrated Anuyogadvar Sutra*, Part II, aphorism 472, pp. 307-315.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(iv) What is this *Mano vinaya* ?

Mano vinaya (modesty of mind) is of two types—(a) *Prashast mano vinaya*, (b) *Aprashast mano vinaya*.

What is this *Aprashast mano vinaya* ?

A mind that (1) is obsessed with sinful activities (*savadya*), (2) is involved in sinful deeds including killing of beings (*sakriya*), (3) is harsh and devoid of love (*karkash*), (4) is a source of pain for self and others (*katuk*), (5) is cruel (*nishthur*), (6) is devoid of affection (*parush*), (7) is attracting influx of demeritorious *karmas* (*asravakar*), (8) is filled with thoughts of cutting limbs of beings (*chhedakar*), (9) is filled with thoughts of piercing nose, ears and other body-parts of beings (*bhedakar*), (10) is filled with thoughts of torturing beings (*paritapanakar*), (11) is filled with thoughts of causing death-like pain to others or depriving them of their belongings (*upadravanakar*), and (12) is filled with thoughts of terminating life of beings is called *aprashast man* (ignoble mind). Such state of mind is called *Aprashast mano vinaya* (ignoble modesty or non-modesty of mind). This concludes the description of *Aprashast mano vinaya*.

What is this *Prashast mano vinaya* ?

Prashast mano vinaya (noble modesty of mind) is exactly opposite of *Aprashast mano vinaya* (ignoble modesty or non-modesty of mind). All other details should be taken accordingly. This concludes the description of *Mano vinaya*.

(v) What is this *Vachan vinaya* ?

Vachan vinaya (modesty of speech) also follows the same pattern as that of *Mano vinaya* (modesty of mind)—*Vachan vinaya* (modesty of speech) is of two types—(a) *Prashast vachan vinaya*, (b) *Aprashast vachan vinaya* and so on using the same adjectives. This concludes the description of *Vachan vinaya* (modesty of speech).

(vi) What is this *Kaya vinaya* ?

Kaya vinaya (modesty of body) is of two types—(a) *Prashast kaya vinaya*, (b) *Aprashast kaya vinaya*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

What is this *Aprashast kaya vinaya* ?

Aprashast kaya vinaya (ignoble modesty or non-modesty of body) is of seven types—(1) **Anayukt gaman**—Improper and careless movement, (2) **Anayukt sthan**—Improper and careless halting and standing, (3) **Anayukt nishidan**—Improper and careless sitting, (4) **Anayukt tvagvartan**—Improper and careless lying and turning, (5) **Anayukt ullanghan**—Improper and careless crossing of water or slime on the way, (6) **Anayukt prollanghan**—Improper and careless crossing of water or slime on the way repeatedly, (7) **Anayukt sarvendriyakayayoga yojanata**—Indulge in improper and careless activities of all sense organs and body. This concludes the description of *Aprashast kaya vinaya*.

What is this *Prashast kaya vinaya* ?

Prashast kaya vinaya (noble modesty of body) is exactly opposite of *Aprashast kaya vinaya* (ignoble modesty or non-modesty of body). All other details should be taken accordingly. This concludes the description of *Prashast kaya vinaya* (noble modesty of body). This also concludes the description of *Kaya vinaya*.

(vii) What is this *Lokopachar vinaya* ?

Lokopachar vinaya (modesty of social behaviour) is of seven types—(1) **Abhyasavartita**—To sit still near spiritual guides and noble persons, (2) **Parachhandanuvartita**—To obey the wishes and commands of spiritual guides and noble persons, (3) **Karya hetu**—To show respect and offer services to teachers before, during and after acquiring knowledge, (4) **Krit-pratikriya**—To express gratitude and offer services to those who have obliged in any way, (5) **Art-gaveshanata**—To take proper care, with medicine and food, of the ailing and aging ascetics and spiritual guides, (6) **Deshakalajnata**—To behave properly and according to time and place, (7) **Sarvartha-apratilomata**—Not to transgress the code of behaviour required for any and all activity. In other words, to behave in conformity with the spiritual goal. This concludes the description of *Lokopachar vinaya*. This also concludes the description of *Vinaya tap*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) वैयावृत्य तप

३०. (ट) से किं तं वेयावच्चे ?

वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. आयरियवेयावच्चे, २. उवज्झायवेयावच्चे, ३. सेहवेयावच्चे, ४. गिलाणवेयावच्चे, ५. तवस्सिवेयावच्चे, ६. थेरवेयावच्चे, ७. साहम्मियवेयावच्चे, ८. कुलवेयावच्चे, ९. गणवेयावच्चे, १०. संघवेयावच्चे। से तं वेयावच्चे।

३०. (ट) वैयावृत्य का स्वरूप क्या है–कितने भेद हैं ?

(आहार, औषध आदि द्वारा सेवा–परिचर्या रूप) वैयावृत्य के दस भेद इस प्रकार हैं–

(१) आचार्य का वैयावृत्य, (२) उपाध्याय का वैयावृत्य, (३) **शैक्ष**–नवदीक्षित श्रमण का वैयावृत्य, (४) **ग्लान**–रोग आदि से पीड़ित का वैयावृत्य, (५) **तपस्वी**–तेला आदि तप निरत का वैयावृत्य, (६) **स्थविर** का वैयावृत्य, (७) **साधर्मिक** (समान धर्म वालों) का वैयावृत्य, (८) **कुल**–(एक आचार्य के शिष्यों) का वैयावृत्य, (९) **गण**–(गच्छ) का वैयावृत्य, (१०) संघ का वैयावृत्य। यह वैयावृत्य का स्वरूप है।

(3) VAIYAVRITYA TAP

30. (k) What is this *Vaiyavritya tap* ?

Vaiyavritya tap (to offer food and other services to fellow ascetics and seniors) is of ten kinds—To offer food and other services to (1) *Acharyas*, (2) *Upadhyayas*, (3) *Shaiksh* or new initiates, (4) *Glan* or ailing ascetics, (5) *Tapasvi* or ascetics observing austerities, (6) *Sthavirs* or ascetics senior in terms of knowledge, initiation and age, (7) *Sadharmik* or co-religionists, (8) *Kula* (ascetic family or disciples of the same *Acharya*), (9) *Gana* (ascetic group), and (10) *Sangh* (religious organization). This concludes the description of *Vaiyavritya tap*.

(४) स्वाध्याय तप

३०. (ठ) से किं तं सज्झाए ?

सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा–१. वायणा, २ पडिपुच्छणा, ३. परियट्टणा, ४. अणुप्पेहा, ५. धम्मकहा। से तं सज्झाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. (ठ) स्वाध्याय तप क्या है ?

स्वाध्याय तप पाँच प्रकार का है। वह इस प्रकार है–(१) **वाचना**–आचार्य आदि से विधिपूर्वक सूत्रादि का यथाविधि यथासमय शास्त्र का अध्ययन करना, (२) **प्रतिपृच्छना**–अधीत विषय में विशेष स्पष्टीकरण हेतु पूछना, (३) **परिवर्तना**–अधीत ज्ञान की पुनरावृत्ति करना, सीखे हुए को बार-बार दुहराना, (४) **अनुप्रेक्षा**–सूत्र, अर्थ व आगमानुसारी विषय का पुनः-पुनः चिन्तन-मनन करना, (५) **धर्मकथा**–श्रुतधर्म की व्याख्या-विवेचना व उपदेश करना। यह स्वाध्याय तप का स्वरूप है।

(4) SVADHYAYA TAP

30. (l) What is this *Svadhyaya tap* ?

Svadhyaya tap (study and teaching of holy scriptures) is of five types—**(a) Vachana**—To take lessons of the scriptures methodically from the *Acharya* at proper time following proper procedure, **(b) Pratiprichhana**—To resolve difficulties and doubts and to seek clarification and elaboration by asking questions, **(c) Parivartana**—To revise and repeat what has already been learnt, **(d) Anupreksha**—To ruminate over anything connected with the scriptures including the text, meaning and related topics, **(e) Dharmakatha**—To comment, elaborate and lecture on *Shrut Dharma* (the religion propagated by *Jinas*). This concludes the description of *Svadhyaya tap.*

(५) ध्यान तप

३०. (ड) से किं तं झाणे ?

झाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा–१. अट्टज्झाणे, २. रुद्दज्झाणे, ३. धम्मज्झाणे, ४. सुक्कज्झाणे।

(i) आर्तध्यान–**अट्टज्झाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा–१. अमणुण्णसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसतिसमण्णागए यावि भवइ, २. मणुण्णसंपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसतिसमण्णागए यावि भवइ, ३. आयंकसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसतिसमण्णागए यावि भवइ, ४. परिजूसिय-कामभोग-संपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसतिसमण्णागए यावि भवइ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता। तं जहा–१. कंदणया, २. सोयणया, ३. तिप्पणया, ४. विलवणया।

(ii) रौद्रध्यान–रुद्दज्झाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा–१. हिंसाणुबंधी, २. मोसाणुबंधी, ३. तेणाणुबंधी, ४. सारक्खणाणुबंधी।

रुद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता। तं जहा–१. उसण्णदोसे, २. बहुदोसे, ३. अण्णाणदोसे, ४. आमरणंतदोसे।

(iii) धर्मध्यान–धम्मज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते। तं जहा–१. आणाविजए, २. अवायविजए, ३. विवागविजए, ४. संठाणविजए।

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता। तं जहा–१. आणारुई, २. णिसग्गरुई, ३. उवस्सरुई, ४. सुत्तरुई।

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता। तं जहा–१. वायणा, २. पुच्छणा, ३. परियट्टणा, ४. धम्मकहा।

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा–१. अणिच्चाणुप्पेहा, २. असरणाणुप्पेहा, ३. एगत्ताणुप्पेहा, ४. संसाराणुप्पेहा।

(iv) शुक्लध्यान–सुक्कज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते। तं जहा–१. पुहुत्तवियक्के सवियारी, २. एगत्तवियक्के अवियारी, ३. सुहुमकिरिए अप्पडिवाई, ४. समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी।

सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता। तं जहा–१. विवेगे, २. विउस्सग्गे, ३. अव्वहे, ४. असम्मोहे।

सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता। तं जहा–१. खंती, २. मुत्ती, ३. अज्जवे, ४. मद्दवे।

सुक्कस्स झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा–१. अवायाणुप्पेहा, २. असुभाणुप्पेहा, ३. अणंतवत्तियाणुप्पेहा, ४. विपरिणामाणुप्पेहा। से तं झाणे।

३०. (ड) ध्यान का स्वरूप क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(एकाग्र चिन्तन रूप) ध्यान के चार भेद बताये हैं–(१) **आर्त्तध्यान**–रागादि भावना से अनुप्रेरित संयोग-वियोगजनित चित्त की व्याकुलता, (२) **रौद्रध्यान**–हिंसादि भावना से अनुरंजित अतिक्रूरतापूर्ण चिन्तन, (३) **धर्मध्यान**–धर्मभावना से अनुप्राणित ध्यान, (४) **शुक्लध्यान**–निर्मल, शुभ आत्मोन्मुख शुद्ध ध्यान। (यहाँ पर क्रमशः चारों ध्यानों के स्वरूप, लक्षण आदि का विस्तारपूर्वक कथन किया जा रहा है।)

(i) आर्त्तध्यान–आर्त्तध्यान चार प्रकार का है–(क) **अमनोज्ञ**–मन को प्रिय नहीं लगने वाली स्थितियाँ आने पर उनका-दूर करने के सम्बन्ध में निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना, (ख) **मनोज्ञ**–मन को प्रिय लगने वाले विषयों के प्राप्त होने पर उनके अवियोग-वे अपने से कभी दूर न हों, सदा अपने साथ बनी रहें, इस प्रकार का निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना, (ग) **आतंक**–रोग हो जाने पर उसके मिटने के सम्बन्ध में निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना, (घ) **पूर्वभुक्त**–पूर्व काल में भोगे हुए कामभोग प्राप्त होने पर, फिर कभी उनका वियोग न हो, इस विषयक निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं। वे इस प्रकार हैं–(क) **क्रन्दनता**–जोर से क्रन्दन करना, रोना, चीखना, (ख) **शोचनता**–मानसिक ग्लानि तथा दीनता अनुभव करना, (ग) **तेपनता**–बिना आवाज किये आँसू ढलकाना, (घ) **विलपनता**–विलाप करना–"हाय ! मैंने पूर्वजन्म में कितना बड़ा पाप किया, जिसका यह फल मिल रहा है।" इत्यादि रूप में बिलखना।

(ii) रौद्रध्यान–रौद्रध्यान चार प्रकार का है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है–(क) **हिंसानुबन्धी**–हिंसा सम्बन्धी चिन्तन करना, (ख) **मृषानुबन्धी**–असत्य से सम्बन्धित चिन्तन करना, (ग) **स्तैन्यानुबन्धी**–चोरी से सम्बद्ध चिन्तन करना, (घ) **संरक्षणानुबन्धी**–धन आदि भोग-साधनों के संरक्षण हेतु औरों के प्रति क्रूरतापूर्ण एकाग्र चिन्तन।

रौद्रध्यान के चार लक्षण बतलाये हैं–(क) **उत्सन्नदोष**–हिंसा, असत्य आदि पापकर्मों में से किसी एक पाप में अत्यधिक लीन रहना, (ख) **बहुदोष**–हिंसा आदि अनेक दोषों में संलग्न रहना, (ग) **अज्ञानदोष**–मिथ्या शास्त्र आदि के संस्कार से उत्पन्न अज्ञान के कारण हिंसा आदि कार्यों में धर्माराधना की दृष्टि से प्रवृत्ति करना, (घ) **आमरणान्तदोष**–सेवन किये हुए दोषों के लिए मृत्यु-पर्यन्त पश्चात्ताप न करते हुए उनमें सतत प्रवृत्तिशील रहना।

(iii) धर्मध्यान–स्वरूप, लक्षण, आलम्बन तथा अनुप्रेक्षा भेद से **धर्मध्यान** चार प्रकार का है। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप की दृष्टि से धर्मध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–(क) **आज्ञाविचय**–तीर्थंकर आदि आप्त पुरुषों का वचन आज्ञा कहा जाता है। आप्त पुरुष वह है, जो राग, द्वेष आदि दोषों से मुक्त तथा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ वीतराग देव की आज्ञा के सम्बन्ध में जो **विचय**–मनन, निदिध्यासन किया जाता है, वह आज्ञाविचय ध्यान है। इसका अभिप्राय है–वीतराग प्रभु की आज्ञा, प्ररूपणा या वचन के अनुरूप वस्तु–तत्त्व के चिन्तन में मन की एकाग्रता, (ख) **अपायविचय**–अपाय का अर्थ है दुःख। राग, द्वेष, विषय, कषाय आदि कारणों से दुःख की उत्पत्ति होती है। अतः राग, द्वेष, विषय, कषाय का अपचय, (विनाश) कर्म–सम्बन्ध का विच्छेद और आत्म–समाधि की उपलब्धि जिस ध्यान में इन विषयों पर चिन्तन किया जाता है वह अपायविचय ध्यान है, (ग) **विपाकविचय**–विपाक का अर्थ कर्मफल है। कर्मों के स्वरूप, विपाक या फल पर चिन्तनधारा केन्द्रित करना विपाकविचय है, (घ) **संस्थानविचय**–लोक, द्वीप, समुद्र, स्वर्ग, नरक आदि के आकार–विषयक चिन्तन संस्थानविचय है।

धर्मध्यान के चार लक्षण बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं–(क) **आज्ञारुचि**–वीतराग प्रभु की आज्ञा की आराधना में, प्ररूपणा में अभिरुचि या श्रद्धा होना, (ख) **निसर्गरुचि**–नैसर्गिक रूप में–स्वभावतः धर्म में रुचि होना, (ग) **उपदेशरुचि**–साधु या ज्ञानी जनों के उपदेश से धर्म में रुचि होना अथवा धर्म का उपदेश सुनने में रुचि होना, (घ) **सूत्ररुचि**–सूत्रों–आगमों के प्रति रुचि या दृढ़ श्रद्धा होना।

धर्मध्यान के चार आलम्बन–(ध्यानरूपी शिखर पर चढ़ने के लिए जो सहायक बनते हैं वे आलम्बन) हैं, वे इस प्रकार हैं–(क) **वाचना**–आगम, ग्रन्थ आदि पढ़ना, (ख) **पृच्छना**–जिज्ञासु भाव से अपने मन में ऊहापोह करना, ज्ञानी जनों से समाधान पाने का प्रयत्न करना, (ग) **परिवर्तना**–जाने हुए, सीखे हुए ज्ञान की पुनः–पुनः आवृत्ति करना, (घ) **धर्मकथा**–धार्मिक उपदेशप्रद कथाओं, जीवनवृत्तों, प्रसंगों द्वारा आत्मानुशासन में प्रवृत्तिशील होना और दूसरों को प्रेरणा देना।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ–(सुविचारों की गहराई में उतरना) भावनाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं–(क) **अनित्यानुप्रेक्षा**–"सुख, सम्पत्ति, वैभव, भोग, देह, यौवन, आरोग्य, जीवन, परिवार आदि सभी सांसारिक वस्तुएँ अनित्य हैं", इस प्रकार के विचारों का पुनः–पुनः अभ्यास करना, (ख) **अशरणानुप्रेक्षा**–"जन्म, जरा, रोग, कष्ट, वेदना, मृत्यु आदि से पीड़ित संसार में जिनेश्वर देव कथित धर्म के अतिरिक्त जगत् में अन्य कोई शरणभूत रक्षक नहीं है", बार–बार इस प्रकार का चिन्तन करना, (ग) **एकत्वानुप्रेक्षा**–"मृत्यु, वेदना, पीड़ा, शोक, शुभ–अशुभ कर्म का फल इत्यादि जीव अकेला ही करता है तथा अकेला ही भोगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अतः व्यक्ति को आत्म-कल्याण साधने में ही जुटना चाहिए'', इस प्रकार की भावना करना, (घ) **संसारानुप्रेक्षा**–''संसार में यह जीव कभी पिता, कभी पुत्र, कभी माता, कभी पुत्री, कभी भाई, कभी बहन, कभी पति, कभी पत्नी आदि अनेक सम्बन्ध बनाता है–कितने-कितने रूपों में जन्म लेता है'', संसार के इस स्वरूप का पुनः-पुनः चिन्तन करना, वैराग्य जागृति हेतु विचाराभ्यास करना।

(iv) शुक्लध्यान–स्वरूप, लक्षण, आलम्बन तथा अनुप्रेक्षा के भेद से शुक्लध्यान चार प्रकार का है। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं। स्वरूप की दृष्टि से शुक्लध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–(क) **पृथक्त्ववितर्क–सविचार**–यहाँ वितर्क का अर्थ है श्रुतानुसारी विकल्प। पूर्वधर मुनि पूर्वश्रुत-विशिष्ट ज्ञान के अनुसार किसी एक द्रव्य का आलम्बन लेकर कभी द्रव्यार्थिकनय, कभी पर्यायार्थिकनय से, अर्थात् द्रव्य से पर्याय पर, पर्याय से द्रव्य पर ध्यान करता है। शब्द से अर्थ पर, अर्थ से शब्द पर तथा मन, वाणी एवं देह में एक-दूसरे की प्रवृत्ति पर संक्रमण करता है, अनेक अपेक्षाओं से चिन्तन करता है। ऐसा करना पृथक्त्ववितर्क-सविचार शुक्लध्यान है, (ख) **एकत्ववितर्क–अविचार**–इसका स्वरूप समझाने के लिए प्राचीन आचार्य एक उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार मंत्रसिद्ध गारुड़िक, सर्प विषग्रस्त शरीर के समस्त अवयवों से व्याप्त विषम विष को मंत्रबल से खींचकर काटे हुए स्थान पर विष को स्तम्भित कर देता है, उसी प्रकार पूर्वसूत्र का ज्ञाता पूर्वधर पूर्वश्रुतज्ञान के किसी एक परिणाम पर चित्त को स्थिर करता है। वह शब्द, अर्थ, मन, वाणी तथा काययोगों पर संक्रमण नहीं करता। ऐसा ध्यान एकत्ववितर्क-अविचार कहा जाता है। पहले भेद में पृथक्त्व है, विचारों का संक्रमण है, अतः वह सविचार है, दूसरे में विचारों का केन्द्रीकरण है, एकत्व है, इस अपेक्षा से उसकी अविचार संज्ञा है। एकत्ववितर्क-अविचार शुक्लध्यान में प्रथम ध्यान की अपेक्षा अधिक एकाग्रता होती है। यह ध्यान भी पूर्वधारक मुनि ही कर सकते हैं। इसके प्रभाव से चार घातिकर्मों का सम्पूर्ण क्षय हो जाता है और केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त कर ध्याता-आत्मा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाता है, (ग) **सूक्ष्मक्रिय–अप्रतिपाति**–केवली (जिन्होंने केवलज्ञान या सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लिया हो) जब आयु के अन्त समय में योग-निरोध का क्रम प्रारम्भ करते हैं, तब वे पहले समस्त मनोयोग का निरोध करते हैं, फिर सम्पूर्ण वाग्योग का निरोध करते हैं, पश्चात् बादरकाय योग निरोध भी कर देते हैं। मात्र सूक्ष्म काययोग का अवलम्बन किये होते हैं, उनमें श्वास-प्रश्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही अवशेष रह जाती है। वहाँ ध्यान से च्युत होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। अतः उस अवस्था में सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान होता है। यह तेरहवें गुणस्थान में होता है, (घ) **समुच्छिन्नक्रिय–अनिवृत्ति**–यह ध्यान अयोगकेवली नामक चतुर्दश गुणस्थान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। वहाँ सभी योगों–क्रियाओं का निरोध हो जाता है। आत्म–प्रदेशों में जब सब प्रकार का कम्पन–परिस्पन्दन बन्द हो जाता है उसे समुच्छिन्नक्रिय–अनिवृत्ति शुक्लध्यान कहा जाता है। इसका काल अ, इ, उ, ऋ, लृ–पाँच ह्रस्व स्वरों को मध्यम गति से उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतना ही है। इस ध्यान के द्वारा अवशेष चार अघाति कर्म–वेदनीय, नाम, गोत्र तथा आयु भी नष्ट हो जाते हैं। यह ध्यान मोक्ष का साक्षात् कारण है।

शुक्लध्यान के चार लक्षण इस प्रकार हैं–(क) **विवेक**–देह से आत्मा की भिन्नता/पृथक्ता की प्रतीति, (ख) **व्युत्सर्ग**–अनासक्तिपूर्वक शरीर तथा उपकरणों का उत्सर्ग–त्याग, (ग) **अव्यथा**–देव, पिशाच आदि द्वारा कृत उपसर्ग से विचलित नहीं होना, (घ) **असंमोह**–देव आदि द्वारा रचित मायाजाल में तथा सूक्ष्म विषयों में संमूढ या विभ्रान्त नहीं होना।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं–(क) **क्षान्ति**–क्षमाशीलता, सहनशीलता, (ख) **मुक्ति**–लोभ आदि के बन्धन से उन्मुक्तता, (ग) **आर्जव**–ऋजुता–सरलता, निष्कपटता, (घ) **मार्दव**–मृदुता–कोमलता, निरभिमानिता।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ (भावनाएँ) इस प्रकार हैं–(क) **अपायानुप्रेक्षा**–आस्रव रूप अपायों द्वारा उपार्जित दुःखद स्थितियों का बारम्बार चिन्तन करना, (ख) **अशुभानुप्रेक्षा**–संसार के अशुभ–अप्रशस्त स्वरूप का बार–बार चिन्तन करना, (ग) **अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा**–भवभ्रमण या अनन्त काल तक चलते रहने की वृत्ति–स्वभाव पर पुनः–पुनः चिन्तन करना, (घ) **विपरिणामानुप्रेक्षा**–जगत् की क्षण–क्षण परिवर्तित होती वस्तु–स्थिति पर–बार–बार चिन्तन करना। यह ध्यान तप का स्वरूप है।

(5) DHYAN TAP

30. (m) What is this *Dhyan tap* ?

Dhyan tap (meditation, concentration and restraint of feelings and attitudes) is of four types—**(i) Arta-dhyan**—Grievous thoughts or agitated state of mind caused by gain and loss of coveted things and conditions, **(ii) Raudra-dhyan**—Cruel thoughts inspired and animated by violent sentiments, **(iii) Dharma-dhyan**—Virtuous meditation or pious thinking inspired and enhanced by religious sentiments, **(iv) Shukla-dhyan**—Pure meditation or noble and spiritual thinking. (The elaboration of these four types of *dhyan* follows.)

(i) Artadhyan (grievous thoughts) is of four types—**(a) Amanojna**—Deep desire to be rid of detestable and adverse

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

conditions and things, **(b) Manojna**—Intense desire to have perpetual hold on lovable indulgences and things, **(c) Atank**—Anxious desire to be rid of terror and ailments, **(d) Purvabhukta**—Intense desire to have perpetual hold on lovable indulgences and things already enjoyed in the past and regained now.

There are four symptoms or expressions of *Artadhyan* (grievous thoughts)—**(a) Krandanata**—To weap and cry loudly, **(b) Shochanata**—To feel wretched and humiliated, **(c) Tepanata**—To shed tears silently, **(d) Vilapanata**—To lament (e.g. "Oh ! How great a sin I committed in my last birth that I am suffering so much.")

(ii) Raudradhyan (cruel thoughts) is of four types—**(a) Himsanubandhi**—To think of violence, **(b) Mrishanubandhi**—To think of falsehood, **(c) Stainyanubandhi**—To think of stealing, **(d) Samrakshananubandhi**—To think of violently protecting acquired wealth and other means of enjoyment.

There are four symptoms or expressions of *Raudradhyan* (cruel thoughts)—**(a) Utsannadosh**—To remain absorbed in thoughts of any one of the sinful activities like violence, falsehood etc., **(b) Bahudosh**—To remain absorbed in thoughts of many or all of the sinful activities like violence, falsehood etc. **(c) Ajnanadosh**—To indulge in sinful activities like violence out of ignorance or mistaken belief inspired by fallacious scriptures, **(d) Amaranantdosh**—Continued indulgence in mistakes and sinful activities without any repentance till the end of life.

(iii) Dharmadhyan (virtuous meditation) has four types based on form (*svaroop*), attribute or expression (*lakshan*), support or aid (*alamban*) and thoughts (*anupreksha*). All these have four varieties each.

The four varieties based on form are—**(a) Ajna-vichaya**—The sermons or words of sagacious individuals (*Apt-purush*) like *Tirthankars* are called *ajna* (commandments). *Apt-purush* (sagacious individuals) are those who are absolutely free of attachment and aversion (*Vitarag*) and other faults and are omniscient. The contemplation and meditation on the words and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

teachings of such detached omniscient is called *Ajna-vichaya*. Its purpose is to concentrate on the true reality as propounded by the *Vitarag*, **(b) Apaya-vichaya**—*Apaya* means sorrow. Attachment, aversion, mundane, indulgences and passions are the sources of sorrow. Therefore the contemplation and meditation about removal of all these sources of sorrow, breaking of the bondage of *karma* and gaining the transcendental state is called *Apaya-vichaya*, **(c) Vipak-vichaya**—*Vipak* means fruition of *karmas* or fruits of *karma*. The contemplation and meditation on the forms of *karma* and their fruition is called *Vipak-vichaya*, **(d) Samsthan-vichaya**—*Samsthan* means structure or constitution. The contemplation and meditation on the structure of universe, islands, seas, heaven, hell and other such things is called *Samsthan-vichaya*.

The four varieties based on attributes are—**(a) Ajna-ruchi**—To have faith and interest in worship and propagation of the teachings of the *Vitarag*, **(b) Nisarg-ruchi**—To have natural or spontaneous interest in the religion of the *Jina*, **(c) Upadesh-ruchi**—To have interest and faith in the religious discourse of ascetics and learned people and consequently in the religion itself, **(d) Sutra-ruchi**—To have interest and faith in the canon (*Agams*).

The four varieties based on support are—**(a) Vachana**—To take lessons of or to read *Agams* and other scriptures, **(b) Pratiprichhana**—To ponder over the lessons and seek clarification and elaboration from the learned ones, **(c) Parivartana**—To revise and repeat what has been learnt, **(d) Dharmakatha**—To steer self and others towards spiritual discipline with the help of spiritual stories, biographies and incidents.

The four varieties based on thought (*anupreksha*) are—**(a) Anityanupreksha**—To revolve around the thought that pleasure, wealth, grandeur, enjoyments, body, youth, health, life, family and all other mundane things are ephemeral, **(b) Asharananupreksha**—To revolve around the thought that in this world afflicted with birth, aging, ailments, torments, pain and death there is no succour and refuge other than the teachings of the *Jina*, **(c) Ekatvanupreksha**—To revolve around the thought that

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

good and bad *karmas* are acquired by a being alone and their fruits in the form of death, sufferings, pain, grief and the like are also suffered by a being alone. Therefore, a being should apply himself to exclusive pursuit of the goal of spiritual beatitude, **(d) Samsaranupreksha**—To revolve around the thought that with passage of time this being (soul) enters into a variety of relationships like father, son, mother, daughter, brother, sister, husband, wife and takes birth in a variety of forms. This thought process leads to detachment.

(iv) Shukla-dhyan (pure meditation)—*Shukladhyan* (pure meditation) has four types based on form (*svaroop*), attribute or expression (*lakshan*), support or aid (*alamban*) and thoughts (*anupreksha*). All these have four varieties each. The four varieties based on form are—**(a) Prithaktva-vitark-savichar**—Here *vitark* means alternatives based on scriptures. Based on the profound knowledge compiled in the scriptures, an ascetic scholar chooses a substance and meditates sometimes on its phenomenal or existent material aspect (*dravyarthik* naya) and some times on noumenal or transformational aspects (*paryayarthik naya*). In other words, his meditation shifts from substance to mode and from mode to substance. He shifts from text to meaning and meaning to text, and also the process of mutual indulgence and influence among mind, speech and body. He ponders over these from many different angles. This process is called *Prithaktva-vitark-savichar*, **(b) Ekatva-vitark-avichar**—The ancient *Acharyas* explain this process by giving an example. An accomplished wizard treats a man of snake-bite by drawing the venom spread into every part of the body to the spot of bite and freezing it there. In the same way, based on his acquired scriptural knowledge, an ascetic scholar chooses a single aspect of a substance. He does not even ponder over the process of mutual indulgence and influence among mind, speech and body. In other words he meditates upon just one mode of matter or word or meaning through a single media (either thought or word or action). Such meditation is called *Ekatva-vitark-avichar*. In the first type there is segregation of aspects as well as transition of thoughts therefore it is called *savichar* or with thoughts. In the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

second type the thought process is unidirectional and thus, due to this unaltered state of thoughts, it is called *avichar* or without thoughts. This type of pure meditation requires greater concentration than the preceding one and only the *Purvadhar* (knowers of the subtle canon) ascet are capable of doing it. This level of meditation completely destroys the four vitiating *karmas* and consequently the aspirant attains omniscience, **(c) Sukshmakriya-apratipati**—When the time of abandoning of the existing body approaches, the omniscients impede the gross activities of the three medias—mind, speech and body—one after the other in the same order. Only subtle activities of the body, such as minimal breathing, remain. Once this level is reached there is no scope of retraction or fall. This level of meditation is called *Sukshmakriya-apratipati*. This happens at the thirteenth *Gunasthan* (level of spiritual ascendance), **(d) Samuchchhinnakriya-anivritti**—This type of meditation is possible at the fourteenth *Gunashtan* named *Ayogakevali*. At that level all activities of association (*yoga*) cease. When in meditation all vibrations of soul-sections stop, it is called *Samuchchhinnakriya-anivritti Shukla Dhyan*. It lasts only for a short period that is equivalent to the time taken in uttering the five short vowels *'a, e, u, ri, lri'* with average speed. This meditation eliminates the remaining four non-vitiating *karmas*, namely, *vedaniya* (*karma* responsible for mundane experience of pain and pleasure), *naam* (*karma* that determines the destinies and body types), *gotra* (*karmas* that determine environmental circumstances) and *ayu* (*karma* that determines the span of a given lifetime). This type of meditation is directly linked with liberation.

The four varieties based on attributes are—**(a) Vivek**—The realization that soul and body are separate entities, **(b) Vyutsarg**—To renounce body and ascetic-equipment with total detachment, **(c) Avyatha**—Not to get disturbed by any divine or demonic affliction, **(d) Asammoha**—Not to be deluded by any illusions created by gods or any other subtle and complex subjects.

The four varieties based on support are—**(a) Kshanti**—Endurance and forgiveness, **(b) Mukti**—Freedom from greed and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

other feelings of attachment, **(c) Arjav**—Simplicity and honesty, **(d) Mardav**—Tenderness, gentleness and absence of pride.

The four varieties based on thought (*anupreksha*) are—**(a) Apayanupreksha**—To contemplate again and again about the torments caused by influx of *karmas*, **(b) Ashubhanupreksha**—To contemplate again and again about the ills and evils of the world, **(c) Anantavrittitanupreksha**—To contemplate again and again about the eternality of the cycles of rebirth, **(d) Viparinamanupreksha**—To contemplate again and again about the incessantly transforming state of the world. This concludes the description of *Dhyan tap*.

(६) व्युत्सर्ग तप

३०. (ढ) से किं तं विउस्सग्गे ?

विउस्सग्गे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. दव्वविउस्सग्गे, २. भावविउस्सग्गे य।

से किं तं दव्वविउस्सग्गे ?

दव्वविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—१. सरीरविउस्सग्गे, २. गणविउस्सग्गे, ३. उवहिविउस्सग्गे, ४. भत्तपाणविउस्सग्गे, से तं दव्वविउस्सग्गे।

से किं तं भावविउस्सग्गे ?

भावविउस्सग्गे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—१. कसायविउस्सग्गे, २. संसारविउस्सग्गे, ३. कम्मविउस्सग्गे।

से किं तं कसायविउस्सग्गे ?

कसायविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—१. कोहकसायविउस्सग्गे, २. माणकसायविउस्सग्गे, ३. मायाकसायविउस्सग्गे, ४. लोहकसायविउस्सग्गे, से तं कसायविउस्सग्गे।

से किं तं संसारविउस्सग्गे ?

संसारविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—१. णेरइयसंसारविउस्सग्गे, २. तिरियसंसारविउस्सग्गे, ३. मणुयसंसारविउस्सग्गे, ४. देवसंसारविउस्सग्गे, से तं संसारविउस्सग्गे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं कम्मविउसग्गे ?

कम्मविउस्सग्गे अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा-१. णाणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे, २. दरिसणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे, ३. वेयणिज्जकम्मविउस्सग्गे, ४. मोहणिज्जकम्मविउस्सग्गे, ५. आउयकम्मविउस्सग्गे, ६. णामकम्मविउस्सग्गे, ७. गोयकम्मविउस्सग्गे, ८. अंतरायकम्मविउस्सग्गे। से तं कम्मविउस्सग्गे। से तं भावविउस्सग्गे।

३०. (ढ) व्युत्सर्ग तप का स्वरूप क्या है? (उत्कृष्ट भावनापूर्वक ममत्व का त्याग करना व्युत्सर्ग है।)

व्युत्सर्ग के दो भेद हैं-(१) द्रव्य-व्युत्सर्ग, (२) भाव-व्युत्सर्ग।

(१) द्रव्य-व्युत्सर्ग के कितने भेद हैं?

द्रव्य-व्युत्सर्ग के चार भेद इस प्रकार हैं-(क) **शरीर-व्युत्सर्ग**-देह तथा दैहिक सम्बन्धों की आसक्ति का त्याग, (ख) **गण-व्युत्सर्ग**-प्रतिमा आदि की आराधना हेतु-गण एवं गण के ममत्व का त्याग, (ग) **उपधि-व्युत्सर्ग**-वस्त्र, पात्र आदि उपधि के ममत्व का त्याग, (घ) **भक्तपान-व्युत्सर्ग**-आहार-पानी एवं तत्सम्बन्धी लोलुपता आदि का त्याग।

(२) भाव-व्युत्सर्ग क्या है?

भाव-व्युत्सर्ग के तीन भेद हैं-(क) कषाय-व्युत्सर्ग, (ख) संसार-व्युत्सर्ग, (ग) कर्म-व्युत्सर्ग।

कषाय-व्युत्सर्ग क्या है?

कषाय-व्युत्सर्ग के चार भेद इस प्रकार हैं-(१) **क्रोध-व्युत्सर्ग**-क्रोध का त्याग, (२) **मान-व्युत्सर्ग**-अहंकार का त्याग, (३) **माया-व्युत्सर्ग**-छल-कपट का त्याग, (४) **लोभ-व्युत्सर्ग**-लालच का त्याग। यह चारों कषायों का त्याग रूप कषाय-व्युत्सर्ग का विवेचन है।

संसार-व्युत्सर्ग क्या है?

संसार-व्युत्सर्ग चार प्रकार का है-(१) **नैरयिकसंसार-व्युत्सर्ग**-नरकगति बँधने के कारणों का त्याग, (२) **तिर्यक्संसार-व्युत्सर्ग**-तिर्यंचगति बँधने के कारणों का त्याग, (३) **मनुजसंसार-व्युत्सर्ग**-मनुष्यगति बँधने के कारणों का त्याग, (४) **देव-संसार-व्युत्सर्ग**-देवगति बँधने के कारणों का त्याग। (चार गति के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन स्थानांगसूत्र ४ में देखें। यह संसार-व्युत्सर्ग का स्वरूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म–व्युत्सर्ग क्या है ?

कर्म–व्युत्सर्ग (कर्म–पुद्‌गलों के बँधने के कारणों का वर्जन) आठ प्रकार का है– (१) **ज्ञानावरणीय कर्म–व्युत्सर्ग**–आत्मा के ज्ञान गुण के आवरक कर्म–पुद्‌गलों के बँधने के कारणों का त्याग, (२) **दर्शनावरणीय कर्म–व्युत्सर्ग**–दर्शनावरणीय कर्म बँधने के कारणों का त्याग, (३) **वेदनीय कर्म–व्युत्सर्ग**–सुख–दुःख रूप वेदना के हेतुभूत कर्म–पुद्‌गलों के बँधने के कारणों का त्याग, (४) **मोहनीय कर्म–व्युत्सर्ग**–मोहनीय कर्मबंधनों के कारणों का त्याग, (५) **आयुष्य कर्म–व्युत्सर्ग**–आयुष्य कर्म बँधने के हेतुभूत कारणों का त्याग, (६) **नाम कर्म–व्युत्सर्ग**–जिस कर्म के कारण आत्मा का अमूर्त्तत्व गुण आवृत होता है, उस नामकर्म के बन्धक कारणों का त्याग, (७) **गोत्र कर्म–व्युत्सर्ग**–गोत्रकर्म बँधने के कारणों का त्याग, (८) **अन्तराय कर्म–व्युत्सर्ग**–आत्मा की अनन्त शक्ति रूप गुण को आवृत करने वाले कर्मों के बन्धक कारणों का त्याग। यह कर्म–व्युत्सर्ग है। इस प्रकार व्युत्सर्ग तप का स्वरूप है।

(बाह्य तप तथा आभ्यन्तर तप एवं धर्मध्यान, शुक्लध्यान आदि के विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य है–**जैन योग : सिद्धान्त और साधना** (अमर मुनि), पृष्ठ २३१ से ३१३ तक)

(6) VYUTSARG TAP

30. (n) What is this *Vyutsarg tap* ?

Vyutsarg tap (renouncing evil and mundane things) is of two types—(1) *Dravya vyutsarg*, (2) *Bhaava vyutsarg*.

(1) What is this *Dravya vyutsarg* ?

Dravya vyutsarg is of four types—**(a) Sharir vyutsarg**—To renounce body and bodily relationships and attachment for them, **(b) Gana vyutsarg**—To renounce *gana* (ascetic group) and attachment for it, **(c) Upadhi vyutsarg**—To renounce possessions like ascetic equipment and attachment for them, **(d) Bhakt-pan vyutsarg**—To renounce food and water and attachment for them.

(2) What is this *Bhaava vyutsarg* ?

Bhaava vyutsarg (renouncing evil and mundane thoughts) is of three types—(a) *Kashaya vyutsarg*, (b) *Samsar vyutsarg*, (c) *Karma vyutsarg*.

What is this *Kashaya vyutsarg* ?

Kashaya vyutsarg (renouncing passions) is of four types—**(1) Krodh vyutsarg**—To renounce anger, **(2) Maan vyutsarg**—To renounce conceit, **(3) Maya vyutsarg**—To renounce deceit, **(4) Lobh**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

vyutsarg— To renounce greed. This concludes the description of *Kashaya vyutsarg.*

What is this *Samsar vyutsarg* ?

Samsar vyutsarg (renouncing rebirth) is of four types—**(1) Nairayik-samsar vyutsarg—**To renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as an infernal being, **(2) Tiryak-samsar vyutsarg—**To renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as an animal, **(3) Manuj-samsar vyutsarg—**To renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as a human being, **(4) Dev-samsar vyutsarg—**To renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as a divine being. (For details about the four dimensions or genus consult *Sthananga Sutra* 4.) This concludes the description of *Samsar vyutsarg.*

What is this *Karma vyutsarg* ?

Karma vyutsarg (to renounce *Karmas*) is of eight types—**(1) Jnanavaraniya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of knowledge obscuring *karma* particles, **(2) Darshanavaraniya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of perception/faith obscuring *karma* particles, **(3) Vedaniya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for mundane experience of pain and pleasure, **(4) Mohaniya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for delusion, **(5) Ayushya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for life-span, **(6) Naam karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for negating the attribute of formlessness of soul, **(7) Gotra karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for the higher or lower status of a being, **(8) Antaraya karma vyutsarg—**To renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for impeding the attribute of infinite energy of the soul. This concludes the description of *Karma vyutsarg.* This also concludes the description of *Bhaava vyutsarg tap.*

(For detailed description of internal and external austerities and meditation consult *Jain Yoga : Siddhant Aur Sadhana*, by Amar Muni, pp. 231-313.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अणगारा भगवंतो अप्पेगइया आयारधरा, जाव विवागसुयधरा, तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे देसे गच्छागच्छिं गुम्मागुम्मिं फड्डाफड्डिं। अप्पेगइया वायंति, अप्पेगइया पडिपुच्छंति, अप्पेगइया परियट्टंति, अप्पेगइया अणुप्पेहंति।

अप्पेगइया अक्खेवणीओ, विक्खेवणीओ, संवेयणीओ, णिव्वेयणीओ बहुविहाओ कहाओ कहंति।

अप्पेगइया उड्ढंजाणू, अहोसिरा, झाणकोट्ठोवगया संजमेणं।

तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

३१. उस काल, उस समय जब भगवान महावीर के साथ अनेक अन्तेवासी अनगार-श्रमण थे। उनमें कई एक आचारधर (आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग यावत् प्रश्नव्याकरण आदि ११ अंगों के धारक थे) तथा कई विपाकश्रुत के धारक थे। वे वहाँ उसी उद्यान में भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक-एक गच्छसमूह के रूप में, छोटे-छोटे समूहों के रूप में तथा फुटकर रूप से विभक्त होकर अवस्थित थे। उनमें कई आगमों की **वाचना** प्रदान करते थे, कई **प्रतिपृच्छा**–प्रश्नोत्तर द्वारा शंका-समाधान करते थे। कई **परिवर्तना**–पुनरावृत्ति करते थे। कई **अनुप्रेक्षा**–(चिन्तन-मनन) करते थे।

उनमें कई श्रमण **आक्षेपणी**–मोहमाया से दूर कर समत्व की ओर उन्मुख करने वाली, **विक्षेपणी**–कुत्सित मार्ग से विमुख करने वाली, **संवेगनी**–मोक्ष-सुख की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली तथा **निर्वेदनी**–संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाली-यों अनेक प्रकार की धर्मकथाएँ कहते थे।

उनमें कई अपने दोनों घुटनों को ऊँचा उठाये, मस्तक को नीचा झुकाये, यों एक विशेष आसन में अवस्थित हो ध्यानरूप कोष्ठ में प्रविष्ट हो-ध्यानरत थे।

इस प्रकार वे अनगार संयम तथा तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहार करते थे।

AUPAPATIK EXEMPLARY STUDY OF SCRIPTURES BY ANAGARS

31. During that period of time numerous *sthavir* (senior ascetic) disciples (*antevasi*) of Shraman Bhagavan Mahavir accompanied him. Some of whom were scholars of (the eleven *Angas* starting and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ending respectively with) *Acharanga Sutra* and *Vipak Shrut*. Divided into larger groups (*gachh*), smaller sub-groups (*gulm*) and even smaller random groups (*phutkar*), they were staying in the same garden at different places. Some of them taught and recited *Agams*, some removed doubts by answering questions, some revised them and some ruminated over them.

Some of these *Shramans* told a variety of religious tales which helped remove attachment thereby steering the listeners towards equanimity, turned the listeners away from evil ways, infused desire for the path of liberation in them and inspired detachment from the mundane world.

Some of them had entered the cell of meditation in a specific yogic posture with raised knees and bent head.

Thus these *anagars* moved about enkindling (*bhaavit*) their souls with ascetic-discipline and austerities.

विवेचन–पिछले सूत्रों में भगवान महावीर के श्रमणों की बहुविध तपःसाधना का रोमांचक वर्णन है। इस सूत्र में उन श्रमणों के श्रुत अध्ययन व ध्यान योग का कथन किया है। वे श्रमण–एक साथ समूह रूप में अथवा अलग–अलग छोटे समूहों में बैठकर स्थविरों के पास–आचारांग आदि आगमों का अध्ययन करते थे। कई एकान्त में गहन ध्यान योग की साधना में निरत थे। इस प्रकार वे श्रमण तप–संयम–ध्यान साधना द्वारा आत्मा को भावित–अनुप्राणित करते रहते थे।

टीकाकार के अनुसार अनेक साधुओं के समूह गच्छ, थोड़े साधुओं का समूह गुल्म तथा अति लघु समूह–फुटकर, (फड्डा–फड्डि) कहा जाता है।

Elaboration—The preceding aphorisms contain vivid description of the varied practices of austerities by the ascetic disciples of Bhagavan Mahavir. This aphorism details their studies of scriptures and practices of meditation. These *Shramans*, divided into groups, sat with *Sthavirs* (senior ascetic) and studied *Agams* including *Acharanga*. Some were involved in intense meditation. This way these *Shramans* enkindled their souls with practices of austerities, discipline and meditation.

According to the commentator (*Tika*) larger groups of ascetics were called *Gachha*, smaller subgroups were called *gulm*, and even smaller random groups were called *phutkar* (*phadda-phadda*).

संसार–समुद्र

३२. (क) संसारभयउव्विगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीया, जम्मण–जर–मरण–करणगंभीर–दुक्ख–पक्खुब्भिय पउरसलिलं।

संजोग–विओग–वीचिचिंता पसंग–पसरिय–वह–बंध–महल्लविउलकल्लोल–कलुणाविलविय–लोभकलकलंत–बोलबहुलं।

अवमाणणफेण–तिव्व–खिंसण–पुलंपुलप्पभूय–रोग–वेयणपरिभव–विणिवाय–फरुसधरिसणा–समावडियकढिणकम्मपत्थर–तरंगरंगंत–निच्चमच्चुभय–तोयपट्ठं।

कसाय–पायालसंकुलं, भवसयसहस्स–कलुसजल–संचयं, पइभयं, अपरिमियमहिच्छ–कलुसमइ–वाउवेगउद्धुम्ममाण–दगरयरयंधआर–वरफेणपउर–आसापिवासधवलं।

मोहमहावत्त–भोग–भममाण–गुप्पमाणुच्छलंत–पच्चोणियत्त–पाणिय–पमाय–चंडबहुदुट्ठ–सावय समाहयुद्धायमाण–पब्भार–घोरकंदिय–महारवरवंत भेरवरवं।

अण्णाणभमंतमच्छपरिहत्थ–अणिहुयिंदियमहामगर–तुरियचरियखोखुब्भमाण–नच्चंत–चवलचंचलंत–धुधुम्मंतजलसमूहं।

अरइ–भय–विसय–सोग–मिच्छत्त–सेलसंकडं, अणाइसंताणकम्मबंधण–किलेस–चिक्खिल्लसुदुत्तारं, अमर–नर–तिरिय–णरय–गइगमण–कुडिलपरियत्तविउलवेलं, चउरंतं, महंतमणवदग्गं, रुद्दं संसारसागरं भीमं, दरिसणिज्जं।

३२. **(क)** वे (अनगार) संसार के भय से उद्विग्न एवं चिन्तित थे–अर्थात् चतुर्गतिमय संसार चक्र को कैसे पार कर पायें–इस चिन्तन में सर्वदा व्यस्त थे।

यह संसार एक समुद्र है। जन्म, जरा तथा मृत्युरूपी घोर दुःख रूप–छलछलाते उछलते अपार जल से यह भरा है।

उस जल में संयोग–वियोग के रूप में लहरें उत्पन्न हो रही हैं। चिन्तापूर्ण प्रसंगों से वे लहरें दूर–दूर तक फैलती जा रही हैं। वध (मृत्यु) और बन्धन (परवशता) रूप विशाल, विपुल कल्लोलें उठ रही हैं, यह (समुद्र) **करुण विलपित**–शोकपूर्ण विलाप तथा लोभ की कलकल करती तीव्र ध्वनियों से गर्जनायुक्त हैं।

जल का ऊपरी भाग **तोयपृष्ठ**–अपमान या तिरस्कार रूप झागों से ढँका है। दुःसह निन्दा, निरन्तर अनुभव होती रोगजनित वेदना, **पराभव**–औरों से प्राप्त होता अपमान, **विनिपात**–नाश, तिरस्कार व निष्ठुर वचनों द्वारा प्राप्त निर्भर्त्सना, तथा ज्ञानावरणीय आदि आठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-४

Illustration No. 4

संसार समुद्र : संयम पोत

यह संसार एक समुद्र है। जन्म-जरा-मृत्यु रूप छलछलाता जल भरा है। संयोग-वियोग की लहरें उठ रही हैं। शोक-लोभ की कल-कल ध्वनियों से यह कोलाहलमय बना है। भय, विषाद, शोक, मिथ्यात्व रूपी पर्वत चट्टानें व शिलाएँ बीच-बीच में अवरोधक बनी हैं। इच्छाओं-तृष्णाओं के वायुवेग से तरंगे ऊपर आकाश तक उछल रही हैं। इसमें मोह के विशाल भँवर जाल-आवर्त उठ रहे हैं। अज्ञान-रूप मगरमच्छ हैं। अनुपशांत इन्द्रिय समूह रूप मत्स्य हैं। आर्त-रौद्र ध्यान रूप भयंकर जल जीव इसमें उछल रहे हैं।

इस समुद्र में, संयम रूपी जहाज को धैर्य व सहिष्णुता के रस्सों से लंगर डालकर उसे बाँध रखा है। संवर और वैराग्य रूप उसके मस्तूल हैं। ज्ञान रूपी निर्मल श्वेत पाल तना है। विशुद्ध सम्यक्त्व रूप कर्णधार है। वीतराग वाणी के आराधक श्रमण सार्थवाह हैं और ज्ञान-दर्शन-व्रत-यतना-निर्जरा रूप माल भरा हुआ है। ये संयमी श्रमण इस संयम रूपी जहाज में बैठकर सिद्धि-मुक्ति रूपी बन्दरगाह की तरफ नाव को खेते हुए बढ़ते जा रहे हैं।

-सूत्र ३२

OCEAN OF MUNDANE EXISTENCE : SHIP OF ASCETIC-DISCIPLINE

This world is an ocean overflowing with the turbulent water body that is the misery of birth, dotage, and death. Waves in the form of meeting and separation are emerging. That sea echoes with the thundering sounds of grief and greed. Hills, rocks and boulders of fear, sorrow, grief and unrighteousness block the path. Giant waves of desires and cravings are rising sky high. Large vortexes of fondness are rising. This sea is infested with crocodiles of ignorance and large fishes of agitated sense organs as well as leaping ferocious aquatic beings in the form of tormented and agitated thoughts.

In this sea floats the stout ship of ascetic-discipline held fast with the rope of patience and tolerance. It is fitted with the masts of *samvar* and detachment. It has pure white sails of knowledge. Sublime righteousness is its navigator. The *Shraman* followers of the sermon of the *Vitarag* are the seafarers. The ship is loaded with the merchandise of knowledge, perception/faith, great vows, alertness, and shedding of *karmas*. These disciplined ascetics aboard this ship of ascetic-discipline are advancing towards the port of *Siddha* state.

—Sutra 32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मरूपी कठोर पाषाणों की टक्कर से उठती हुई तरंगों से वह चंचल है। वह तोयपृष्ठ साक्षात् मृत्यु जैसा है।

यह संसार रूप समुद्र **कषाय**–क्रोध, मान, माया, लोभ रूप **पाताल** (जिसकी तलभूमि में कषाय रूप पाताल कलश हैं) से परिव्याप्त है। इस (समुद्र) में लाखों जन्मों में अर्जित पापमय भयंकर जल संचित है। असीम इच्छाओं से मलिन बुद्धिरूपी वायु के झौंकों से ऊपर उछलते सघन जल–कणों के कारण अंधकारयुक्त हो रहा है तथा आशा एवं पिपासारूपी उजले झागों की तरह वह धवल उज्ज्वल–सा दीखता है।

संसार–सागर में मोह रूप बड़े–बड़े **आवर्त्त**–जलमय विशाल चक्र हैं। उनमें भोग रूप **भँवर**–जल के छोटे गोलाकार घुमाव हैं। दुःख रूप जल भ्रमण करता हुआ–चक्र काटता हुआ अत्यन्त चंचल हो रहा है, ऊपर उछलता है, नीचे गिरता है। इस समुद्र में प्रमाद रूप प्रचण्ड–भयानक, अत्यन्त दुष्ट–हिंसक जल जीव हैं। इन जीवों द्वारा आहत हुए संसारी जीव ऊपर उछलते हुए, नीचे गिरते हुए, बुरी तरह चीखते–चिल्लाते हैं। मानो यह उसका भयावह घोष या गर्जन है, यह भयानक क्रन्दन की प्रतिध्वनि है।

अज्ञानरूपी मत्स्य भवसागर में घूम रहे हैं। अनुपशान्त इन्द्रिय रूप विकराल महामच्छों के निरन्तर चलते रहने से जल क्षुब्ध हो रहा है–उछल रहा है, नृत्य–सा कर रहा है, विद्युत् वेग से चंचलतापूर्वक चल रहा है, घूम रहा है।

यह संसार रूप सागर संयम में अरुचि, रूप अरति, भय, विषाद, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पर्वतों से अत्यन्त विकट बना हुआ है। अनादिकाल से चले आ रहे कर्म तथा उनसे उद्भूत क्लेश रूप रागादि कीचड़ के कारण अत्यन्त दुस्तर बना हुआ है। यह देवगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति तथा नरकगति में निरन्तर परिभ्रमण रूप **कुटिल परवर्त**–दिग्भ्रान्त करने वाले विकट ज्वार सहित है। चार गतियों के रूप में इसके चार अन्त–किनारे हैं। यह विशाल, अगम्य–अगाध, रौद्र तथा भयानक दिखाई देने वाला है।

THE OCEAN OF MUNDANE EXISTENCE

32. (a) They (*anagars*) were afraid and alarmed of this mundane world. In other words, every moment they were busy thinking how to cross this cycle of rebirths in four dimensions.

This world is an ocean overflowing with vast and turbulent water body that is the extreme misery of birth, dotage and death.

Waves in the form of meeting and separation (of desired and undesired things, conditions and people) are emerging out of that

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

water body. These waves are spreading far in the form of worrying conditions and incidents. Giant and sky high waves of death and bondage are rising. That sea echoes with the thundering sounds of sharp cries of grief and loud hails of greed.

The surface of these waters is covered with the foams of insult and repudiation. It is constantly agitated with the waves shattering on hard rocks of intolerable slandering, constant agony of disease, subjugation, destruction, insult, harsh reprimands, and the bondage of eight *karmas* including *jnananvaraniya*. Indeed, that surface is true embodiment of death.

This ocean is contained within the expansive abyss of passions (anger, conceit, deceit and greed) as its base. It has the water of extreme sins accumulated during hundreds of thousands of rebirths. It comes under the gloom of darkness due to the spray of droplets of water thrown up by strong winds of thoughts maligned by endless desires. It also has splashes of bright white in the form of the foams of hope and craving for the hitherto unrealized.

This ocean of mundane life has large vortexes of fondness with smaller whirlpools of indulgence. The extremely agitated and whirling water of miseries continues to rise and fall. This sea is infested with ferocious, cruel and blood-thirsty aquatic beings in the form of *pramad* (torpor and delusion). Tormented and mauled by these creatures, the worldly beings wail and cry bitterly while being tossed around. The terrifying thunder of this ocean appears as if it is the echo of these fearsome sounds of wailing.

Swimming around in this ocean of rebirths are the fishes of ignorance. The continuous movement of fierce giant crocodiles of restless sense organs agitates the sea and water sprouts, dances, moves and whirls with great speed.

Mountains and rocks of indiscipline, fear, grief and falsehood make the ocean all the more tortuous. The quagmire of the dirt of *karmas* and resultant sorrows in the form of attachment and aversion add to the difficulties of crossing it. It has dubious ebbs and tides of unending cycles of rebirths in the four dimensions, namely, divine, human, animal and infernal. The said four dimensions form its four banks. This ocean looks huge, endless, fierce and terrifying.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. (ख) तरंति धिइधणिनिप्पकंपणे तुरियचवलं संवर–वेरग्ग–तुंगकूवयसुसंपउत्तेणं णाण–सिय–विमलमूसिएणं।

सम्मत्त–विसुद्ध–णिज्जामएणं धीरा संजम–पोएण सीलकलिया पसत्थज्झाण–तववाय–पणोल्लिय–पहाविएणं उज्जम–ववसायग्गहियणिज्जरण–जयणउवओग–णाण–दंसण–(चरित्त) विसुद्धवय (वर) भंडभरियसारा।

जिणवरवयणोवदिट्ठमग्गेण अकुडिलेण सिद्धिमहापट्टणाभिमुहा समणवरसत्थवाहा सुसुइ–सुसंभास–सुपण्ह–सासा।

गामे गामे एगरायं, णगरे णगरे पंचरायं दूइज्जंता, जिइंदिया, णिब्भया, गयभया सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु विरागयं गया, संजया (विरता), मुत्ता, लहुया, णिरवकंखा साहू णिहुया चरंति धम्मं।

३२. (ख) इस संसार–सागर को वे शीलसम्पन्न अनगार संयम रूप सुदृढ़ जहाज द्वारा शीघ्रतापूर्वक पार कर रहे थे। वह (संयम–पोत) धृति–धैर्य, सहिष्णुता रूप रज्जु से बँधा होने के कारण निष्प्रकम्प–सुस्थिर था। संवर तथा वैराग्य–रूप ऊँचे **कूपक**–ऊँचे मस्तूल से संयुक्त था। उस जहाज में ज्ञान रूप श्वेत, निर्मल वस्त्र का ऊँचा पाल तना हुआ था।

विशुद्ध सम्यक्त्व उसका कर्णधार–खेवनहार है। वह संयम–पोत प्रशस्त ध्यान तथा तप रूप वायु से प्रेरित होता हुआ आगे–आगे बढ़ता रहता था, उस जहाज में उद्यम, व्यवसाय–मोक्षानुसारी प्रयत्न तथा निर्जरा, यतना, उपयोग, ज्ञान, दर्शन (चारित्र) तथा विशुद्ध महाव्रत रूप श्रेष्ठ माल भरा था।

वीतराग प्रभु के वचनों द्वारा उपदिष्ट शुद्ध ऋजु मार्ग से वे श्रमण रूप उत्तम सार्थवाह सिद्धि रूप महापट्टन–बड़े बन्दरगाह की ओर बढ़े जा रहे थे। वे श्रमण सार्थवाह एक मात्र मोक्ष–प्राप्ति की आकांक्षा रखते हुए सम्यक् श्रुत, उत्तम भाषण तथा प्रश्न–प्रतिप्रश्न आदि द्वारा उत्तम शिक्षा प्रदान करते रहते थे।

वे अनगार ग्रामों में एक–एक रात तथा नगरों में पाँच–पाँच रात प्रवास करते थे। वे **जितेन्द्रिय**–इन्द्रियों को वश में करने वाले हुए, **निर्भय**–मोहनीय आदि भयोत्पादक कर्मों का उदय रोकने वाले, **गतभय**–सब प्रकार के भयों से मुक्त थे। **सचित्त**–जीवसहित, **अचित्त मिश्रित**–सचित्त–अचित्त मिले हुए द्रव्यों में विरक्त रहने वाले थे। **संयत**–संयमयुक्त, **विरत**–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा आदि से निवृत्त अथवा पापरहित, मुक्त–आसक्ति से छूटे हुए, लघुक–हल्के अल्पतम उपकरण रखने वाले, निरवकांक्ष–सांसारिक सुखों की आकांक्षा–इच्छारहित–मुक्ति के साधक एवं निभृत–विनीत–मदरहित होकर धर्म की आराधना करते थे।

SHIPS OF ASCETIC-DISCIPLINE

32. (b) Those chaste *anagars* (ascetics) were quickly crossing this ocean of mundane existence with the help of the strong ship of ascetic-discipline. Held fast with the rope of patience and tolerance, that ship was stable. It was fitted with the lofty masts of *samvar* (to stop the inflow of *karmas* by controlling the desires) and detachment. It had the high and wide sail of pure white canvas in the form of knowledge.

Sublime righteousness was its boatman navigator. Driven by the force of the winds in the form of exemplary meditation and austerities, this ship of ascetic-discipline advanced steadily. This ship was loaded with exclusive merchandise in the form of diligence, pursuit of liberation, shedding of *karmas*, alertness, endeavour, knowledge, perception/faith (right conduct) and steadfastness in observing great vows.

Following the shortest route plotted by the *Vitarag* in his sermon, the seafarers (that were those ascetics) were advancing towards the great port of *Siddha* state. With the singular ambition of attaining liberation those *Shraman* seafarers continued to impart excellent education in the form of reciting right scriptures, eloquent discourses and question-answer sessions.

Those *anagars* stayed in villages for one night and in cities for five nights. They were victors over senses. They had blocked the fruition of *karmas* (*mohaniya* and the like) responsible for fear and, as such, were free of all fear. They remained detached from anything and everything living, non-living and mixed. Being disciplined, devoid of violence and sins, free of cravings, light in terms of owning equipment and independent of mundane ambitions and pleasures, they pursued the goal of liberation and indulged in spiritual practices with modesty and humility.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान की सेवा में असुरकुमार देवों का आगमन

३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था।

काल-महाणील-सरिस-णीलगुलिय-गवल-अयसि-कुसुमप्पगासा, वियसियसयवत्तमिव पत्तलनिम्मला, ईसीसिय-रत्त-तंबणयणा, गरुलायय-उज्जु-तुंग-णासा।

ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्ठा।

पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मलसंख-गोखीरफेण-दगरय-मुणालिया-धवलदंतसेढी।

हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्ततल तालुजीहा।

अंजण-घण-कसिण-रुयग-रमणिज्ज-णिद्ध-केसा।

वामेगकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्त गत्ता।

ईसीसिलिंधपुप्फप्पगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया।

वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं च असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा।

तलभंगय-तुडिय-पवरभूसण-निम्मलमणिरयण-मंडियभुया।

दसमुद्दामंडियग्गहत्था।

चुलामणि-चिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया, महज्जुइया, महब्बला, महायसा, महासोक्खा, महाणुभागा।

हारविराइयवच्छा, कडगतुडियथंभियभुया, अंगय-कुंडल-मट्ठगंडतला, कण्णपीढधारी।

विचित्तहत्थाभरणा, विचित्तमालामउलिमउडा।

कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया, कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा।

भासुरबोंदी, पलंबवण-मालधरा।

दिव्वेणं वण्णेपां, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं रूवेणं, एवं-फासेणं, संघाएण, संठाणेणं, दिव्वाए इड्ढीए, जुईए, पभाए, छायाए, अच्चीए, दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिसाओ उज्जोवेमाणा, पभासेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति, णमंसंति, (वंदित्ता) णमंसित्ता (साइं साइं णामगोयाइं सावेन्ति) णच्चासण्णे, णाइदूरे सुस्सूसमाणा, णमंसमाणा, अभिमुहा, विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

३३. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के निकट बहुत से असुरकुमार देव प्रकट हुए।

उनका चमकदार कृष्ण वर्ण-काले महानीलमणि, नीलमणि, नील की गुटका, भैंसों के सींग तथा अलसी के पुष्प समान दीप्तियुक्त था। खिले हुए कमल सदृश उनके नेत्र थे। नेत्रों की भौंहें (सूक्ष्म रोममय) निर्मल थीं। उनके नेत्रों का वर्ण कुछ-कुछ सफेद, किंचित् लाल तथा ताम्र वर्ण का था। उनकी नासिकाएँ गरुड़ के समान लम्बी, सीधी तथा ऊँची थीं।

उनके होठ परिपुष्ट मूँगे एवं बिम्ब फल के समान लाल थे।

उनकी दन्त-पंक्तियाँ-स्वच्छ-निर्मल-चन्द्रमा की रेखा जैसी उज्ज्वल तथा शंख, गाय के दूध के झाग, जलकण एवं कमलनाल के समान धवल-श्वेत थीं।

उनकी हथेलियाँ-पैरों के तलवे, तालु तथा जिव्हा-अग्नि में गर्म किए हुए, धोकर पुनः तपाये हुए, शुद्ध किये हुए निर्मल स्वर्ण के समान लालिमा लिए हुए थी।

उनके केश, काजल तथा मेघ के समान काले तथा रुचक मणि के समान रमणीय और स्निग्ध-चिकने, मुलायम थे।

उनके बायें कानों में एक-एक कुण्डल था (दाहिने कानों में अन्य आभरण थे)। उनके शरीर, आर्द्र चन्दन घिसकर पीठी बनाये हुए चन्दन से लिप्त थे।

उन्होंने सिलींध्र पुष्प जैसे कुछ-कुछ लालिमा लिए हुए श्वेत, महीन, निर्दोष व ढीले सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे।

वे प्रथम वय-बाल्यावस्था को पार कर चुके थे, मध्यम वय-परिपक्व युवावस्था अभी प्राप्त नहीं हुई थी। **भद्र यौवन**-भोली जवानी-किशोरावस्था में विद्यमान थे।

उनकी भुजाएँ तलभंगक-बाहुओं के एक आभरण, त्रुटिका-बाहुरक्षिका भुजबन्ध आदि उत्तम आभूषणों एवं उज्ज्वल मणिरत्नों से सुशोभित थीं।

उनके हाथों की दसों अंगुलियाँ अंगूठियों से मंडित-अलंकृत थीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके मुकुटों पर चूड़ामणि के रूप में विशेष चिह्न थे। जो सुरूप-सुन्दर थे। वे विशिष्ट ऋद्धिशाली, परम द्युतिमान्, अत्यन्त बलशाली, परम यशस्वी, परम सुखी तथा अत्यन्त सौभाग्यशाली थे।

उनके वक्षःस्थल हार से सुशोभित हो रहे थे। वे अपनी भुजाओं पर कंकण तथा भुजाओं को सुस्थिर बनाये रखने वाले आभरण पट्टियाँ एवं **अंगद**-भुजबंध धारण किये हुए थे। उनके **मृष्ट**-केसर, कस्तूरी आदि से **मण्डित**-चित्रित कपोलों पर कुण्डल व अन्य **कर्णभूषण** शोभित थे।

वे विचित्र या अनेक प्रकार के **हस्ताभरण**-हाथों के आभूषण धारण किये हुए थे। उनके मस्तकों पर तरह-तरह की मालाओं से युक्त मुकुट थे।

वे **कल्याणकृत**-मांगलिक या अखण्डित, बहुमूल्य उत्तम पोशाक पहने हुए थे। वे मंगलमय, सुन्दर गूँथी हुई मालाएँ पहने तथा शरीर पर **अनुलेपन**-चन्दन, केसर आदि के विलेपन किये हुए थे।

उनके शरीर देदीप्यमान थे। सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले फूलों से बनी वनमालाएँ उनके गलों से घुटनों तक लटक रही थीं।

उन्होंने **दिव्य**-देवोचित वर्ण, गन्ध, स्पर्श, **संघात**-दैहिक गठन, **संस्थान**-(समचतुरस्र संस्थान), **ऋद्धि**-विमान, वस्त्र, आभूषण आदि की दैविक समृद्धि, **द्युति**-आभा अथवा परिवार आदि का वैभव, **प्रभा**-विमानों की चमक कान्ति, **अर्चि**-शरीर एवं रत्न आदि का तेज दीप्ति, लेश्या-प्रभामण्डल से दसों दिशाओं को उद्योतित-प्रकाशयुक्त, **प्रभासित**-प्रभा या शोभायुक्त करते हुए श्रमण भगवान महावीर के समीप आकर अनुरागपूर्वक-भक्ति सहित तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। वन्दन-नमस्कार किया। वैसा कर (अपने-अपने नामों तथा गोत्रों का उच्चारण करते हुए) भगवान महावीर से धर्म सुनने की इच्छा लिए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए उनकी पर्युपासना करने लगे।

THE ARRIVAL OF ASUR-KUMAR GODS

33. During that period of time numerous *Asur-kumar* gods appeared before Shraman Bhagavan Mahavir.

They had a dark complexion having a gleam like that of great black sapphire, blue sapphire, heap of indigo, buffalo horn and linseed flower. Their eyes were like blooming lotus with finely textured eyebrows. The colour of their eyes was partly white and partly red with a copper hue. Their noses were sharp, straight and high.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Their lips were red like mature coral and bimb fruit [*kundaru* or *Coccinia cordifolia* (L.) Cogn.].

The rows of their teeth were spotless and brilliant white like crescent, purest of conch-shells, cow's milk, foam, kund flower, drops of water and lotus stalk.

The palms of their hands, soles of their feet, palates and tongues were red like heated, washed, reheated and refined pure gold.

Their hair were black as collyrium and dark clouds and were attractive, smooth and soft like *Ruchak* gem.

They had adorned their left ears with ear-rings (and right ears with other ornaments). Their bodies were covered with sandalwood paste.

They had immaculately dressed themselves in *Silindhra* flower-like pinkish white, fine, loose and beautiful robes.

They had crossed their childhood but had not yet attained mature youth and were still in their age of innocent adolescence.

Their arms were adorned with *tal-bhangak, trutika* (bracelet, armlet etc.) and other beautiful ornaments for arms along with brilliant gems.

All the ten fingers were adorned with rings.

Their crowns carried beautiful identifying crests in the form of *Chudamani*. They were epitomes of grandeur, brilliance, power, fame, happiness and good luck.

Their chests were embellished with necklaces. They were wearing tiny bells, armlets, arm-bands and other ornaments that made the arms rigid and unyielding. On their cheeks, made up and painted with fragrant pastes of saffron and musk, rested the ear-ornaments including ear-rings.

The variety of ornaments on their arms were strange and peculiar. The crowns they wore were embellished with a variety of garlands and bead-strings.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Their robes were auspicious, intact, costly and exclusive. They were also adorned with auspicious, beautiful and braided garlands. Their bodies were painted with paste of sandalwood, saffron and other fragrant things.

They had scintillating bodies. Garlands of all season flowers dangled from their necks to knees.

Illuminating and brightening all the ten directions (four cardinal points, four intermediate directions, zenith and nadir) with their divine complexion, aroma and touch; divine physical built (*samghat*) and constitution (*samsthan*); divine celestial vehicles, dresses, ornaments and wealth (*riddhi*); divine glow or family grandeur (*dyuti*); divine shine of celestial vehicles and other things (*prabha*), divine brilliance of body, gems etc. (*archi*); and divine orb (*leshya*) they came near Bhagavan Mahavir and moved around him three times with devotion. They paid him homage (introducing themselves by announcing their names) and joining palms in all humility commenced his worship with a desire to listen to his sermon.

अन्य भवनवासी देवों का आगमन

३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था–णागपइणो, सुवण्णा, विज्जू, अग्गी य दीव–उदही, दिसाकुमारा य पवण–थणिया व भवणवासी, णागफडा–गरुल–वइर–पुण्णकलस–सीह–हय–गय–मगर–मउड–वद्धमाण–णिज्जुत्त चिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया सेसं तं चेव जाव पज्जुवासंति।

३४. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के पास (१) असुरकुमारों को छोड़कर बहुत से भवनवासी देव प्रकट हुए। यथा–(२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवनकुमार, तथा (१०) स्तनितकुमार। उनके मुकुटों में क्रमशः (२) नागफण, (३) गरुड़, (४) वज्र, (५) पूर्ण कलश, (६) सिंह, (७) अश्व, (८) हाथी, (९) मगर, तथा (१०) वर्द्धमान–तश्तरी ज्यातरा अथवा कंधेचढ़ा पुरुष के चिह्न अंकित थे। वे सुन्दर यावत् परम ऋद्धिशाली थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[वे सभी भवनवासी देव (असुरकुमार देवों की भाँति) विविध आभूषण मण्डित कांतिमान दीप्तिमान थे। उनका वर्णन पूर्व सूत्र ३३ के अनुसार जानना चाहिए।] भगवान महावीर के सामने हाथ जोड़ते हुए उनके सामने पर्युपासना करने लगे।

ARRIVAL OF OTHER BHAVAN-VASI GODS

34. During that period of time, excluding the (1) *Asur-kumar* gods, many other *Bhavan-vasi* (mansion residing) gods appeared before Shraman Bhagavan Mahavir. They included—(2) *Naag-kumar*, (3) *Suparn-kumar*, (4) *Vidyut-kumar*, (5) *Agni-kumar*, (6) *Dveep-kumar*, (7) *Udadhi-kumar*, (8) *Disha* (*Dik*)*-kumar*, (9) *Pavan* (*Vayu*)*-kumar*, and (10) *Stanit-kumar*. On their crowns they had emblems with identifying marks of (2) snake-hood, (3) *Garud* (eagle), (4) *Vajra* (thunder-weapon), (5) urn, (6) lion, (7) horse, (8) elephant, (9) crocodile, and (10) *vardhaman* (illustration of cup-saucer or a man riding another man's shoulders). They were handsome and very rich.

(This is followed by the description of their appearance and adornments as in preceding aphorism 33) Joining palms in all humility they commenced his worship with a desire to listen to his sermon.

विवेचन—इस सूत्र में स्तनितकुमार देवों के मुकुटस्थ चिह्न के लिए **वद्धमाण–'वर्द्धमानक'** शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्द्धमान शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शब्द कोशों में इसके शराव–तश्तरी–सिकोरा, अथवा स्कन्धारोपित पुरुष, कंधे पर चढ़ा हुआ पुरुष, स्वस्तिक आदि अनेक अर्थों का उल्लेख है। (संस्कृत–हिन्दी कोश, वा. शि. आप्टे)

आचार्य अभयदेवसूरि ने शराव के साथ कंधे पर चढ़ा हुआ पुरुष–**स्कन्धारोपित पुरुष**–ऐसा अर्थ भी किया है। आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज ने वर्द्धमान का स्वस्तिक अर्थ किया है। (टीका, पृष्ठ ३३३)

Elaboration—This aphorism mentions the term *'vardhaman'* (*vardhamanak*) for the identifying mark on the crowns of *Stanit-kumar* gods. Besides its literal meaning—ever increasing—this word has a wide range of meanings. Some of these are—saucer and cup; a man riding another man's shoulders; *Swastika* etc. (*Sanskrit-Hindi Dictionary* by Vaman Shivanarain Apte)

Acharya Abhayadev Suri has interpreted it as saucer and cup as well as a man riding another man's shoulders. Acharya Ghasilal ji M. has interpreted it as *Swastika* (*Tika* by him, p. 333)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था–पिसायभूया य जक्खरक्खसा, किंनर–किंपुरिस–भुयगपइणो ये महाकाया, गंधव्वणिकायगणा णिउणगंधव्वगीयरइणो, अणवण्णिय–पणवण्णिय–इसिवादिय–भूयवादिय–कंदिय–महाकंदिया य; कुहंड–पयए च देवा।

चंचल–चवलचित्त–कीलणा–दवप्पिया, गंभीरहसिय–भणिय–पीय–गीय–णच्चणरई, वणमाला मेल–मउड–कुंडल–सच्छंद–विउव्वियाहरणचारुविभूसणधरा।

सव्वोउय–सुरभि–कुसुम–सुरइय–पलंब–सोभंत–कंत–वियसंत–चित्त–वणमालरइयवच्छा।

कामगमा, कामरूवधारी, णाणाविह–वण्णराग–वरवत्थ–चित्त–चिल्लयणियंसणा, विविहदेसीणेवच्छगहियवेसा।

पमुइयकंदप्प–कलहकेलीकोलाहलपिया, हासबोलबहुला, अणेगमणि–रयण–विविहणिज्जुत्तविचित्तचिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया जाव पज्जुवासंति।

३५. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के समीप बहुत से वाणव्यन्तर जाति के देव प्रकट हुए। यथा–(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महाकाय भुजगपति, (८) गन्धर्व जाति के नाट्ययुक्त गान में तथा नाट्य वर्जित गान विद्या (शुद्ध संगीत) में रुचि रखने वाले गंधर्वदेव, (९) अणपन्निक, (१०) पणपन्निक, (११) ऋषिवादिक, (१२) भूतवादिक, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५) कूष्माण्ड, तथा (१६) प्रयत या पतग देव।

वे वाण व्यन्तरदेव चपल, चित्तयुक्त, क्रीड़ा तथा परिहासप्रिय (विनोदी स्वभाव) थे। उन्हें गम्भीर हास्य–अट्टहास तथा वैसी ही वाणी प्रिय थी। अर्थात् उन्हें हसित (हँसना) तथा भणित–बोलना विशेष प्रिय था। गीत और नृत्य में उन्हें विशेष अनुराग था। वे वैक्रियलब्धि द्वारा अपनी इच्छानुसार विरचित वनमाला, फूलों का सेहरा या कलंगी, मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों द्वारा सुन्दर रूप में सजे हुए थे।

सब ऋतुओं में खिलने वाले सुगन्धित पुष्पों से सुरचित, लम्बी–घुटनों तक लटकती हुई, शोभायुक्त, सुन्दर, विकसित वनमालाओं द्वारा उनके वक्षःस्थल बड़े आह्लादकारी प्रतीत होते थे।

वे **कामगम**–इच्छानुसार जहाँ कहीं जाने का सामर्थ्य रखते थे, **कामरूपधारी**–इच्छानुसार (यथेच्छ) रूप धारण करने में सक्षम थे। वे भिन्न–भिन्न रंग के उत्तम, चित्र–विचित्र–तरह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह के चमकीले-भड़कीले वस्त्र पहने हुए थे। अनेक देशों की वेशभूषा के अनुरूप उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के **नेपथ्य**-पोशाकें धारण कर रखी थीं।

वे प्रमोदयुक्त **काम-कलह**-काम-क्रीड़ा तथा तज्जनित कोलाहल में आनन्द लेते थे। वे बहुत हँसने वाले तथा बहुत बोलने वाले थे। वे अनेक मणियों एवं रत्नों से विविध रूप में निर्मित चित्र-विचित्र चिह्न धारण किये हुए थे। वे सुन्दर रूप युक्त तथा परम ऋद्धि-सम्पन्न थे। (असुरकुमार देवों की तरह यथाविधि वन्दन-नमन कर) श्रमण भगवान महावीर की पर्युपासना करने लगे।

ARRIVAL OF VAAN-VYANTAR GODS

35. During that period of time many other *Vaan-vyantar* (interstitial) gods appeared before Shraman Bhagavan Mahavir. They included—(1) *Pishach*, (2) *Bhoot*, (3) *Yaksh*, (4) *Rakshas*, (5) *Kinnar*, (6) *Kimpurush*, (7) *Mahakaya Bhujagapati*, (8) *Gandharvas* who are keenly interested in dance-music and pure music (without dance), (9) *Anapannik*, (10) *Panapannik*, (11) *Rishivadik*, (12) *Bhoot-vadik*, (13) *Krandit*, (14) *Mahakrandit*, (15) *Kushmand*, and (16) *Prayat* or *Patag* gods.

These *Vaan-vyantar* (interstitial) gods were mercurial by nature and loved fun and frolic. They liked loud and resounding laughter and speech. In other words, they were very fond of mirth and gossip. They were specially attached to music and dance. They were adorned with ornaments like garlands (*vanamala*), wreath (*sehara*) or tiara with feather plume (*kalangi*), crown and ear-rings made of wild flowers produced with the help of their *vaikriya labdhi* (divine power of transmutation).

Adorned with beautiful and exquisite knee-length garlands of all season flowers in full bloom, their chests looked pleasing.

They had the power to go wherever they desired (*kamagam*) and to assume whatever form they wanted (*kamarupadhari*). They were wearing colourful, gaudy, glossy and exquisite dresses of a variety of shades and designs. Attires and dress codes of many countries were evident in their dresses.

They enjoyed good humoured and playful amatory activities and the resulting revelry. They were conspicuously mirthful and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

talkative. They wore various strange insignias and badges studded with a variety of gems and beads. They were handsome and very rich. (This is followed by the description of their appearance and adornments as in preceding aphorism) Joining palms in all humility, they commenced his worship with a desire to listen to his worship.

ज्योतिष्क देवों का आगमन

३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था; विहस्सति–चंद–सूर–सुक्क–सणिच्छरा, राहू, धूमकेतु, बुहा य अंगारका य तत्ततवणिज्ज कणगवण्णा, जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति, केऊ य गइरइया अट्ठावीसतिविहा य णक्खत्तदेवगणा, णाणासंठाणसंठियाओ य पंचवण्णाओ ताराओ ठियलेसा, चारिणो य अविस्साममंडलगई, पत्तेयं णामंकपागडियचिंधमउडा महिड्ढिया जाव पज्जुवासंति।

३६. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के समीप ज्योतिषी देव प्रकट हुए। उनके नाम ये हैं–(१) बृहस्पति, (२) चन्द्र, (३) सूर्य, (४) शुक्र, (५) शनैश्चर, (६) राहू, (७) धूमकेतु, (८) बुध, तथा (९) मंगल। इनका वर्ण तपे हुए स्वर्ण के समान पीली प्रभा लिए था। इनके अतिरिक्त ज्योतिश्चक्र में परिभ्रमण करने वाले गति विशिष्ट–केतु–जलकेतु आदि ग्रह, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, नाना आकृतियों के पाँच वर्ण के तारे–तारा जाति के देव प्रकट हुए। उनमें स्थित–गतिविहीन रहकर प्रकाश करने वाले (अथवा स्थिर लेश्या वाले) तथा **अविश्रान्ततया** बिना रुके अनवरत गति करने वाले कार्य दोनों प्रकार के ज्योतिष्क देव थे। उनमें प्रत्येक ने अपने–अपने नाम से अंकित अपना विशेष चिह्न अपने मुकुट पर धारण कर रखा था। वे परम ऋद्धिशाली ज्योतिषी देव श्रमण भगवान महावीर की पर्युपासना करने लगे।

ARRIVAL OF JYOTISHK GODS

36. During that period of time many other *Jyotishk* (stellar) gods appeared before Shraman Bhagavan Mahavir. They included—(1) *Brihaspati* (Jupiter), (2) *Chandra* (the Moon), (3) *Surya* (the Sun), (4) *Shukra* (Venus), (5) *Shanaishchar* (Saturn), (6) *Rahu*, (7) *Dhoomketu* (comet), (8) *Budha* (Mercury), and (9) *Mangal* (Mars). Their colour had a yellow hue like that of molten gold. Besides these, there were many other gods representing the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

speeding *Ketu* and other planets, the twenty eight constellations, stars of various shapes and five colours and other heavenly bodies orbiting around in the space. These included both stationary and moving sources of light. Each one of them wore their specific insignias with their names on their crowns. They were handsome and very rich. (This is followed by the description of their appearance and adornments as in preceding aphorism) Joining palms in all humility, they commenced his worship with a desire to listen to his sermon.

वैमानिक देवों का आगमन

३७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था–सोहम्मीसाण–सणंकुमार–माहिंद–बंभ–लंतग–महासुक्क–सहस्साराणय–पाणयारण–अच्चुवई पहिट्ठा देवा जिणदंसणुस्सुया गमणजणियाहासा।

पालग–पुप्फग–सोमणस्स–सिरिवच्छ–णंदियावत्त–कामगम–पीइगम–मणोगम–विमल–सव्वओभद्द–सरिसणामधेज्जेहिं विमाणेहिं ओइण्णा वंदगा जिणिंदं, मिग–महिस–वराह–छगल–द्दुर–हय–गयवइ–भुयग–खग्ग–उसभंक विडिमपागडियचिंधमउडा, पसिढिलवरमउडतिरीडधारी, कुंडलउज्जोवियाणणा, मउडदित्तसिरया, रत्ताभा, पउमपम्हगोरा, सेया, सुभवण्णगंधफासा, उत्तमवेउव्विणो, विविहवत्थगंधमल्लधारी, महिड्ढिया महज्जुतिया जाव पंजलिउडा पज्जुवासंति।

३७. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के समक्ष (१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्म, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, तथा (१२) अच्युत देवलोकों में रहने वाले वैमानिक देवों के अधिपति इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हुए। जिनेश्वर देव के दर्शन पाने की उत्सुकता तथा अपने वहाँ पहुँचने से उत्पन्न हर्ष से वे आनन्दित थे।

(जिनेन्द्र प्रभु का वन्दन–स्तवन करने वाले वे बारह देवलोकों के दस अधिपति देव) (१) पालक, (२) पुष्पक, (३) सौमनस, (४) श्रीवत्स, (५) नन्द्यावर्त, (६) कामगम, (७) प्रीतिगम, (८) मनोगम, (९) विमल, तथा (१०) सर्वतोभद्र नामक अपने–अपने विमानों से भूमि पर उतरे। इन देवेन्द्रों के मुकुटों में (१) मृग–हरिण, (२) महिष–भैंसा, (३) वराह–सूअर, (४) छगल–बकरा, (५) दुर्दुर–मेढ़क, (६) हय–घोड़ा, (७) गजपति–

उत्तम हाथी, (८) भुजंग-सर्प, (९) खड्ग-गैंडा, तथा (१०) वृषभ-सांड के चिह्न अंकित थे। वे श्रेष्ठ मुकुट ढीले-सुहाते, शिथिल-बिखरे हुए केश विन्यासयुक्त मस्तकों पर विद्यमान थे। कुण्डलों की उज्ज्वल आभा से उनके मुख उद्योतित थे। मुकुटों से उनके मस्तक दीप्तिमान् थे। उनका शरीर **पद्मगर्भ**–कमल केशर के समान लालिमायुक्त गौरवर्ण का था। वे शुभ वर्ण, सुखद स्पर्श आदि निर्माण करने में उत्तम वैक्रियलब्धि के धारक थे। वे शरीर पर अनेक प्रकार के वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य तथा मालाएँ धारण किये हुए थे। वे परम ऋद्धिशाली एवं परम द्युतिमान् देव हाथ जोड़कर भगवान की पर्युपासना करने लगे।

ARRIVAL OF VAIMANIK GODS

37. During that period of time many other *Vaimanik* (endowed with celestial vehicles) gods appeared before Shraman Bhagavan Mahavir. They included the overlords (*Indras*) of heavenly abodes (*dev-loks*) or celestial vehicles named—(1) *Saudharma*, (2) *Ishan*, (3) *Sanat-kumar*, (4) *Mahendra*, (5) *Brahma*, (6) *Lantak*, (7) *Mahashukra*, (8) *Sahasrar*, (9) *Anat*, (10) *Pranat*, (11) *Aran*, and (12) *Achuyt*. They derived unprecedented joy by arriving there and fulfilling their desire to behold the *Jina*.

These gods (the ten *Indras* of the twelve heavenly abodes coming to pay homage to the *Jina*) landed on the earth in their vehicles named—(1) *Palak*, (2) *Pushpak*, (3) *Saumanas*, (4) *Shrivats*, (5) *Nandyavart*, (6) *Kamagam*, (7) *Pritigam*, (8) *Manogam*, (9) *Vimal*, and (10) *Sarvatobhadra* respectively. On their crowns, these kings of gods (*Indras*) had the insignias of (1) *Mrig* (deer), (2) *Mahish* (buffalo), (3) *Varah* (wild boar), (4) *Chhagal* (goat), (5) *Durdur* (toad), (6) *Haya* (stallion), (7) *Gajapati* (bull elephant), (8) *Bhujang* (serpent), (9) *Khadga* (rhinocerous), and (10) *Vrishabh* (bull) respectively. These crowns rested on heads with tousled hair. Their faces gleamed in the brilliant glitter of their ear-rings and so did their heads in the radiance of their crowns. Their complexion was pinkish white like pollen of lotus flower. They were endowed with the special power of transmutation (*vaikriya labdhi*) with the ability of manifesting pleasant colour, touch and other such attributes. They were adorned with a variety of clothes, perfumes and garlands. These gods were highly endowed and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

radiant. (This is followed by the description of their appearance and adornments as in preceding aphorism) Joining palms in all humility, they commenced his worship with a desire to listen to his sermon.

विवेचन–प्रस्तुत आगम में सूत्र ३३ से ३७ तक भगवान महावीर के समवसरण में दर्शन करने के लिए चार जाति के देवों के आगमन का प्रसंग है। इन देवताओं के सम्बन्ध में विशेष जानने योग्य तथ्यों का सार इस प्रकार है–

१. असुरकुमार

इन्हें भवनपति देव कहते हैं–इनके दस प्रकार हैं–(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिक्कुमार, (९) पवनकुमार, (१०) स्तनितकुमार।

निवास–तिर्यक् लोक के समभूतल से नीचे, अधोलोकवर्ती रत्नप्रभा पृथ्वी (प्रथम नरक भूमि जो एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली है) एक हजार योजन अन्दर प्रवेश करने पर तथा नीचे से एक हजार योजन छोड़ने पर के ऊपर से एक लाख अठहत्तर हजार योजन के मध्य भाग में भवनवासी देवों के करोड़ों भवनावास हैं। ये भवन बाहर में वृत्ताकार, अन्दर से चतुष्कोण हैं। विशाल खुदी हुई खाई तथा परिखा से युक्त है।

भवनवासी देवों का परिवार–हजारों सामानिक देव, त्रायस्त्रिंश देव, लोकपाल, सेना, सेनापति, हजारों आत्मरक्षक देव तथा अग्रमहिषियाँ आदि परिवार सहित ये अधोलोक के उक्त स्थान पर रहते हैं। सतत नृत्य देखना, वीणा, बाँसुरी आदि का मधुर संगीत सुनते रहना यह इनकी रुचि है।

ये देव दक्षिण दिशा तथा उत्तर दिशाओं में रहते हैं। प्रत्येक दिशा में भवनपति देवों के एक-एक इन्द्र अर्थात् दक्षिण दिशावर्ती दस भवनपतियों के दस तथा उत्तर दिशावर्ती दस भवनपतियों के दस इस प्रकार कुल बीस इन्द्र हैं।

भवनपति देवों का वर्ण व वस्त्र–असुरकुमारों का वर्ण कृष्ण, वस्त्र–लाल।

नागकुमार व उदधिकुमारों का वर्ण–श्वेत–पीत (पंडुर), वस्त्र–सिलिंध्र वृक्ष के फूलों के समान, कुछ लाल, कुछ श्वेत आभा लिए।

सुवर्णकुमार, दिशाकुमार व स्तनितकुमारों का वर्ण–उज्ज्वल स्वर्ण रेखा के समान गौर वर्ण, वस्त्र–आसासग वृक्ष जैसा।

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार का वर्ण–तपे हुए सोने के समान ताम्र वर्ण, वस्त्र–नीले।

वायुकुमार का वर्ण–प्रियंगु वृक्ष (पीपल) जैसा, वस्त्र–संध्याराग जैसा सिंदूरी। (पण्णवणा पद, २) (इनका विस्तृत वर्णन गणितानुयोग, अधोलोक वर्णन, पृष्ठ ७४ से १०८ तक देखें)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-५

Illustration No. 5

भगवान की वन्दना करने चारों जाति के देवों का आगमन

भगवान महावीर जब चम्पा में विराजमान थे उस समय असुर कुमार जाति के देव वन्दना करने के लिए सेवा में उपस्थित हुए। काले नील मणि के समान दीप्तिमय उनका वर्ण था। कण्ठ, बाहु आदि पर हार आदि विविध प्रकार के आभूषण पहने थे। मुकुटों पर चूड़ामणि के विशेष चिन्ह अंकित थे। सभी ऋतुओं के फूलों की मालाएँ उनके घुटनों तक लटक रही थी। वे देव भक्ति पूर्वक भगवान को वन्दना करते हैं। उसी प्रकार नाग कुमार, सुपर्ण कुमार आदि भवनवासी देव भी आ आकर भगवान को भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।

व्यन्तर जाति के देव भी चित्र विचित्र प्रकार के वस्त्र आभूषण पहने, मन इच्छित तरह-तरह के रूप धारण किये, भगवान की वन्दना करते हैं।

इसी समय ज्योतिष्क जाति के सूर्य-चन्द्र-मंगल-वृहस्पति आदि देव भी आकर उपस्थित हुए। उनका वर्ण स्वर्ण के समान दीप्तिमान था। उनके मुकुट में उनके विशेष चिन्ह अंकित थे।

बारह देवलोकों के अधिपति दस इन्द्र भी आये, जो अपने-अपने दिव्य परिधानों के साथ विविध आभूषण पहने हुए थे। उनके मुकुटों में हरिण-महिष-अश्व-बकरा आदि के विविध चिन्ह अंकित थे।

इस प्रकार चार जाति के देवों के अधिपति भक्तिभाव पूर्वक श्रमण भगवान महावीर की वन्दना करते हैं। फिर अपना-अपना परिचय देकर पर्युपासना करते हैं।

-सूत्र ३३-३७

FOUR TYPES OF GODS ARRIVE TO PAY HOMAGE

When Shraman Bhagavan Mahavir was in Champa, *Asur Kumar* gods came to pay homage. They had a dark complexion having a gleam like that of black and blue sapphire. Their necks, arms and other parts were adorned with ornaments including necklaces. Their crowns carried beautiful identifying crests in the form of *Chudamani*. Garlands of all season flowers dangled from their necks to knees. With devotion they paid homage to *Bhagavan*. In the same way other *Bhavan-vasi* gods including *Naag-kumar* and *Suparn-kumar* also came and paid homage to *Bhagavan* with devotion.

Vaan-vyantar (interstitial) gods, dressed in strange colourful garbs and ornaments also appeared in their desired forms and paid homage to *Bhagavan*.

Also appeared the stellar gods including the sun, the moon, Mars, and Jupiter. There complexion was brilliant like gold. They too had identifying crests on their crowns.

Ten overlords (*Indras*) of twelve divine realms also visited. They were wearing their divine garments and a variety of ornaments. Their crowns carried the identifying signs of deer, buffalo, horse, goat, etc.

Thus the overlords of four types of gods paid homage to Shraman Bhagavan Mahavir with all devotion. Then they introduced themselves and commenced worship.

—Sutra 33-37

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. वाणव्यन्तर देव

निवास–तिर्यक् लोक के समभूतल भू–भाग की अधोदिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के सौ योजन ऊपर तथा ऊपरी भाग से सौ योजन नीचे, मध्य के आठ सौ योजन तिरछे भू–भाग में वाणव्यन्तर देवों के असंख्य लक्ष नगरावास है।

इनके ८–८ भेद हैं–(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) भुजगपति महाकाय महोरग, तथा (८) गंधर्वगण

(१) अणपन्निक, (२) पणपन्निक, (३) रिषिवादिक, (४) भूतवादिक, (५) क्रंदित, (६) महाक्रंदित, (७) कुहंड, (८) पतगदेव।

मेरुपर्वत से दक्षिण तथा उत्तर दोनों दिशाओं में इनके भी दो–दो इन्द्र कुल १६ + १६ = ३२ इन्द्र हैं।

वाणव्यन्तर देवों के आठ चैत्यवृक्ष (प्रिय अथवा पवित्र वृक्ष) हैं–(१) पिशाचों का कंदब वृक्ष, (२) यक्षों का वट वृक्ष, (३) भूतों का तुलसी, (४) राक्षसों का कंटक, (५) किन्नरों का अशोक, (६) किंपुरुषों का अशोक, (७) भुजंगों का नाग वृक्ष, (८) गंधर्वों का तिंदुक वृक्ष।

इनकी रुचि व वस्त्र आदि के विषय में उक्त सूत्र में वर्णन किया ही है। ये सभी देव भवनपति देवों से ऊपर के भाग में अधोलोक में निवास करते हैं। (विस्तृत वर्णन के लिए गणितानुयोग तिर्यक् लोक, पृष्ठ ४२०–४२८ तक देखें)

३. ज्योतिषी देव

ज्योतिषी देवों के पाँच भेद हैं–(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र, और (५) तारा।

निवास–मध्यलोक के समभूतल भाग से सात सौ नब्बे योजन ऊपर आने पर, एक सौ दस योजन के मध्यवर्ती भू–भाग में ज्योतिषी देवों के असंख्य स्थान–असंख्य लाख विमानावास हैं। ये ज्योतिषी देव मेरुपर्वत की चारों दिशाओं में परिमण्डलाकार गति में परिभ्रमण करते रहते हैं। इन्हीं की गति के कारण मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) में दिन, रात, मास, संवत्सर आदि की गणना होती है। एक विशेष बात यह है–

''रयणियर–दिणयराणं नक्खत्ताणं महग्गहाण च।
चार विसेसेण भवा सुह–दुक्ख विही मणुस्साण॥'' –जीवाभिगमसूत्र, पृ. ३, उ. २

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और ग्रहों की विशेष गति के कारण मनुष्यों को सुख–दुःख की प्राप्ति होती है। अर्थात् इनकी गति का प्रभाव मनुष्यों पर पड़ता है। (इनका विस्तृत वर्णन पण्णवणा, पद २; जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ तथा सूर्यप्रज्ञप्ति प्राभृत १९ में है। देखें गणितानुयोग, तिर्यक् लोक, पृष्ठ ४४२ से ४५०)

४. वैमानिक देव

स्थान–मध्यलोक के समभूतल भूमि भाग से असंख्य क्रोडा–क्रोडी योजन ऊपर जाने पर सौधर्म आदि कल्प विमान (देवलोक) प्रारम्भ होते हैं। इनमें सौधर्म, ईशान आदि बारह कल्प विमान हैं। इनमें रहने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले देव कल्पवासी वैमानिक देव कहे जाते हैं। इनके ऊपर नव ग्रैवेयक विमान तथा उनसे ऊपर पाँच अनुत्तर विमान, यों २६ देवलोक हैं। इनके निवासी कल्पातीत वैमानिक देव कहलाते हैं। वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तावन हजार तेवीस विमान हैं। भगवान महावीर के दर्शन-वन्दन हेतु आने वाले १२ कल्पवासी वैमानिक देवों का यहाँ वर्णन है। इनमें १ से ८वें देवलोक तक प्रत्येक देवलोक का एक-एक स्वतंत्र अधिपति-इन्द्र है। ९-१० का एक इन्द्र तथा ११-१२ का एक इन्द्र, इस प्रकार बारह देवलोकों के दस इन्द्र हैं।

वैमानिक देवों के पृथ्वी पर आने के कुछ मुख्य कारण होते हैं, जिनमें मुख्य रूप में तीर्थंकर भगवान के जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण आदि कल्याणक महोत्सवों पर उनके दर्शन करने के लिए ये स्वतन्त्र तथा समूहबद्ध होकर आते रहते हैं।

Elaboration—Aphorisms 33 to 37 of this *Agam* describe the arrival of four types of gods in the divine assembly (*Samavasaran*) of Bhagavan Mahavir to offer their homage. The salient features of the information available in *Agams* about these goods are as follows—

1. ASUR-KUMAR GODS

They fall under the class of *Bhavan-vasi* (mansion residing) gods who have ten sub-groups—(1) *Asur-kumar*, (2) *Naag-kumar*, (3) *Suparn-kumar*, (4) *Vidyut-kumar*, (5) *Agni-kumar*, (6) *Dveep-kumar*, (7) *Udadhi-kumar*, (8) *Disha (Dik)-kumar*, (9) *Pavan (Vayu)-kumar*, and (10) *Stanit-kumar*.

Dwelling area—One thousand *yojans* (one *yojan* being eight miles) below the level land and one thousand *yojans* above the bottom of *Ratnaprabha* land (the one hundred eighty thousand *yojans* deep first hell located below the *Tiryak lok* or the middle world) millions of abodes (*bhavans*) of *Asur-kumar* gods are spread in an area of one hundred seventy eight thousand *yojans*. These *bhavans* are circular from outside and quadrangular from inside.

Family—These gods dwell in the said area of *Adho-lok* (lower world) with their extended families of thousands of *Samanik* gods, *Trayastrinsh* gods, *Lokpal*, army, commanders, bodyguards and principal queens. They are keenly interested in always enjoying enchanting dance and music (*vina*, flute and other instruments) performances.

These gods live in the north and the south having one lord of each group in each direction. In other words there are twenty *Indras* in all; ten of the ten northern groups and ten of the ten southern groups.

Complexion and garbs—The *Asur-kumar* gods are black and their garb is red.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The *Naag-kumar* and *Udadhi-kumar* gods are dull white (creamy) and their garb is reddish white like the *Silindhra* flowers.

The *Suvarn-kumar*, *Disha-kumar* and *Stanit-kumar* gods are brilliant yellowish white like a golden line and their garb is of the colour of *Asasag* tree.

The *Vidyut-kumar*, *Agni-kumar* and *Dveep-kumar* gods are copper coloured or reddish yellow like molten gold and their garb is blue.

The *Vayu-kumar* gods have colour like the *Priyangu tree* (*pipal*) and their garb is crimson like the glow of the setting sun. (*Pannavana* 2) (for detailed description see *Ganitanuyoga, Adholok Varnan*, pp. 74-108)

2. VAAN-VYANTAR (INTERSTITIAL) GODS

Dwelling area—One hundred *yojans* (one *yojan* being eight miles) below the level land of the *Tiryak lok* (middle world) and one hundred *yojans* above the *Ratnaprabha* land innumerable millions of abodes of *Vaan-vyantar* (interstitial) gods are spread in a transverse area of eight hundred *yojans*.

They have two groups of eight types each—First group—(1) *Pishach*, (2) *Bhoot*, (3) *Yaksh*, (4) *Rakshas*, (5) *Kinnar*, (6) *Kimpurush*, (7) *Bhujagapati Mahakaya Mahorag*, and (8) *Gandharvas*.

Second group—(1) *Anapannik*, (2) *Panapannik*, (3) *Rishi-vadik*, (4) *Bhoot-vadik*, (5) *Krandit*, (6) *Mahakrandit*, (7) *Kushmand*, and (8) *Prayat* or *Patag* gods.

South and north of the Meru mountain they too have one overlord (*Indra*) for each class making the total number of *Indras* to be 16 + 16 = 32.

The *Vaan-vyantar* (interstitial) gods have eight pious trees dear to them—(1) *Kadamb* for *Pishach*, (2) *Banyan* for *Yaksh*, (3) *Tulsi* for *Bhoot*, (4) *Kantak* for *Rakshas*, (5) Ashoka for *Kinnar*, (6) Ashoka for *Kimpurush*, (7) *Naag* for *Bhujangapati Mahakaya Mahorag*, and (8) *Tinduk* for *Gandharvas*.

The description of their interests, garbs and other things has already been mentioned in the aforesaid aphorisms. All these gods live at a level higher than that of the *Bhavan-vasi* gods in the *Adho lok* (lower world). (for detailed description see *Ganitanuyoga, Tiryak lok Varnan*, pp. 420-428)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3. JYOTISHK (STELLAR) GODS

These are of five types—(1) *Chandra* (the Moon), (2) *Surya* (the Sun), (3) *Graha* (planets), (4) *Nakshatra* (constellations), and (5) *Tara* (stars).

Dwelling area—Seven hundred ninety *yojans* (one *yojan* being eight miles) above the level land of the middle world innumerable millions of abodes (celestial vehicles) of *Jyotishk* gods are spread in an area of one hundred ten *yojans*. These gods move around the Meru mountain in an elliptical orbit. In the area inhabited by human beings (*Adhai Dveep*) the calculation of the periodicity of day, night, month, year and other larger periods of time is done on the basis of the relative movement of these. Another important belief is that some specific movement of moon, sun, planets, and constellations and variations thereof are responsible for the happiness and sorrow of human beings. In other words, the movement of these *Jyotishk* gods influences the life of human beings. (*Jivabhigam Sutra* 3/2) (for detailed information see *Pannavana* 2; *Jivabhigam Pratipatti* 3; *Surya Prajnapti* 19; and *Ganitanuyoga*, *Tiryak lok Varnan*, pp. 442-450)

4. VAIMANIK (endowed with celestial vehicles) GODS

Dwelling area—Innumerable *Koda-kodi* (ten million multiplied by ten million) *yojans* above the level land of middle world starts the area of *Saudharma* and other *Kalp Vimans* (heavenly abodes). These include twelve *Kalp Vimans*, such as *Saudharm* and *Ishan*. The gods living in these *kalps* are called *Kalp-vasi Vaimanik* gods (gods dwelling in *Kalp*-heaven or a specific celestial area). Above these are *Nava Graiveyak Vimans* and above them are five *Anuttar Vimans* making a total of 26 *dev-loks* (heavenly abodes). The gods dwelling in these abodes are called *Kalpateet Vaimanik* gods (gods dwelling outside the *Kalp*-heavens). There are 84,57,023 *Vimans* (celestial vehicles) belonging to *Vaimanik* gods. Here twelve classes of *Kalp-vasi* gods, who came to pay homage to Bhagavan Mahavir have been described. Of these the first eight *dev-loks* have one independent overlord (*Indra*). Ninth-tenth have one common *Indra* and eleventh-twelfth too have one common *Indra*. Thus the twelve *dev-loks* have only ten *Indras*.

These *Vaimanik* gods land individually and in groups on the earth on some special occasions, mainly on the festive occasions of the auspicious events (*kalyanaks*) in the lives of *Tirthankars*—birth, initiation, attaining omniscience and *nirvana*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष–भगवान महावीर के दर्शन–वन्दन हेतु देवों के साथ–साथ अप्सराओं या देवियों के आगमन का भी वर्णन कुछ प्रतियों में प्राप्त होता है। आचार्य श्री घासीलाल जी महाराज ने यह पाठ नहीं दिया है जबकि टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि ने टीका में संक्षेप में उसे उद्धृत किया है। वह संक्षिप्त पाठ और उसका सारांश इस प्रकार है–

ARRIVAL OF GODDESSES

Note—In some alternative texts description of the arrival of *Apsaras* or goddesses along with the gods is also available. Acharya Shri Ghasilal ji M. has excluded these readings. However, Acharya Abhayadev Suri, the commentator (*Tika*), has mentioned it in brief. Here is that text and its meaning in brief—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अच्छरगणसंघाया अंतिअं पाउब्भवित्था। ताओ णं अच्छराओ धंतधोय–कणग–रुअगसरिसप्पभाओ समइक्कंता य बालभावं अणइवरसोम्मचारुरूवा निरुवहय–सरसजोव्वण–कक्कसतरुणवयभावमुवगयाओ निच्चमवट्ठियसहावा सव्वंगसुंदरीओ।

इच्छिय–नेवत्थरइयरमणिज्जगहियवेसा, किं ते? हारद्धहारपाउत्तरयणकुंडल–वासुत्तगहहेमजाल–मणिजाल–कणगजाल–सुभगउरितियकडग–खुड्डुगएगावलिकंठ–सुत्तमगहगधरच्छगेवेज्जसोणियसुत्तगतिलग–फुल्लग–सिद्धत्थियकण्णवालियससिसूर उसभचक्कयतलभंगयतुडियहत्थमालयहरिसकेऊर–वलयपालंब–पलंबअंगुलिज्ज–गवलक्खदीणारमालिया चंदसूरमालियाकंचिमेहलकलावपयरगपरिहेरगपायजाल घंटिया–खिंखिणिरयणो–रुजालखुड्डियवरनेउरचलणमालिया कणगणिगलजालगमगरमुहवि–रायमाणनेऊर–पचलियसद्दालभूसणधरीओ।

दसद्धवण्णरागरइयरत्तमणहरा हयलालापेलवाइरेगे धवले कणगखचियंतकम्मे आगासफालियसरिसप्पहे अंसुए नियत्थाओ, आयरेणं तुसारगोक्खीरहारदगरय–पंडुरदुगुल्लसुकुमाल–सुकयरमणिज्ज उत्तरिज्जाइं, पाउयाओ....सव्वाउयसुरभिकुसुम–सुरइयविचित्तवरमल्लधारिणीओ।

सुगंधिचुण्णंगरागवरवासपुप्फपूरग–विराइया उत्तमवरधूवधूविया सिरिसमाणवेसा दिव्वकुसुममल्लदामपब्भंजलिपुडाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमनिलाडा.... विज्जुगघणमिरीइसूरदिप्पंततेअअहियतरसंनिकासाओ, सिंगारागारचारुवेसाओ, संगयगयहसियभणियचेट्ठियविलास–सललियसंलावनिउणजुत्तोवयारकुसलाओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुंदरथण–जहण–वयण–कर–चरण–नयण–लावण्णरूव–जोव्वणविलासकलियाओ सुरबहूओ सिरीसनवणीयमउयसुकुमालतुल्ल–फासाओ, ववगयकलिकलुसधोय–निद्धंतरयमलाओ, सोमाओ कंताओ पियदंसणाओ जिणभत्तिदंसणाणुरागेणं हरिसियाओ ओवइया यावि.... जिणसगासं....।

उस समय भगवान महावीर के समीप अनेक समूहों में अप्सराएँ (देवियाँ) उपस्थित हुईं। उनकी दैहिक कान्ति अग्नि में तपाये गये, जल से स्वच्छ किये गये स्वर्ण जैसी थी। वे बाल–भाव को पार कर–बचपन को लाँघकर यौवन में पदार्पण कर चुकी थीं–नवयौवना थीं। उनका रूप अनुपम, सुन्दर एवं सौम्य था। उनके स्तन, नितम्ब, मुख, हाथ, पैर तथा नेत्र लावण्य एवं यौवन से विलसित, उल्लसित थे। दूसरे शब्दों में उनके अंग–अंग में सौन्दर्य–छटा लहराती थी। वे रोग आदि से अबाधित, शृंगार रससिक्त तारुण्य से विभूषित थीं। उनका वह रूप, सौन्दर्य, यौवन, जरा–वृद्धावस्था से विमुक्त था।

वे देवियाँ सुरम्य वेशभूषा, वस्त्र, आभरण आदि से सुसज्जित थीं। उनके ललाट पर पुष्प जैसी आकृति में निर्मित आभूषण, उनके गले में सरसों जैसे स्वर्ण–कणों तथा मणियों से बनी कंठियाँ, कण्ठसूत्र, कंठले, अठारह लड़ियों के हार, नौ लड़ियों के अर्द्धहार, अनेक प्रकार की मणियों से बनी मालाएँ, चन्द्र, सूर्य आदि अनेक प्रकार की मोहरों की मालाएँ, कानों में रत्नों के कुण्डल, बालियाँ, बाहुओं में त्रुटिक–तोड़े, बाजुबन्द, कलाइयों में मानिक–जड़े कंकण, अंगुलियों में अँगूठियाँ, कमर में सोने की करधनियाँ, पैरों में सुन्दर नूपुर–पैजनियाँ, घुँघुरूयुक्त पायजेबें तथा सोने के कड़ले आदि बहुत प्रकार के गहने सुशोभित थे।

वे पँचरंगे, बहुमूल्य, नासिका से निकलते निःश्वास मात्र से जो उड़ जायें–ऐसे अत्यन्त हल्के, मनोहर, सुकोमल, स्वर्णमय तारों से मंडित किनारों वाले, स्फटिक–तुल्य आभायुक्त वस्त्र धारण किये हुए थीं। उन्होंने बर्फ, गोदुग्ध, मोतियों के हार एवं जल–कण सदृश स्वच्छ, उज्ज्वल, सुकुमार–मुलायम, रमणीय, सुन्दर बुने हुए रेशमी दुपट्टे ओढ़ रखे थे। वे सब ऋतुओं में खिलने वाले सुरभित पुष्पों की उत्तम मालाएँ धारण किये हुए थीं।

चन्दन, केसर आदि सुगन्धमय पदार्थों से निर्मित देहरंजन–अंगराग से उनके शरीर रंजित एवं सुवासित थे, श्रेष्ठ धूप द्वारा धूपित थे। उनके मुख चन्द्र जैसी कान्ति लिए हुए थे। उनकी दीप्ति बिजली की द्युति और सूरज के तेज सदृश थी। उनकी गति, हँसी, बोली, नयनों के हाव–भाव, पारस्परिक आलाप–संलाप इत्यादि सभी कार्य–कलाप नैपुण्य और लालित्ययुक्त थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे सुन्दर स्तन, जघन–कमर से नीचे का भाग, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और नेत्र चेष्टाओं–भ्रूभंगिमाओं से युक्त थीं। उनका संस्पर्श शिरीष पुष्प और नवनीत–मक्खन जैसा मृदुल तथा कोमल था। वे निष्कलुष, निर्मल, सौम्य, कमनीय, प्रियदर्शन–देखने में प्रिय या सुभग तथा सुरूप थीं। वे भगवान के दर्शन की उत्कण्ठा से हर्षित–रोमांचित थीं। उनमें वे सब विशेषताएँ थीं, जो देवताओं में होती हैं।

(औपपातिकसूत्र, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से साभार उद्धृत)

During that period of time goddesses (*apsaras*) appeared before Shraman Bhagavan Mahavir in numerous groups. Their bodies had a glow like gold purified in fire and washed in water. They had crossed their age of adolescence and entered youth. They were extraordinarily beautiful and elegant. Their breasts, buttocks, faces, hands, legs and eyes bloomed and flourished with charm and youth. In other words every part of their body effused charm and beauty. They were unaffected by any ailment or other flaws and endowed with youthfulness saturated with amatory sentiment (*shringar-rasa*). Their appearance, beauty and youth were immune to aging.

These divine damsels were adorned with exquisite dresses, clothes and ornaments. On their foreheads rested flower-like ornaments; on their necks rested a variety of necklaces made of golden granules and beads, gem-stone beads and gold coins in various designs like *kanthis, kanth-sutras, kanthalas,* eighteen string necklaces, nine string necklaces etc. Their ears were adorned with a variety of ear-rings (*kundals* and *baḷis*). On their arms were a variety of gem studded armlets (*trutik* and *bajuband*), on their wrists were ruby studded bracelets, on their fingers were rings, on their waist were golden waistbands (*karghani*), on their ankles were beautiful anklets with tiny bells as well as golden rings. Thus they were embellished with a wide variety of ornaments.

They were wearing golden bordered, costly, multi-coloured, beautiful and soft dresses that were so light as to be blown away by mere exhalation and had a sheen like rock-crystal. They were wearing soft, elegant and beautiful woven silk scarves that were spotless and brilliant white like snow, cow-milk, pearl necklace and droplets of water. They were also wearing garlands of all season fragrant flowers.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Their bodies were redolent with fragrant pastes including sandalwood and saffron as well as best of incenses. Their faces had the glow of the moon. They were scintillating like the brightness of lightening and the sun. Their movement, laughter, speech, gestures, expression of eyes and conversation were skillful and charming. Their touch was soft and delicate like that of *Shirish* flower and fresh butter. They were flawless, pure, elegant, attractive, spectacular and beautiful. They were filled with the excitement of expectancy to behold *Bhagavan*. They had all the qualities found in gods (already mentioned).

(quoted from Aupapatik Sutra, Agam Prakashan Samiti, Beawar)

चम्पा निवासी जन–समुदाय में उत्सुकता

३८. (क) तए णं चंपाए णयरीए सिंघाडग–तिग–चउक्क–चच्चर–चउम्मुह–महापह–पहेसु महया जणसद्दे इ वा, बहुजणसद्दे इ वा, जणवाए इ वा, जणुल्लावे इ वा, जणवहे इ वा, जणबोले इ वा, जणकलकले इ वा, जणुम्मी इ वा, जणुक्कलिया इ वा, जणसण्णिवाए इ वा, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ–

एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे, तित्थगरे सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे इहमागए, इहसंपत्ते, इह समोसढे, इहेव चंपाए णयरीए बाहिं पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण–वंदण–णमंसण–पडिपुच्छण–पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो, णमंसामो, सक्कारेमो सम्माणेमो, कल्लाणं मंगलं, देवयं चेइयं (विणएणं), पज्जुवासामो, एयं णं पेच्चभवे इहभवे य हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेयसाए, आणुगामियत्ताए भविस्सइत्ति कट्टु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. (क) उस समय चंपा नगरी के सिंघाटकों-तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, जहाँ चार से अधिक रास्ते मिलते हों ऐसे स्थानों, चारों ओर मुख या द्वारयुक्त देवकुलों, राजमार्गों, गलियों पर बहुत से लोग परस्पर बातचीत करने लगे। बहुत से लोग एक-दूसरे से पूछ रहे थे, आपस में कह रहे थे, फुसफुसाहट कर रहे थे-धीमे स्वर में बात कर रहे थे। लोगों का बड़ा जमघट लगा था, वे बोल रहे थे। उनकी बातचीत की कलकल ध्वनि (शोर) सुनाई देती थी। जन-समुदाय की मानो एक लहर-सी उमड़ी आ रही थी। छोटी-छोटी टोलियों में लोग फिर रहे थे, इकट्ठे हो रहे थे। बहुत से मनुष्य आपस में चर्चा कर रहे थे। अभिभाषण कर रहे थे, कोई किसी से पूछ रहे थे, कोई बिना पूछे ही एक-दूसरे को बता रहे थे-

"देवानुप्रियो ! धर्म के आदि प्रवर्त्तक, तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, सिद्धि गतिरूप स्थान की प्राप्ति हेतु समुद्यत भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहाँ पधारे हैं-यहीं चंपा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में यथोचित-श्रमण-मर्यादा के अनुसार स्थान ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं।

देवानुप्रियो ! हम लोगों के लिए यह बहुत ही लाभप्रद है। ऐसे अर्हत् भगवान के नाम-गोत्र का सुनना भी बहुत बड़ी बात है, फिर उनके सम्मुख जाना, वन्दन, नमन, प्रतिपृच्छा करना, उनकी पर्युपासना करना, उनका सान्निध्य प्राप्त करना-इनका तो कहना ही क्या? सद्धर्ममय एक सुवचन का सुनना भी बहुत बड़ी बात है, फिर विपुल-विस्तृत अर्थ (ज्ञान) के ग्रहण करने के फल के विषय की तो बात ही क्या?

अतः देवानुप्रियो ! अच्छा हो, हम उनके पास चलें वहाँ जाकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करें, पंचांग (मस्तक, दो हाथ, दो घुटने) नमाकर नमन करें, भक्ति बहुमान के साथ उनका सत्कार करें, सम्मान करें। भगवान स्वयं कल्याण रूप हैं, मंगल हैं, देवाधिदेव हैं, तीर्थस्वरूप हैं। हम वहाँ जाकर उनकी पर्युपासना करें, उनके निकट बैठें। यह (वन्दन, नमन) आदि इस भव में-वर्तमान जीवन में और परभव में, जन्म-जन्मान्तर में हमारे लिए हितकारी, सुखकारी, शान्ति प्रदान करने वाला तथा निश्रेयस्कारी-मोक्षदायी सिद्ध होगा।"

EAGERNESS OF THE PEOPLE OF CHAMPA

38. (a) During that period of time a large number of people gathered and exchanged views at public places like triangular courtyards (*singhatak*), crossings of three, four and more paths, temples with four gates on four sides, highways and streets of Champa city. Many of these were inquiring, talking and whispering. It had turned into a large gathering and everyone was

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

speaking and contributing to the uproar. It was as if people were coming in waves, were gathering and moving around in small groups. Many of them were talking among themselves. Some were busy in oration, some in asking questions from others and some were informing without being asked to—

"Beloved of gods ! Shraman Bhagavan Mahavir who is the first propounder of the *shrut dharma* (Jainism) of his time (*aaigare* or *aadikar*); the religious ford-maker or founder of the four-fold religious order (*Titthagare* or *Tirthankar*); —and so on up to—the aspirant of and destined to attain the state of ultimate perfection (*siddha gai* or *siddha gati*), wandering from one village to another has arrived here. He has taken his lodge according to the ascetic code and has settled down enkindling (*bhaavit*) his soul with ascetic-discipline and austerities.

Beloved of gods ! This is highly beneficial for us. Not to speak of being able to go near him, pay homage to him, bow to him, ask questions to him, worship him, and avail of his company, mere hearing of his name and lineage is highly meritorious. Not to speak of the benefits of listening to his complete sermon, even a single pious word uttered by him is a great boon.

Therefore, O beloved of gods ! It would be good for us to go there and pay homage to Shraman Bhagavan Mahavir. Let us convey our obeisance by quintuple bowing (a specific posture of squatting and bending forward bowing head, two hands and two knees). Let us greet him and convey our respect with devotion and great honour. *Bhagavan* is the embodiment of beatitude and piety. He is the god of gods and pilgrimage personified. Let us go there to worship him and sit near him. This act of obeisance will prove to be beneficial, blissful, peace giving and means of salvation for us in this, next and following births."

विविध वर्ग

३८. (ख) बहवे उग्गा, उग्गपुत्ता, भोगा, भोगपुत्ता एवं दुपडोयारेणं राइण्णा, खत्तिया, माहणा, भडा, जोहा, पसत्थारो, मल्लई, लेच्छई, लेच्छईपुत्ता, अण्णे य बहवे राईसर–तलवर–माडंबिय–कोडुंबिय–इब्भ–सेट्ठि–सेणावइ–सत्थवाहप्पभितयो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. **(ख)** इस प्रकार का परस्पर वार्त्तालाप करते हुए बहुत से **उग्रों**–आरक्षक अधिकारियों, उग्र–पुत्रों, **भोगों**–राजा के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों, भोग–पुत्रों, **राजन्यों**–राजा के परामर्शकमण्डल के सदस्यों, **क्षत्रियों**–क्षत्रिय वंश के राजकर्मचारियों, ब्राह्मणों, सुभटों, योद्धाओं, युद्धोपजीवी सैनिकों, **प्रशास्ताओं**–प्रशासनाधिकारियों, **मल्लकियों**–मल्ल गणराज्य के सदस्यों, **लिच्छिवियों**–लिच्छिवि गणराज्य के सदस्यों तथा अन्य अनेक **राजाओं**–माण्डलिक, नरपतियों, **ईश्वरों**–ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशील पुरुषों, **तलवरों**–राजसम्मानित विशिष्ट नागरिकों, **माडंबिकों**–जागीरदारों या भूस्वामियों, **कौटुम्बिकों**–बड़े परिवारों के प्रमुखों, **इभ्यों**–वैभवशाली जनों, **श्रेष्ठियों**–अपनी सम्पत्ति और सुव्यवहार से प्रतिष्ठा–प्राप्त सेठों, सेनापतियों एवं सार्थवाहों, सार्थवाह–पुत्रों आदि अनेक लोगों ने प्रस्थान किया।

PEOPLE OF VARIOUS CLASSES

38. (b) Talking thus, throngs of people left for the garden outside the city. These people included—security officers (*ugra*) and their sons (*ugra-putra*), members of the councils of ministers of the king (*bhog*) and their sons (*bhog-putra*), members of the advisory council of the king (*rajanya*), people of the warrior clans (*kshatriyas*), *Brahmins*, soldiers (*subhat*), commissioned warriors (*yoddha*), administrative officers (*prashasta*), members of the Malla republic (*Mallaki*), members of the Lichchhivi republic (*Lichchhivi*) and their sons (*Lichchhivi-putra*), many regional kings (*raja*), influential and rich persons (*ishvar*), knights of honour (*talavar*), landlords (*mandavik*), heads of large families (*kautumbik*), affluent people (*ibhya*), established merchants (*shreshti*), commanders (senapati), caravan chiefs (*sarthavaha*) and their sons (*sarthavaha-putra*) etc.

विविध हेतु

३८. (ग) अप्पेगइया वंदणवत्तियं, अप्पेगइया पूयणवत्तियं, एवं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं, दंसणवत्तियं, कोऊहलवत्तियं, अप्पेगइया अट्ठविणिच्छयहेउं अस्सुयाइं सुणेस्सामो, सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो, अप्पेगइया अट्ठाइं हेऊइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामो, अप्पेगइया सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्पेगइया जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइया जीयमेयंति कट्टु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. (ग) अनेक जन भगवान को वन्दन हेतु, कोई पूजन हेतु, कोई सत्कार हेतु, कोई सम्मान हेतु, इसी प्रकार दर्शन हेतु, उत्सुकता-पूर्ति हेतु, भगवान को देखने के लिए, कोई तत्त्वों का स्वरूप जानने के लिए, अश्रुत-कभी पहले जो नहीं सुना, वह सुनेंगे, श्रुत-सुने हुए तत्त्व को संशयरहित करेंगे, इस भाव से, अनेक यह सोचकर कि युक्ति, तर्क तथा विश्लेषणपूर्वक तत्त्व-जिज्ञासा करेंगे, कई यह चिन्तन कर कि सभी सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग कर, मुण्डित होकर अगार धर्म-गृहस्थ धर्म से आगे बढ़कर, अनगार धर्म-श्रमण-जीवन स्वीकार करेंगे, अनेक यह सोचकर कि पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत-यों बारह व्रत युक्त श्रावक धर्म स्वीकार करेंगे, अनेक जन जिनेन्द्रदेव की भक्ति-अनुराग के कारण, अनेक यह सोचकर कि यह अपना वंश-परम्परागत व्यवहार है, (यों विविध हेतु कारणों से प्रेरित हुए) भगवान की सेवा में आने को तैयार हुए।

VARIETY OF REASONS

38. (c) This large mass of people got ready to go in Bhagavan's attendance for a variety of reasons—some to pay homage, some to worship and others to greet and honour him. There were those who wanted to behold him, satisfy their curiosity and just see him. Some wanted to know the true form of fundamentals, some in order to know the hitherto unknown (*ashrut*) and to affirm and confirm the already known (*shrut*) with logic, critical analysis and inquiry. They also included those who were thinking of renouncing all mundane relations, shaving their heads and transcending from the householder's way to the ascetic way (*anagar dharma*). Many of them only wanted to embrace the twelve-vow householder's code (*Shravak dharma*) comprising of five minor vows (*anuvrats*) and seven complimentary vows of spiritual discipline (*shikshavrats*). Many were inspired to go for their love and devotion for the *Jina* and many just in order to follow their family tradition.

जाने की तैयारी

३८. (घ) ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता, सिरसा कंठे मालकडा, आविद्धमणिसुवण्णा, कप्पियहारद्धहार-तिसर-पालंबपलंबमाण-कडिसुत्त-सुकयसोहाभरणा, पवरवत्थपरिहिया, चंदणोलित्तगायसरीरा।

३८. (घ) भगवान को वन्दना करने जाने के लिए (अनेक) नगर जनों ने स्नान किया, बलिकर्म किये, कौतुक-शरीर को सजाने की दृष्टि से नेत्रों में अंजन आँजा, ललाट पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिलक किया, दुःस्वप्नादि दोष–निवारण हेतु प्रायश्चित्त किया तथा काली टीकी, चन्दन, कुंकुम, दधि, अक्षत आदि से मंगलविधान किया, (अनेकों ने) मस्तक एवं गले में मालाएँ धारण कीं, (कईयों ने) रत्न जड़े स्वर्णाभरण, हार, अर्धहार, तीन लड़ों के हार, लम्बे हार, लटकती हुई करधनियाँ आदि शोभावर्धक आभूषणों से अपने को सजाया, श्रेष्ठ, उत्तम–स्वच्छ वस्त्र पहने। शरीर पर, शरीर के अलग–अलग अंगों पर चन्दन का लेप किया।

THE PREPARATIONS

38. (d) Before going to pay their homage many of these people took their bath and performed traditional propitiatory rites (*bali karma*). Some performed the placatory rites to invoke good omen (*kautuk*); these included application of collyrium (*anjan*) in eyes, applying auspicious mark on the forehead (*tilak*) and black mark on the body, atonement for pacifying effects of bad dreams and other such bad omens and auspicious rituals using sandalwood, vermilion, curd, rice etc. Many of these adorned themselves with garlands, gem studded ornaments, a variety of necklaces (*haar, ardhahaar,* three-string necklace etc.), waist-band (*karadhani*) and wore exquisite and clean dresses. They also applied sandalwood paste on different parts of their bodies.

वाहन आदि

३८. (ङ) अप्पेगइया हयगया एवं गयगया, रहगया, सिवियागया, संदमाणियागया, अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महया उक्किट्ठ सीहणाय–बोल–कलकलरवेणं पक्खुब्भियमहासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणा चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति।

णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता जाणवाहणाइं ठवेंति, ठवेत्ता जाणवाहणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति णमस्संति, वंदित्ता, णमंस्सित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा, णमंसमाणा, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. (ङ) (उनमें से बहुत से लोग) विविध वाहनों पर सवार हुए, जैसे–घोड़ों पर, हाथियों पर, शिविकाओं –पर्देदार पालखियों पर स्यंदमानिका–पुरुष–प्रमाण पालखियों पर तथा अनेक व्यक्ति बहुत पुरुषों द्वारा चारों ओर से घिरे हुए पैदल चल पड़े। वे (सभी लोग) अतिशय आनन्दित–हर्षित होते हुए सुन्दर, मधुर घोष द्वारा नगरी को लहराते, गरजाते विशाल समुद्र–सदृश बनाते हुए उसके बीच से गुजरे।

वे चलते हुए जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आये। भगवान से न अधिक दूर, न अधिक निकट यथोचित स्थान पर आकर तीर्थंकर भगवान की विशिष्टता के सूचक छत्र आदि अतिशय देखे। देखते ही अपने यान, वाहन वहाँ ठहरा दिये। ठहराकर **यान**–गाड़ी, रथ आदि, **वाहन**–घोड़े, हाथी आदि से नीचे उतरे। नीचे उतरकर, जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये। वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण–प्रदक्षिणा की, वन्दन–नमस्कार किया। वन्दन–नमस्कार कर भगवान से यथोचित दूरी पर खड़े होकर **शुश्रूषा**–उनके वचन सुनने की उत्कण्ठा लिए, नमस्कार मुद्रा में भगवान महावीर के सामने विनयपूर्वक अंजलि बाँधे उनकी पर्युपासना करने लगे (उनका सान्निध्य लाभ लेने लगे)।

THE CARRIAGES

38. (e) A variety of means of commuting were used by them. These included horses, elephants and different types of palanquins and coaches (*shivika, palakhi, syandamanika*). Many just walked surrounded by large groups of people. These throngs of people passed through the city, filling it with pleasant noises and joyous hails giving it the appearance of a mighty ocean with giant waves. Crossing the city they arrived at Purnabhadra Chaitya. When they came near Bhagavan Mahavir, neither very close to him nor very far from him, they saw the divine umbrella and other supernatural signs unique to the *Tirthankar*. On seeing these they stopped their vehicles and got off their vehicles (*yaan*) namely cart, chariot etc. and carriers (*vaahan*) like horse, elephant etc. After that they approached the spot where Bhagavan Mahavir was seated, circumambulated him three times and paid their homage and obeisance. Having done that, they stood before him at an appropriate distance respectfully joining their palms with rapt attention and devotion (availing the boon of his proximity).

विवेचन–इभ्य एवं सार्थवाह के सम्बन्ध में में टीकाकार ने इस प्रकार विवरण दिया है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनके पास हस्तिप्रमाण (हाथी जितना ढेर) धन होता है वे ईभ्यश्रेष्ठी कहलाते हैं। इनके तीन प्रकार हैं–**जघन्य**–मणि–मुक्ता–स्वर्ण–रजत आदि की राशि हो; **मध्यम**–वज्र हीरे, मणि–माणिक्य आदि धन के स्वामी तथा **उत्कृष्ट**–जिनके पास हस्तिप्रमाण वज्र हीरों की राशि होती है।

सार्थवाह–जो (१) **गणिम**–गिनती करने योग्य–नारियल, सुपारी आदि, (२) **धरिम**–तौलकर बेची जाने वाली–धान्य, शक्कर आदि, (३) **मेय**–छोटे बर्तनों से मापकर दी जाने वाली–दूध आदि, तथा (४) **परिच्छेद्य**–परीक्षा करके बेची जाने वाली–हीरा, मोती आदि जवाहरात वस्तुएँ। जो इन वस्तुओं के व्यापार हेतु साथ आने वालों को सहयोग रूप में धन देकर व्यापार करता है, उनकी कुशल–क्षेम की चिन्ता करता है, उन्हें सार्थवाह कहा जाता था। (**आचार्य श्री घासीलाल जी कृत टीका, पृष्ठ ३५३**)

Elaboration—The commentator (*Tika*) has provided more information about the terms *ibhya* and *sarthavaha.* Those who have wealth that can be made into a heap of the size of an elephant are called *ibhya* (affluent) merchants. They have three categories—ordinary have gems, beads, silver etc. in this heap; medium have diamonds, rubies and other gems; and the best have just diamonds.

Sarthavaha (caravan chief) is one who finances and takes care of the merchants who join his caravan and deal in four kinds of merchandise—(1) *ganim*—traded by numerical count (coconut, betel nut etc.), (2) *dharim*—traded by weight (grains, sugar etc.), (3) *meya*—traded by volume measure (milk etc.), and (4) *parichchhedya*—traded by quality testing (diamond, pearl etc.) (*Aupapatik Sutra Tika* by Acharya Shri Ghasilal ji M., p. 353)

महाराज कूणिक को सूचना

३९. तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हियए ण्हाए जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमित्ता चंपाणयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया सा चेव हेट्ठिला वत्तव्वया जाव णिसीयइ, णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अद्धत्तेरससयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

३९. प्रवृत्ति–निवेदक को जब (भगवान महावीर के आगमन की) बात मालूम हुई, वह हर्षित एवं उल्लसित हुआ। उसने स्नान किया, राजसभा में प्रवेशोचित उत्तम, मांगलिक वस्त्र पहने। संख्या में कम पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। यों सजकर वह अपने घर से निकला। (अपने घर से) निकलकर चम्पा नगरी के बीच, जहाँ राजा कूणिक का महल था, जहाँ बहिर्वर्त्ती राजसभाभवन था, (जहाँ महाराज कूणिक थे) वहाँ आया। राजा सिंहासन पर बैठा। (प्रवृत्ति निवेदक से भगवान के आगमन का संवाद सुनकर प्रसन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होकर राजा कूणिक ने) वार्त्ता-निवेदक को साढ़े बारह लाख चाँदी की मुद्राएँ पारितोषिक के रूप में प्रदान कीं। उत्तम वस्त्र आदि द्वारा उसका सत्कार किया, आदरपूर्ण वचनों से सम्मान किया। सत्कृत, सम्मानित कर उसे विदा किया।

INFORMATION TO KING KUNIK

39. When the reporter (appointed by king Kunik) came to know of the arrival of Bhagavan Mahavir he was pleased and delighted. He took his bath and dressed himself in a clean and decent garb, suitable for visiting the king's court, and adorned himself with light but costly ornaments. Thus, getting ready he left his house and came to the outer assembly hall where king Kunik was sitting on a throne. (When he informed about the arrival of Bhagavan Mahavir, king Kunik was very happy.) The king rewarded the reporter with one million two hundred fifty thousand silver coins and dismissed him after honouring him with high class dresses (etc.) and laudatory words.

विवेचन—मध्य के 'जाव' शब्द द्वारा सूचित सूत्र संख्या १७, १८, १९, २० के अनुसार सम्पूर्ण वर्णन जान लेना चाहिए।

सूत्र २० में बताया है—"भगवान महावीर जब चम्पा नगरी के उपनगर में पधारे तथा पूर्णभद्र चैत्य में पधारने वाले हैं" यह समाचार देने पर राजा ने सन्देशवाहक को एक लाख आठ हजार रजत मुद्राएँ दीं। परन्तु पधारने की सूचना पर साढ़े बारह लाख रजत मुद्राएँ दीं। इस प्रकार भगवान के नगर में पधारने की सूचना पाकर राजा को बहुत ही उत्कृष्ट आनन्द की अनुभूति हुई जिस हर्षावेग में राजा ने यह विशिष्ट प्रीतिदान दिया।

Elaboration—In this aphorism the liberal use of the term *'java'* conveys that this description should be taken to be exactly same as preceding aphorisms 17, 18, 19 and 20.

In aphorism 20 it is stated that when the reporter informed that Bhagavan Mahavir has arrived in the outskirts of Champa and is about to come to Purnabhadra Chaitya, he was given one hundred eight thousand silver coins but when the reporter brought the news of Mahavir's arrival, he was given one million two hundred fifty thousand silver coins. This conveys the extent of joy the king felt on getting the news of arrival of Bhagavan Mahavir in the city.

दर्शन-वन्दन की तैयारी

४०. तण णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासि–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह–पवरजोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि, सुभद्दापमुहाण य देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्क–पाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि।

चंपं च णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसिय–सम्मज्जिउवलित्तं, सिंघाडग–तिय–चउक्क–चच्चर–चउम्मुह–महापह–पहेसु आसित्त–सित्तसुइ–सम्मट्ठ–रत्थंतरा वणवीहियं, मंचाइमंचकलियं, णाणाविहराग–उच्छिय–ज्झयपडागाइपडागमंडियं, लाउल्लोइयमहियं, गोसीस सरसरसत्तचंदण जाव गंधवट्टिभूयं।

करेह य, कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि। णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीरं अभिवंदए।

४०. तब राजा कूणिक ने अपने **बलव्यापृत**–सैन्य सम्बन्धी कार्यों के अधिकारी सेनानायक को बुलाया। बुलाकर कहा–"देवानुप्रिय ! अभिषेक योग्य पट्टहस्ति (राजा की सवारी में काम आने योग्य) हस्तिरत्न–उत्तम हाथी को सुसज्जित कराओ। घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं वाली चतुरंगिणी सेना को भी तैयार करो। सुभद्रा आदि रानियों के लिए, उनमें से प्रत्येक के लिए (अलग–अलग) **यात्राभिमुख**–यात्रा के लिए तैयार जोते हुए यानों को बाहरी सभाभवन के निकट लाकर उपस्थित करो।

चम्पा नगरी के बाहर और भीतर, उसके संघाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग तथा सामान्य मार्ग, इन सबकी सफाई कराओ। वहाँ पानी का छिड़काव कराओ, गोबर आदि का लेप कराओ। नगरी के **रथ्यान्तर**–गलियों के मध्य भागों तथा **आपणवीथियों**–बाजार के रास्तों की भी सफाई कराओ, पानी का छिड़काव कराओ, उन्हें स्वच्छ व सुहावने कराओ। मार्ग में स्थान–स्थान पर लोगों के बैठने तथा खड़े रहने के लिए **मंचातिमंच**–सीढ़ियों से जुड़े हुए प्रेक्षागृह तैयार कराओ। तरह–तरह के रंगों की ऊँची ध्वजाएँ, जिन पर सिंह, चक्र आदि चिह्नों वाली पताकाएँ तथा अतिपताकाएँ–बड़ी पताकाएँ लगवाओ, जिनके दोनों पसवाड़े अनेकानेक छोटी–छोटी पताकाओं से सजे हों। नगरी की दीवारों को लिपवाओ, पुतवाओ। उन पर गोरोचन तथा लाल चन्दन के पाँचों अंगुलियों और हथेली सहित हाथ के छापे लगवाओ। लोबान, धूप आदि की महक से वहाँ के वातावरण को उत्कृष्ट सुरभिमय करवा दो, जिससे सुगन्धित धुएँ की प्रचुरता से वहाँ गोल–गोल धूममय छल्ले जैसे बनते दिखाई दें।

इनमें जो करने का हो, उसे स्वयं करके तथा कर्मकरों, सेवकों, श्रमिकों आदि से कराने योग्य हो उसे करवाकर मुझे सूचित करो कि आज्ञानुरूप सब कार्य सम्पन्न हो गया है। यह सब हो जाने पर मैं भगवान के अभिवन्दन हेतु जाऊँगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

40. Then king Kunik, son of Bhambhasar, called the chief of the commissariat of his army (*balavyaprit*) and asked—"Beloved of gods ! Get ready the best of elephants suitable for the use of a monarch. Also call the four pronged army with the best of horses, elephants, chariots and warriors to attention or a state of readiness. For each of the queens, including Subhadra, get separate carriages duly harnessed with draught animals, ready for road and parked near the outer court.

"Get the triangular courtyards (*singhatak*), crossings of three, four and more paths, squares, highways and streets within and outside Champa city cleaned, washed and plastered with cleansing material (including cowdung). Make the middle and inner lanes (*rathyantar*) as well as marketplaces (*apanvithi*) pleasant looking by getting them cleaned and sprinkled with water. Get stepped galleries and platforms erected at suitable locations near roads for the public to stand and sit. Decorate the city with multicolourd small and large flags bearing insignias like lion, wheel and other patterns. On the sides of these flags put buntings with numerous smaller flags. Apply palm-prints and prints of five fingers with *gorochan* (a fragrant substance) and red sandalwood paste after getting the walls plastered and painted. After doing all this, make the city redolent by filling it with rising smoke rings from burning *loban, dhoop* and other incenses.

"Do what is to be done by you and get done what is to be done by your assistants or labours. Once the work is complete report back to me. I will go to pay homage to Bhagavan only after that."

४१. तए णं से बलवाउए कूणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हियए करयलपरिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ।

पडिसुणित्ता एवं हत्थिवाउयं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय–गय–रह–पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. राजा कूणिक का ऐसा आदेश मिलने पर उस सेनानायक ने हर्ष एवं प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े, उन्हें सिर के चारों ओर घुमाया, अंजलि को मस्तक से लगाया तथा विनयपूर्वक आदेश स्वीकार करते हुए निवेदन किया–''महाराज की जैसी आज्ञा।''

सेनानायक ने राजाज्ञा स्वीकार कर हस्तिसेना के अधिकारी को बुलाया; बुलाकर कहा– ''देवानुप्रिय ! महाराज कूणिक के लिए प्रधान, उत्तम हाथी को सजाकर शीघ्र तैयार करो। घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार कराओ। फिर मुझे आज्ञा पालन हो जाने की सूचना करो।''

41. On getting this order from king Kunik the army officer happily waved his joined palms around his face before touching his forehead and uttered in humble acceptance—"As you wish, my lord !"

Accepting the king's order the army officer called an officer of the elephant brigade and instructed—"Beloved of gods ! Make ready quickly the best of elephants suitable for king Kunik. Also call the four pronged army with the best of horses, elephants, chariots and warriors to a state of readiness. Report back as soon as all this is done."

अभिषेक हस्ति की सज्जा

४२. तए णं से हत्थिवाउए बलवाउयस्स एयमट्ठं सोच्चा आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं छेयायरियउवएसमइकप्पणाविकप्पेहिं सुणिउणेहिं उज्जल–णेवत्थ–हत्थपरिवत्थियं, सुसज्जं धम्मिय–सण्णद्धबद्धकवइय– उप्पीलिय–कच्छ–वच्छ–गेवेय–बद्धगलवर–भूसणविरायंतं, अहियतेयजुत्तं सललियवरकण्णपूरविराइयं, पलंबओचूलमहुयरकयंधयारं चित्तपरिच्छोअपच्छयं, पहरणावरणभरियजुद्धसज्जं, सच्छत्तं, सज्झयं सघंटं, सपडागं, पंचामेलयपरिमंडियाभिरामं, ओसारियजमलजुयलघंटं, विज्जुपिणद्धं व कालमेहं, उप्पाइयपव्वयं व चंकमंतं, मत्तं, महामेहमिव गुलगुलंतं, मणपवणजइणवेगं, भीमं, संगामियाओज्जं आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडिकप्पेत्ता हय–गय–रह– पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ, सण्णाहेत्ता जेणेव बलवाउए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. हस्ति सेनाधिकारी (महावत) ने सेनानायक का कथन सुना, उसका आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया। आदेश स्वीकार कर उस हस्ति सेनाधिकारी ने चतुर तथा निपुण कलाचार्य की शिक्षा से जिनकी बुद्धि का बहुमुखी विकास हो चुका है ऐसे हस्ति सज्जा निपुण शिल्पकारों को बुलवाकर हाथी को चमकीले वस्त्रों, झूलों आदि से सजाया, शृंगार कराया। उसके कवच लगाया, **कक्षा**–बाँधने की रस्सी को उसके वक्षःस्थल से कसा, गले में हार तथा उत्तम आभूषण पहनाये, इस प्रकार उसे सुशोभित किया। तब वह बड़ा तेजोमय दीखने लगा। **सुललित**–लालित्ययुक्त या कलापूर्ण **कर्णपूरों**–कानों के आभूषणों द्वारा वह बहुत ही सुहावना लगने लगा। इसके कपोल स्थल से जो मद झर रहा था, उसकी सुगंधि पर मँडराते भँवरों के कारण ऐसा लग रहा था, मानो अंधकार ही घनीभूत हो गया हो। झूल पर बेल-बूटे कढ़ा छोटा आच्छादक वस्त्र डाला गया। शस्त्र तथा कवचयुक्त वह हाथी युद्ध के लिए सजा हुआ प्रतीत हो रहा था। उसके छत्र, ध्वजा, घंटा तथा पताका आदि सब यथास्थान शोभित हो रहे थे। मस्तक को पाँच फूलों से सजाया गया था। उसके दोनों ओर परिपार्श्वों में दो घंटियाँ लटक रही थीं। आभूषणों की चमक से वह हाथी बिजलीयुक्त काले बादल जैसा दिखाई देता था। अपने विशाल डीलडौल के कारण वह ऐसा लगता था मानो अकस्मात् कोई चलंता-फिरता पर्वत प्रकट हो गया हो। वह मदोन्मत्त था। वह चिंघाड़ता तब ऐसा लगता मानो महामेघ की गर्जना हो रही है। उसकी गति मन तथा वायु के वेग जैसी शीघ्रगामी थी। विशाल देह तथा प्रचंड शक्ति के कारण वह **भीम**–भयावह प्रतीत होता था। उस संग्राम योग्य वीरवेश पहनाये आभिषेक्य हस्तिरत्न को महावत ने सन्नद्ध किया–सुसज्जित कर तैयार किया। उसे तैयार कर घोड़े, हाथी, रथ तथा उत्तम योद्धाओं से परिवृत्त सेना को तैयार करवाया। फिर वह महावत सेनानायक के पास आया और आज्ञापालन होने की सूचना दी।

DECORATION OF THE ELEPHANT

42. Humbly listening to and accepting the army officer's order, the officer of the elephant brigade called expert artisans who had attained all-round expertise in the art of elephant decoration under the guidance of accomplished art teachers and got the selected elephant adorned with shining clothes and caparisons (*jhool*). Armour plates were tied at required spots on its body and a tether (*kaksha*) was tied over its rib-cage. It was further embellished with ornaments including necklaces. It looked highly radiant after all this. It became spectacular with the artistic ornaments on its earlobes. With bumble-bees hovering over the musk like ooze on its temples, it appeared as if darkness had become denser. A shorter

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

cloth cover with floral designs was placed on the caparison. With weapons added, this armoured elephant looked as if it was battle ready. It also had umbrella, flag (*dhvaj*), bells and streamers (*pataka*) fixed at appropriate spots. Its head was adorned with five flowers. Two bells were hanging at its flanks. The shine of the ornaments made it appear like black clouds with lightening. Its mammoth proportions gave an impression as if a moving mountain had suddenly appeared. It was ecstatic and its trumpeting was like thunder of immense dense clouds. Its speed was faster than that of mind as well as air. Its huge body and tremendous strength gave it a terrifying appearance (*bheem*). The officer of the elephant brigade concluded all the preparation of this great elephant making it battle ready. After this he also made ready the four pronged army and reported back to the army commander.

४३. तए णं से बलवाउए जाणसालियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सुभद्दापमुहाणं देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडिएक्क–पाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेह, उवट्ठेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

४३. इसके पश्चात् सेनानायक ने यानशाला के अधिकारी **यानशालिक** को बुलाया। बुलाकर कहा–"सुभद्रा आदि रानियों के लिए, प्रत्येक के लिए (अलग–अलग) यात्रा के योग्य अच्छे बैलों से जुते हुए रथ आदि यान बाहरी सभाभवन के निकट लाकर उपस्थित करो–उपस्थित कर आज्ञापालन होने की सूचना दो।"

43. Then the army commander called the master of the royal vehicles and said—"Get separate carriages, for each of the queens including Subhadra, duly harnessed with well trained bulls ready for road, park them near the outer court and report back after doing that."

रथ वाहनों की सज्जा

४४. तए णं से जाणसालिए बलवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता जाणाइं पच्चुवेक्खेइ, पच्चुवेक्खेत्ता जाणाइं संपमज्जेइ, संपमज्जेत्ता जाणाइं संवट्टेई, संवट्टेत्ता जाणाइं णीणेइ, णीणेत्ता जाणाणं दूसे पवीणेइ, पवीणेत्ता जाणाइं समलंकरेइ, समलंकरेत्ता जाणाइं वरभंडगमंडियाइं करेइ, करेत्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाहणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खेइ, पच्चुवेक्खेत्ता वाहणाइं संपमज्जइ, संपमज्जित्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणेत्ता वाहणाइं अप्फालेइ, अप्फालेत्ता दूसे पवीणेइ, पवीणेत्ता वाहणइं समलंकरेइ, समलंकरेत्ता वाहणाइं वरभंडगमंडियाइं करेइ, करेत्ता वाहणाइं जाणाइं जोएइ, जोएत्ता पओयलट्ठिं पओयधरए य समं आडहइ, आडहित्ता वट्टमग्गं गाहेइ, गाहेत्ता जेणेव बलवाउए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

४४. तब उस यानशालिक ने सेनानायक का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर जहाँ यानशाला थी, वहाँ आया। आकर यानों का निरीक्षण किया। निरीक्षण कर उनकी अच्छी तरह सफाई की। सफाई कर उन्हें वहाँ से हटाया। हटाकर बाहर निकाला। बाहर निकालकर उनके दूष्य–आच्छादक वस्त्र उन पर लगी खोलियाँ हटाईं। खोलियाँ हटाकर यानों को सजाया। सजाकर उन्हें उत्तम आभरणों, गद्दी, तकिये आदि उपकरणों से मण्डित किया। फिर जहाँ वाहनशाला थी, वहाँ आया। वाहनशाला में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर वाहनों–(बैल आदि) का निरीक्षण किया। निरीक्षण कर उन पर लगी हुई धूल आदि हटायी, वैसा कर उन्हें वाहनशाला से बाहर निकाला। बाहर निकालकर बैलों की पीठ थपथपाई। फिर उन पर लगे आच्छादक वस्त्र–झूल आदि हटाये। झूल आदि हटाकर बैलों को सजाया। सजाकर उन्हें उत्तम आभरणों से विभूषित किया। उन्हें यानों में, गाड़ियों, रथों आदि में जोता। जोतकर **प्रतोत्रधर**–गाड़ी हाँकने वालों–(गाड़ीवानों), **प्रतोत्रयष्टिकाएँ**–गाड़ी, रथ आदि हाँकने की लकड़ियाँ या चाबुक को देकर यान चलाने का कार्य सौंपा। गाड़ीवान उसकी आज्ञानुसार यानों को राजमार्ग पर लाये। वैसा करवाकर उसने सेनानायक के पास आकर आज्ञापालन हो जाने की सूचना दी।

DECORATION OF CARRIAGES

44. The master of the royal vehicles humbly accepted the order of the army commander and came to the coach-house. He inspected the vehicles, got them cleaned and moved them out. He then removed the protective coverings and got them fitted with necessary accessories including seats and backrests besides beautifying them with ornamental decorations. After this he went to the stable and inspected the livestock. Selecting the steers he dusted them and drove them out. He then removed the protective covers, groomed and embellished them with best quality ornaments before harnessing them to coaches, carriages and chariots. Once all

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

this was done he allotted the vehicles to drivers (*pratotradhar*) giving them canes and whips to facilitate driving. Following his instructions these drivers brought the vehicles on the highway. Thereafter, he reported back to the army commandant of the compliance of his order.

नगर की सफाई व्यवस्था

४५. तए णं से बलवाउए णयरगुत्तियं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चंपं णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

४५. फिर सेनानायक ने **नगरगुप्तिक**–नगर की स्वच्छता, सुरक्षा आदि के अधिकारी, नगररक्षक या कोतवाल को बुलाकर कहा–''देवानुप्रिय ! चम्पा नगरी के बाहर और भीतर सफाई, जल छिड़काव आदि कराओ। नगर को अच्छी तरह सजाओ। (सूत्र ४० की तरह) नगरी के वातावरण को उत्कृष्ट सौरभमय करवाकर मुझे वापस सूचना दो।''

CLEANING OF THE CITY

45. Then the army commander summoned the municipal officer (*nagar-guptik*) and said—"Beloved of gods ! Please arrange to get Champa city and its outskirts cleaned and sprinkled with water. Decorate it well, make it redolent with perfumes and presentable in all respects. (as mentioned in aphorism 40). Thereafter report back compliance.

४६. तए णं से णयरगुत्तिए बालवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता चंपं णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता, जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

४६. तब नगररक्षक ने सेनानायक का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर चम्पा नगरी की बाहर और भीतर से पूर्ण सफाई कराई। पानी का छिड़काव आदि सब कार्य करवाये। फिर जहाँ सेनानायक था, वहाँ आकर आज्ञानुसार कार्य होने की सूचना दी।

46. The municipal officer humbly accepted the order. He went back and got Champa city and its outskirts cleaned and sprinkled with water. Once all the work entrusted to him was completed he reported back to the army commandant of the compliance of his order.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. तए णं से बलवाउए कोणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पियं पासइ, हयगय जाव सण्णाहियं पासइ, सुभद्दापमुहाणं देवीणं पडिजाणाइं उवट्ठवियाइं पासइ, चंपं णयरिं सब्भिंतरं जाव गंधवट्टिभूयं कयं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए, पीअमणे जाव हियए जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी–

कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसक्के हत्थिरयणं, हयगयरहपवरजोहकलिया य चाउरंगिणी सेणा सण्णाहिया, सुभद्दापमुहाणं य देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडिएक्क–पाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठावियाइं चंपा णयरी सब्भिंतरबाहिरिया आसित्त जाव गंधवट्टिभूया कया, तं णिज्जंतु णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं अभिवंदया।

४७. इसके बाद सेनानायक ने भंभसार पुत्र राजा कूणिक के प्रधान हाथी को सजा हुआ देखा। (घोड़े, हाथी, रथ आदि सहित) चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित देखा; सुभद्रा आदि रानियों के लिए तैयार कर लाये हुए यान देखे। यह भी देखा, चम्पा नगरी भीतर और बाहर से स्वच्छ की जा चुकी है, वह सुगन्ध से महक रही है। यह सब देखकर वह मन में बहुत ही हर्षित, आनन्दित एवं प्रसन्न हुआ। राजा कूणिक के पास आया। दोनों हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया–

"देवानुप्रिय ! आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार है। हाथी, घोड़े, रथ, उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना सन्नद्ध है। सुभद्रा आदि रानियों के हित, प्रत्येक के लिए अलग–अलग जुते हुए यात्रा के योग्य यान बाहरी सभाभवन के निकट तैयार खड़े हैं। चम्पा नगरी की भीतर और बाहर से सफाई करवा दी गई है, पानी का छिड़काव करवा दिया गया है, वह सुगन्ध से महक रही है। देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान महावीर की वन्दना हेतु पधारें।"

47. Then the army commander inspected the elephant meant for king Kunik, the son of Bhambhasar, the four pronged army in state of readiness, the carriages meant for Subhadra and other queens and ensured that Champa city and its outskirts were cleaned and perfumed. After inspection he was extremely satisfied, pleased and delighted. He went to the king and joining his palms submitted—

"Beloved of gods ! The elephant for the royal ride is ready and the four pronged army is in state of readiness. Separate carriages

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

for queen Subhadra and other queens are ready and wait near the outer court. Champa city and its outskirts have been cleaned, sprinkled with water and made redolent. Beloved of gods ! You may now proceed to pay homage to Bhagavan Mahavir."

कूणिक राजा की प्रस्थान तैयारी

४८. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए, जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायामजोग्गवग्गण–वामद्दण–मल्लजुद्धकरणेहिं संते, परिस्संते, सयपाग–सहस्सपागेहिं सुगंधतेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भिंगेहिं अब्भिंगिए समाणे।

तेल्लचम्मंसि पडिपुण्णपाणिपायसुउमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं, दक्खेहिं पत्तट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोवगएहिं अब्भिंगण–परिमद्दणुव्वलणकरण–गुणणिम्माएहिं, अट्ठिसुहाए, मंससुहाए, तयासुहाए, रोमसुहाए चउव्विहाए संबाहणाए संबाहिए समाणे, अवगयखेय–परिस्समे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ।

स्नानागार में प्रवेश

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता समुत्त–जालाउलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमयले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि, णाणामणि–रयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुद्धोदएहिं, गंधोदएहिं, पुप्फोदएहिं, सुहोदएहिं पुणो कल्लाणग–पवरमज्जणविहीए मज्जिए, तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग–पवरमज्जणावसाणे पम्हल–सुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे।

वस्त्राभूषण धारण

सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते, अहय–सुमहग्घदूसरयणसुसंवुए, सुइमा–लावण्णगविलेवणे य, आविद्धमणिसुवण्णे, कप्पियहारद्धहारतिसरय–पालंबपलंब–माणकडिसुत्तसुणयसोभे, पिणद्धगेविज्जअंगुलिज्जगलगलियंगयललियकयाभरणे, वरकड–गतुडियथंभियभुए, अहियरूवसस्सिरीए मुद्दियपिंगलंगुलीए कुंडलउज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए, हारोत्थयसुकयरइयवच्छे, पालंबपलंबमाणपडसुकयउत्तरिज्जे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणामणि–कणगरयणविमल–महरिहणिउणोवियमिसिमिसंत–विरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठ–लट्ठआविद्धवीरवलए किं बहुणा, कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए।

णरवई सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, चउचामरवालवीइयंगे, मंगलजयसद्दकयालोए, मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अणेगगणनायग–दंडनायग–राईसर–तलवर–माडंबिय–कोडुंबिय–इब्भ–सेट्ठि–सेणावइ–सत्थवाह–दूय–संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहणिग्गए इव गहगणदिप्पंत–रिक्ख–तारागणाण मज्झे ससिव्व पिउदंसणे णरवई; जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवगाच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे।

४८. भंभसार के पुत्र राजा कूणिक सेनानायक के मुख से यह सब सुनकर प्रसन्न एवं संतुष्ट हुआ। फिर जहाँ व्यायामशाला थी, वहाँ आया। व्यायामशाला में प्रवेश किया। अनेक प्रकार से व्यायाम किये। अंगों को खींचना, उछलना–कूदना, अंगों को मोड़ना, कुश्ती लड़ना, मुद्‌गर आदि घुमाना इत्यादि क्रियाओं द्वारा अपने को श्रान्त, परिश्रान्त किया–थकाया, विशेष रूप से थकाया। फिर **प्रीणनीय**–रस, रक्त आदि की वृद्धि करने वाले, **दर्पणीय**–बलवर्धक, **मदनीय**–कामोद्दीपक, **बृंहणीय**–माँसवर्धक, शरीर तथा सभी इन्द्रियों के लिए **आह्लादजनक**–आनन्दकर या लाभप्रद ऐसे शतपाक, सहस्रपाक वाले सुगन्धित तैलों एवं अभ्यंगों–उबटनों आदि द्वारा शरीर का मर्दन करवाया।

फिर तेल चर्म पर बैठा। (तेल से चिकना हुआ ऐसा आसन जिस पर बैठकर मालिश करवाई जाती है) जिनके हाथों और पैरों के तलुए अत्यन्त सुकुमार तथा कोमल थे, जो छेक, **दक्ष**–शीघ्र कार्य करने में समर्थ, **प्राप्तार्थ**–अपने व्यवसाय में सुशिक्षित, कुशल, **मेधावी**–मालिश–मर्दन करने की नई–पुरानी सभी विधियों के ज्ञाता, संवाहन–कला में मर्मज्ञ, **अभ्यंगन**–तेल, उबटन आदि के मर्दन, **परिमर्दन**–तेल आदि को अंगों के भीतर तक पहुँचाने हेतु किये जाने वाले विशेष मर्दन, **उद्वलन**–उलटे रूप में नीचे से ऊपर या उलटे रोओं से किये जाते मर्दन से जो गुण–लाभ होते हैं, उनको करने में जो समर्थ थे, (उनसे) जो मालिश हड्डियों के लिए सुखप्रद हो, माँस के लिए सुखप्रद हो, चमड़ी के लिए सुखप्रद हो तथा रोमों के लिए सुखप्रद हो–यों चार प्रकार से मालिश व देहचम्पी करवाई।

इस प्रकार व्यायामजनित परिश्रम को दूर कर राजा व्यायामशाला से बाहर निकला। बाहर निकलकर, स्नान घर पर आया। स्नान घर में प्रविष्ट हुआ। उस स्नानघर में सब ओर मोतियों से बनी जालियाँ होने से वह बड़ा मनोरम लगता था। उसके आँगन में तरह–तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मणियाँ व रत्न जड़े थे। उसमें रमणीय स्नानमंडप बना था। उसकी भीतों पर अनेक प्रकार की मणियों तथा रत्नों से चित्र बने हुए थे। ऐसे भव्य स्नानघर में प्रविष्ट होकर राजा वहाँ स्नान के लिए रखे हुए स्नान पीठ–चौकी पर बैठा। शुद्ध चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों के रस से मिश्रित, पुष्परस–मिश्रित एवं न ज्यादा शीतल न ज्यादा उष्ण, स्वच्छ जल से आनन्दप्रद, अतीव उत्तम स्नान–विधि द्वारा अच्छी तरह स्नान किया। स्नान के पश्चात् राजा ने दृष्टिदोष आदि निवारण हेतु काजल, टीकी व रक्षाबन्धन आदि के रूप में अनेक प्रकार विधि–विधान किये। तत्पश्चात् रोएँदार, सुकोमल, **काषायित**–लाल या गेरुए रंग के तौलिये से शरीर को पोंछा।

फिर सरस–सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का देह पर लेप किया। इसके पश्चात् **अहत**–अदूषित–कीड़ों व चूहों आदि द्वारा नहीं कटे–कुतरे हुए, निर्मल **दूष्यरत्न**–नवीन बहुमूल्य वस्त्र पहने। शुद्ध पुष्पों की माला धारण की। केसर आदि सुगन्धित द्रव्यों का विलेपन किया। मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने। हार, अठारह लड़ों के हार, अर्धहार–नौ लड़ों के हार तथा तीन लड़ों के हार और लम्बे, लटकते **कटिसूत्र**–करधनी या कंदौरे से अपने को अलंकृत किया। गले के आभरण धारण किये। अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनीं। इस प्रकार अपने सुन्दर अंगों को सुन्दर आभूषणों से विभूषित किया। उत्तम कंकणों तथा **त्रुटितों**–भुजबन्धों द्वारा भुजाओं को कसा जिससे राजा के शरीर की शोभा और अधिक बढ़ गई। मुद्रिकाओं–सोने की अंगूठियों के कारण राजा की अंगुलियाँ पीली प्रभायुक्त लग रही थीं। कुण्डलों से मुख चमक रहा था। मुकुट से मस्तक देदीप्यमान हो रहा था। हारों से ढका हुआ उसका वक्षःस्थल सुन्दर मनोरम प्रतीत हो रहा था। राजा ने एक लम्बा लटकता हुआ वस्त्र, उत्तरीय दुपट्टा धारण किया। राजा ने एक विजय–कंकण धारण किया जो 'वीरवलय' वीरों के धारण करने योग्य अथवा विजय का प्रतीक था। वह सुयोग्य शिल्पियों द्वारा मणि, स्वर्ण, रत्न आदि के योग से सुरचित उज्ज्वल, **महार्ह**–बड़े लोगों द्वारा धारण करने योग्य, **सुश्लिष्ट**–सुन्दर जोड़युक्त, **विशिष्ट**–उत्कृष्ट, प्रशस्त–प्रशंसनीय आकृतियुक्त था। अधिक क्या कहें, इस प्रकार अलंकारयुक्त, वेशभूषा विशिष्ट सज्जायुक्त राजा ऐसा लग रहा था, मानो, साक्षात् कल्पवृक्ष हो।

राजा ने मस्तक पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। उसके दोनों ओर चामर डुलाये जा रहे थे। राजा को देखते ही लोगों ने 'जय हो, विजय हो' के मंगल शब्द बोले। इस प्रकार सुसज्जित हुआ राजा स्नानघर से बाहर निकला। वह राजा स्नानघर से निकलने पर अनेक गणनायकों (जन प्रतिनिधि), दण्डनायकों–अधिकारियों, राजा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माण्डलिक राजा, ऐश्वर्यशाली या प्रभावशाली पुरुषों, राज सम्मानित विशिष्ट नागरिकों, जागीरदारों, भूस्वामियों, कौटुम्बिकों, परिवार के प्रमुखों, इभ्यों, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाहों, दूतों, संधिपालों–सीमान्त प्रदेशों के अधिकारियों से घिरा हुआ ऐसा लग रहा था मानो विशाल बादलों से निकलकर नक्षत्रों व झिलमिलाते तारों के मध्य चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।

(टीकाकार ने बताया है, यहाँ स्नानघर को बादलों की, गणनायक आदि को नक्षत्र-तारागण की तथा राजा को चन्द्रमा की उपमा दी है।)

KING KUNIK' PREPARATIONS

48. King Kunik, the son of Bhambhasar, was satisfied and pleased to get this report from the army commander. He then went and entered his gymnasium. There he performed a variety of exercises including body stretch, skipping, bending, wrestling, and swinging clubs and maces. He continued these exercises till he got tired and exhausted. Then he underwent a course of aromatherapy by getting his body rubbed with *shatpaak* and *sahasrapaak* medicated and perfumed oils and pastes. These oils and pastes had properties of improving blood and fluid circulation (*prinaniya*), enhancing physical strength (*darpaniya*), acting as aphrodisiac (*madaniya*), toning up of muscles (*brimhaniya*) and rejuvenating and exhilarating body and senses (*alhadajanak*).

After that he sat on an oilcloth (a mattress made smooth by oil) and got four types of body-massage—bone stimulating, muscle stimulating, skin stimulating and hair stimulating—from expert masseurs. The masseurs had very soft palms and heels. They were astute (*chhek*), skilled (*daksh*), well trained (*praptarth*), dexterous, experienced in new and old techniques (*medhavi*), and artful (*samvahan*). They were accomplished in all aspects of massaging including rubbing of oils, creams and pastes (*abhyangan*); kneading for deeper penetration of oils (*parimardan*); reverse rubbing or rubbing against the tilt of body-hair (*udvalan*).

THE BATHROOM

Thus relieved of his fatigue and getting refreshed, the king left the gymnasium, came to his bathroom and entered it. It was a

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

beautiful bathroom with grills made up of pearls on all sides. It had a floor inlaid with a variety of beads and gems. Within the bathroom there was a bath chamber with gem inlaid floral patterns on its walls. Entering this grand bath chamber the king sat on a stool and enjoyed a proper bath with pure, clean and lukewarm water mixed with perfumes extracted from sandalwood (etc.) and flowers. After the bath, for protection against evil eye and other bad omens, he performed various propitious rites including applying collyrium, black spot and tying protective thread (etc.). After this refreshing bath he rubbed his body dry with soft and flossy saffron coloured towel.

ADORNMENTS

The king then got his body anointed with a creamy paste made fragrant with *goshirsh* sandalwood. Then he put on undamaged (*ahat*), clean, new and costly robes. After applying saffron and other perfumes, his whole body was adorned with fresh flower garlands and a variety of ornaments made of gold and gems. The ornaments included—gem studded golden necklaces like *haar* (eighteen string necklace), *ardhahaar* (nine string necklace), three string necklace and other ornaments of the neck; long and dangling waist-band; glittering rings in fingers; and exquisite bells and armlets on arms. This way he embellished different parts of his body with beautiful ornaments enhancing the attraction of his body. The king's fingers acquired the pale glow of golden rings. His face was made radiant with ear-rings and the head with his crown. Covered with necklaces, his chest looked beautiful and attractive. The king flung a long shawl (*uttariya*) over his shoulders. He also wore an exquisite, special and sturdy warrior's bangle (*viravalaya*) made of gold and gems by expert artisans and worthy of nobility as well as symbol of victory. Needless to say more, with all these unique robes and adornments the king looked like a wish-fulfilling tree (*kalp-vriksh*).

Over the head of the king was held an umbrella decorated with *korant* flowers. Whisks were being fanned at his flanks. The

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

moment he appeared on the threshold, people greeted him with hails of victory. Thus stepped out of the bathroom the exquisitely adorned king. Coming out of the bathroom, the king joined the attending luminaries including numerous chieftains, administrators, princes, knights of honour, landlords, village heads, family heads, businessmen, merchants, commanders, caravan chiefs, ambassadors, diplomats etc. It looked as if breaking the cover of dark clouds, the moon had appeared in the midst of twinkling stars and planets.

(The commentator explains that here the analogy of clouds has been given for the bathroom, that of the moon for the king, and that of twinkling stars for attending luminaries.)

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में राजा कूणिक के शरीर की मालिश के प्रसंग में शतपाक तथा सहस्रपाक तेलों का उल्लेख हुआ है। वृत्तिकार आचार्य अभयदेव सूरि ने अपनी वृत्ति पत्र ६५ में तीन प्रकार से इनकी व्याख्या की है–(१) जो तेल विभिन्न औषधियों के साथ क्रमशः सौ बार तथा हजार बार पकाये जाते थे, वे शतपाक तथा सहस्रपाक तेल कहे जाते थे। (२) दूसरी व्याख्या के अनुसार जो क्रमशः सौ प्रकार की तथा हजार प्रकार की औषधियों से पकाये जाते थे। (३) तीसरी व्याख्या के अनुसार जिनके निर्माण में क्रमशः सौ कार्षापण (सोना, चाँदी एवं ताँबे का उस युग में प्रचलित सिक्का) तथा हजार कार्षापण व्यय होते थे, वे शतपाक एवं सहस्रपाक तेल कहे जाते थे।

Elaboration—There is a mention of *shatpaak* and *sahasrapaak* medicated and perfumed oils in this aphorism in context of massage of king Kunik. Acharya Abhayadev Suri, the commentator (*Vritti*), has given three interpretations of these terms—(1) Oils cooked with various herbs and other additives one hundred and one thousand times were called *shatpaak* and *sahasrapaak* oils respectively. (2) Oils cooked with one hundred and one thousand different herbs and other additives were called *shatpaak* and *sahasrapaak* oils respectively. (3) Oils costing one hundred and one thousand *karshapan* (the coin of that period made of an alloy of gold, silver and copper) were called *shatpaak* and *sahasrapaak* oils respectively.

भगवद् दर्शनों के लिए प्रस्थान : अष्टमंगल

४९. तए णं तस्स कूणियस्स भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठ मंगलया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तं जहा–सोवत्थिय–सिरिवच्छ णंदियावत्त–वद्धमाणग–भद्दासण–कलस–मच्छ–दप्पणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं, दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा, दंसणरइयआलोय–दरिसणिज्जा, वाउद्धूयविजयवेजयंती य, ऊसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तयाणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदंडं पलंबकोरंटमल्लदामोवसोभियं, चंदमण्डलणिभं, समूसियं, विमलं आयवत्तं, पवरं सीहासणं वरमणिरयणपादपीढं, सपाउयाजोयसमाउत्तं, बहुकिंकरकम्मकर–पुरिसपायत्तपरिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढग्गाहा वीणग्गाहा कूवग्गाहा हडप्पयग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तयाणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकरा डमरकरा चाडूकरा वादकरा कंदप्पकरा दवकरा कोक्कुइया किडक्कारा य वायंता य गायंता य हसंता य णच्चंता य भासंता य सावेंता य रक्खंता य रवेंता य आलोयं च करेमाणा, जयसद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

अश्व सेना

तयाणंतरं च णं जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलामउलमल्लियच्छाणं चंचुच्चिय–ललिय–पुलियचल–चवल–चंचलगईणं, लंघण–वग्गण–धावण–धोरण–तिवई–जइणसिक्खियगईणं, ललंत–लाम–गललायवर–भूसणाणं, मुहभंडग–ओचूलग–थासग–अहिलाण–चामर–गण्ड–परिमण्डियकडीणं, किंकरवर–तरुणपरिग्गहियाणं अट्ठसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

गज सेना

तयाणंतरं च णं ईसीदंताणं ईसीमत्ताणं ईसीतुंगाणं ईसीउच्छंगविसालधवलदंताणं कंचणकोसी–पविट्ठदंताणं कंचणमणिरयणभूसियाणं, वरपुरिसारोहगसंपउत्ताणं अट्ठसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सणंदिघोसाणं–सखिंखिणीजालपरिक्खित्ताणं हेमवयचित्ततिणिसकणगणिज्जुत्तदारुयाणं, कालायससुकयणेमिजंतकम्माणं, सुसिलिट्ठ–वत्तमंडलधुराणं, आइण्णवरतुरसंपउत्ताणं, कुसलनरच्छेयसारहिसुसंपग्गहियाणं बत्तीसतोणपरिमंडियाणं सकंकडवडेंसगाणं सचाव–सरपहरणावरण–भरियजुद्धसज्जाणं अट्ठसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

पदाति सेना

तयाणंतरं च णं असि–सत्ति–कुंत–तोमर–सूल–लउड–भिंडिमाल–धणुपाणि–सज्जं पायत्ताणीयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

४९. राजा कूणिक अपने प्रधान हाथी पर सवार हुआ, तब सबसे पहले आगे स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य तथा दर्पण–ये आठ मंगल प्रतीक क्रमशः रवाना किये गये।

उसके बाद जल से भरे हुए कलश, झारियाँ, दिव्य छत्र, पताका, चँवर तथा राजा को दिखाई देने वाली, देखने में सुन्दर प्रतीत होने वाली, हवा से फहराती, ऊँची उठी हुई मानो आकाश को छूती हुई–सी विजय–वैजयन्ती–विजयध्वजा लिए राजपुरुष चले।

कितनेक पुरुष वैदूर्य मणि की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल दंडयुक्त, लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमंडल के समान आभामय–ऊँचा उठा हुआ निर्मल छत्र आतपत्र लेकर चले। कुछ लोग पादपीठ–राजा के पैर रखने का पीढ़ायुक्त उत्तम सिंहासन, जिसमें श्रेष्ठ मणियाँ तथा रत्न जड़े थे, जिस पर राजा की पादुकाओं की जोड़ी रखी थीं, वह लेकर चले, उनके साथ आज्ञा–पालन में तत्पर सेवक, (किंकर)–विभिन्न कार्यों में नियुक्त भृत्य तथा पदातिय–पैदल चलने वाले लोग थे, वे राजा के आगे–आगे चलने लगे।

इसके पीछे बहुत से **लष्टिग्राह**–लट्ठीधारी, **कुन्तग्राह**–भालाधारी, **चापग्राह**–धनुर्धारी, **चमरग्राह**–चँवर लिए हुए, **पाशग्राह**–हाथी, घोड़ों, बैलों को नियन्त्रित करने हेतु अंकुश–चाबुक आदि हाथ में लिए हुए, **पुस्तकग्राह**–पुस्तकधारी–ग्रन्थ लिए हुए, **फलकग्राह**–काष्ठपट्ट लिए हुए, **पीठग्राह**–आसन लिए हुए, **वीणाग्राह**–वीणा धारण किये हुए, **कूप्यग्राह**–चमड़े के तेलपात्र लिए हुए, **हडप्पयग्राह**–ताम्बूल–पान के मसाले, सुपारी आदि के पात्र लिए हुए अनेक पुरुष अनुक्रम से चलने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद बहुत से **दण्डी**–दण्डधारी, **मुण्डी**–मुण्डित सिर वाले, **शिखण्डी**–शिखाधारी, **जटी**–जटाधारी, **पिच्छी**–मोर पंखधारी, **हासकर**–विदूषक, **डमरकर**–हल्लेबाज, **चाटुकर**–प्रिय वचन बोलने वाले, **वादकर**–वादविवाद करने वाले, **कन्दर्पकर**–शृंगारी चेष्टाएँ करने वाले, **दवकर**–मजाक करने वाले, **कौत्कुचिक**–भांड आदि, **क्रीड़ाकर**–खेल–तमाशे करने वाले, इनमें से कतिपय तालियाँ पीटते हुए अथवा वाद्य बजाते हुए, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, सुनाते हुए, रक्षा करते हुए, इधर–उधर निरीक्षण करते हुए तथा 'जय–जय' शब्द बोलते हुए यथाक्रम आगे बढ़ने लगे।

उनके पीछे **जात्य**–ऊँची नस्ल के एक सौ आठ घोड़े एक के पीछे एक चलने लगे। वे वेगवान, शक्तिमान और स्फूर्तिमान एवं तरुण थे। हरिमेला नामक वृक्ष की कली तथा मल्लिका–चमेली के पुष्प जैसी उनकी आँखें थीं। तोते की चोंच की तरह वक्र–टेढ़े पैर उठाकर वे शान से चल रहे थे। वे बिजली जैसे चपल, चंचल चाल लिए हुए थे। गड्ढे आदि लाँघना, ऊँचा कूदना, तेजी से सीधा दौड़ना, चतुराई से दौड़ना, भूमि पर तीन पैर टिकाना, जयिनी नामक सबसे तेज गति से दौड़ना, चलना इत्यादि विशिष्ट गति करने में वे निपुण थे। उनके गले में पहने हुए श्रेष्ठ आभूषण हिलते–डुलते अच्छे लग रहे थे। मुख के आभूषण, अवचूलक–मस्तक पर लगी हुई कलंगी, दर्पण की आकृति वाले विशेष अलंकार तथा मुखबन्ध (अभिलान) या मोहरे बड़े शोभित हो रहे थे। उनके कटिभाग (कमर) चामरदण्डों से सुभोशित थे। चतुर, तरुण सेवक उन्हें थामे हुए थे।

घोड़ों के पीछे अनुक्रम से एक सौ आठ हाथी चलने लगे। वे हाथी कुछ मदमस्त एवं कुछ–कुछ उन्नत थे। उनके दाँत कुछ–कुछ बाहर निकले हुए थे तथा उज्ज्वल, श्वेत दाँतों के पिछले भाग थोड़े विशाल थे, उन पर सोने के खोल चढ़े थे। वे हाथी स्वर्ण, मणि तथा रत्नों के आभरणों से शोभित हो रहे थे। सुशिक्षित, सुयोग्य महावत उन्हें चला रहे थे।

उसके बाद एक सौ आठ रथ यथाक्रम चलने लगे। उन रथों पर छत्र, ध्वज–(गरुड़ आदि चिन्हों से युक्त झण्डे) पताका–(चिह्नरहित झण्डे) व घण्टे लगे थे, उन पर सुन्दर तोरण बँधे हुए थे। वे नन्दिघोष–बारह प्रकार की वाद्यध्वनि [(१) भेरी, (२) मुकुन्द, (३) मृदंग, (४) कडंब, (५) झालर, (६) हुडक्क, (७) कंसाल, (८) काहल, (९) तलिमा, (१०) वंश, (११) शंख, एवं (१२) पटह–ढोल। ये बारह प्रकार के वाद्य हैं। इनकी सम्मिलित ध्वनि नन्दिघोष कही जाती है] से युक्त थे। उन पर छोटी–छोटी घण्टियों से युक्त जालियाँ लगी थीं। रथों के पहियों के घेरों पर लोहे के पट्टे चढ़ाये हुए थे। पहियों की धुराएँ सुन्दर, सुदृढ़,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोल आकार की थीं। उनमें चुने हुए उत्तम जाति के घोड़े जुते थे। सुयोग्य, सुशिक्षित सारथियों ने उनकी बागडोर सम्हाल रखी थी। एक-एक रथ में बत्तीस-बत्तीस तरकश रखे थे। कवच, शिरस्त्राण-टोप, धनुष, बाण, ढाल तथा अन्यान्य शस्त्र उनमें रखे थे। इस प्रकार वे युद्ध-सामग्री से पूर्ण सुसज्जित थे।

रथों के पीछे हाथों में तलवारें, **शक्तियाँ**-त्रिशूल, **कुन्त**-भाले, लौहदण्ड, शूल, लट्ठियाँ, **भिन्दिमाल**-हाथ से फेंके जाने वाले छोटे भाले या गोफियाँ (जिनमें रखकर पत्थर फेंके जाते हैं) तथा धनुष धारण किये हुए अनेक पदाति सैनिक अनुक्रम से चलने लगे।

THE DEPARTURE : ASHT-MANGAL

49. Once king Kunik took his seat on the leading elephant, the procession started with the eight auspicious symbols (*asht-mangal*) in the lead in this order—*Swastika* (a specific graphic design resembling the mathematical sign of addition with a perpendicular line added to each of the four arms in clockwise direction), *Shrivats* (a specific mark found on the chest of all *Tirthankars*), *Nandyavart* (a specific elaborate graphic design resembling an extended *swastika*), *Vardhamanak* (a specific design of vessel), *Bhadrasan* (a specific design of seat), *Kalash* (an urn), *Matsya* (a fish) and *Darpan* (a mirror).

THE ROYAL CAVALCADE

These were followed by the royal attendants carrying pitchers and jars filled with water, divine umbrellas, flags, whisks and the beautiful flag of victory (*vijaya-vaijayanti*) furling sky high with the wind and visible to the king.

Many individuals carried staffs shining with the glow of the studded cat's-eye gems (*vaidurya mani*) and others carried high protective umbrellas decorated with dangling garlands of *korant* flowers and radiant as the orb of the moon. Some carried a grand gem-studded throne with cushions and footrest on which was placed a pair of the king's sandals. They were accompanied by numerous attendants (*kinkar*) ready to follow any command and servants (*bhritya*) appointed for various duties, followed by other pedestrians.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Next came many, in single file, who carried staffs (*lashti graah*), spears (*kunt graah*), bows and arrows (*chaap graah*), whisks (*chamar graah*), lances and whips (for controlling elephants, horses and bulls) (*paash graah*), books (*pustak graah*), wooden planks (*phalak graah*), seats (*peeth graah*), *Veena* (*Veena graah*), leather oil-bags (*kupya graah*), pots of beetle leaves and beetle-nuts (*hadappaya graah*).

Next in order were many carrying sticks (*dandi*), many with tonsured heads (*mundi*), topknots (*shikhandi*) and matted hair (*jati*). Also accompanied many carrying peacock feather brooms (*pichchhi*), many jesters (*haaskar*), hailers (*damarkar*), flatterers (*chaatukar*), debaters (*vaadkar*), flirts (*kandarpkar*), comedians (*davakar*), bards (*kautvik*) etc. After these came a variety of entertainers (*kridakar*), some of whom were clapping and others were playing musical instruments, singing, laughing, dancing, talking, reciting, guarding, looking around and hailing victory.

CAVALARY

After them came one hundred eight pedigreed horses in single file. They were young, powerful and quick. There eyes were like fresh buds of *Harimela* and jasmine flowers. They were moving gracefully lifting legs in a curve like a parrot's beak. The movement of their limbs was quick as lightening. They were skillfully trained in a variety of tasks including crossing hurdles, jumping, galloping and loping, dancing, jumping on three legs, racing at high speed (*jayini*) (etc.). Ornaments dangling from their necks looked attractive. The ornamental blinkers and frontbands, the plumed crown piece, nosepiece and bit and other mirror type ornaments enhanced their beauty. Their backs were adorned with whisk-shafts. They were held by young and trained horsemen.

ELEPHANT BRIGADE

The horses were followed by one hundred eight elephants in single file. These elephants were tall and slightly intoxicated. Their projecting white tusks were broad at the base and covered with

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

gold. They were decorated with ornaments of gold and gems. They were driven by well trained and able mahouts.

CHARIOT BRIGADE

Then came one hundred and eight chariots in single file. These chariots were equipped with umbrellas, flags (with insignias of eagle etc.), buntings and arches. They also had the *Nandighosh* arrangement [the combined sound of twelve musical instruments—(1) *Bheri*, (2) *Mukund*, (3) *Mridang*, (4) *Kadamb*, (5) *Jhalar*, (6) *Hudakk*, (7) *Kansaal*, (8) *Kahal*, (9) *Talima*, (10) *Vamsh*, (11) *Shankh*, and (12) *Patah*]. They were decorated with a network of numerous tiny bells. The wheels of chariots were fitted with iron straps on their rims. The axles of these wheels were well shaped, strong and round. Best breed of horses were harnessed to these chariots. Their reigns were in the hands of well trained and able charioteers. They were fitted with thirty two quivers each. They were also loaded with armours, helmets, bows, arrows, shields and a variety of other weapons.

FOOT SOLDIERS

After the chariots, marched contingents of foot soldiers carrying in their hands swords, tridents (*shakti*), spears (*kunt*), iron maces, lances, sticks, *Bhindimal* (javelins or slingshots) and a variety of other weapons.

कूणिक का अद्‌भुत स्वरूप

५०. तए णं से कूणिए राया हारोत्थयसुकय-रइयवच्छे कुंडलउज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मणुयरायवसभकप्पे अब्भहियं रायतेयलच्छीए दिप्पमाणे, हत्थिक्खंधवरगए, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं वेसमणे चेव णरवई अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

५०. तब वह भंभसार पुत्र कूणिक राजा, जिसका वक्षस्थल हारों से सुशोभित हो रहा था, मुख कुण्डलों की चमक से प्रकाशित था, उसके मस्तक पर मुकुट देदीप्यमान था, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट कूणिक की दर्शन यात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-६	Illustration No. 6

सम्राट् कूणिक की दर्शन यात्रा

चम्पापति सम्राट् कूणिक भगवान महावीर की वन्दना करने के लिए स्नान आदि करके विविध प्रकार के आभूषणों को धारण कर अपने सुसज्जित प्रधान हाथी पर आसीन हुआ। उसके दर्शन यात्रा के जुलूस में सबसे आगे अष्ट मंगलपट लिये सैनिक रवाना हुए। उनके पीछे भरे हुए कलश, झारियाँ, छत्र, चँवर, झण्डा, ध्वजा, पताकाएँ लिए राज पुरुष चले। उनके पीछे तरह-तरह के शस्त्र हाथ में लिए सैनिक थे। उनके साथ-साथ वीणा-तुणीर आदि वाद्य बजाने वाले, स्वस्ति वचन बोलने वाले, दण्डधारी, मोर पिच्छ रखने वाले, गाने, बजाने, नाचने वाले, क्रीड़ा कौतुक करते हुए लोग। उनके पीछे एक सौ आठ उच्च जाति के घोड़ों पर घुड़सवार, फिर एक सौ आठ हाथी, फिर रथ सवार और उनके पीछे पैदल सैनिक चलने लगे। चतुरंगिणी सेना के पीछे हाथी पर आरूढ़ राजा कूणिक थे। उनके गले में सुवासित फूलों की मालाएँ, मस्तक पर मुकुट पहना था। छत्र, चँवर आदि धारण करने वाले, राजा के आगे घुड़सवार तथा दायें-बायें हाथी सवार चल रहे थे। राजा के हाथी के पीछे श्रेष्ठ रथों में रानियाँ व राजपरिवार था। उनके पीछे विशाल जन समुदाय।

नगर के हजारों लोग राजा पर फूल बरसा रहे थे। जय-जयकार कर रहे थे। कोई शंख बजाकर, कोई तालियाँ बजाकर हर्ष प्रकट कर रहे थे। दर्शक प्रजा जन राजा की जय बोलते हुए अनेक प्रकार के आशीर्वाद तथा मंगल वचन बोल रहे थे। इस प्रकार विशाल जुलूस के साथ भगवान महावीर के दर्शन करने राजा कूणिक ने प्रस्थान किया।

-सूत्र ४९-५२

EMPEROR KUNIK'S PROCESSION

After taking his bath and adorning himself with a variety of ornaments, King Kunik took his seat on his leading and decorated elephant in order to go to pay homage to Bhagavan Mahavir. The procession started with the eight auspicious symbols. These were followed by the royal attendants carrying pitchers and jars filled with water, divine umbrellas, flags, whisks and the beautiful flag of victory. Next came many soldiers carrying different types of weapons. Next in order were many artists playing musical instruments like *Vina* and *Tunir*, flatterers, staff holders, many carrying peacock feather brooms, singers, dancers, and other entertainers. After them came one hundred eight riders on pedigreed horses, one hundred elephants, chariots, and contingents of foot soldiers. After this four pronged army came King Kunik. His chest was adorned with fragrant garlands, on his head glittered his crown. Over his head was an umbrella. Whisks were being waved on his flanks. His escort group comprised of horse riders in front and elephant riders on flanks. The king's elephant was followed by his queens and other family members in chariots. In the end came masses of people.

Thousands of hailing citizens showered flowers on the king. They were expressing their joy by clapping and blowing conch-shells. He was greeted and blessed by thousands of people singing in his praise. Thus King Kunik moved in an elaborate procession to behold and pay homage to Bhagavan Mahavir.

—Sutra 49-52

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों में सिंह के समान शौर्यशाली अपने आश्रित जनों का पालन-पोषण करने के कारण उनका स्वामी, मनुष्यों में इन्द्र के समान परम ऐश्वर्यशाली, मनुष्यों में श्रेष्ठ वृषभ के समान धीर, सहिष्णु (अथवा मनुष्यों में राजाओं का भी राजा चक्रवर्ती-उत्तर भरतार्ध साधने में प्रवृत्त होने से चक्रवर्ती जैसा) राजा के योग्य ऐश्वर्य लक्ष्मी से दीप्तिमान लग रहा था, श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ़ हुआ। फिर उसने छत्र धारण किया, जिस पर कोरंट पुष्प (श्वेत पुष्पों) की मालाएँ लटक रही थीं। उसके दोनों पसवाड़े श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे। उस समय उसकी यह शोभा वैश्रमण कुबेर के समान, नरपति-चक्रवर्ती राजा के समान, अमरपति-देवराज इन्द्र के तुल्य लग रही थी। उसकी समृद्धि की कीर्ति चारों तरफ फैली थी। वह अश्व, हस्ति, रथ और पदाति सेना-इस प्रकार चतुरंगिनी सेना साथ लिए उसके आगे-आगे पूर्ण भद्र चैत्य की तरफ भगवान महावीर को वन्दना करने लिए प्रस्थित हुआ।

KUNIK'S MAJESTIC APPEARANCE

50. And then followed king Kunik, the son of Bhambhasar. His chest was adorned with necklaces, his face gleamed with the shining ear-rings, and on his head glittered his crown. He was valorous as if a lion among men. Being a generous provider he was the master of his subjects. Due to his unlimited wealth and grandeur he enjoyed the status of Indra (the king of gods) among men. Like a bull among men, he was patient and tolerant. As his reign extended to the north Bharat he was like an emperor or the king of many kings. Scintillating with all this grandeur he rode the best of elephants. He had over his head an umbrella decorated with garlands of *Korant* flowers. Whisks were being waved on his flanks. At that moment he appeared resplendent as Vaishraman Kuber (the god of wealth), a *chakravarti* (emperor), and Indra, the king of gods. The fame of his grandeur had spread all around. Accompanied by the four pronged army, he commenced his journey in the direction of Purna Bhadra Chaitya for paying homage to Bhagavan Mahavir.

५१. तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स पुरओ महं आसा, आसवरा, उभओ पासिं णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहसंगेल्लि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. तब भंभसार पुत्र राजा कूणिक के आगे विशालकाय घोड़े और घुड़सवार चल रहे थे। दोनों ओर हाथी तथा हाथियों पर सवार पुरुष थे उनके पीछे रथों का झुण्ड चल रहा था।

51. At that time the escort group of king Kunik comprised of riders on tall horses in front, riders on elephants on flanks and chariots covering the rear.

५२. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते अब्भुग्गयभिंगारे, पग्गहियतालयंटे, ऊसविय-सेयच्छत्ते, पवीइयबालवीयणीए, सव्विड्ढीए, सव्वजुईए सव्वबलेणं, सव्वसमुदएणं, सव्वादरेणं, सव्वविभूईए, सव्वविभूसाए, सव्वसंभमेणं, सव्वपुप्फगंध-मल्लालंकारेणं, सव्वतुडियसद्दसण्णिणाएणं, महया इड्ढीए, महया जुईए, महया बलेणं, महया समुदएणं, महया वरतुडिय-जमग-समगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरव-मुअंग-दुंदुहि-णिग्घोसणाइयरवेणं चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ।

५२. इस विशाल जुलूस के साथ भंभसार पुत्र राजा कूणिक चम्पा नगरी के बीचोंबीच होता हुआ आगे बढ़ा। उसके आगे-आगे जल से भरी झारियाँ लिए पुरुष चल रहे थे। सेवक दोनों ओर पंखे झल रहे थे। ऊपर सफेद छत्र तना था। चँवर ढोले जा रहे थे। वह सब प्रकार की समृद्धि, सब प्रकार की द्युति, सब प्रकार के सैन्य बल एवं सभी परिजनों के साथ चल रहा था। सभी उसके प्रति आदर प्रकट कर रहे थे। वह सब प्रकार के वैभव, सब प्रकार की वेशभूषा-वस्त्र, आभरण आदि द्वारा सुसज्ज, सबकी स्नेहपूर्ण उत्सुकता लिए सब प्रकार के फूल, सुगन्धित पदार्थ, फूलों की मालाएँ, अलंकार या फूलों की मालाओं से निर्मित आभरण धारण किये हुए था। उसके सन्मुख, **सर्व तूर्यशब्द-सन्निपात**-सब प्रकार के वाद्यों की ध्वनि-प्रतिध्वनि, **महाऋद्धि**-अपने विशिष्ट वैभव, **महाद्युति**-विशिष्ट आभा, **महाबल**-विशिष्ट सेना, **महासमुदय**-अपने विशिष्ट पारिवारिक जन-समुदाय से सुशोभित था। शंख, **पणव**-ढोल, **पटह**-बड़े ढोल, भेरी, झालर, खरमुही, हुडुक्क, **मुरज**-ढोलक, मृदंग तथा दुन्दुभि-नगाड़े एक साथ विशेष रूप से बजाए जा रहे थे।

52. With this large procession king Kunik, the son of Bhambhasar moved through the heart of the city of Champa. In front of him walked men carrying jars filled with water. On both sides were attendants waving fans. There was a white canopy above

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

him and whisks were being waved. He was moving with all his wealth, radiance, armed forces and family members. Everyone was expressing his respect for the king. He had on him all his grandeur and embellishments including apparels and ornaments. Emblazoned with different types of flowers, perfumes, garlands and other ornaments made of flowers, he evoked humble and loving curiosity in all. He was extolled by reverberating sounds of all types of musical instruments and graced with his unique glory, extraordinary radiance, unchallenged power (of the army) and mighty family. A great number of wind and percussion musical instruments including *Shankh, Panav, Patah, Bheri, Jhalar, Kharmuhi, Hudukk, Muraj, Mridang* and *Dundubhi* were being played in unison with a specific beat.

जनता द्वारा मंगल घोष

५३. तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणस्स बहवे अत्थत्थिया, कामत्थिया, भोगत्थिया, लाभत्थिया किब्बिसिया, करोडिया, कारवाहिया, संखिया, चक्किया, नंगलिया, मुहमंगलिया, वद्धमाणा, पूसमाणया, खंडियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी—

— जय—जय णंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अजियं जिणाहि, जियं च पालेहिं, जियमज्झे वसाहि। इंदो इव देवाणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुयाणं बहूइं वासाइं, बहूइं वाससयाइं, बहूइं वाससहस्साइं अणहसमग्गो, हट्ठतुट्ठो परमाउं पालयाहि।

इट्ठजणसंपरिवुडो चंपाए णयरीए अण्णेहिं च बहूणं गामागर—णयर—खेड—कब्बड—दोणमुह—मडंब—पट्टण—आसम—निगम—संवाह—संनिवेसाणं आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं, आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणए, पालेमाणे महयाहयनट्टगीयवाइयतंती—तलतालतुडियघणमुअंगपडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति।

५३. जब राजा कूणिक चंपा नगरी के बीच से निकल रहा था, तब उसके सामने बहुत से अर्थार्थी—धन के अभिलाषी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी—मात्र भोजन आदि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिलाषी, **किल्विषिक**–भांड आदि, **कापालिक**–खप्पर धारण करने वाले भिक्षु, **करबाधित**–**करपीडित**–राज्य के कर आदि से कष्ट पाने वाले, **शांखिक**–शंख बजाने वाले, **चाक्रिक**–चक्रधारी (कुम्हार), **लांगलिक**–हल चलाने वाले कृषक, **मुखमांगलिक**–मुँह से मंगलमय शुभ वचन बोलने वाले या चाटुकार, वर्धमान–दूसरों के कन्धों पर बैठे पुरुष, **पूष्यमाणव**–मागध–भाट, चारण आदि स्तुतिगायक, **खंडिकगण**–छात्रसमुदाय, **इष्ट**–वांछित, **कान्त**–कमनीय, **प्रिय**–प्रीतिकर, **मनोज्ञ**–मनोनुकूल, **मनाम**–चित्त को प्रसन्न करने वाली, **मनोभिराम**–मन को रमणीय लगने वाली तथा हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाली वाणी से जय विजय आदि सैकड़ों मांगलिक शब्दों से राजा का लगातार अभिनन्दन करते हुए, स्तुति–प्रशस्ति करते हुए इस प्रकार बोलने लगे–

''जन–जन को आनन्द देने वाले राजन् ! आपकी जय हो, आपकी जय हो। जन–जन के लिए कल्याण–स्वरूप राजन् ! आप सदा जय प्राप्त करें। आपका कल्याण हो। जिन्हें नहीं जीता है, उन पर विजय प्राप्त करें। जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें, उनके बीच निवास करें। देवों में इन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह, नागों में धरणेन्द्र की तरह, तारों में चन्द्रमा की तरह, मनुष्यों में चक्रवर्ती भरत की तरह आप अनेक वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक सब प्रकार के दोष या विघ्नरहित रहते हुए अथवा संपत्ति, परिवार आदि से सर्वथा सम्पन्न, प्रसन्न रहते हुए परम उत्कृष्ट आयु प्राप्त करें। आप चिरंजीवी हों।

आप अपने इष्ट–प्रिय जन सहित चम्पा नगरी के तथा अन्य बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेश, इन सबका आधिपत्य, इन सबको **पौरोवृत्य**–नेतृत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व–प्रभुत्व, **महत्तरत्व**–अधिनायकत्व, **आज्ञेश्वरत्व**–जिसे आज्ञा देने का सर्व अधिकार होता है, ऐसा सेनापतित्व, इन सबका सर्वाधिकृत रूप में पालन करते हुए विचरें। आप निरन्तर नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य–तुरही एवं घनमृदंग–बादल जैसी आवाज करने वाले मृदंगों से निकलती सुन्दर ध्वनियों से आनन्द अनुभव करते हुए, निर्विघ्न रूप में विपुल भोग भोगते हुए सुखी रहें।'' यों कहकर उन्होंने जय–घोष किया।

HAILING MASSES

53. As king Kunik passed through the city of Champa he was greeted with continuous hails of victory and hundreds of auspicious words in coveted, pleasant, lovable, likable, joyous, desirable and blissful voice by masses of people among whom were many who

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

sought wealth, many who desired worldly pleasures and many who only desired food. There very also many clowns and jesters (*kilvishik*), skull-carrying mendicants (*kapalik*), persons who suffered under state tax and other duties (*karapidit*), conch-shell blowers (*shankhik*), potters (*chakrik*), farmers (*langalik*), admirers and flatterers (*mukhamangalik*), persons carried on shoulders (*vardhaman*), bards (*pooshyamanav*) and students (*khandik*). These masses were shouting—

"O king, the source of joy for masses, may you be victorious ! O king, the epitome of beatitude of people, may you be always victorious ! May you gain exaltation. May you conquer the hitherto undefeated. May you live among and protect those whom you have conquered. Like Indra among gods, Chamarendra among *asurs* (a kind of lower gods), Dharanendra among *naags* (a kind of lower gods), the moon among *tara* (heavenly bodies) and Bharat Chakravarti among men—may you live for many years, hundreds of years, thousands of years, hundreds of thousands of years free from all troubles and enjoying family and wealth with happiness and joy. May you have an extremely long life, may you be immortal.

"Being surrounded by your near and dear ones, may you reign over the city of Champa and many other villages (*gram*), *aakar* (settlement near a mine), *nagar* (city), *khet* (kraal), *karbat* (market), *dronmukh* (hamlet), *madamb* (borough), *pattan* (harbour), *ashram* (hermitage), *nigam* (trade center), *samvah* (settlement in a valley) and *sannivesh* (temporary settlement). May you be the ruler, leader, provider, lord and commander of these and support them. Amidst the incessant delightful performances of dances and songs, and rejoicing in music of instruments like *Veena, Kartal, Turya* and *Ghanamridang*, may you live happily enjoying uninterrupted and immense mundane pleasures." They concluded this with hails of victory.

भगवद् दर्शन–लाभ

५४. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, कंति–सोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे।

बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ। निग्गच्छइत्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ।

उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइं, तं जहा–खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ बालवीयणिं, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ।

पाँच अभिगम

उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा– १. सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, २. अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३. एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, ४. चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५. मणसो एगत्तीभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, वंदित्ता नमंसइ, नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ, तं जहा–काइयाए, वाइयाए, माणसियाए।

तीन प्रकार की पर्युपासना

काइयाए–ताव संकुइयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

वाइयाए–'जं जं भगवं वागरेइ एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह', अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ।

माणसियाए–महयासंवेगं जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्ते पज्जुवासइ।

५४. भंभसार पुत्र राजा कूणिक का (चम्पा के राजमार्ग पर उपस्थित हजारों नर–नारी) अपने नेत्रों से बार–बार दर्शन कर रहे थे। हजारों नर–नारी उसका हृदय से बार–बार अभिनन्दन कर रहे थे। हजारों नर–नारी अपने मन में शुभ मनोरथ–मनःकामनाएँ लिए हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। हजारों नर-नारी उसका बार-बार **अभिस्तवन**-गुण-संकीर्तन कर रहे थे। हजारों नर-नारी उसकी दैहिक कान्ति, उत्तम सौभाग्य आदि गुणों को लक्ष्य कर ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलाषा करते थे।

हजारों स्त्री-पुरुष हाथों की अंजलि माला द्वारा राजा को प्रणाम कर रहे थे, तब राजा अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर बार-बार उनका अभिवादन स्वीकार करता हुआ, कोमल वाणी से उनका कुशल पूछता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों को पार करता हुआ कूणिक राजा चम्पा नगरी के बीच से निकला। निकलकर, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आया।

पाँच अभिगम

पूर्णभद्र चैत्य में आकर भगवान से यथोचित दूरी पर रुका। वहाँ से तीर्थंकरों के छत्र आदि अतिशयों को देखा। देखकर अपनी सवारी के प्रमुख उत्तम हाथी को ठहराया, हाथी से नीचे उतरा, (१) तलवार, (२) छत्र, (३) मुकट, (४) चंवर-इन राजचिह्नों को अलग किया, (५) जूते उतारे। भगवान महावीर जहाँ विराजमान थे, वहाँ आया।

वहाँ आकर-(१) सचित्त पदार्थों का व्युत्सर्जन करना, (२) अचित्त पदार्थों को अव्युत्सर्जन-अपने पास रखना, (३) अखण्ड-अनसिले वस्त्र का उत्तरासंग-उत्तरीय की तरह कन्धे पर धारण करना, (४) धर्मनायक पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना, तथा (५) मन को एकाग्र करना-इन पाँचों अभिगमों-नियमों का अनुपालन करता हुआ राजा कूणिक भगवान के सम्मुख गया। भगवान को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना, नमस्कार कर कायिक, वाचिक, मानसिक रूप से पर्युपासना करने लगा।

तीन प्रकार की पर्युपासना

(१) **कायिक पर्युपासना** के रूप में हाथों-पैरों को सिकोड़े हुए, धर्म सुनने की इच्छा लिए, नमन करते हुए भगवान के सम्मुख होकर विनय से हाथ जोड़े हुए उचित स्थान पर बैठा।

(२) **वाचिक पर्युपासना** के रूप में भगवान जो-जो बोलते थे, उसके लिए, 'भंते ! यह ऐसा ही है, यही तथ्य है भगवन् ! यही सत्य है प्रभो ! यही सन्देह रहित है भंते ! आपका वचन हमारे लिए वांछित है भंते ! यही हमारे लिए प्रतीच्छित-स्वीकृत है प्रभो ! यही इच्छित-प्रतीच्छित है भंते ! जैसा आप कह रहे हैं वह वैसा ही है।'' इस प्रकार अनुकूल वचन बोलता रहा।

(३) **मानसिक पर्युपासना** के रूप में अपने हृदय में अत्यन्त संवेग-वैराग्य उत्पन्न करता हुआ तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BEHOLDING BHAGAVAN

54. Thousands of eyes (of men and women on the streets of Champa) were looking again and again at king Kunik, the son of Bhambhasar. He was being greeted again and again by thousands of hearts filled with best wishes. Thousands of people were singing in his praise. Bearing in mind his radiant personality, good fortune and other qualities, thousands of people were expressing their hope that such a master be ever present among them.

The king was responding to these greetings from thousands of men and women with joined palms by waving his hands and softly asking about their welfare. Thus passing thousands of rows of houses, king Kunik crossed the city and arrived at Purnabhadra Chaitya.

Coming to Purnabhadra Chaitya, he stopped at an appropriate distance and observed the divine canopy and other divine signs of a *Tirthankar*. He then stopped his royal elephant and alighted from it. After removing his five regalia, namely (1) sword, (2) umbrella, (3) crown, (4) whisks, and (5) sandals, he approached the spot where Bhagavan Mahavir was seated. He observed the five codes of courtesy meant for a religious assembly (*abhigam*) and went before Bhagavan Mahavir.

FIVE CODES (ABHIGAM)

The five codes being—(1) to discard things infested with living organisms (*sachit*), (2) to retain things free of living organisms (*achit*), (3) to place a one-piece shawl (*uttariya*) on shoulders, (4) to join palms the instant the religious leader is seen, and (5) to focus attention on him. After this the king went around Bhagavan three times, paid homage and obeisance, and commenced his threefold worship—physical, vocal and mental.

THREEFOLD WORSHIP

(1) Physical worship—With a desire to listen to religious sermon he looked at Bhagavan, bowed to him and sat down at proper place drawing in and folding his limbs and humbly joining his palms.

(2) Vocal worship—When Bhagavan uttered something he responded by saying in acquiescence—"*Bhante* ! It is, indeed, so !"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

or "So is the reality, Bhagavan !" or "*Prabho* ! It is the truth !" or "Bhagavan ! It is beyond any doubt !" or "*Bhante* ! Your sermon is what we need !" or "*Bhante* ! Your word is law for us !" or "*Bhante* ! Your word is what we need and what we accept !" or "*Bhante* ! It is exactly as you say !"

(3) Mental worship—Filling his mind with intense and sincere feeling of renouncing the mundane, he devoted himself keenly to the pursuance of the religious path.

रानियों का सपरिजन आगमन

५५. तए णं ताओ सुभद्दप्पमुहाओ देवीओ अंतोअंतेउरंसि ण्हायाओ जाव सव्वालंकारविभूसियाओ,

विशाल दासी परिवार

बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं, बब्बरीहिं बउसियाहिं जोणियाहिं पह्लवियाहिं ईसिणियाहिं चारुणियाहिं लासियाहिं लउसियाहिं सिंहलीहिं दमिलीहिं आरबीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगिय-चिंतिय-पत्थियवियाणियाहिं, सदेसणेवत्थग्गहियवेसाहिं-चेडियाचक्कवाल-वरिसधरकंचुइज्जमहत्तरवंद-परिक्खित्ताओ अंतेउराओ णिग्गच्छंति,

णिग्गच्छित्ता जेणेव पाडियक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पाडियक्क-पाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरूहंति, दूरूहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेएइ, तेणेव उवागच्छंति,

उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता पाडियक्क-पाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवित्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति।

उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छन्ति, तं जहा-१. सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, २. अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३. विणओ णयाए गायलट्ठीए, ४. चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं, ५. मणसो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगत्तीभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता, णमंसित्ता कूणियरायं पुरओकट्टु ठिइयाओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिउडाओ पज्जुवासंति।

५५. तत्पश्चात् सुभद्रा आदि रानियों ने अन्तःपुर में स्नान किया, अन्य नित्य कार्य पूरे किये (जैसे–देह–सज्जा की दृष्टि से आँखों में काजल आँजा, ललाट पर तिलक लगाया, दुःस्वप्नादि दोष निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि, अक्षत आदि से मंगल–विधान किया)। सभी अलंकारों से विभूषित हुईं।

फिर बहुत–सी देश–विदेश की दासियों के साथ, जिनमें से बहुत–सी कुबड़ी थीं, बहुत–सी किरात देश की थीं, कुछ बौनी थीं, अनेक ऐसी थीं, जिनकी कमर झुकी थी, अनेक बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पह्लव देश की, इसिन देश की, चारुकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिंहल देश की, द्रविड़ देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की–इस प्रकार विभिन्न देशों की, जो अपने–अपने देश की वेशभूषा में सजी थीं, अपने–अपने देश के रीति–रिवाज के अनुरूप जिन्होंने वस्त्र आदि परिधान पहन रखे थे। जो इंगित अभिप्राय के अनुरूप चेष्टा को मन में गुप्त रहे वांछित भाव को संकेत या चेष्टा मात्र से समझने में चतुर थीं, ऐसी दासियों के समूह से घिरी हुई, वर्षधरों–नपुंसकों, कंचुकियों–अन्तःपुर (जनानी ड्योढ़ी) के पहरेदारों तथा अन्तःपुर के विश्वस्त रक्षाधिकारियों से घिरी हुई बाहर निकलीं।

अन्तःपुर से निकलकर वे सुभद्रा आदि रानियाँ, जहाँ प्रत्येक के लिए अलग–अलग तैयार किये रथ खड़े थे, वहाँ आईं। वहाँ आकर अपने लिए निश्चित यात्रा के लिए तैयार किये, जुते हुए रथों पर सवार हुईं। सवार होकर अपने परिजन वर्ग–दासियों आदि से घिरी हुई चम्पा नगरी के मार्ग बीच से निकलीं। निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आईं।

पूर्णभद्र चैत्य में आकर श्रमण भगवान महावीर के सन्मुख जहाँ से भगवान स्पष्ट दिखाई देते थे, वहाँ आकर ठहरीं। तीर्थंकरों के छत्र आदि अतिशयों को देखा। वहीं पर अपने रथों को रुकवाया। रुकवाकर रथों से नीचे उतरीं। नीचे उतरकर अपनी बहुत–सी कुब्जा आदि पूर्वोक्त दासियों से घिरी हुई बाहर निकलीं। जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आईं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

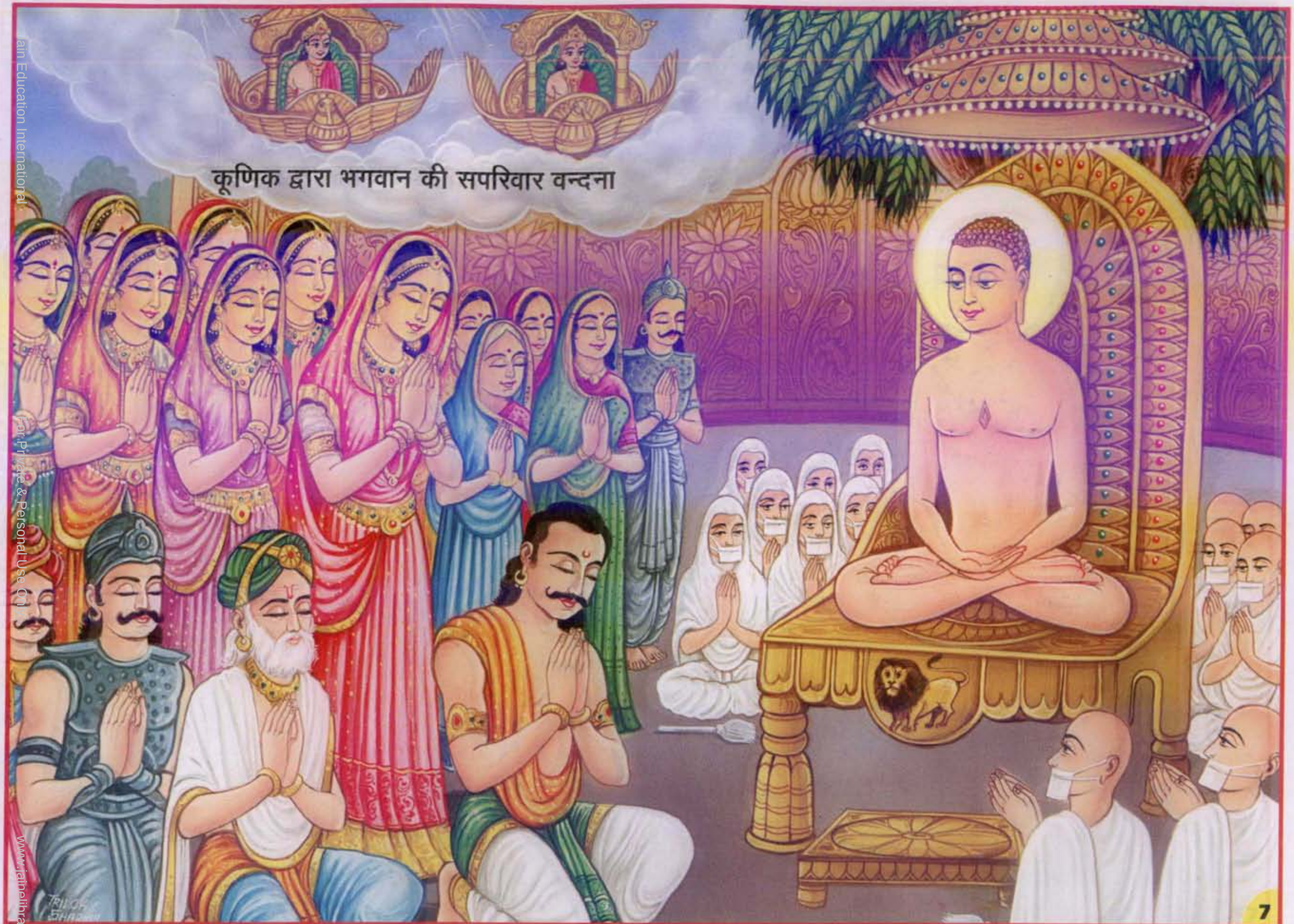

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-७

Illustration No. 7

कूणिक द्वारा भगवान की सपरिवार वन्दना

चम्पा नगरी से निकलता हुआ अपनी चतुरंगिनी सेना व सुभद्रा आदि रानियों के साथ, अमात्य-सेनापति आदि अधिकारियों से घिरा राजा कूणिक श्रमण भगवान महावीर के समवसरण में आता है। भगवान को देखते ही छत्र-मुकुट-चँवर-जूते-तलवार आदि उतारकर उत्तरासन-दुपट्टा लेकर निकट आता है। समवसरण में आकर एकाग्र मन होकर तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके मन-वचन-काया से भगवान की पर्युपासना करता है।

-सूत्र ५४

HOMAGE BY KUNIK AND HIS FAMILY

Passing through Champa city, king Kunik and his queens including Subhadra, surrounded by his ministers and officials, came to the *Samavasaran* of Shraman Bhagavan Mahavir. The moment he saw *Bhagavan* he removed his sword, umbrella, crown, whisks, and sandals. He then placed a shawl on his shoulders and approached the seat. Joining palms and focusing attention he went around *Bhagavan* three times and commenced his threefold worship—physical, vocal, and mental.

—*Sutra 54*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान के निकट जाने के लिए पाँच प्रकार के अभिगमों-नियमों को धारण किया। जैसे-(१) सचित्त पदार्थों का व्युत्सर्जन करना, (२) अचित्त पदार्थों का अव्युत्सर्जन, (३) गात्रयष्टि-देह को विनय से झुकाना, (४) भगवान पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना, तथा (५) मन को एकाग्र करना। इन अभिगमों से युक्त उन रानियों ने तीन बार भगवान को आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् महाराज कूणिक को आगे कर (राजा के पीछे-पीछे) अपने परिजनों सहित भगवान के सम्मुख विनयपूर्वक हाथ जोड़े पर्युपासना करने लगीं।

ARRIVAL OF THE QUEENS

55. Subhadra and other queens in the palace also took their bath and performed other daily chores (like applying collyrium in eyes, putting auspicious spot on forehead and performing other auspicious rituals using sandalwood, vermilion, curd, rice etc. for beautifying the body and protection against ill omens). After that they adorned themselves with a variety of ornaments.

LARGE CONTINGENT OF MAIDS

They then came out of the palace accompanied by many maids. This large contingent of maids included many who were hunchbacks (*kubja*), many from the Kirat country (*Kirati*), many who were dwarf (*vamani*), many who were with deformed back and others from various different countries including Barbar, Payausa (Bakush), Jona (Yunana or Greece), Panhava (Pahlava), Isigina (Isin), Vasina (Charukinik), Lasiya (Lasak), Lausa (Lakush), Simhala (Ceylon), Damila (Dravid), Arab (Arabia), Puland (Pulind), Pakkun (Pakkan), Bahal, Murund, Sabar (Shabar) and Paras (Persia). They all were dressed in their respective native garb conforming to their respective ethnic customs. They were adept at understanding the inner feelings and intentions through gestures or other expressions. All these, in turn, were surrounded by eunuchs (*varshadhar*), female-guards of inner quarters (*kanchuki*) and palace guards.

Coming out of the palace they went to the place where separate carriages for each one of them were duly harnessed and ready in all

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

respects, waiting for their planned journey. They boarded these vehicles and passed through Champa city. They finally arrived at Purnabhadra Chaitya.

Coming to Purnabhadra Chaitya they stopped at an appropriate distance and observed the divine canopy and other divine signs of a *Tirthankar*. They then stopped the chariots and alighted from them. Surrounded by their numerous maids they approached the spot where Bhagavan Mahavir was seated.

They observed the five codes of courtesy meant for a religious assembly (*abhigam*) and went before Bhagavan Mahavir. The five codes being—(1) to discard things infested with living organisms (*sachit*), (2) to retain things free of living organisms (*achit*), (3) to bow down with modesty, (4) to join palms the instant the religious leader is seen, and (5) to focus attention on him. After this the queens went around Bhagavan three times and paid homage and obeisance. Now they positioned themselves and their retinue behind king Kunik and joining their palms commenced the worship with reverence.

भगवान द्वारा धर्मदेशना

५६. (क) तए णं समणे भगवं महावीरे कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स सुभद्दापमुहाणं देवीणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए इसिपरिसाए, मुणिपरिसाए, जइपरिसाए, देवपरिसाए, अणेगसयाए, अणेगसयवंदाए, अणेगसयवंदपरिवाराए।

भगवद् वाणी का स्वरूप

ओहबले, अइबले, महब्बले, अपरिमियबलवीरियतेय-माहप्पकंतिजुत्ते, सारय-णवत्थणिय-महुर-गंभीर-कोंचणिग्घोस-दुंदुभिस्सरे, उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ अरिहा धम्मं परिकहेइ। तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्मं आइक्खइ, सावि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. (क) तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने भंभसार पुत्र राजा कूणिक, सुभद्रा आदि रानियों तथा महती विशाल परिषद् को धर्मोपदेश किया। भगवान महावीर की धर्मदेशना सुनने को उपस्थित परिषद् में **ऋषि**–अवधिज्ञानी साधु, **मुनि**–मौनी या वाक्संयमी साधु, **यति**–चारित्र के प्रति अति यत्नशील श्रमण, चार जाति के देवता तथा सैकड़ों–सैकड़ों, हजारों श्रोताओं के समूह उपस्थित थे। (उस सभा को अर्हत् प्रभु ने श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश दिया।)

(भगवान महावीर) ओघबली–सदा एक समान रहने वाले अक्षीण बल के धारक थे। अतिबली–अनन्त बल सम्पन्न थे एवं महाबली–प्रशस्त बलयुक्त थे। असीम वीर्य–(आत्मशक्ति) बल (शरीर बल) तेज (प्रभाव) महत्ता तथा कांति (शारीरिक सुन्दरता) से युक्त थे। भगवान की ध्वनि शरत् काल के नूतन मेघ की गर्जना जैसी गम्भीर, क्रौंच पक्षी के निर्घोष तथा नगाड़े की ध्वनि के समान मधुर, गम्भीर (बहुत दूर तक सुनाई देने वाली) स्वरयुक्त थी। वाणी हृदय में विस्तृत होती फैलती हुई, कण्ठ में वर्तुलाकार गूँजती हुई तथा मूर्धा में परिव्याप्त होती हुई अत्यन्त स्पष्ट उच्चारणयुक्त अक्षरों सहित, अस्पष्ट उच्चारण या हकलाहट से रहित, **सर्व–अक्षर सन्निपात**–समस्त अक्षरों के संयोग से निष्पन्न, पूर्णता तथा स्वर–माधुर्य–लययुक्त थी। वह भाषा प्रत्येक श्रोता की अपनी–अपनी भाषा में परिणत होने की क्षमतायुक्त थी। एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर में भगवान ने अर्द्धमागधी भाषा में धर्म का कथन किया। उपस्थित सभी आर्य–अनार्य जनों को अग्लानभाव–सहजभाव से धर्म का आख्यान किया। भगवान द्वारा बोली गई वह अर्द्धमागधी भाषा उन सभी आर्यों और अनार्यों की भाषाओं में परिणमित हो गई।

BHAGAVAN'S SERMON

56. (a) Then Shraman Bhagavan Mahavir delivered his sermon to king Kunik, the son of Bhambhasar, Subhadra and other queens and the great congregation. This large congregation constituted of *Rishis* (ascetics endowed with *Avadhi-jnana*), *Munis* (ascetics observing the vow of silence or discipline of speech), *Yatis* (ascetics immaculate in observing the code of conduct), gods of four kinds, and hundreds and thousands of other people. (The *Arhat* gave the teachings of *Shrut* or religious conduct to that religious congregation.)

ATTRIBUTES OF BHAGAVAN'S SPEECH

Bhagavan Mahavir was endowed with constantly uniform and inexhaustible strength (*oghbali*). His strength was infinite (*atibali*)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and great (*mahabali*). He possessed unlimited spiritual power (*virya*), physical strength (*bal*), influence (*tej*), greatness (*mahatta*), and radiance (*kanti*). His voice was deep, resonant and sweet like the thunder of autumn cloud, call of *Kraunch* bird (curlew) and beat of a large drum. Swelling in the chest, spiraling through the throat and resonating in the head it transformed into a speech with clearly pronounced letters, free of any distortion or stammering, covering the full acoustic range, and having perfection and sweetness. It had the unique capacity of transforming into the language of each listener. Bhagavan gave his sermon in Ardhamagadhi language in a voice having a reach of one *Yojan* (eight miles). He delivered his discourse to all those present, *Arya* (of noble class) and *Anarya* (of ignoble class), liberally with ease. The Ardhamagadhi language uttered by Bhagavan was spontaneously converted into the languages of all those *Aryas* and *Anaryas*.

भगवान द्वारा कथित धर्म का सार्वभौम स्वरूप

(ख) तं जहा–अत्थि लोए, अत्थि अलोए, एवं जीवा, अजीवा, बंधे, मोक्खे, पुण्णे, पावे, आसवे, संवरे, वेयणा, णिज्जरा, अरिहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, नरगा, णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, माया, पिया, रिसओ, देवा, देवलोया, सिद्धि, सिद्धा, परिणिव्वाणे परिणिव्वुया।

अत्थि, १. पाणाइवाए, २. मुसावाए, ३. अदिण्णादाणे, ४. मेहुणे, ५. परिग्गहे अत्थि, ६. कोहे, ७. माणे, ८. माया, ९. लोभे, अत्थि जाव–(१०. पेज्जे, ११. दोसे, १२. कलहे, १३. अब्भक्खाणे, १४. पेसुण्णे, १५. परपरिवाए, १६. अरहरई, १७. मायामोसे), १८. मिच्छादंसणसल्ले।

अत्थि पाणाइवायवेरमणे, मुसावायवेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे जाव–(कोहवेरमणे, माणवेरमणे, मायावेरमणे, लोभवेरमणे, पेज्जवेरमणे, दोसवेरमणे, कलहवेरमणे, अब्भक्खाणवेरमणे, पेसुण्णवेरमणे, परपरिवायवेरमणे, अरइरइवेरमणे, मायामोसवेरमणे) मिच्छादंसणसल्लविवेगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वं अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ, सव्वं णत्थिभावं णत्थित्ति वयइ, सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवंति, फुसइ पुण्णपावे, पच्चायंति जीवा, सफले कल्लाणपावए।

धम्ममाइक्खइ–इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे, अणुत्तरे, केवलिए, संसुद्धे, पडिपुण्णे, णेयाउए, सल्लकत्तणे, सिद्धिमग्गे, मुत्तिमग्गे, णिव्वाणमग्गे, णिज्जाणमग्गे, अवितहमविसंधि, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे। इहट्ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

(ख) भगवान ने जो धर्मदेशना दी, वह इस प्रकार है–लोक का अस्तित्त्व है, अलोक का अस्तित्त्व है, इसी प्रकार जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, अर्हत्, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक, तिर्यंचयोनि, तिर्यंचयोनिक जीव, माता, पिता, ऋषि (अतीन्द्रिय ज्ञानी), देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध, परिनिर्वाण–मोक्ष तथा परिनिवृत्त–मुक्त आत्मा; इनका अस्तित्त्व है।

(१) प्राणातिपात–हिंसा, (२) मृषावाद–असत्य, (३) अदत्तादान–चोरी, (४) मैथुन, और (५) परिग्रह हैं। (६) क्रोध, (७) मान, (८) माया, (९) लोभ, यावत् [(१०) प्रेम–माया व लोभजनित आसक्ति राग भाव, (११) द्वेष–अव्यक्त मान व क्रोधजनित अप्रीति रूप भाव, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान–मिथ्यादोषारोपण, (१४) पैशुन्य–चुगली, (१५) परपरिवाद–निन्दा, (१६) रति–असंयम में सुख मानना, अरति संयम में अरुचि रखना, (रति–अरति दोनों ही मोहनीय कर्म के उदय से होती है), (१७) मायामृषा–छलपूर्वक झूठ बोलना], (१८) मिथ्यादर्शन शल्य (मिथ्यात्व रूप काँटा है)।

(१) प्राणातिपातविरमण–हिंसा से विरत होना, (२) मृषावादविरमण–असत्य से विरत होना, (३) अदत्तादानविरमण–चोरी से निवृत्त होना, (४) मैथुनविरमण–मैथुन से विरत होना, (५) परिग्रहविरमण–परिग्रह से विरत होना, यावत् [(६) क्रोध से विरत होना, (७) मान से विरत होना, (८) माया से विरत होना, (९) लोभ से विरत होना, (१०) प्रेम से विरत होना, (११) द्वेष से विरत होना, (१२) कलह से विरत होना, (१३) अभ्याख्यान से विरत होना, (१४) पैशुन्य से विरत होना, (१५) पर–परिवाद से विरत होना, (१६) अरति–रति से विरत होना, (१७) मायामृषा से विरत होना] यावत् (१८) मिथ्यादर्शनशल्यविवेक–मिथ्या विश्वास को त्यागना यह सब है।

उपर्युक्त सभी पदार्थ अस्तिभावयुक्त हैं, अर्थात् अपने–अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा से अस्तित्त्वयुक्त हैं किन्तु वे भी सभी नास्तिभाव–पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा से नहीं हैं–ऐसा कहा जाता है। **सुचीर्ण**–प्रशस्त भावों से आचरित दान, शील, तप आदि कर्म उत्तम फल देने वाले हैं तथा **दुश्चीर्ण**–अप्रशस्त भावों से आचरित कर्म अशुभ–फल देने वाले हैं। जीव (अपने शुभ–अशुभ भावों के अनुसार) पुण्य तथा पाप का बन्ध करता है। जीव उत्पन्न होते हैं–संसारी जीवों का जन्म–मरण होता है। कल्याण–शुभ कर्म, पाप–अशुभ कर्म फलयुक्त हैं, कर्म निष्फल नहीं होते।

पुनः भगवान धर्म का आख्यान/प्रतिपादन करते हैं–यह निर्ग्रन्थ प्रवचन (प्राणी की अन्तर्वर्ती ग्रन्थियों को छुड़ाने वाला उपदेश) सत्य है, अनुत्तर–सर्वोत्तम है, **केवली–**सर्वज्ञ द्वारा भाषित है, अतः केवल–अद्वितीय है। **संशुद्ध**–सर्वथा निर्दोष है, **प्रतिपूर्ण**–प्रवचन गुणों से सर्वथा परिपूर्ण है, **नैयायिक**–न्यायसंगत है तथा **शल्यकर्तन**–माया आदि शल्यों–काँटों का निवारण करने वाला है, यह सिद्धि या सिद्धावस्था प्राप्त करने का मार्ग है, **मुक्ति**–कर्मरहित अवस्था या निर्लोभता का मार्ग है, **निर्वाण**–सकल संतापरहित अवस्था प्राप्त कराने का पथ है, **निर्याण**–पुनः नहीं लौटाने वाला–(जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़े वही मुक्ति का मार्ग) है, **अवितथ**–वास्तविक, **अविसन्धि**–पूर्वापर विरोध से रहित है, तथा सब दुःखों को **प्रहीण**–सर्वथा क्षीण करने का मार्ग है। इसकी आराधना करने वाले जीव सिद्धि–सिद्धावस्था प्राप्त करते हैं अथवा अणिमा आदि महती सिद्धियों को प्राप्त करते हैं। **बुद्धज्ञानी**–केवलज्ञानी होते हैं, **मुक्त**–जन्म–मरण में लाने वाले कर्मों से रहित हो जाते हैं, परिनिर्वृत्त होते हैं–कर्मकृत संताप से रहित–परम शान्तिमय हो जाते हैं तथा सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं।

THE UNIVERSAL FORM OF BHAGAVAN'S SERMON

(b) The religious sermon given by Bhagavan is like this—The *lok* (occupied space or universe) exists. The *alok* (unoccupied space or the space beyond the known universe) exists. In the same way *jiva* (the living or soul), *ajiva* (the non-living or matter), *bandh* (bondage of *karmas*), *moksha* (state of liberation), *punya* (meritorious *karmas*), *paap* (demeritorious *karmas* or sins), *asrava* (inflow of *karmas*), *samvar* (stoppage of inflow of *karmas*), *vedana* (suffering), *nirjara* (shedding of *karmas*), *arhat* (worthy of worship), Chakravarti, Baldev, Vasudev (these three are epoch maker sovereigns of the land. For more details refer to appendix-12, Illustrated Tirthankar Charitra), *narak* (hell), *nairayik* (infernal beings), *tiryanch-yoni* (animal genus), *tiryanch-yonik jiva* (animals), *maataa* (mother), *pitaa* (father), *rishi* (sages with supernatural powers), *dev* (divine beings), *dev-lok* (divine dimension or heaven),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

siddhi (state of perfection), *siddha* (perfected beings), *parinirvana* (state of liberation) and *parinivritta* (liberated soul) also exist.

Also existent are—(1) *pranatipat* (harming or destruction of life), (2) *mrishavad* (falsehood), (3) *adattadan* (taking without being given; act of stealing), (4) *maithun* (indulgence in sexual activities), and (5) parigraha (act of possession of things). Besides, (6) *krodh* (anger), (7) *maan* (conceit), (8) *maya* (deceit), (9) *lobha* (greed), and so on [(10) *raag* (attachment inspired by love, deceit and greed), (11) *dvesh* (aversion inspired by suppressed anger and conceit), (12) *kalah* (dispute), (13) *abhyakhyan* (blaming falsely), (14) *paishunya* (inculpating someone), (15) *paraparivad* (slandering), (16) *rati-arati* (inclination towards indiscipline and against discipline), (17) *mayamrisha* (to betray or to tell a lie deceptively)], up to (18) *mithyadarshan shalya* (the thorn of wrong belief or unrighteousness) exist too.

Also existent are—(1) *pranatipat viraman* (to abstain from harming or destroying life), (2) *mrishavad viraman* (to abstain from falsity), (3) *adattadan viraman* (to abstain from taking without being given; to abstain from acts of stealing), (4) *maithun viraman* (to abstain from indulgence in sexual activities), (5) *parigraha viraman* (to abstain from acts of possession of things), [(6) *krodh viraman* (to abstain from anger), (7) *maan viraman* (to abstain from conceit), (8) *maya viraman* (to abstain from deceit), (9) *lobha viraman* (to abstain from greed), and so on, [(10) *raag viraman* (to abstain from attachment inspired by love, deceit and greed), (11) *dvesh viraman* (to abstain from aversion inspired by suppressed anger and conceit), (12) *kalah viraman* (to abstain from dispute), (13) *abhyakhyan viraman* (to abstain from blaming falsely), (14) *paishunya viraman* (to abstain from inculpating someone), (15) *paraparivad viraman* (to abstain from slandering), (16) *rati-arati viraman* (to abstain from inclination towards indiscipline and against discipline), (17) *mayamrisha viraman* (to abstain from betraying or telling a lie deceptively)], up to (18) *mithyadarshan shalya viraman* (to remove the thorn of wrong belief or unrighteousness).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Each of the aforesaid things is existent with respect to its own parameters of matter, area, time and state but non-existent with respect to parameters of matter, area, time and state other than its own so it is said. Righteous deeds (*suchirna*) including charity, uprightness and austerities bring good results and unrighteous (*dushchirna*) deeds bring bad results. A soul attracts bondage of meritorious (*punya*) and demeritorious (*paap*) *karmas* (according to its righteous and unrighteous deeds). Souls wander from one existence to another as worldly beings. Good deeds and bad deeds (because of the *karmic* bondage they attract) essentially bear fruits, they are never fruitless.

Bhagavan further elaborated the religious principles—This sermon of the *Nirgranth* (or the teachings that are capable of removing the inner perversions) is true, unsurpassed and supreme (being given by an omniscient). It is pure (absolutely free of faults), complete (having all attributes of a perfect discourse), logical and remover of all thorns in the form of vices. It is the path of attaining the state of perfection (of perception, knowledge and conduct), liberation (from *karmic* bondage), salvation (from all torments) and the state of no return (termination of cyclic rebirths). It is a path that is real, unambiguous and leads to elimination of all misery. Those who pursue this path acquire special powers like *anima* (power of miniaturization) and attain the state of perfection. They become omniscient, free of rebirth causing *karmas*, free of torments of *karmas*, and, attaining ultimate peace, they terminate all misery.

विवेचन—इन सूत्रों की व्याख्या करते हुए आचार्य श्री घासीलाल जी म. ने लिखा है, भगवान ने अपने इस प्रवचन में निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रेष्ठता, लोकोत्तरता स्थापित करने के साथ ही अन्य दर्शनों की ऐकान्तिक मान्यताओं का खण्डन भी कर दिया और सार्वभौम स्याद्वाद सिद्धान्त की स्थापना की।

जैसे–**अत्थिलोए**–लोक–अलोक का अस्तित्त्व बताकर बौद्धों के शून्यवाद का खण्डन कर दिया। जीव का अस्तित्त्व बताकर नास्तिक चार्वाक मत का खण्डन किया। जीव के साथ अजीव सत्ता का निरूपण करके अद्वैतवादी मान्यता का निराकरण कर दिया। बंध और मोक्ष का निरूपण करके (आत्मा कर्मों से बँधा है, वह मुक्त भी हो सकता है) आत्मा को सदा शुद्ध रूप मानने वाले सांख्य मत का निराकरण कर दिया। पुण्य–पाप दोनों तत्त्वों का कथन करके वस्तु का एक ही स्वरूप मानने वाले वादियों की मान्यता का खण्डन किया है। इस प्रकार नव तत्त्व की प्ररूपणा में एकान्तवादी सभी मान्यताओं का निराकरण हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत्, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव हैं, यह कहकर तीन लोक में इन चार शलाका पुरुषों की श्रेष्ठता बताई है। तिर्यंच-जाति का अस्तित्त्व बताकर क्षुद्र कीट-पतंगों तक के प्रति अहिंसा, दया का उपदेश किया है। नरक व देवगति का कथन करके-अदृश्य परलोक सत्ता का विश्वास स्थापित किया है। **माया-पिया**-माता-पिता हैं, इस कथन द्वारा संसार में माता-पिता के प्रति उपकार भावना रखने का संकेत है। **अत्थिरिसओ**-ऋषि हैं, यह कहकर आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान की क्षमता की सूचना दी है, जिससे मीमांसक मत का निराकरण होता है। **अत्थिसिद्धी अत्थिसिद्धा**-मुक्ति है, मुक्त जीव है, यह बताकर आत्मा के चरम पुरुषार्थ की ओर संकेत किया है।

अत्थि भावं अत्थित्ति-स्वरूप दृष्टि से सभी पदार्थ अस्तित्त्व भाव वाले हैं, परन्तु पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नास्ति भावयुक्त है-इस कथन से स्याद्वाद-अनेकान्त सिद्धान्त का निरूपण किया है।

अन्त में प्रभु ने **सफले कल्लाण पावए**-शुभ कर्म और अशुभ कर्म अपना-अपना फल अवश्य देते हैं-इस सिद्धान्त द्वारा शाश्वत कर्म सिद्धान्त की व्याख्या की है।

Elaboration—Elaborating this aphorism Acharya Ghasilal ji M. has stated that in this sermon Bhagavan has affirmed the spiritual excellence of the word of *Nirgranth* and at the same time refuted the absolutist beliefs of other schools of thought, thereby establishing the universality of his principle of *syadvad* (doctrine of qualified assertion).

For example—By asserting on the existence of *Lok* and *Alok* he refuted the idealism (*shunyavad*) of Buddhists. By asserting the existence of soul he refuted the hedonism of Charvak. By asserting the co-existence of soul and matter he refuted the doctrine of monism. By postulating bondage and liberation of soul he refuted the doctrine of the Sankhya school that soul is always pure. By proposing *punya* and *paap* he refuted the belief in just a single form of things. Thus the postulate of nine fundamentals refutes almost all absolutistic doctrines.

The statement about the existence of *Arhat, Chakravarti, Baldev* and *Vasudev* informs about the excellence of these four kinds of epoch makers in the three worlds. The statement about the existence of the animal kingdom incorporates non-violence and amnesty even towards tiny insects. The statement about existence of infernal and divine worlds supports the belief in existence of the unseen other world. By saying that father and mother exist he advises to have a feeling of obligation towards parents. Sages exist, this utterance informs about the capacity of soul to acquire knowledge without the help of sense organs; this refutes the belief of Mimamsaks. By telling that there is liberation as well as liberated soul he has pointed at the ultimate goal and the lofty endeavour of soul.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

By saying that everything is existent with respect to its own parameters of matter, area, time and state but non-existent with respect to parameters of matter, area, time and state other than its own, he has postulated the theory of non-absolutism or the relativity of truth.

In the end, by stating that good and bad deeds (because of the *karmic* bondage they attract) essentially bear fruits, he has defined the eternal theory of *karma*.

(Elaborating further about a better after-life of the aspirants, Bhagavan said—)

(ग) एकच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, महड्ढिएसु जाव, महासुक्खेसु दूरंगइएसु चिरट्ठिइएसु। ते णं तत्थ देवा भवंति महिड्ढिया जाव चिरट्ठिइया।

हारविराइयवच्छा जाव पभासमाणा, कप्पोवगा, गतिकल्लाणा, आगमेसिभद्दा जाव पडिरूवा।

चार गति के चार कारण

(१) तमाइक्खइ एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उवज्जंति तं जहा—(क) महारंभयाए, (ख) महापरिग्गहयाए, (ग) पंचिंदियवहेणं, (घ) कुणिमाहारेणं, एवं एएणं अभिलावेणं।

(२) तिरिक्खजोणिएसु—(क) माइल्लयाए णियडिल्लयाए, (ख) अलियवयणेणं, (ग) उक्कंचणयाए, (घ) वंचणयाए।

(३) मणुस्सेसु—(क) पगइभद्दयाए, (ख) पगइविणीययाए, (ग) साणुक्कोसयाए, (घ) अमच्छरिययाए।

(४) देवेसु—(क) सरागसंजमेणं, (ख) संजमासंजमेणं, (ग) अकामणिज्जराए, (घ) बालतवोकम्मेणं तमाइक्खइ।

जह णरगा गम्मंतो जे णरगा जा य वेयणा णरए।
सारीरमाणुसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए॥१॥

माणुस्सं च अणिच्चं वाहि—जरा—मरण—वेयणापउरं।
देवे य देवलोए देविड्ढिं देवसोक्खाइं॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णरगं तिरिक्खजोणिं माणुसभावं च देवलोगं च।
सिद्धे अ सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ॥३॥

जह जीवा बज्झंति मुच्चंति जह य संकिलिस्संति।
जह दुक्खाणं अंतं करंति केई अपडिबद्धा॥४॥

अट्टा दुहट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति।
जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति॥५॥

जह रागेण कडाणं कम्माणं पावगो फलविवागो।
जह य परिहीणकम्मा सिद्धा सिद्धालयमुवेंति॥६॥

(भगवान ने अपनी देशना में धर्माराधकों की सद्‌गति का निरूपण करते हुए कहा–)

(ग) एकार्च्चा–जिनके एक ही मनुष्यभव धारण करना बाकी रहा है ऐसे भव्य जीव (मोक्षगामी प्राणी) वे पूर्व कर्मों के बाकी रहने से जिन देवलोकों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं वे देवलोक महर्द्धिक–विपुल ऋद्धियों से परिपूर्ण, अत्यन्त सुखमय **दूरंगतिक**–मनुष्य लोक आदि से अत्यन्त दूरवर्ती एवं **चिरस्थितिक**–सुदीर्घ आयुष्य स्थिति वाले होते हैं।

(वहाँ देवरूप में उत्पन्न वे जीव) अत्यन्त ऋद्धि-सम्पन्न यावत्–(शेष वर्णन सूत्र ३३ में वर्णित देवों के वर्णन समान समझना चाहिए) तथा चिरस्थितिक–दीर्घ आयुष्ययुक्त होते हैं। उनके वक्षःस्थल दिव्य हारों से सुशोभित हैं। वे अपनी दिव्य लेश्या द्वारा दशों दिशाओं को उद्योतित, प्रभासित करते हैं। वे कल्पोपग देवलोक (बारह देवलोक) में देव-शय्या से युवा रूप में उत्पन्न होते हैं। वे वर्तमान में उत्तम देवगति के धारक तथा भविष्य में (मनुष्यभव धारण करके) भद्र–कल्याण या निर्वाण रूप अवस्था को प्राप्त करने वाले होते हैं। (वे आनन्द, प्रीति, परम सौमनस्य तथा हर्षयुक्त होते हैं) असाधारण रूपवान् होते हैं।

(१) भगवान ने अपनी धर्मदेशना चालू रखे हुए आगे कहा–जीव चार कारणों से नरक योनि का आयुष्यबन्ध करते हैं, जिस कारण वे विभिन्न नरकों में उत्पन्न होते हैं। वे चार कारण इस प्रकार हैं–(क) महाआरम्भ–घोर हिंसा, (ख) महापरिग्रह–अत्यधिक संग्रह व आसक्ति, (ग) पंचेन्द्रियवध–पाँच इन्द्रियों वाले प्राणियों की हिंसा, तथा (घ) माँस-भक्षण।

(२) इन चार कारणों से जीव तिर्यंचयोनि में उत्पन्न होते हैं–(क) मायापूर्ण निकृति, (ख) अलीक वचन–असत्य भाषण, (ग) उत्कंचनता, तथा (घ) वंचनता–प्रतारणा या ठगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) इन चार कारणों से जीव मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं-(क) प्रकृतिभद्रता-स्वाभाविक भद्रता-भलापन, (ख) प्रकृति विनीतता-स्वाभाविक विनम्रता, (ग) सानुक्रोशता-दयालुता, करुणाशीलता, तथा (घ) अमत्सरता-ईर्ष्या का अभाव या गुणग्राहिता।

(४) इन चार कारणों से जीव देव योनि में उत्पन्न होते हैं-(क) सरागसंयम-जिस चारित्र अवस्था में राग या कषाय की विद्यमानता रहती है, (ख) संयमासंयम-देशविरति-श्रावकधर्म, (ग) अकाम निर्जरा-मोक्ष की अभिलाषा के बिना अथवा विवशतावश कष्ट सहना, तथा (घ) बालतप-मिथ्यात्वी या अज्ञान अवस्था में तप आदि की क्रियाएँ।

तत्पश्चात् भगवान ने बताया-जो नरक में जाते हैं, वे वहाँ नैरयिकों जैसी तीव्र वेदना भोगते हैं। तिर्यंच योनि में गये हुए वहाँ होने वाले शारीरिक और मानसिक दुःख प्राप्त करते हैं॥१॥

मनुष्य जीवन अनित्य है। उसमें व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और वेदना आदि प्रचुर कष्ट हैं। देवगति में देवलोक सम्बन्धी अनेक देव ऋद्धि और दैवी सुख प्राप्त करते हैं॥२॥

इस प्रकार भगवान ने नरक, तिर्यंच, मनुष्य एवं देवगति का कथन किया। पश्चात् सिद्ध, सिद्धावस्था एवं छह जीवनिकाय का विवेचन किया॥३॥

जैसे-जीव बँधते हैं-कर्म बन्धन करते हैं, मुक्त होते हैं, परिक्लेश पाते हैं। कई अप्रतिबद्ध-अनासक्त व्यक्ति दुःखों का अन्त करते हैं, पीड़ा, वेदना व आकुलतापूर्ण चित्तयुक्त जीव दुःख-सागर को प्राप्त करते हैं, वैराग्य प्राप्त जीव कर्मों के दल को ध्वस्त करते हैं, रागपूर्वक किये गये कर्मों का फल पापपूर्ण होता है, कर्मों से सर्वथा रहित होकर जीव सिद्धावस्था प्राप्त करते हैं-यह सब भगवान ने अच्छी प्रकार समझाया॥४-५-६॥

(c) The souls worthy of attaining liberation (*bhavya jiva*) who are destined to be born just once as human beings (*ekarchcha*) are born as divine beings due to the residual *karmas* from past births. The divine dimensions (*dev-lok*) where they are born abound in wealth of paranormal abilities (*riddhi*) and happiness. They are far away (*duragantik*) from the world of humans and with a very long general life-span (*chirasthitik*).

These divine beings are endowed with great fortune... and so on up to... (here the description of divine beings as stated in aphorism 33 should be read) and long life-span. Their chests are adorned with divine necklaces. Their divine radiance spreads and beams in all

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the ten directions. They are born in the *Kalp* heavens (the twelve divine lands known as *Kalps*) from divine beds as youth. They exist as lofty divine beings in the present time and are destined (after being born as humans) to attain the state of *nirvana* (*bhadra kalyan*). (Endowed with bliss, love, great charm and joy) they are extremely handsome.

FOUR CAUSES OF FOUR GENUSES

(1) Continuing his sermon, Bhagavan said—There are four causes due to which souls attract bondage of *karmas* responsible for a specific life-span as infernal beings. As a consequence they are born in various hells. These four causes are—(a) *Maha-arambh* or extreme violence, (b) *Maha-parigraha* or excessive possession and covetousness, (c) *Panchendriya vadh* or killing of five sensed beings, and (d) *Mans-bhakshan* or eating meat.

(2) The four causes for being born in the animal kingdom are—(a) *Mayapurna nikriti* or guileful deception, (b) *Aleek vachan* or telling lies, (c) *Utkanchanta* or to conceal intent of and postpone swindling someone for a limited period, and (d) *Vanchanta* or to swindle someone.

(3) The four causes for being born in the human world are—(a) *Prakriti bhadrata* or natural goodness, (b) *Prakriti vinitata* or natural humility, (c) *Sanukroshata* or kindness and compassion, and (d) *Amatsarata* or absence of jealousy and appreciation of virtues.

(4) The four causes for being born in the divine realm are—(a) *Sarag samyam* or ascetic-discipline where attachment and passions are still active, (b) *Samyamasamyam* or householder's conduct, (c) *Akaam nirjara* or to endure inflicted pain aimlessly or out of helplessness, and (d) *Baal tap* or to indulge in austerities and other such practices in a state of unrighteousness or ignorance.

Bhagavan further added—Those who go to hell suffer extreme torments like the hell beings. Those who are born as animals suffer physical and mental torture prevalent in animal world. (1)

Life as humans is transient. It involves abundant suffering related to disease, old age, death and pain. In the divine realm

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

many gods enjoy wealth and divine pleasures available in that state. (2)

Thus Bhagavan described the genuses called infernal world, animal kingdom, human world and divine realm. After that he described *Siddha* (perfect beings), state of perfection and the six life forms. (3)

How soul enters bondage of *karmas*, how it gets liberated, and how it suffers afflictions ? How some detached persons terminate suffering and some, preoccupied with pain, torments, and worries are submerged in the ocean of sorrows ? How the detached individuals destroy the accumulated heap of *karmas* ? Deeds done with a feeling of attachment bear fruits of sin. By complete cleansing of *karmas* a soul attains the state of perfection. Bhagavan eloquently explained all these things. (4, 5, 6)

विवेचन—माया निकृति—एक शब्द मानकर यहाँ उसका अर्थ किया जाता है ऐसी घोर जालसाजी या षड्यंत्र जिसमें एक कपट को छिपाने के लिए दुबारा उससे भयंकर कपट रचा जाता है।

उत्कंचनता तथा वंचनता में अन्तर बताते हुए कहा है-

किसी सरल हृदय व्यक्ति का ठगने में प्रवृत्त ठग, जब किसी चतुर विचक्षण पुरुष को पास में देखता है तो उसके भय व संकोच के कारण कुछ समय तक अपनी धूर्त्तता को छिपाये रखता है, वह उत्कंचनता है तथा दूसरों को ठगने का प्रयत्न वंचनता है। (चार गति के कारणों का विस्तृत वर्णन स्थानांगसूत्र, स्थान ४ में है)

Elaboration—Considering *Maya nikriti* to be one word, it is interpreted here as such despicable fraud or conspiracy where, in order to conceal a fraud an even more guileful fraud is perpetrated.

The difference between *utkanchanata* and *vanchanata* is explained as follows—

When a cheat, about to swindle a simple person, finds an intelligent and clever person nearby, he conceals his intent for some time out of fear or hesitation. This is called *utkanchanata*. The act of defrauding others is *vanchanata*. (The causes of birth in four genuses are discussed in greater details in *Sthananga Sutra*, Ch. 4)

धर्म के दो प्रकार

५७. तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ। तं जहा—अगारधम्मं (च) अणगारधम्मं च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अणगार धम्मो ताव–इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइयस्स सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, मुसावाय–अदिण्णादाण–मेहुण–परिग्गह–राईभोयणाओ वेरमणं।

अयमाउसो ! अणगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवति।

(२) अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा–पंच अणुव्वयाइं, तिण्णि गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं।

पंच अणुव्वयाइं तं जहा–१. थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, २. थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, ३. थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, ४. सदारसंतोसे, ५. इच्छापरिमाणे।

तिण्णि गुणव्वयाइं, तं जहा–६. अणत्थदंडवेरमणं, ७. दिसिव्वयं, ८. उवभोग–परिभोगपरिमाणं।

चत्तारि सिक्खावयाइं, तं जहा–९. सामाइयं, १०. देसावयासियं, ११. पोस–होववासे, १२. अतिहिसंविभागे।

अपच्छिमा मारणंतिया संलेहणाझूसणाराहणा।

अयमाउसो ! अगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते। एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ।

५७. भगवान ने धर्म के दो प्रकार बताये हैं–अगारधर्म और अनगारधर्म।

(१) अनगारधर्म में साधक सर्वतः सर्वात्मना द्रव्य एवं भाव रूप से सावद्य कार्यों का परित्याग करता हुआ मुण्डित होकर, गृहवास का परित्याग करके अनगार दशा में प्रव्रजति होता है। वह सम्पूर्ण रूप में–तीन करण–तीन योग से प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह तथा रात्रि–भोजन का त्याग करता है।

भगवान ने कहा–"आयुष्मान् ! यह अनगारों के लिए सम्यक् आचरणीय धर्म कहा गया है। इस धर्म की शिक्षा–अभ्यास तथा आचरण में प्रयत्नशील रहते हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी अरिहंतों की आज्ञा के आराधक होते हैं।"

(२) भगवान ने अगारधर्म १२ प्रकार का बतलाया–५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत तथा ४ शिक्षाव्रत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच अणुव्रत इस प्रकार हैं–(१) **स्थूल प्राणातिपात**–त्रस जीवों की संकल्पपूर्वक की जाने वाली हिंसा का त्याग करना, (२) **स्थूल मृषावाद** से निवृत्त होना, (३) **स्थूल अदत्तादान** से विरत होना, (४) **स्वदारसन्तोष**–अपनी परिणीता पत्नी तक मैथुन की, मर्यादा तथा अन्य प्रकार के मैथुन से निवृत्ति, (५) इच्छा परिमाण–परिग्रह की इच्छा का परिमाण करना।

तीन गुणव्रत इस प्रकार हैं–(६) **अनर्थदण्ड–विरमण**–आत्म गुणों का घात करने वाली निरर्थक प्रवृत्तियों का त्याग, (७) **दिग्व्रत**–विभिन्न दिशाओं में जाने के सम्बन्ध में मर्यादा करना, (८) **उपभोग–परिभोग परिमाण**–उपभोग–परिभोग की वस्तुओं का परिमाण करना।

चार शिक्षाव्रत इस प्रकार हैं–(९) **सामायिक**, (१०) **देशावकाशिक**–नित्य प्रति अपनी प्रवृत्तियों में निवृत्ति भाव की वृद्धि का अभ्यास (संवर), (११) **पौषधोपवास**–यथाविधि आहार, अब्रह्मचर्य आदि का त्याग, तथा (१२) **अतिथि संविभाग**–घर आये संयमी साधकों को, साधर्मिक बन्धुओं को संयमोपयोगी एवं जीवनोपयोगी अपनी अधिकृत सामग्री का कुछ भाग आदरपूर्वक देना।

अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना–आराधना तितिक्षापूर्वक अन्तिम मरणरूप (मृत्यु के पूर्व) संलेखना–तपश्चरण, आमरण, अनशन की आराधना करते हुए देहत्याग करना।

भगवान ने कहा–"आयुष्मान् ! गृहस्थ साधकों का यह आचरणीय धर्म है। इस धर्म की आराधना–परिपालना में प्रयत्नशील होते हुए श्रमणोपासक श्रावक या श्रमणोपासिका–श्राविका आज्ञा के आराधक होते हैं।" (श्रावक धर्म का विस्तृत सांगोपांग वर्णन सचित्र उपासगदशासूत्र, प्रथम अध्ययन में देखें)

TWO KINDS OF DHARMA

57. Bhagavan has stated *Dharma* to be of two types—*Aagar dharma* (householder's code) and *Anagar dharma* (ascetic code).

(1) In the ascetic code the aspirant renounces completely and sincerely all sinful activity, physical and mental. He then abandons his household, tonsures his head and gets initiated as homeless ascetic. He abandons *pranatipat* (harming or destruction of life), *mrishavad* (falsity), *adattadan* (taking without being given; act of stealing), *maithun* (indulgence in sexual activities), and *parigraha* (act of possession of things) completely by three *karans* (means—mind, speech and body) and three *yogas* (methods—to do, induce and to attest). He also abstains from eating during the night.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhagavan said—"Long lived one ! This is said to be the right code of conduct to be followed by ascetics. Those who endeavour to learn and practice this *dharma* are the followers of the word of *Nirgranth* (knotless) or the detached *Arihants*."

(2) Bhagavan has said the *Aagar dharma* (householder's code) to be twelve fold—five *anuvrats* (minor vows), three *gunavrats* (restraints that reinforce the practice of *anuvrats*) and four *shikshavrats* (instructive vows).

Five *anuvrats* (minor vows) are—(1) to abstain from intentional harming or killing of mobile beings (*sthool pranatipat*), (2) to abstain generally from falsity (*sthool mrishavad*), (3) to abstain generally from taking without being given or stealing (*sthool adattadan*), (4) to be content with normal sex with one's own wife and refrain from any other normal or perverse sexual activity (*svadar-santosh*), and (5) to limit the desire of possession (*ichchha parimaan*).

Three *gunavrats* (restraints that reinforce the practice of *anuvrats*) are—(6) to avoid attitudes and indulgences that are detrimental to the attributes of soul (*anarth-dand viraman*), (7) to limit movement in different directions (*digvrat*), and (8) to limit use and consumption of things (*upabhog paribhog pariman*).

Four *shikshavrats* (instructive vows or vows of spiritual discipline) are—(9) to regularly do *samayik* (the prescribed Jain practice aimed at equanimity), (10) to regularly practice gradual disciplining of one's desires and indulgences (*deshavakashik*), (11) to live like an ascetic for a limited period and to observe fast (*paushadhopavas*), and (12) to respectfully share, from one's lawful possessions, things needed by ascetic and co-religionist guests for discipline and sustenance (*atithi samvibhag*).

Finally to abandon the physical body after practicing the ultimate vow and austerity (*samlekhana*) of fasting unto death with forbearance.

Bhagavan added—"Long lived one ! This is the code of conduct to be followed by householder aspirants. Those who endeavour to learn and practice this *dharma* are the male and female followers

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(*shramanopasak/shravak* and *shramanopasika/shravika*) of the word of the detached *Arihants*. (The detailed description of householder's code is available in *Illustrated Upasak Dasha Sutra*, Ch. 1)

परिषद् का वापस गमन

५८. तए णं सा महतिमहालिया मणूसपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, अत्थेगइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा।

५८. तब वह विशाल मनुष्य-परिषद् श्रमण भगवान महावीर से धर्म सुनकर, हृदय में धारण कर, हृष्ट-तुष्ट-अत्यन्त प्रसन्न हुई, चित्त में आनन्द एवं प्रीति का अनुभव करती हुई, हर्षातिरेक से विकसित हृदय होकर उठी। उठकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा, वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर उनमें से कई विरक्त आत्माओं ने गृहस्थ जीवन का परित्याग कर मुण्डित होकर अनगार या श्रमण के रूप में दीक्षा ग्रहण की। कइयों ने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहि-धर्म-श्रावक-धर्म स्वीकार किया।

DISPERSING OF THE CONGREGATION

58. Hearing and accepting the sermon of Bhagavan Mahavir that large congregation got very much pleased and delighted. Experiencing joy and devotion and exhilarated with effusion of bliss everyone got up. After that they went around Shraman Bhagavan Mahavir three times clockwise and paid homage and obeisance. Then some of the detached souls among them renounced householder's life, tonsured their heads and got initiated as homeless ascetics. Many of them accepted the twelve fold *shravak* code inclusive of five minor vows and seven complementary vows.

अहोभाव की अभिव्यक्ति

५९. अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-"सुअक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे एवं सुपण्णत्ते, सुभासिए, सुविणीए, सुभाविए, अणुत्तरे ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मं णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह, उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह, विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह, वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह, णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा, जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?'' एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया, तामेव दिसं पडिगया।

५९. इसके पश्चात् शेष परिषद् ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करने के बाद हाथ जोड़कर कहा-''भगवन् ! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन बहुत सुन्दर रूप में कहा, **सुप्रज्ञप्त**-उत्तम रीति से तत्त्व को समझाया, **सुभाषित**-हृदयस्पर्शी भाषा में उसका प्रतिपादन किया, **सुविनीत**-शिष्यों ने अन्तेवासियों ने सहज रूप में अंगीकृत किया, **सुभावित**-प्रशस्त भावों पूर्वक हृदयंगम किया। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन, अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ है।

आपने धर्म की व्याख्या करते हुए उपशम-क्रोध आदि को जीतने का उपाय समझाया। उपशम की व्याख्या करते हुए **विवेक**-हेय और उपादेय तत्त्वों का विवेचन किया। विवेक की व्याख्या करते हुए आपने **विरमण**-प्राणातिपातादि से निवृत्ति का निरूपण किया। विरमण की व्याख्या करते हुए आपने पापकर्म न करने का उपदेश दिया। इस काल में दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो इस प्रकार के धर्म का उपदेश कर सके। इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ?'' यों अहोभाव प्रकट कर वह परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी ओर वापस चली गई।

EXPRESSION OF GRATITUDE

59. Then the rest of the congregation paid homage and obeisance to Shraman Bhagavan Mahavir and submitted with joint palms—"Bhagavan ! You have expressed the *Nirgranth* tenets very eloquently. You have explained the fundamentals in an excellent manner and conveyed those in an enchanting language. Your ascetic disciples have understood and absorbed it with noble feelings. This sermon of the *Nirgranth* is unique, indeed.

"While defining *dharma* you have explained the methods of disciplining (*upasham*) anger and other passions. During elaboration of *upasham* (discipline, containment, suppression of passions) you have explained discerning attitude (*vivek*) for

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

accepting good and rejecting evil. Along with the explanation of *vivek* you have ordained abstainment of harming and killing of beings and other great vows. In defining abstainment you have included instruction not to indulge in sinful activities. There is no other *Shraman* or Brahmin in present times who could expound such perfect religion (*dharma*), what to say of a better one." Thus expressing gratitude, the congregation dispersed and everyone returned in the direction he came from.

६०. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी– "सुयक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे जाव किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?" एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाइब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

६०. तत्पश्चात् भंभसार पुत्र राजा कूणिक श्रमण भगवान से धर्म का श्रवण कर मन में अत्यन्त सन्तुष्ट एवं आनन्दित हुआ। वह अपने स्थान से उठा। उठकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण–प्रदक्षिणा की। वन्दन–नमस्कार किया। वन्दन–नमस्कार करके इस प्रकार बोला–"भगवन् ! आपने निर्ग्रंथ प्रवचन का कथन अतीव सुन्दर रूप में किया। यह निर्ग्रंथ प्रवचन–(जिनधर्म), अनुत्तर–सर्वश्रेष्ठ है। (आपने धर्म की व्याख्या करते हुए उपशम–क्रोध आदि के यावत् सूत्र ५९ के अनुसार समग्र पाठ यहाँ भी समझना) दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो ऐसे धर्म का उपदेश कर सके। इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ?" यों इस प्रकार प्रभु की स्तुति करके वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया।

60. Thereafter, king Kunik, the son of Bhambhasar, contented and blissful on hearing the sermon of Shraman Bhagavan, got up from his seat. He went around Shraman Bhagavan Mahavir three times clockwise and paid homage and obeisance. He then submitted—"Bhagavan ! You have expressed the Nirgranth tenets very eloquently... and so on up to (as in aphorism 59)... There is no other *Shraman* or Brahmin in present times who could expound such perfect religion (*dharma*), what to say of a better one." Saying so, he returned in the direction he came from.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. तए णं ताओ सुभद्दापमुहाओ देवीओ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया‍ओ उट्ठाए उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी– "सुयक्खाए णं भंते ! निग्गंथे पावयणे जाव किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?" एवं वंदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूयाओ, तामेव दिसिं पडिगयाओ।

● समवसरणं अधिकारं समत्तं ●

६१. इसके बाद सुभद्रा आदि रानियाँ भी श्रमण भगवान महावीर के श्रीमुख से धर्म का श्रवण कर पूर्ण संतुष्ट हुईं, मन में आनन्द का अनुभव करती हुई अपने स्थान से उठीं। उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। भगवान को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोलीं–"हे भंते ! आपने निर्ग्रंथ प्रवचन का कथन बहुत ही सुन्दर रूप में किया–वह सर्वश्रेष्ठ है.... इत्यादि सूत्र ५९ के अनुसार) यों स्तुति कर वे भी अपने स्थान को वापस चली गईं।

● समवसरण अधिकार समाप्त ●

61. After that, Subhadra and other queens also contented and blissful on hearing the sermon of Shraman Bhagavan, got up from their seats. They went around Shraman Bhagavan Mahavir three times clockwise and paid homage and obeisance. They then submitted—"Bhagavan ! You have expressed the *Nirgranth* tenets very eloquently. . . and so on (as in aphorism 59) up to. . . There is no other *Shraman* or Brahmin in present times who could expound such perfect religion (*dharma*), what to say of a better one." Saying so, they returned in the direction they came from.

● END OF SAMAVASARAN ADHIKAR ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपपात वर्णन
DESCRIPTION OF UPAPAT

औपपातिकसूत्र के समवसरण नामक पूर्वार्द्ध में भगवान महावीर का चम्पा नगरी में आगमन, कूणिक राजा का विशाल सैन्य सज्जा के साथ दर्शनार्थ गमन, धर्म-श्रवण और देशना सुनकर वापस स्वस्थान आगमन तक का वर्णन है।

अब उत्तरार्द्ध में इन्द्रभूति गौतम गणधर के विविध प्रकार के प्रश्न एवं भगवान द्वारा प्रदत्त उत्तरों का विस्तृत वर्णन है। ये प्रश्न अधिकतर जीवों के नरक एवं देवगति में उपपात (जन्म) से सम्बन्धित होने के कारण यह उत्तरार्द्ध उपपात नाम से प्रख्यात है।

The first section of *Aupapatik Sutra*, titled Samavasaran contained the description of Bhagavan Mahavir's arrival in Champa city, arrival of king Kunik along with his army to pay homage and then return after attending the discourse.

This second section contains detailed description of numerous questions asked by Ganadhar Indrabhuti Gautam and answers given by Bhagavan Mahavir. As most of these questions are related to the *upapat* (instantaneous birth) of souls in infernal and divine worlds it is popularly known as Upapat.

इन्द्रभूति गौतम

६२. तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए, वइररिसहणारायसंघयणे, कणगपुलगणिघसपम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, घोरतवे, उराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्तविउलतेउलेस्से समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणु, अहोसिरे, झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं विहरइ।

६२. उस काल, उस समय (जब भगवान महावीर चम्पा नगरी में विराजमान थे) श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति अनगार, जिनकी देह की ऊँचाई सात हाथ थी, जो समचतुरस्र-संस्थान-शरीर के धारक थे, जिनकी विशिष्ट देह रचना वज्र-ऋषभ-नाराच-संहननयुक्त थी। उनका गौरवर्ण कसौटी पर घिसी हुई स्वर्ण-रेखा के समान आभायुक्त एवं कमल के समान केसरी कान्ति वाला था। जो **उग्र तपस्वी** (घोर तप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने वाले) थे। **दीप्त तपस्वी**–जिनका तप, कर्मों को भस्मसात् करने में प्रज्वलित अग्नि के समान जाज्वल्यमान था। **तप्त तपस्वी**–जिनकी देह पर तपश्चर्या का तेज झलक रहा था, जो कठोर एवं महान् तप करने वाले थे, जो उराल–श्रेष्ठ साधना में प्रमुख थे, जिनको धारण करने में अद्‌भुत शक्ति चाहिए, ऐसे घोर गुणों के धारक थे। **घोर तपस्वी**–प्रबल (कठोर) तपस्वी तथा घोर ब्रह्मचर्यवासी–कठोर ब्रह्मचर्य के पालक थे। **उत्क्षिप्तशरीर**–शरीर की सार–सम्भाल या विभूषा से रहित थे, जो तपोजन्य विशाल तेजोलेश्या (तैजस् शक्ति) अपने शरीर के भीतर समेटे हुए थे। भगवान महावीर से न अधिक दूर न अधिक समीप, समुचित स्थान पर स्थित थे। वे घुटने ऊँचे किये, मस्तक नीचे किये, ध्यान की विशेष मुद्रा में लीन हुए संयम और तप से आत्मा को भावित कर रहे थे।

INDRABHUTI GAUTAM

62. During that period of time (when stationed at Champa city) Shraman Bhagavan Mahavir's seniormost disciple was one ascetic Indrabhuti belonging to the Gautam clan. His height was seven cubits. The anatomical structure of his body was of the *Samachaturasra samsthan* class and the constitution was of the *Vajra-rishabh-narach* class (a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest). His fare complexion was like a golden line on a touch stone with a golden glow like a lotus. He practiced rigorous austerities that were, like a burning fire, capable of turning the acquired *karmas* to ashes (*deept tapasvi*). His body was aglow with the power of his austerities (*tapt tapasvi*). His austerities were harsh and great. He was accomplished in highest spiritual practices and was endowed with rare attributes that required extreme strength. He was a strict adherent of regular and rigorous austerities as well as *brahmacharya* (chastity). He was apathetic to any care of his body as well as his appearance. As a result of his austerities he had acquired high intensity *Tejoleshya* (fire power). He was sitting at an appropriate place neither very far nor very near Bhagavan Mahavir. In a specific meditational posture, having raised knees and bent head, he was absorbed in enkindling (*bhaavit*) his soul with ascetic-discipline and austerities.

विवेचन–गणधर गौतम के वर्णन में उनके शारीरिक सौष्ठव तथा आध्यात्मिक वैभव–तप–संयम और ध्यान–साधना की उच्चतर भूमिका का वर्णन है। अन्य वर्णन का भावार्थ तो सरल है, मुख्य रूप में दो शब्दों का विशेष अर्थ इस प्रकार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समचतुरस्र संस्थान–संस्थान का अर्थ है–शरीर की आकृति, अवयवों की पौद्गलिक रचना। अनुयोगद्वारसूत्र में छह संस्थानों की चर्चा है, उसमें वृत्तिकार ने समचतुरस्र–संस्थान का अर्थ इस प्रकार किया है–''जिसमें शरीर के चारों कोण आलथी–पालथी मारकर बैठने पर दोनों हाथों के कंधों व पाँवों के घुटनों का अनुपात एक समान हो, शरीर की ऊँचाई व चौड़ाई समान हो तथा ऊँचाई आत्मांगुल से १०८ अंगुल प्रमाण होती है, वह समचतुरस्र–संस्थान कहलाता है।''

वज्र–ऋषभ–नाराच–संहनन–संहनन का अर्थ है शरीर की अस्थि संरचना। इसके भी छह प्रकार हैं। सबसे श्रेष्ठ वज्र–ऋषभ–नाराच–संहनन है जिस संहनन में अपनी माता की छाती से चिपके हुए मर्कट–बन्दर की–सी आकृति वाली संधि की दोनों हड्डियाँ परस्पर गूँथी हुई हों, उन पर तीसरी हड्डी का परिवेष्टन हो और चौथी हड्डी की कील उन तीनों का भेदन करती हुई हो, ऐसी सुदृढ़तम अस्थि संरचना को वज्र–ऋषभ–नाराच–संहनन कहते हैं। सभी शलाका पुरुषों का संहनन इसी प्रकार का सुदृढ़ होता है। (आवश्यक चूर्णि, पृष्ठ १२९–१३०)

Elaboration—This description of Ganadhar Gautam includes the details about the superlative level of his physical and spiritual qualities including austerities, discipline and meditation. The terminology used is simple except two technical terms. They are explained as follows—

Samachaturasra samsthan—An anatomical structure of a human being where all the parts of body above and below the navel are of standard dimensions. The dimensions increase and decrease proportionately. The height of the body is 108 times the width of a finger (*angul*). When parallel lines drawn from the extremities of a body sitting cross-legged form a square, the anatomical structure is called *Samachaturasra samsthan*. (*Illustrated Anuyog-dvar Sutra*, 205)

Vajra-rishabh-narach samhanan—The skeletal constitution of body is called *samhanan* and it is of six kinds based on the perfection of joints. The best among these is *Vajra-rishabh-narach samhanan*. It has been described as the constitution where the joints conform to perfection of the following order—two bones join as snug and perfect as an infant monkey holds its mother, a third bone joins as a sleeve and a fourth as plug-socket. Such skeletal constitution with most strong and perfect joints is called *Vajra-rishabh-narach samhanan*. All the epoch makers (*Shalaka Purush*) are endowed with this constitution. (*Avashyak Churni*, pp. 129-130)

जिज्ञासा जागृति

६३. तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले, उप्पण्णसड्ढे उप्पण्णसंसए उप्पण्णकोऊहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोऊहल्ले, समुप्पण्णसड्ढे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पण्णसंसए समुप्पण्णकोऊहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महीवारं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे, णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

६३. तब उन भगवान गौतम के मन में श्रद्धायुक्त जिज्ञासा उत्पन्न हुई, संशय–सुने हुए विषय में शंका हुई, कुतूहल एवं उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। पुनः उनके मन में श्रद्धा का भाव उमड़ा, संशय उभरा, कुतूहल समुत्पन्न हुआ। तब वे आसन से उठे, उठकर जहाँ भगवान महावीर थे वहाँ आये। आकर भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण–प्रदक्षिणा की, वन्दना–नमस्कार किया। भगवान के न अधिक समीप, न अधिक दूर यथोचित स्थान पर स्थित हो सुनने की इच्छा रखते हुए, प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए उनकी पर्युपासना करते हुए बोले–

THE CURIOSITY

63. Then in reverend Gautam arose a desire to know, a doubt in what he had learnt, a curiosity for the unknown and an intense longing for knowledge; again in him grew a desire to know, a doubt in what he had learnt, a curiosity for the unknown and an intense longing for knowledge. He got up from his seat and came where Bhagavan Mahavir was seated. He went around Bhagavan clockwise three times, paid homage and obeisance, commenced his worship and put forth his question—

पापकर्म का बन्ध

६४. जीवे णं भंते ! असंजए अविरए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते पावकम्मं अण्हाइ ?

हंता अण्हाइ।

६४. **(प्रश्न)** भगवन् ! वह जीव, जो असंयत है–(जिसने संयम की आराधना नहीं की) जो अविरत है–(हिंसा आदि से विरत नहीं हुआ है) जिसने प्रत्याख्यान द्वारा पापकर्मों को रोका नहीं (पापों का त्याग नहीं किया) है–जो सक्रिय–कायिक, वाचिक तथा मानसिक क्रियाएँ करता है, जो अपने को तथा औरों को पापकर्मों द्वारा एकान्ततः–सब प्रकार से दण्डित/दुःखित करता है, जो एकान्तबाल है–सर्वथा मिथ्यादृष्टि है, जो एकान्तसुप्त है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व की निद्रा में गहरा सोया हुआ है, क्या वह प्राणातिपातादि पापकर्मों का बंध करता है ?

(उत्तर) हाँ, गौतम ! करता है।

BONDAGE OF PAAP KARMA

64. (Q.) *Bhante* ! Does a being attract bondage of demeritorious *karmas* (*paap karma*) in case he is indisciplined or has not practiced self-restraint (*asamyat*); he has not abstained from violence and other such acts (*avirat*); he has not stopped the inflow of demeritorious *karmas* through resolution of perfect abstainment (*pratyakhyan*), he indulges in mundane activities, physical, vocal and mental (*sakriya*); he only inflicts pain on self and others (*ekant dand*), he is absolutely unrighteous or has intense false perception or belief (*ekant baal*) and he is in a state of deep stupor of false belief (*ekant supt*) ?

(A.) Yes, Gautam ! He does attract.

६५. जीवे णं भंते ! असंजए जाव एगंतसुत्ते मोहणिज्जं पावकम्मं अण्हाइ ?

हंता अण्हाइ।

६५. **(प्रश्न)** भंते ! वह जीव, जो असंयत है–(पूर्वोक्त असंयम आदि अवस्था में है) जो एकान्त सुप्त–मिथ्यात्व की गाढ़ निद्रा में सोया हुआ है, क्या वह मोहनीय पापकर्म का बंध करता है ?

(उत्तर) हाँ, गौतम ! करता है।

65. (Q.) *Bhante* ! Does a being attract bondage of deluding (*mohaniya*) category of demeritorious *karmas* (*paap karma*) in case he is indisciplined or has not practiced self-restraint (*asamyat*);... and so on up to... he is in a state of deep stupor of false belief ?

(A.) Yes, Gautam ! He does.

६६. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे किं मोहणिज्जं कम्मं बंधइ ? वेयणिज्जं कम्मं बंधइ ?

गोयमा ! मोहणिज्जं पि कम्मं बंधइ, वेयणिज्जं पि कम्मं बंधइ, णण्णत्थ चरिममोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे वेअणिज्जं कम्मं बंधइ, णो मोहणिज्जं कम्मं बंधइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. (प्रश्न) भंते ! जीव मोहनीय कर्म का वेदन (अनुभव) करता हुआ क्या मोहनीय कर्म का बंध करता है, अथवा वेदनीय कर्म का बंध करता है ?

(उत्तर) गौतम ! मोहनीय कर्म का अनुभव करता हुआ जीव मोहनीय कर्म का भी बंध करता है और वेदनीय कर्म का भी बंध करता है। किन्तु (सूक्ष्मसंपराय नामक दशम गुणस्थान में) चरम मोहनीय कर्म-(सूक्ष्म लोभ) का वेदन करता हुआ जीव केवल वेदनीय कर्म का ही बंध करता है, मोहनीय कर्म का नहीं। (मोहनीय कर्म का क्षय दशम गुणस्थान में ही हो जाता है, उसके आगे ११वें गुणस्थान से सयोगी केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक केवल वेदनीय कर्म का बंध है, मोहनीय कर्म का नहीं है।)

66. (Q.) *Bhante* ! While experiencing the deluding *karma* does a being attract bondage of deluding *karma* (*mohaniya karma*), or that of experience engendering *karma* (*vedaniya karma*) ?

(A.) Gautam ! While experiencing the deluding *karma* (*mohaniya karma*) a being attracts bondage of deluding *karma* (*mohaniya karma*) as well as that of experience engendering *karma* (*vedaniya karma*). But while experiencing the residual deluding *karma* or minute greed (*charam mohaniya karma* or *sukshma lobh*) a being attracts bondage of experience causing *karma* (*vedaniya karma*) only, and not that of deluding *karma* (*mohaniya karma*). (This happens at the tenth *Gunasthan* called *Sukshmasamparaya* where *mohaniya karma* is completely destroyed. Beyond that, from eleventh to thirteenth *Gunasthan, Sayogi Kevali,* there exists the bondage of *vedaniya karma* only and not that of *mohaniya karma*.)

एकान्तबाल : एकान्तसुप्त का उपपात

६७. जीवे णं भंते ! असंजए, अविरए, अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, सकिरिए, असंवुडे, एगंतदंडे, एगंतबाले, एगंतसुत्ते, ओसण्णतसपाणघाई कालमासे कालं किच्चा णेरएसु उववज्जति ?

हंता उववज्जति।

६७. (प्रश्न) भंते ! जो जीव असंयत है, अविरत है, जिसने सम्यक्त्वपूर्वक पापकर्मों को परित्याग नहीं किया है-जो सक्रिय-(मिथ्यात्व क्रियायुक्त) है। असंवृत्त-संवररहित है, एकान्त दण्ड है--पाप--प्रवृत्तियों द्वारा अपने को तथा अन्य जीवों को सर्वथा दुःख व त्रास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देता है, एकान्तबाल है तथा एकान्तसुप्त है, जो द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का प्रायः घात करता है, क्या वह मृत्यु का समय आने पर मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

(उत्तर) हाँ, गौतम, ऐसा होता है।

THE UPAPAT OF EKANT BAAL AND EKANT SUPT

67. (Q.) *Bhante* ! Does a being after dying, at the destined moment of his death, take birth as an infernal being in case he is indisciplined or has not practiced self-restraint (*asamyat*); he has not abstained from violence and other such acts (*avirat*); he has not stopped the inflow of demeritorious *karmas* through resolution of perfect abstainment (*pratyakhyan*), he indulges in mundane activities, physical, vocal and mental (*sakriya*); he only inflicts pain on self and others (*ekant dand*), he is absolutely unrighteous or has intense false perception or belief (*ekant baal*), he is in a state of deep stupor of false belief (*ekant supt*) and indulges in killing of two sensed and other mobile beings ?

(A.) Yes, Gautam ! He does.

६८. जीवे णं भंते ! असंजए अवरिए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे इओ पेच्च देवे सिया ?

गोयमा ! अत्थेगइया देवे सिया, अत्थेगइया णो देवे सिया।

६८. (प्रश्न) भंते ! जो असंयत है, अविरत है–जिन्होंने प्रत्याख्यान द्वारा पापकर्मों को रोका नहीं है वे यहाँ से मृत्यु प्राप्त कर आगे के जन्म में क्या देवलोक में उत्पन्न होते हैं ?

(उत्तर) गौतम ! कई देवलोक में उत्पन्न होते हैं, कई नहीं होते हैं।

68. (Q.) *Bhante* ! Do beings on dying take birth as divine beings in case they are indisciplined or have not practiced self-restraint (*asamyat*); they have not abstained from violence and other such acts (*avirat*); they have not stopped the inflow of demeritorious *karmas* through resolution of perfect abstainment (*pratyakhyan*) ?

(A.) Gautam ! Some of these are born as divine beings and some are not.

६९. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थेगइया देवे सिया, अत्थेगइया णो देवे सिया ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! जे इमे जीव गामागर–णयर–णिगम–रायहाणि–खेड–कब्बड–मडंब–दोणमुह–पट्टणासम–संबाह–सण्णिवेसेसु अकामतण्हाए, अकामछुहाए, अकामबंभचेरवासेणं, अकामअण्हाणग–सीयायव–दंसमसग–सेय–जल्ल–मल्ल–पंकपरितावेणं अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं अप्पाणं परिकिलेसंति, अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते।

तेसिं णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं इड्ढी इ वा, जुई इ वा, जसे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा ?

हंता अत्थि।

ते णं भंते ! देवा परलोगस्स आराहगा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

६९. (प्रश्न) भंते ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि कितनेक जीव देवलोक में उत्पन्न होते हैं, कितनेक नहीं होते ?

(उत्तर) गौतम ! जो जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश आदि में तृषा, क्षुधा, ब्रह्मचर्य, अस्नान, शीत, आतप, डांस–(मच्छर), स्वेद–पसीना, जल्ल, मल्ल, पंक आदि परितापों से आत्म–शुद्धि की भावना के बिना केवल परवशता के कारण, अनिच्छापूर्वक अपने आपको थोड़ा या अधिक क्लेश देते हैं, कष्ट सहन करते हैं, मृत्यु का समय आने पर देह का त्यागकर वे वाणव्यन्तर देवलोकों में से किसी लोक में देव के रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनकी अपनी गति, स्थिति तथा उपपात होता है।

(प्रश्न) भगवन् ! वहाँ उन देवों की स्थिति–आयु कितने समय की बतलायी है ?

(उत्तर) गौतम ! वहाँ उनकी स्थिति दस हजार वर्ष की बतलायी है।

(प्रश्न) भगवन् ! क्या उन देवों की **ऋद्धि**–(समृद्धि, परिवार आदि सम्पत्ति), **द्युति**–दैहिक कांति, **यश**–कीर्ति, **बल**–(शारीरिक शक्ति), **वीर्य**–(प्राणमयी शक्ति), **पुरुषाकार, पराक्रम,** ये सब बातें होती हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(उत्तर) हाँ, गौतम ! ऐसा होता है।

(प्रश्न) भगवन् ! क्या वे देव परलोक के आराधक होते हैं ?

(उत्तर) गौतम ! ऐसा नहीं होता।

69. (Q.) *Bhante* ! Why do you say that some of these are born as divine beings and some are not ?

(A.) Gautam ! Some beings living in places like *gram, aakar, nagar, nigam, khet, karbat, madamb, dronmukh, pattan, ashram, samvah* and *sannivesh*, out of helplessness and not inspired by spiritual purity, inflict on themselves and endure a little or more torment of thirst, hunger, celibacy, not taking bath, cold, heat, mosquito-bite, sweating, dust, dirt and slime. Such beings on dying, at the destined moment of their death, take birth as *devs* (celestial beings) in any of the interstitial divine realms (*Vanavyantar dev-lok*). There they have their own specific *gati* (state), *sthiti* (life-span), and *upapat* (instantaneous birth).

(Q.) *Bhante* ! What is said to be the life-span (*sthiti*) there of these gods ?

(A.) Gautam ! Their life-span is said to be ten thousand years.

(Q.) *Bhante* ! Are these gods endowed with *riddhi* (wealth and family), *dyuti* (radiance), *yash* (fame), *bal* (physical strength), *virya* (potency), *purushakar* (human form) and *parakram* (valour) ?

(A.) Yes, Gautam ! it is so.

(Q.) *Bhante* ! Are these gods spiritual aspirants for next birth ?

(A.) No, Gautam ! It is not so.

विवेचन–विशेष शब्दों के अर्थ–ग्राम–छोटे देहात। **आकर**–नमक आदि के उत्पत्ति के स्थान। **नगर**–जहाँ किसी प्रकार का 'कर' नहीं लगता हो, ऐसा शहर। **निगम**–व्यापारिक केन्द्र। **खेट**–जिसका परकोटा कच्चा धूल का हो वह गाँव। **कर्बट**–बहुत साधारण कस्बा। **मडंब**–ऐसी बस्ती, जिसके आसपास में कोई गाँव न हो। **द्रोणमुख**–जहाँ जल एवं स्थल–दोनों मार्ग से पहुँच जाता हो। **पत्तन**–बन्दरगाह या बड़ा नगर। **आश्रम**–तापसों का आवास। **संवाह**–पर्वत की तलहटी में बसा गाँव। **सन्निवेश**–झोंपड़ियों से युक्त बस्ती अथवा जहाँ सार्थवाह या सेना आदि तम्बू लगाकर ठहरते हों। **जल्ल**–मिट्टी। **मल्ल**–शरीर का मैल, जो सूखकर कठोर हो गया हो। **पंक**–जो मैल पसीने से गीला हो। **अकाम ब्रह्मचर्य**–जिस ब्रह्मचर्य पालन में किसी प्रकार की विवशता या पराधीनता हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार जिस साधना में मोक्ष की या आत्म-शुद्धि की कामना न हो वह 'अकाम' तप आदि है। अकाम तप करने वाला आराधक नहीं होता। ऐसा नियम है कि जो जीव सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधनापूर्वक किये अनुष्ठान से देव होते हैं वे आगामी एक मनुष्यभव से अथवा क्रमशः सात-आठ भव से कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करके मुक्ति प्राप्त करते हैं, किन्तु जो अकाम निर्जरा करके देवभव में उत्पन्न होते हैं वे भवान्तर में मोक्ष प्राप्त करें ऐसा कोई नियम नहीं है। अतः यहाँ उन्हें 'आराधक' नहीं बताया है। (पीयूषवर्षिणी टीका, पृष्ठ ५१३)

Technical terms—Gram—small village. **Aakar—**settlement near a mine like that of salt. **Nagar—**city where no tax is levied. **Nigam—**trade center. **Khet—**kraal or a settlement with boundary wall made of mud. **Karbat—** a very small town or a trading post. **Madamb—**an isolated settlement or a borough. **Dronmukh—**a settlement connected with land route as well as water route; a hamlet. **Pattan—**harbour or port city. **Ashram—**hermitage. **Samvah—**settlement in a valley. **Sannivesh—**temporary settlement or a camp site for caravans or armies. **Jalla—**sand. **Malla—**dry dirt. **Pank—** wet dirt or slime due to perspiration. **Akaam brahmacharya—**enforced celibacy.

In the same way any practice or austerity devoid of the aspiration for spiritual purity or liberation is called *akaam-tap*. One indulging in such *akaam-tap* is not an aspirant or spiritualist. As a rule, those who are born in the divine realm as a consequence of sincere endeavour on the path of right knowledge, perception and conduct attain liberation after shedding all *karmas* in their next birth or following seven-eight births. But this rule does not necessarily apply to those who shed *karmas* as a consequence of *akaam-tap*. Therefore they are not termed as *aradhak* or spiritual aspirants here. (*Piyush Varshini Tika*, p. 513)

क्लिशित उपपात

७०. (क) से जे इमे गामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाहसण्णिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा-

अंडुबद्धगा, णिअलबद्धगा, हडिबद्धगा, चारगबद्धगा, हत्थछिण्णगा, पायछिण्णगा, कण्णछिण्णगा, नक्कछिण्णगा, ओट्ठछिण्णगा, जिब्भछिण्णगा, सीसछिण्णगा, मुखछिण्णगा, मज्झछिण्णगा, वइकच्छछिण्णगा, हिययउप्पाडियगा, णयणुप्पाडियगा, दसणुप्पाडियगा, वसणुप्पाडियगा, गेवच्छिण्णगा, तंडुलच्छिण्णगा, काग-णिमंसक्खावियगा, ओलंबियगा, लंबियगा, घंसियगा, घोलियगा, फालियगा, पीलियगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूलाइयगा, सूलभिण्णगा, खारवत्तिया, वज्झवत्तिया, सीहपुच्छियगा, दवग्गिदड्ढगा, पंकोसण्णगा, पंके खुत्तगा।

७०. (क) जो (ये) जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश आदि में मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं।

वहाँ, जिनके किसी अपराध के कारण काठ या लोहे के बंधन से हाथ-पैर बाँध दिये जाते हैं, बेड़ियों से जकड़ दिये जाते हैं, जिनके पैर काठ के खोड़े में डाल दिये जाते हैं, जो कारागार में बन्द कर दिये जाते हैं, जिनके हाथ काट दिये जाते हैं, जिनके पैर काट दिये जाते हैं, कान काट दिये जाते हैं, नाक काट दिये जाते हैं, होठ काट दिये जाते हैं, जिव्हाएँ काट दी जाती हैं, मस्तक छेद दिये जाते हैं, मुँह छेद दिये जाते हैं, मध्य भाग-पेट छेद दिया जाता है, जिनके बायें कन्धे से लेकर दाहिनी काँख तक के देह-भाग मस्तक सहित विदीर्ण कर दिये जाते हैं, हृदय चीर दिये जाते हैं-कलेजे उखाड़ दिये जाते हैं, आँखें निकाल ली जाती हैं, दाँत तोड़ दिये जाते हैं, जिनके अण्डकोष निकाल दिये जाते हैं, गर्दन तोड़ दी जाती है, तन्दुल-चावलों की तरह जिनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं, जिनके शरीर का कोमल माँस काट-काटकर कौओं का खिला दिया जाता है, जो रस्सी से बाँधकर कुएँ आदि में लटका दिये जाते हैं, वृक्ष की शाखा आदि पर हाथ बाँधकर लटका दिये जाते हैं, चन्दन की तरह पत्थर आदि पर घिस दिये जाते हैं, दही की तरह ऊँचे-नीचे काटकर मथ दिये जाते हैं, काठ की तरह कुल्हाड़े से फाड़कर दो टुकड़े कर दिये जाते हैं, जो गन्ने की तरह कोल्हू में पेल दिये जाते हैं, जो सूली पर चढ़ा दिये जाते हैं, जो सूली से बींध दिये जाते हैं, जो खार के बर्तन में डाल दिये जाते हैं, जो गीले चमड़े से बाँध दिये जाते हैं अथवा वध्य स्थान में पटक दिये जाते हैं। जिनकी जननेन्द्रिय काट दी जाती है अथवा सिंह की पूँछ में बाँधकर घसीटे जाते हैं, जो दवाग्नि में जला दिये जाते हैं, कीचड़ में धँसा दिये जाते हैं, कीचड़ में फँसा दिये जाते हैं कि फिर उससे निकल ही नहीं सकें।

KLISHIT UPAPAT

70. (a) Some beings are born as human beings in places like *gram, aakar, nagar, nigam, khet, karbat, madamb, dronmukh, pattan, ashram, samvah* and *sannivesh*. There (they suffer torments in various ways detailed as follows)—

As a punishment for their crime, some have their limbs pinioned with wood or iron, are shackled in chains, are hobbled with a piece of wood, or imprisoned. Some have their hands, legs, ears, nose,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

lips, or tongue amputated. Some have their head, mouth or belly pierced. Some have their head and torso from left shoulder to right armpit severed. Some have their heart and lever cut out, eye-balls scooped out from sockets, teeth broken, testicles slit or neck broken. Some have their body chopped to pieces like rice or their soft flesh sliced and fed to crows. Some are tied and suspended into a well with a rope or from a branch of a tree. Like sandalwood, some are scraped on stone or some other rough surface. Some are sliced and churned like curd. Some are chopped into two with an axe. Some are crushed like sugar-cane. Some are impaled on a gibbet or nailed on a cross. Some are thrown into a tub of alkali or wrapped in raw hide and thrown into slaughter house. Some have their male organs cut off. Some are tied to the tail of a lion and dragged. Some are burnt in forest fire or trapped and drowned in quagmire.

७०. (ख) वलयमयगा, वसट्टमयगा, णियाणमयगा, अंतोसल्लमयगा, गिरिपडियगा, तरुपडियगा, मरुपडियगा, गिरिपक्खंदोलगा, तरुपक्खंदोलगा, मरुपक्खंदोलगा, जलपवेसिगा, जलणप्पवेसिगा, विसभक्खियगा, सत्थोवाडियगा, वेहाणसिया, गिद्धपिट्ठगा, कंतारमयगा, दुब्भिक्खमयगा, असंकिलिट्ठपरिणामा ते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गइ तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते।

तेसिं णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! बारसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता !

अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं इड्ढी इ वा, जसे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरिक्कमे इ वा ?

हंता अत्थि।

ते णं भंते ! देवा परलोगस्स आराहगा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

७०. **(ख)** अथवा जो संयम से भ्रष्ट होकर या भूख आदि से पीड़ित होकर, परीषहों से घबराकर मरते हैं, वलन्मरण प्राप्त करते हैं, जो विषय-परतन्त्रता से पीड़ित या दुःखित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वशार्तमरण मरते हैं, जो सांसारिक इच्छा पूर्ति के निदान के साथ अज्ञानमय तपपूर्वक मृत्यु प्राप्त करते हैं, जो अन्तःशल्य–कलुषित भावों के काँटे को निकाले बिना या भाले आदि से अपने आपको बेधकर अन्तःशल्यपूर्वक मरते हैं, जो पर्वत से गिरकर मरते हैं अथवा अपने पर बहुत बड़ा पत्थर गिराकर मरते हैं, जो वृक्ष से गिरकर मरते हैं, मरुस्थल या निर्जल प्रदेश में मर जाते हैं अथवा मरुस्थल के किसी स्थान से–बड़े टीले आदि से गिरकर या धँसकर मरते हैं, जो पर्वत से झंपापात कर–छलाँग लगाकर मरते हैं, वृक्ष से छलाँग कर मरते हैं, मरुभूमि की बालू में फँसकर मरते हैं, जल में प्रवेश कर मरते हैं, अग्नि में प्रवेश कर मरते हैं, विष–भक्षण–जहर खाकर मरते हैं, शस्त्रों से अपने आपको चीरकर मृत्यु प्राप्त करते हैं, जो वृक्ष की डाली आदि से लटककर फाँसी लगाकर मरते हैं, जो मरे हुए हाथी, ऊँट आदि की देह में प्रविष्ट होकर गीधों की चोंचों से विदारित होकर गृद्ध स्पृष्ट मरण से मरते हैं, जो जंगल में खोकर मर जाते हैं, जो दुर्भिक्ष में भूख, प्यास आदि से मर जाते हैं, उस समय यदि उनके परिणाम संक्लिष्ट अर्थात् आर्त–रौद्रध्यानयुक्त न हों तो उस प्रकार की मृत्यु प्राप्त कर वे जीव वाणव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देवरूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उस देवलोक के अनुरूप उनकी गति (भव), स्थिति (आयु स्थिति) तथा उत्पत्ति होती है ऐसा बतलाया है।

भगवन् ! उन देवों की वहाँ कितनी स्थिति होती है ?

गौतम ! वहाँ उनकी स्थिति बारह हजार वर्ष की होती है।

भगवन् ! उन देवों के वहाँ ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य तथा पुरुषाकार, पराक्रम होता है या नहीं ?

गौतम ! ऐसा होता है।

भगवन् ! क्या वे देव परलोक के आराधक होते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता–वे देव परलोक के आराधक नहीं होते।

70. (b) Some embrace death because they have fallen from grace. Some helplessly die due to torture of hunger or other afflictions. Some accept death due to misery and agony of their dependence on mundane indulgences. Some die as a consequence of misguided penance in order to fulfill mundane desires. Some instead of removing the inner thorn of perversions, embrace death by piercing themselves with a spear, by falling from a hill, by crushing themselves under a rock, or by falling from a tree. Some die of thirst

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by going into a desert or other arid area. Some embrace death by jumping from a mountain peak, by jumping from a tree, by getting trapped in quick sand, by drowning, by jumping into fire, by consuming poison, by piercing themselves with weapons, by hanging from a branch of a tree. Some enter the body of a dead elephant or camel to get pierced and killed by vultures. Some get lost in a jungle and die. Some die of thirst and hunger during a drought. If at the moment of their death they are not in a tortured mental state (tormented and angry) then after death they are born as gods in any of the interstitial divine realms (*Vanavyantar dev-loks*). It is said that there they have the realm-specific state (*gati*), *sthiti* (life-span) and *upapat* (instantaneous birth).

Bhante ! What is said to be the life-span (*sthiti*) of these gods ?

Gautam ! Their life-span is said to be twelve thousand years.

Bhante ! Are these gods endowed with *riddhi* (wealth and family), *dyuti* (radiance), *yash* (fame), *bal* (physical strength), *virya* (potency), *purushakar* (human form), and *parakram* (valour).

Yes, Gautam ! It is so.

Bhante ! Are these gods true spiritual aspirants for next birth ?

No, Gautam ! It is not so.

विवेचन–सूत्र ६९ में अकाम तप आदि करते हुए मृत्यु प्राप्त करने वालों का कथन है। प्रस्तुत सूत्र ७० में दो प्रकार के लोगों की चर्चा है। प्रारम्भ में (क) कुछ उन लोगों की चर्चा है, जिन्हें अपराधवश, वैमनस्य या द्वेषवश किन्हीं द्वारा घोर कष्ट दिया जाता है, जिससे वे प्राण छोड़ देते हैं। यदि यों कष्टपूर्वक मरते समय उनके मन में तीव्र आर्त्त, रौद्रध्यान के संक्लिष्ट परिणाम नहीं आते तो उनका वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होना बतलाया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि वे मिथ्यात्वी होते हैं, उन द्वारा विविध प्रकार के कष्ट-सहन मोक्ष या आत्म-शुद्धि की निर्मल भावना से नहीं होता फिर भी उनके परिणामों में इतनी-सी विशेषता रहती है कि वे कष्ट सहते हुए आर्त्त, रौद्र भाव से अभिभूत नहीं होते, अविचल रहते हुए, अत्यन्त दृढ़ता से उन कष्टों को सहते हुए मर जाते हैं। इसी बात को सूचित करने के लिए **असंकिलिट्ठ परिणामा** पद का प्रयोग किया गया है। अतएव उन द्वारा किया गया वह कष्ट-सहन अकाम निर्जरा की कोटि में आता है, जिसके फलस्वरूप वे देव योनि को प्राप्त करते हैं।

इसके पश्चात् (ख) उत्तरार्ध में कुछ ऐसे लोगों की चर्चा है, जो कठोर शुद्ध संयम का पालन नहीं कर पाने से, संयम भ्रष्ट होकर या सांसारिक सुखों की इच्छा या भौतिक कामनाओं की पूर्ति न होने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतने दुःखित, निराश तथा विषादग्रस्त हो जातें कि जीवन का भार ढो पाना अशक्य प्रतीत होता है। तब हारकर वे फाँसी लगाकर, पानी में डूबकर, पर्वत से झंपापात कर, आग में कूदकर, जहर खाकर या ऐसे ही किसी अन्य प्रकार से प्राण त्याग देते हैं। यदि दुःख झेलते हुए, मरते हुए उनके परिणाम संक्लेशमय, तीव्र आर्त्त–रौद्रध्यानमय नहीं होते, तो वे मरकर वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं।

यों प्राण–त्याग करना क्या आत्महत्या नहीं है? आत्महत्या तो बहुत बड़ा पाप है, आत्मघाती देव कैसे होते हैं? इत्यादि अनेक शंकाएँ यहाँ खड़ी होती हैं।

बात सही है, आत्महत्या महापाप है, नरक का हेतु है, जो आत्महत्या करता है, मरते समय वह अत्यन्त कलुषित, क्लिष्ट एवं दूषित परिणामों से ग्रस्त होता है। इसीलिए वह घोर पापी कहा जाता है। वास्तव में आत्महत्या करने वाले के अन्त समय के परिणामों की धारा बड़ी जघन्य तथा निम्न कोटि की होती है। वह घोर आर्त्त–रौद्र भाव में डूबा रहता है। वह बहुत ही शोक–विह्वल हो जाता है। किन्तु यहाँ जो प्रसंग वर्णित है, वह आत्महत्या में नहीं आता। क्योंकि उपयुक्त दशा में मरने वालों की भावना में एक विवशता या निराशा होती है, वह सांसारिक दुःखों से छूट नहीं पा रहा है, उसकी कामनाएँ पूर्ण नहीं हो रही हैं। उसका लक्ष्य सध नहीं पा रहा है। मरना ही उसके लिए एक मात्र उपाय है। पर, वह मरते समय भयाक्रान्त नहीं होता, मन में आकुल तथा उद्विग्न नहीं होता। वह परिणामों में अत्यधिक दृढ़ता लिए रहता है, उसके भाव संक्लिष्ट नहीं होते। वह आर्त्त, रौद्रध्यान में एकदम निमग्न नहीं होता।

दोनों की मानसिक स्थिति में यह बहुत सूक्ष्म अन्तर होता है, जिसे सामान्य व्यक्ति नहीं पहचान पाता, किन्तु ज्ञानीजन भावों की सूक्ष्मतम स्थिति को जानते हैं। मृत्यु के समय भावों की स्थिति ही अगली गति की निर्णायक होती है। इस प्रकार उसके अकाम निर्जरा सध जाती है और वह देव योनि प्राप्त कर लेता है।

Elaboration—Aphorism 69 details people who die after purposeless penance but this aphorism further divides them into two categories. First (a) it informs about those who are gravely tortured for their crimes or out of antagonism and aversion, and die in the process. If they are not in a tortured and angry state of mind they are reborn as *Vanavyantar* gods. This means that although they are unrighteous and tolerate pain not because of pious feelings aimed at spiritual purity or liberation, the good thing about them is that while enduring pain they are not overwhelmed by misery and anger. They remain unmoved and die enduring those torments. The term *asanklisht parinam* (unperturbed attitude) has been used to convey this fact. Thus, this act of tolerating pain falls under the category of unintentional shedding of *karmas* (*akaam nirjara*) and leads to a rebirth as gods.

Thereafter (b) it informs about those who are unable to follow the rigours of strict ascetic-discipline and fall from grace, and those who fail to fulfill their desires for mundane pleasures. They become so miserable,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

hopeless and dejected that life appears to be an unbearable load to them. At last they embrace death by hanging themselves, drowning, jumping from a hill, self immolation, consuming poison or other such means and methods. If they are not in a tortured and angry state of mind they are reborn as *Vanavyantar* gods.

This gives rise to many doubts and questions—Is this embracing of death not suicide ? Committing suicide is a grave sin, so how can a person committing suicide reincarnate as a god ?

It is true that suicide is a grave sin and leads to hell. A person committing suicide is in an extremely pervert and disturbed state of mind. That is why he is called a grave sinner. In fact, the last thoughts of a person committing suicide are evil and immoral. He is overwhelmed with sentiments of extreme misery and anger and filled with grief. But what has been described here is not exactly suicide. Those who die in aforesaid predicament have feelings of helplessness and hopelessness. Such a person is not getting rid of the worldly miseries and his desires are not getting fulfilled. He is unable to reach his goal. Death is his last resort. However, at the moment of death he is not filled with fear, agitation or anger. He is not in a disturbed state but has a stable and resolved state of mind. He is not completely overwhelmed with misery and anger.

There is a minute difference in the two mental states. It is beyond the comprehension of common man but the sagacious know and understand the subtle mental activities. The state of mind at the moment of death determines the next incarnation. As the described state falls under the category of unintentional shedding of *karmas* (*akaam nirjara*) it leads to rebirth as god.

भद्र प्रकृति जनों का उपपात

७१. से जे इमे गामागर जाव संनिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा–पगइभद्दगा, पगइउवसंता, पगइपतणुकोहमाणमाया लोहा, मिउमद्दवसंपण्णा, अल्लीणा, विणीया, अम्मापिउसुस्सूसगा, अम्मापिईणं अणइक्कमणिज्जवयणा, अप्पिच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा, अप्पेणं आरंभेणं, अप्पेणं समारंभेणं, अप्पेणं आरंभ–समारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणा बहूइं वासाइं आउयं पालेंति, पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु तं चेव सव्वं णवरं ठिई चउद्दसवाससहस्साइं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. (वे) जीव जो ग्राम, आकर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं, जो प्रकृति से भद्र–सरल प्रकृति के होने से, शान्त प्रकृति वाले होते हैं, स्वभावतः जिनमें क्रोध, मान, माया एवं लोभ की प्रबलता कम होती है, मृदु मार्दवसम्पन्न–कोमल स्वभावयुक्त–अहंकाररहित, आलीन–गुरुजनों के आज्ञापालक, विनीत–विनयशील, माता–पिता की सेवा करने वाले, माता–पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं करने वाले, अल्पेच्छा–बहुत कम इच्छा व कम आवश्यकता रखने वाले, अल्पारंभ–कम से कम हिंसा करने वाले, अल्प परिग्रह–धन, धान्य आदि परिग्रह के अल्प परिमाण से परितुष्ट, अल्पारंभ–कम से कम जीव हिंसा द्वारा आजीविका चलाने वाले, बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हुए, आयुष्य पूरा कर, मृत्यु आने पर देह–त्यागकर वाणव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। इनकी स्थिति आयुष्य परिमाण चौदह हजार वर्ष का होता है। (शेष वर्णन सूत्र ७१ के अनुसार समझें)

UPAPAT OF NOBLE BEINGS

71. Some beings are born as human beings in places like *gram, aakar*... and so on up to... *sannivesh*. Being noble and simple by nature they are calm and have low intensity of anger, conceit, deceit and greed. They are amicable, humble, obedient and polite. They serve their parents and never go against their words. They have modest desires and needs. They commit minimal violence and are content with minimum possessions including wealth and grains. They scarcely use violent methods to earn their living. Living long thus at the end of their life-span they abandon their earthly bodies and are born as gods in any of the interstitial divine realms (*Vanavyantar dev-loks*). Their life-span there is fourteen thousand years. (rest of the description is the same as in aphorism 71)

परिक्लेशबाधित नारियों का उपपात

७२. से जाओ इमाओ गामागर जाव संनिवेसेसु इत्थियाओ भवंति, तं जहा–अंतो अंतउरियाओ, गयपइयाओ, मयपइयाओ, बालविहवाओ, छड्डियल्लियाओ, माइरक्खियाओ, पियरक्खियाओ, भायरक्खियाओ, कुलघररक्खियाओ, ससुरकुलरक्खियाओ, मित्तनाइ–नियगसंबंधिरक्खियाओ, परूढणहकेस–कक्खरोमाओ, ववगयधूवपुप्फगंध–मल्लालंकाराओ, अण्हाणगसेयजल्लमल्लपंकपरिताविया ओ, ववगयखीर–दहि–णवणीय–सप्पि–तेल्ल–गुल–लोण–महु–मज्ज–मंस–परिचत्तकयाहाराओ, अप्पिच्छाओ, अप्पारंभाओ, अप्पपरिग्गहाओ, अप्पेणं आरंभेणं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पेणं समारंभेणं, अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणीओ अकामबंभचेरवासेणं तामेव पइसेज्जं णाइक्कमंति, ताओ णं इत्थियाओ एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणीओ बहूइं वासाइं (आउयं पालेंति, पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए–उववत्तारीओ भवंति, तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते। तेसिं णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा !) चउसट्ठिं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

७२. (ये) जो ग्राम यावत् सन्निवेश आदि में स्त्रियाँ होती हैं–(स्त्री–देह में जिनका जन्म हुआ है) जो अन्तःपुर के अन्दर निवास करती हों, जिनके पति परदेश गये हों, जिनके पति मर गये हों, जो बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई हों, जो पतियों द्वारा परित्यक्ता हों। जो मातृरक्षिता हों। जिनका पालन–पोषण, संरक्षण माता द्वारा किया गया हो, जो पिता द्वारा रक्षित हों, जो भाइयों द्वारा रक्षित हों, जो कुलगृह–पीहर के अभिभावकों द्वारा संरक्षित हों, जो श्वसुर–कुल द्वारा, श्वसुर–कुल के अभिभावकों द्वारा रक्षित हों। जो पति या पिता आदि के मित्रों, अपने हितैषियों मामा, नाना आदि सम्बन्धियों, अपने सगोत्रीय देवर, जेठ आदि पारिवारिक जनों द्वारा जिनका पालन–पोषण–संरक्षण हो रहा हो। कितनीक स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जिनके नख, केश, काँख के बाल बढ़ गये हों। जो धूप (धूप, लोबान तथा सुरभित औषधियों) का उपयोग नहीं करतीं। सुगन्धित पदार्थ, मालाएँ धारण नहीं करती हों। जो स्नान नहीं करने से पसीने, जल्ल, मल्ल, पंक आदि से पीड़ित रहती हों, मलिन रहती हों। जो दूध, दही, मक्खन, घृत, तेल, गुड़, नमक, मधु, मद्य और माँस वर्जित आहार करती हों। जिनकी इच्छाएँ स्वभावतः बहुत कम होती हों, जिनके धन, धान्य आदि परिग्रह बहुत कम हों। जो अल्प आरम्भ–समारम्भ–बहुत कम जीव–हिंसा द्वारा अपनी जीविका चलाती हों। मोक्ष की अभिलाषा या आत्म–शुद्धि के लक्ष्य के बिना जो अकाम ब्रह्मचर्य का पालन करती हों, पति–शय्या का अतिक्रमण नहीं करती हों अर्थात् पतिव्रत धर्म का पालन करती हों। जो स्त्रियाँ इस प्रकार के आचरण द्वारा अपना जीवनयापन करती हों, वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हुए, (आयुष्य पूरा कर, मृत्यु का समय आने पर देह–त्यागकर वाणव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देव रूप में उत्पन्न होती हैं। वहाँ प्राप्त देवलोक के अनुरूप उनकी गति, स्थिति तथा उत्पत्ति होती है।) वहाँ उनकी स्थिति चौंसठ हजार वर्षों की होती है।

UPAPAT OF TORMENTED WOMEN

72. Some women live in places like *gram, aakar*... and so on up to... *sannivesh*. There (they lead life as follows)—Some live in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

women's quarters as husbands have gone to some other state, or have died. Some are childhood widows or have been abandoned by their husbands. Some have as their guardians their mothers, fathers, brothers, parental relatives, or relatives from their father-in-law's side. Some are being looked after by friends of their husbands, fathers and other relatives. Some are in the care of their well-wishers including maternal relatives or own family members like husbands or brothers. Some have overgrown nails and hair including those of armpits. Some do not use incenses, perfumes, garlands and other fragrant things. Some are distressed by sand, dirt and slime because they do not take bath and remain dirty. Some take milk, curd, butter, butter-oil, oil, jaggery, salt, honey, or prohibited food like wine, and meat. Some have modest desires and needs and are content with minimum possessions including wealth and grains. Some scarcely use violent methods to earn their living. Some observe unintended celibacy (*akaam brahmacharya*) without any desire for spiritual purity and liberation. Some avoid infidelity to their husbands. Living long thus (at the end of their life-span they abandon their earthly bodies and are born as gods in any of the interstitial divine realms or *Vanavyantar dev-loks*. It is said that there they have the realm-specific state, *sthiti* and *upapat*.) Their life-span there is sixty four thousand years.

विविध व्रती मनुष्यों का उपपात

७३. से जे इमे गामागर जाव संनिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा—दगबिइया, दगतइया, दगसत्तमा, दगएक्कारसमा, गोयम—गोव्वइय—गिहिधम्म—धम्मचिंतग—अविरुद्ध—विरुद्ध—वुड्ढसावगप्पभितयो, तेसि णं मणुयाणं णो कप्पति इमाओ नवरसविगइओ आहारेत्तए, तं जहा—खीरं, दहिं, णवणीयं, सप्पिं, तेल्लं, फाणियं, महुं, मज्जं, मंसं, णो अण्णत्थ एक्काए सरिसवविगइए। ते णं मणुया अप्पिच्छा चं चेव सव्वं णवरं चउरासीइं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

७३. ग्राम तथा सन्निवेश आदि पूर्वोक्त स्थानों में जो मनुष्य रहते हैं, जो **उदकद्वितीय**—एक खाद्य पदार्थ तथा दूसरा जल, इन दो पदार्थों का आहार रूप में सेवन करते हों, **उदकतृतीय**—भात आदि दो पदार्थ तथा तीसरे जल का सेवन करते हों, **उदकसप्तम**—भात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि छह पदार्थ तथा सातवें जल का सेवन करते हों, **उदकैकादश**—भात आदि दश पदार्थ तथा ग्यारहवें जल का सेवन करते हैं। **गौतम**—(बैल द्वारा विविध प्रकार के मनोरंजक प्रदर्शन करके भिक्षा माँगते हैं)। **गोव्रतिक**—गो–सेवा का विशेष व्रत स्वीकार करते हैं। **गृहधर्मी**—अतिथि सेवा, दान आदि गृहस्थ धर्म को ही कल्याणकारी मानने वाले हैं एवं उनका अनुसरण करने वाले हैं। **धर्मचिन्तक**—धर्मशास्त्र का पठन करते हैं। **अविरुद्ध—वैनयिक, भक्तिमार्गी**, **विरुद्ध**—आत्मा आदि को अस्वीकार कर बाह्य तथा आभ्यन्तर दृष्टियों से क्रिया–विरोधी, वृद्ध–तापस–श्रावक धर्मशास्त्र का श्रवण करते हों। जो दूध, दही, मक्खन, घृत, तेल, गुड़, मधु, मद्य तथा माँस को अपने लिए अग्राह्य मानते हैं। सरसों के तेल के सिवाय इनमें से किसी का सेवन नहीं करते, जिनकी आकांक्षाएँ बहुत कम होती हैं ···· ऐसे मनुष्य पूर्व वर्णन के अनुरूप मरकर वाणव्यन्तर देव होते हैं। वहाँ उनका आयुष्य ८४ हजार वर्ष का बतलाया गया है।

UPAPAT OF VOW OBSERVING PEOPLE

73. Some people live in places like *gram, aakar*... and so on up to... *sannivesh*. There (they observe a variety of vows as follows)—Some consume only one food item and water as second item (*udak-dvitiya*), two food items and water as third item (*udak-tritiya*), six food items and water as seventh (*udak-saptam)* or ten food items and water as eleventh itme (*udak-ekadash*). Some beg their livelihood by displaying entertaining acts of an ox (*Gautam*). Some take a vow of serving cows (*Govratik*). Some consider the householder's code, including serving guests and giving charity, to be beneficial and observe that only (*Grihadharmi*). Some study scriptures only (*Dharmachintak*). Some follow humbleness or submissive devotion as religion (*Aviruddha*). Some refute soul and other spiritual things and are against spiritual practices both physical and mental (*Viruddha*). Some retire in old age to become hermits (*Vriddha-tapas*). Some listen to recital of religious scriptures (*Shravak*). Some consider milk, curd, butter, butter-oil, oil, jaggery, salt, honey, wine and meat to be prohibited and avoiding all these use only sesame seed oil. They have modest desires and needs... (same as already described)... All such persons after their death are born as gods in any of the interstitial divine realms or *Vanavyantar dev-loks*. Their life-span there is eighty four thousand years.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में ऐसे मनुष्यों की चर्चा है, जो सम्यक्त्वी तो नहीं होते, किन्तु अपनी परम्परागत धारणाओं के वश विशेष कठिन व्रतों का आचरण करते हैं, अपनी चली आती मान्यता के अनुसार विशेष साधना में लगे रहते हैं,जो कम से कम सुविधाएँ और अनुकूलताएँ स्वीकार करते हैं, कष्ट झेलते हैं, शरीर को तपाते हैं और क्रूर परिणामों से भी बचते हैं वे आयुष्य पूर्ण करके वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं। उन गृहस्थ साधकों या परिव्राजकों के लिए प्रस्तुत सूत्र में निम्न आठ विशेषण आये हैं, जिनका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

(१) **गौतम**–ये अपने पास एक नन्हा–सा बैल रखते थे, जिसके गले में कौड़ियों की माला होती, जो संकेत से अन्य व्यक्तियों के चरण स्पर्श करता। इस बैल को साथ रखकर यह साधु भिक्षा माँगा करते थे।

(२) **गोव्रतिक**–गोव्रत रखने वाले। गाय के साथ ही ये परिभ्रमण करते। जब गाय गाँव से बाहर जाती तो ये भी उसके साथ जाते। गाय चारा चरती तो ये भी चरते और गाय के पानी पीने पर ये भी पानी पीते। जब गाय सोती तो ये सोते। गाय की भाँति ही घास और पत्तों का ये आहार करते थे। टीकाकार अभयदेवसूरि ने भी गोव्रतिकों का उल्लेख किया है, मज्झिम निकाय में भी इन गोव्रतिक साधुओं का उल्लेख मिलता है।

''गावीहि समं निग्गमपेवससयणासणाइ पकरेंति।
भुंजंति जहा गावी तिरिक्खवासं विहाविता॥''

''गायों के गाँव से बाहर निकलने पर गोव्रतिक बाहर निकलते हैं। वे जब चलती हैं, वे चलते हैं अथवा वे जब चरती हैं–घास खाती हैं, वे भोजन करते हैं। वे जब पानी पीती हैं, वे पानी पीते हैं। वे आती हैं, तब वे आते हैं। वे सो जाती हैं, तब वे सोते हैं। वैदिक परम्परा में गाय की सेवा–उपासना का विशेष महत्त्व रहा है।

(३) **गृहधर्मी**–ये अतिथि, देव आदि को दान देकर परम आल्हादित होते थे और अपने आपको गृहस्थ धर्म का सही रूप से पालन करने वाले मानते थे।

(४) **धर्मचिन्तक**–ये धर्मशास्त्र के पठन और चिन्तन में तल्लीन रहते थे। अनुयोगद्वारसूत्र की टीका में याज्ञवल्क्य प्रभृति ऋषियों द्वारा निर्मित धर्म–संहिताओं का चिन्तन करने वालों को धर्मचिन्तक कहा है।

(५) **अविरुद्ध**–देवता, राजा, माता–पिता, पशु और पक्षियों की समान रूप से भक्ति करने वाले अविरुद्ध साधु कहलाते थे। ये सभी को नमस्कार करते थे, इसलिए विनयवादी या भक्तिमार्गी भी कहलाते थे। आवश्यकनिर्युक्ति में इनका उल्लेख है। भगवतीसूत्र के अनुसार ताम्रलिप्ति के मौर्य–पुत्र तामलि ने यही प्रणामा–प्रवज्या ग्रहण की थी। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय में भी अविरुद्धकों का वर्णन है।

(६) **विरुद्ध**–ये पुण्य–पाप, स्वर्ग–नरक आदि नहीं मानते थे। ये क्रिया विरोधी होने से अक्रियावादी कहलाते थे।

(७) **वृद्ध**–तापस लोग प्रायः वृद्धावस्था में संन्यास लेते थे। इसलिए ये वृद्ध कहलाते थे। अभयदेवसूरि कृत टीका के अनुसार वृद्ध अर्थात् तापस, श्रावक अर्थात् ब्राह्मण। तापसों को वृद्ध इसलिए कहा गया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि समग्र तीर्थिकों की उत्पत्ति भगवान ऋषभदेव की प्रव्रज्या के पश्चात् हुई थी। उनमें सर्वप्रथम तापस–सांख्यों का प्रादुर्भाव हुआ था, अतः वे वृद्ध कहलाये। श्रमण भगवान महावीर के समय तीन सौ तिरेसठ पाखण्ड–मत प्रचलित थे। उन्हीं अन्य तीर्थों या तैर्थिकों में वृद्ध श्रावक शब्द भी व्यवहृत हुआ है। (निशीथ सभाष्यचूर्णि, भाग २, पृ. ११८; ज्ञाताधर्मकथा एवं अंगुत्तरनिकाय, भाग २, पृ. ४५२) में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। अनुयोगद्वारसूत्र २० की टीका में भी वृद्ध का अर्थ तापस किया है।

(८) **श्रावक**–धर्मशास्त्रों का श्रवण करने वाला ब्राह्मण।

ये आठों प्रकार के साधु दूध, दही, मक्खन, घृत, तेल, गुड़, मधु, मद्य और माँस का भक्षण नहीं करते थे। केवल सरसों का तेल उपयोग में लेते थे।

Elaboration—This aphorism discusses people who, although not righteous, observe rigorous vows according to their traditional beliefs. Following their established traditions they indulge in some special practices accepting minimum comforts and facilities. They endure pain and mortify their bodies avoiding cruel reactions and thoughts. Completing their life-spans they reincarnate as interstitial gods. For such householder aspirants or *parivrajaks* eight adjectives have been used in this aphorism. They are explained as follows—

(1) **Gautam**—They have with them a small ox decorated with garlands and other ornaments made of shells (*kaudi*). It is trained to touch feet of people at the owners command. These mendicants carried this ox along when they went to beg alms.

(2) **Govratik**—These mendicants took a vow of serving cows. They would always move with the cow. When the cow went out of the village they would also go along. When cow grazed or drank water they would also graze and drink water. They would sleep when the cow slept. Like a cow they also ate grass and leaves. Abhayadev Suri, the commentator (*Tika*), has mentioned about *Govratiks*. There is a mention of *Govratik* mendicants in the Buddhist *Majjhim Nikaya* as well—"When the cow went out of the village they would also go along. When it grazed they ate food. When it drank water they too drank water. When it returned, they returned. They slept when the cow slept." In the Vedic tradition special importance is given to the worship of cow.

(3) **Grihadharmi**—They were very happy giving gifts and alms to guests and deities and considered themselves to be the true followers of the householder's code or religion.

(4) **Dharmachintak**—They spent all their time in reading and reciting religious scriptures. According to *Anuyog-dvar Sutra Tika* those who

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

studied the *Dharma Samhitas* written by Yajnavalkya and other *Upanishadic* sages were called *Dharmachintak*.

(5) Aviruddha—They worshipped deities, king, parents and even animals and birds with the same devotion. As they paid homage and bowed to everyone they were also called *Vinayavadi* (who took humbleness as religion) or *Bhaktivadi* (who took submissive devotion as religion). They find mention in *Avashyak Niryukti*. According to *Bhagavati Sutra* Mauryaputra Tamli of Tamralipti got initiated into this *Pranama* sect. *Aviruddhaks* also find mention in the Buddhist scripture *Anguttar Nikaya*.

(6) Viruddha—They refute *punya-paap* (merit-demerit) and heaven-hell and other spiritual things. As they are also against all spiritual practices both physical and mental they are also called *Akriyavadi* (non-doers).

(7) Vriddha—People generally retired in old age to become hermits. That is why they were called *Vriddha* (aged)-*tapas* (hermits). According to the commentary (*Tika*) by Abhayadev Suri, *Vriddha* means *Tapas* and *shravak* means Brahmin. Another interpretation is that *Tapas* are called *Vriddha* (old or ancient) because all sects came into being only after initiation of Bhagavan Rishabh Dev and the first among these was *Samkhya* or *Tapas* sect. At the time of Shraman Bhagavan Mahavir three hundred sixty three heretic sects were in existence. The list of these other sects includes *Vriddha Shravak* also. This term also finds mention in *Nishith Sabhashya Churni*, Part 2, p. 118; *Jnata Dharma Katha* and *Anguttar Nikaya*, Part 2, p. 452. In the commentary (*Tika*) of *Anuyogdvar Sutra* also *Vriddha* has been translated as *Tapas*.

(8) Shravak—Brahmins who listen to recital of religious scriptures.

All these eight types of mendicants considered milk, curd, butter, butter-oil, oil, jaggery, salt, honey, wine and meat to be prohibited and avoiding all these, used only sesame seed oil.

वानप्रस्थों का उपपात

७४. से जे इमे गंगाकूलगा वाणपत्था तावसा भवंति, तं जहा—१. होत्तिया, २. पोत्तिया, ३. कोत्तिया, ४. जण्णई, ५. सड्ढई, ६. थालई, ७. हुंबउट्ठा, ८. दंतुक्खलिया, ९. उम्मज्जगा, १०. सम्मज्जगा, ११. निमज्जगा, १२. संपक्खाला, १३. दक्खिणकूलगा, १४. उत्तरकूलगा, १५. संखधमगा, १६. कूलधमगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. मिगलुद्धगा, १८. हत्थितावसा, १९. उद्दंडगा, २०. दिसापोक्खिणो, २१. वाकवासिणो, २२. बिलवासिणो, २३. वेलंवासिणो, २४. जलवासिणो, २५. रुक्खमूलिया, २६. अंबुभक्खिणो, २७. वाउभक्खिणो, २८. सेवालभक्खिणो, २९. मूलाहारा, ३०. कंदाहारा, ३१. तयाहारा, ३२. पत्ताहारा, ३३. पुप्फाहारा, ३४. बीयाहारा, ३५. परिसडियकंदमूलतयपत्तपुप्फफलाहारा, ३६. जलाभिसेयकढिणगायभूया, ३७. आयावणाहिं, पंचग्गितावेहिं, इंगालसोल्लियं, कण्डुसोल्लियं, कट्टसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा बहूइं वासाइं परियागं पाउणंति, बहूइं वासाइं परियागं पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं जोइसिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। पलिओवमं वाससयसस्समब्भहियं ठिई।

आराहगा ?

णो इणट्ठे समट्ठे। सेसं तं चेव।

७४. गंगा के किनारे रहने वाले ये वानप्रस्थ तापस भी अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे– (१) **होतृक**–अग्निहोत्र करने वाले, (२) **पोतृक**–वस्त्रधारी, (३) **कौतृक**–भूमि पर सोने वाले, (४) यज्ञ करने वाले, (५) श्राद्ध करने वाले, (६) थाली आदि पात्र धारण करने वाले, (७) **हुंबउट्ट**–कुण्डी धारण करने वाले, (८) **दंतोलूखलिक**–फलाहारी, (९) **उन्मज्जक**–पानी में एक बार डुबकी लगाकर नहाने वाले, कानों तक जल-स्नान करने वाले, (१०) **सम्मज्जक**–बार-बार डुबकी लगाकर नहाने वाले, (११) **निमज्जक**–पानी में कुछ देर तक डूबे रहकर स्नान करने वाले, (१२) **संप्रक्षालक**–शरीर पर मिट्टी आदि रगड़कर स्नान करने वाले, (१३) **दक्षिणकूलक**–गंगा के दक्षिणी तट पर रहने वाले, (१४) **उत्तरकूलक**–गंगा के उत्तरी तट पर निवास करने वाले, (१५) **शंखध्मायक**–शंख बजाकर भोजन करने वाले (शंख इसलिए बजाते थे कि अन्य व्यक्ति भोजन करते समय न आये), (१६) **कूलध्मायक**–किनारे पर खड़े होकर उच्च स्वर कर भोजन करने वाले, (१७) **मृगलुब्धक**–व्याधों की तरह हिरणों का माँस खाकर जीवन चलाने वाले, (१८) **हस्तितापस**–हाथी का वध कर उसका माँस खाकर बहुत काल व्यतीत करने वाले, (१९) **उद्दण्डक**–दण्ड को ऊँचा किये घूमने वाले, (२०) **दिशाप्रोक्षी**–दिशाओं में जल छिड़ककर फल-फूल इकट्ठे करने वाले, (२१) **वल्कवासी**–वृक्ष की छाल को वस्त्र की तरह धारण करने वाले, (२२) **बिलवासी**–बिलों में (गुफाओं में) निवास करने वाले, (२३) **वेलवासी**–समुद्र तट के समीप निवास करने वाले, (२४) **जलवासी**–पानी, नदी आदि में निवास करने वाले, (२५) **वृक्षमूलक**–वृक्षों के नीचे निवास करने वाले, (२६) **अम्बुभक्षी**–जल

का आहार करने वाले, (२७) **वायुभक्षी**–केवल वायु का ही आहार करने वाले, (२८) **शैवालभक्षी**–काई का आहार करने वाले, (२९) **मूलाहारी**–मूल का आहार करने वाले, (३०) **कन्दाहारी**–कन्द का आहार करने वाले, (३१) **त्वचाहारी**–वृक्ष की छाल का आहार करने वाले, (३२) **पत्राहारी**–वृक्ष के पत्तों का आहार करने वाले, (३३) **पुष्पाहारी**–फूलों का आहार करने वाले, (३४) **बीजाहारी**–बीजों का आहार करने वाले, (३५) अपने आप गिरे हुए, पृथक् हुए कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प तथा फल का आहार करने वाले, (३६) सतत जलाभिषेक करने से जिनका शरीर कठिन हो गया है ऐसे, तथा (३७) जो पंचाग्नि की आतापना से अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पाँचवीं सूर्य को मानकर आतापना से अपनी देह को अंगारों में पकी हुई–सी, भाड़ में भुनी हुई–सी बनाते हुए बहुत वर्षों तक वानप्रस्थ–पर्याय का पालन करते हैं। बहुत वर्षों तक वानप्रस्थ–पर्याय का पालन कर मृत्यु का समय आने पर देह त्यागकर वे उत्कृष्ट ज्योतिष्क देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनकी स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम–प्रमाण होती है।

क्या वे परलोक में आराधक होते हैं ?

नहीं, ऐसा नहीं होता। (शेष वर्णन पूर्व की तरह जानना चाहिए।)

UPAPAT OF FOREST DWELLING HERMITS

74. The forest dwelling hermits (*Tapas*) living on the banks of the Ganges are also of many kinds—**(1) Hotrak**—those who do offerings at fire sacrifice. **(2) Potrak**—the clad ones. **(3) Kautrak**—those who sleep on the ground. **(4) Yajin**—those who perform *yajna* (ritual sacrifice). **(5) Shraddhakin**—those who perform rituals for the benefit of deceased relatives. **(6) Sthalakin**—those who carry plate (*thali*) and other pots. **(7) Humbauttha**—those who carry bowls. **(8) Dantolu- khalik**—those who eat fruits only. **(9) Unmajjak**—those who bath by taking just one dip in water; also those who bath by pouring water only on the body up to ears. **(10) Sammajjak**—those who bath by repeating dips. **(11) Nimajjak**—those who remain under water for some time. **(12) Samprakshalak**—those who cleanse their body by rubbing sand or clay. **(13) Dakshin-koolak**—those who lived on the southern bank of the Ganges. **(14) Uttar-koolak**—those who lived on the northern bank of the Ganges. **(15) Shankhadhmayak**—those who took their meals after blowing conch-shell (they did this to announce that they should not be

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

disturbed). **(16) Kooladhmayak**—those who took their meals on the bank after shouting loudly. **(17) Mrigalubdhak**—those who trapped deer and subsisted on its meat. **(18) Hastitapas**—those who killed an elephant and subsisted long on its meat. **(19) Uddandak**—those who moved about raising their staff. **(20) Dishaprokshi**—those who sprinkled water in all directions before collecting fruits and flowers. **(21) Valkavasi**—the bark-clad. **(22) Bil-vasi**—those who lived in caves and holes. **(23) Vel-vasi**—those who lived near seashore. **(24) Jal-vasi**—those who lived in water, like in a river. **(25) Vrikshamoolak**—those who lived under trees. **(26) Ambubhakshi**—those who subsisted only on water. **(27) Vayubhakshi**—those who subsisted only on air. **(28) Shaivalabhakshi**—those who subsisted on moss only. **(29) Moolahari**—those who subsisted on roots only. **(30) Kandahari**—those who subsisted on bulbous roots. **(31) Tvachahari**—those who subsisted on bark of a plant. **(32) Patrahari**—those who subsisted on leaves. **(33) Pushpahari**—those who subsisted on flowers. **(34) Bijahari**—those who subsisted on seeds. **(35)** Those who subsisted on naturally fallen or detached bulbous roots, roots, bark, leaves, flowers and fruits. **(36)** Those who developed endurance for water by regularly pouring water on their bodies. **(37)** Those who mortified their bodies by five fires (burning four pyres it on four sides and considering sun to be the fifth) as if cooking on burning coal or roasting it in hot sand. Thus they spend years as forest dwellers and at the end of their life-span they abandon their earthly bodies and are born as stellar gods in the lofty stellar realms or *jyotishk dev-loks*. Their life-span there is one hundred thousand years more than one *palyopam* (a metaphoric unit of time).

Bhante ! Are these gods spiritual aspirant for next birth ?

No, Gautam ! It is not so. (other details same as already mentioned.)

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में लगभग ३७ प्रकार के तापसों द्वारा विविध प्रकार के तपःकर्म का उल्लेख है। अन्य भी अनेक भेद होंगे, इनमें से कुछ तापसों का वर्णन तो अन्य आगमों तथा बौद्ध व वैदिक ग्रन्थों में भी आता है। जैसे–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हत्थीतावस–जो हाथी मारकर बहुत समय तक उसका भक्षण करते थे। इन तपस्वियों का यह अभिमत था कि एक हाथी को एक वर्ष या छह महीने में मारकर हम केवल एक ही जीव का वध करते हैं, अन्य जीवों को मारने के पाप से बच जाते हैं। सूत्रकृतांग टीकाकार के अभिमतानुसार हस्तीतापस बौद्ध भिक्षु थे। आर्द्रककुमार का हस्तितापसों के साथ बहुत लम्बा संवाद सूत्रकृतांग में है। ललितविस्तर में हस्तीव्रत तापसों का उल्लेख है। महावग्ग में भी दुर्भिक्ष के समय हाथी आदि के माँस खाने का उल्लेख मिलता है।

दिसापोक्खी–जल से दिशाओं का सिंचन कर पुष्प, फल आदि बटोरने वाले। भगवतीसूत्र में हस्तिनापुर के शिवराजर्षि का उपाख्यान है। उन्होंने दिशा–प्रोक्षक तपस्वियों के निकट दीक्षा ग्रहण की थी। वाराणसी का सोमिल ब्राह्मण तपस्वी भी चार दिशाओं का अर्चक था। आवश्यकचूर्णि के अनुसार राजा प्रसन्नचन्द्र अपनी महारानी के साथ दिशा–प्रोक्षकों के धर्म में दीक्षित हुआ था। वसुदेवहिंडी और दीघनिकाय में भी दिसापोक्खी तापसों का वर्णन मिलता है।

वाउभक्खी–वायु पीकर रहने वाले। रामायण (३–११) में मण्डकरनी नामक तापस का उल्लेख है, जो केवल वायु पर जीवित रहता था। महाभारत (१/९६/४२) में भी वायुभक्षी तापसों के उल्लेख मिलते हैं।

सेवालभक्खी–केवल शैवाल को खाकर जीवन यापन करने वाले। बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तर में भी इस सम्बन्ध में वर्णन मिलता है।

इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के तापस थे, जो मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प और बीज का सेवन करते थे और कितने ही सड़े गले हुए मूल, कन्द, छाल, पत्र आदि द्वारा अपना जीवन यापन करते थे। दीघनिकाय आदि में भी इस प्रकार के वर्णन हैं। इनमें से अनेक तापस पुनः–पुनः स्नान किया करते थे, जिससे इनका शरीर पीला पड़ जाता था। ये गंगा के किनारे रहते थे और वानप्रस्थाश्रम का पालन करते थे। ये तपस्वीगण एकाकी न रहकर समूह के साथ रहते थे। कोडिन्न–दिन्न और सेवालि नाम के कितने ही तापस तो पाँच सौ–पाँच सौ तापसों के साथ रहते थे। ये गले–सड़े हुए कन्द–मूल, पत्र और शैवाल का भक्षण करते थे। उत्तराध्ययन टीका में वर्णन है कि ये तापसगण अष्टापद की यात्रा करने जाते थे। वहाँ गणधर गौतम ने इनको प्रतिबोध दिया।

वनवासी साधु तापस कहलाते थे। ये जंगलों में आश्रम बनाकर रहते थे। यज्ञ–याग करते, पंचाग्नि द्वारा अपने शरीर को कष्ट देते थे। इनका बहुत सारा समय कन्द–मूल और वन के फलों को एकत्रित करने में व्यतीत हो जाता था। व्यवहारभाष्य में यह भी वर्णन है कि ये तापसगण ओखली और खलिहान के सन्निकट पड़े हुए धानों को बीनते और उन्हें स्वयं पकाकर खाते। प्रसिद्ध दार्शनिक कणाद ऋषि खलिहान में पड़े कण बीनकर ही खाते थे। कितनी बार एक चम्मच में आये, उतना ही आहार करते या धान्य–राशि पर वे वस्त्र फेंकते और जो अन्न कण उस वस्त्र पर लग जाते, उतने से वे अपने उदर का पोषण करते थे। तापसों की एक बहुत विस्तृत परम्परा रही है।

पल्योपम का विस्तृत वर्णन सोदाहरण सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र, भाग २ में देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—This aphorism mentions about thirty seven types of hermits and the variety of penances they performed. There must have been many more types. Some of these also find mention in other *Agams* as well as Buddhist and Vedic works. For example—

Hatthitavas—Those who killed an elephant and subsisted long on its meat. These hermits believed that by killing just one elephant and subsisting on its meat for six months or a year, they were killing just one being and avoiding the sin of killing a large number of other beings. In the opinion of the commentator (*Tika*) of *Sutrakritanga Sutra Hastitapas* were among Buddhist *Bhikshus*. In *Sutrakritanga Sutra* there is an extended dialogue of Ardrak Kumar with *Hastitapas* hermits. In *Lalitvistara* there is a mention of *Hastivrata* hermits. References of killing elephant and consuming its meat are also found in *Mahavagga*.

Disapokkhi or Dishaprokshi—Those who sprinkled water in all directions before collecting fruits and flowers. There is a story of Shiva Rajarshi of Hastinapur in *Bhagavati Sutra*. He got initiated with *Dishaprokshak* hermits. Somil Brahmin of Varanasi was also a hermit who sprinkled water in all the four-cardinal directions. According to *Avashyak Churni* king Prasanna Chandra and his queen also got initiated into the sect of *Dishaprokshaks*. Description of these hermits is also found in *Vasudevahindi* and *Digha Nikaya*.

Vaubhakkhi or Vayubhakshi—Those who subsisted only on air. In *Ramayana* (3-11) there is a mention of Mandakarani hermit who subsisted only on air. *Mahabharat* (1/96/42) also describes these *Vayubhakshi* hermits.

Sevalabhakkhi or Shaivalabhakshi—Those who subsisted on moss only. Description about these is also available in the Buddhist scripture *Lalitvistara*.

Besides these there were many other varieties of hermits who subsisted on bulbous roots, roots, bark, leaves, flowers and seeds. There were many who subsisted on putrefied bulbous roots, roots, bark, leaves, flowers and seeds. *Digha Nikaya* also contains such descriptions. Many of these hermits bathed repeatedly and their body turned pale and puffy. They lived on the banks of the Ganges and followed the norms of *Vanaprastha ashram* (according to the Vedic religion the third quarter of life when a person retired and lived as a forest dweller). These hermits lived in groups and not in isolation. Many of these, such as Kodinna, Dinn

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

and Sevali, lived within larger groups of even five hundred hermits. They subsisted on putrefied roots, leaves and moss. *Uttaradhyayan Tika* informs that these hermits used to go for pilgrimage of Ashtapad and a large group of them was enlightened by Ganadhar Gautam.

The forest dwelling mendicants were called *Tapas* (hermit). They lived in forests after building their hermitage. They performed *yajnas* and mortified their bodies by five-fire penance. They spent considerable time in collecting wild roots and fruits. *Vyavahar Bhashya* mentions that these hermits collected grains fallen around barns and grain-grinders and cooked their food themselves. Some times they would eat just a spoon full of food and at others the meagre quantity of food particles that stuck on a piece of cloth thrown on a heap of food. There has been a long and wide spread tradition of hermits in the country.

For more details about *palyopam* and other metaphoric units of time refer to *Illustrated Anuyog-dvar Sutra, Part II.*

प्रव्रजित श्रमणों का उपपात

७५. से जे इमे जाव सन्निवेसेसु पव्वइया समणा भवंति, तं जहा–कंदप्पिया, कुक्कुइया, मोहरिया, गीयरइप्पिया, नच्चणसीला, ते णं एएणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणंति, बहूइं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयअप्पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे कंदप्पिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, सेसं तं चेव णवरं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिई।

७५. ग्राम, सन्निवेश आदि स्थानों में (ये) जो प्रव्रजित श्रमण होते हैं–

जैसे–**कान्दर्पिक**–नानाविध हास–परिहास या हँसी–मजाक करने वाले, **कौकुचिक**–भाँड़ों की तरह भौं, आँख, मुँह, हाथ, पैर आदि से कुत्सित चेष्टाएँ कर दूसरों को हँसाने वाले, असम्बद्ध या ऊटपटांग बोलने वाले, **मौखरिक**–संगीत और क्रीड़ा में विशेष अभिरुचि रखने वाले, **गीतरतिप्रिय**–गीतप्रिय लोगों को चाहने वाले तथा **नर्तनशील**–नाचने की प्रकृति वाले, जो अपनी–अपनी ज़ीवन–शैली के अनुसार आचरण करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण–पर्याय का पालन करते हैं तथा अन्त समय में उक्त पापाचरणों का आलोचन–प्रतिक्रमण नहीं करते, गुरु के समक्ष आलोचना कर दोषों से निवृत्त नहीं होते, वे मृत्यु आने पर देह त्यागकर उत्कृष्ट सौधर्मकल्प नामक प्रथम देवलोक में हास्य–क्रीड़ा–प्रधान देवों में उत्पन्न होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। वहाँ उनकी गति आदि अपने पद के अनुरूप होती है। उनकी आयु-स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

UPAPAT OF INITIATED SHRAMANS

75. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live initiated *Shramans* (classified according to their deeds as follows)—**Kandarpik**—who habitually act like a clown, humorist and jester. **Kaukuchik**—who amuse people with ridiculous and grotesque gestures and behaviour. **Maukharik**—who indulge in incoherent and senseless banter. **Geet-ratipriya**—who have keen interest in music and entertainment and who like the company of song-lovers. **Nartan-sheel**—who love dancing. They spend years following the ascetic code according to their individual life-style and neither repent (doing critical review or *pratikraman*) nor atone before a guru for their sinful deeds. When time of death comes they abandon their earthly bodies and are born as *Kandarpik* (merriment loving) gods in the lofty first heaven (*dev-lok*) called *Saudharm Kalp*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is one hundred thousand years more than one *palyopam* (a metaphoric unit of time).

परिव्राजकों का उपपात

७६. से जे इमे जाव सन्निवेसेसु परिव्वाया भवंति, तं जहा—संखा, जोगी, काविला, भिउव्वा, हंसा, परमहंसा, बहुउदगा, कुलिव्वया, कण्हपरिव्वाया।

तत्थ खलु इमे अट्ठ माहणपरिव्वायगा भवंति। तं जहा—

कण्हे य करकंडे य अंबडे य परासरे।
कण्हे दीवायणे चेव देवगुत्ते य नारए॥

तत्थ खलु इमे अट्ठ खत्तियपरिव्वाया भवंति, तं जहा—

सीलई ससिहारे (य), नग्गई भग्गई ति य।
विदेहे रायाराया, रायारामे बलेति य॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. ग्राम .... सन्निवेश आदि में जो अनेक प्रकार के परिव्राजक होते हैं, जैसे–(१) सांख्य, (२) योगी, (३) कापिल, (४) भार्गव, (५) हंस, (६) परमहंस, (७) बहूदक, तथा (८) कुटीचर (कुटीव्रत) (चार प्रकार के यति) एवं कृष्ण परिव्राजक आदि।

उनमें आठ ब्राह्मण परिव्राजक–ब्राह्मण जाति में दीक्षित परिव्राजक होते हैं, जो इस प्रकार हैं–(१) कर्ण, (२) करकण्ट, (३) अम्बड, (४) पाराशर, (५) कृष्ण, (६) द्वैपायन, (७) देवगुप्त, तथा (८) नारद।

उनमें आठ क्षत्रिय परिव्राजक–क्षत्रिय जाति में से दीक्षित परिव्राजक होते हैं, जैसे–(१) शीलधी, (२) शशिधर (शशिधारक), (३) नग्नक, (४) भग्नक, (५) विदेह, (६) राजराज, (७) राजराम, तथा (८) बल।

UPAPAT OF PARIVRAJAKS

76. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live a variety of *Parivrajaks*—(1) *Samkhya*, (2) *Yogi*, (3) *Kapil*, (4) *Bhargava*, (5) *Hamsa*, (6) *Param-hamsa*, (7) *Bahudak*, and (8) *Kutichar*.

Among these their are eight Brahmin *Parivrajaks* or the initiates from the Brahmin clans—(1) *Karn*, (2) *Karkant*, (3) *Ambad*, (4) *Parashar*, (5) *Krishna*, (6) *Dvaipayan*, (7) *Devagupt*, and (8) *Narad*.

Among these are also eight *Kshatriya Parivrajaks* or the initiates from the *Kshatriya* clans—(1) *Shiladhi*, (2) *Shashidhar* (*Shashidharak*), (3) *Nagnak*, (4) *Bhagnak*, (5) *Videha*, (6) *Rajaraj*, (7) *Rajarama*, and (8) *Bal*.

विवेचन–सूत्र ७५ में ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमणों का वर्णन है, जो प्रव्रजित होकर भी संयम की शुद्ध निर्दोष आराधना नहीं कर पाते थे। अब इस सूत्र में परिव्राजकों (ब्राह्मण परम्परा में दीक्षित श्रमणों) का कथन है।

परिव्राजक श्रमण, ब्राह्मण–धर्म के लब्ध–प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार वे सिर मुण्डन कराते थे। एक वस्त्र या चर्मखण्ड धारण करते थे। गायों द्वारा उखाड़ी हुई घास से अपने शरीर को ढँकते थे और जमीन पर सोते थे। वे आचारशास्त्र और दर्शनशास्त्र पर विचार–चर्चा करने के लिए भारत के विविध अंचलों में परिभ्रमण करते थे। वे षडंगों के ज्ञाता होते थे।

परिव्राजक का शाब्दिक अर्थ है–सब कुछ त्यागकर भ्रमण करने वाला। परिव्राजक चारों ओर भ्रमण करने वाले संन्यासियों को कहते हैं। ये अपना समय ध्यानशास्त्र, चिन्तन और शिक्षण आदि में व्यतीत करते थे। वानप्रस्थ आश्रम के बाद परिव्राजक होने का विधान है। उन परिव्राजकों में कितने ही परिव्राजकों का परिचय इस प्रकार है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांख्य–सांख्यमतानुयायी, ये पुरुष प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, पंच महाभूत आदि पच्चीस तत्त्व मानते थे। इनमें कुछ ईश्वर को मानते थे। जो सेश्वर सांख्य कहलाते थे, दूसरे निरीश्वर सांख्य–जो ईश्वर को नहीं मानते थे। इनके आद्य प्रवर्त्तक कपिल ऋषि थे। अतः ये **'कपिल'** भी कहलाते थे। **योगी**–जो अनेक प्रकार की हठयोग की साधना करते थे। **भार्गव**–भृगु ऋषि की परम्परा के अनुयायी।

वैदिक ग्रन्थों के अनुसार संन्यासियों की चार श्रेणियाँ होती हैं–कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस (प्राचीन भारतीय संस्कृति कोष, पृ. २१६ तथा अभयदेव वृत्ति)।

वृत्तिकार आचार्य अभयदेवसूरि ने चार यति परिव्राजकों का जो परिचय दिया है, उसके अनुसार **हंस** परिव्राजक उन्हें कहा जाता था, जो पर्वतों की कन्दराओं में, पर्वतीय मार्गों पर, आश्रमों में, देवकुलों–देवस्थानों में या उद्यानों में वास करते थे, केवल भिक्षा हेतु गाँव में आते थे। **परमहंस** उन्हें कहा जाता था, जो नदियों के तटों पर, नदियों के संगम–स्थानों पर निवास करते थे। जो देह–त्याग के समय परिधेय वस्त्र, कौपीन (लंगोट) तथा कुश–डाभ के बिछौने का परित्याग कर देते थे, वैसा कर प्राण त्यागते थे। **बहूदक** उन्हें कहा जाता था जो गाँव में एक रात तथा नगर में पाँच रात प्रवास करते थे। जो गृह में वास करते हुए क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का त्याग किये रहते थे, वे कुटीव्रत या **कुटीचर** कहे जाते थे। (औपपातिक वृत्ति, पत्र ९२)

इस सूत्र में आठ प्रकार के ब्राह्मण–परिव्राजक तथा आठ प्रकार के क्षत्रिय–परिव्राजकों की दो गाथाओं में चर्चा की गई है। अम्बड, पाराशर, द्वैपायन आदि ब्राह्मण परिव्राजकों का उल्लेख आगमों में अनेक स्थानों पर प्राप्त है। वृत्तिकार ने उनके सम्बन्ध में केवल इतना–सा संकेत किया–"**कण्डूवादयः षोडश परिव्राजका लोकतोऽवसेयाः।**" अर्थात् इन सोलह परिव्राजकों के सम्बन्ध में लोक–जनश्रुति से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है, वृत्तिकार के समय तक ये परम्पराएँ लगभग लुप्त हो गई थीं।

Elaboration—Aphorism 75 describes those *Nirgranth Shramans* who, after initiation, could not strictly observe faultless ascetic-discipline. This aphorism describes another class of homeless mendicants, the *Parivrajaks* (those who got initiated in the Brahminical tradition).

The *Parivrajak Shramans* were established scholars of Brahminical religion. According to *Vashisht Dharma Sutra* they shaved their heads and wore just one piece of cloth or skin. They slept on the ground and covered their bodies with the grass or hay uprooted by cows. They toured all around India to conduct seminars to exchange views and discuss subjects like religious codes and philosophy. They were scholars of the six differed schools of *Veda* philosophy.

The literal meaning of *Parivrajak* is—one who renounces everything and takes to peripatetic life. The *sanyasins* who travel all around are called *Parivrajaks*. They used to spend all their time in meditation, study

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of scriptures and imparting education. Traditionally the rule is to become *Parivrajak* after the *Vanaprasth Ashram* (the third quarter of life). Some well known sects among *Parivrajaks* are—

Samkhya—the followers of the *Samkhya* school of philosophy. They believed in twenty five fundamentals including man, nature, intellect, ego and five elements. Some of them believed in god and were called *Seshvar Samkhya*; others who did not believe in god were called *Nirishvar Samkhya*. As the founder of this school was sage **Kapil**, they were also called *Kapil*. **Yogi**—those who practiced *Hath-yoga*. **Bhargava**—the followers of the tradition founded by sage Bhrigu.

According to Vedic scriptures there were four categories of *sanyasins—Kutichar, Bahudak, Hamsa* and *Param-hamsa*. (*Prachin Bharatiya Samskriti Kosh*, p. 216 and Abhayadev *Vritti*)

According to the description of *Yati Parivrajaks* given by Acharya Abhayadev Suri, the commentator (*Vritti*), *Hamsa Parivrajaks* were those who lived in mountain-caves, mountain trails, hermitages, temples or gardens. They came to human settlements only to seek alms. *Paramahamsa* were those who lived on river banks or where two rivers met. At the time of death they abandoned their only belongings—dress, *langot* (loin-cloth) and the bed of hay or coir. *Bahudak* were those who, as a rule, spent only one night in a village and five nights in a city. Those who disciplined their passions—anger, greed, attachment and conceit—while still living as householders were called *Kutichar*. (*Aupapatik Vritti*, leaf 92)

This aphorism lists eight kinds of Brahmin *Parivrajaks* and eight kinds of *Kshatriya Parivrajaks* in two verses. *Ambad, Parashar, Dvaipayan* and other Brahmin *Parivrajaks* find mention at many places in *Agams*. The commentator (*Vritti*) states very briefly about them—"Information about these sixteen *Parivrajaks* should be gathered from folk lore." It appears that when the *Vritti* was written these traditions had almost become extinct.

परिव्राजकों के धर्मशास्त्र

७७. ते णं परिव्वाया रिउव्वेद–यजुव्वेद–सामवेद–अहव्वणवेद–इतिहासपंचमाणं, निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेदाणं सारगा पारगा धारगा, सडंगवी, सट्ठितंतविसारया, संखाणे, सिक्काकप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अण्णेसु य बहूसु बंभण्णएसु य सत्थेसु परिव्वाएसु य नएसु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. वे परिव्राजक चार वेदों के ऋक्, यजु, साम, अथर्वण--तथा पाँचवें इतिहास, छठे निघण्टु के अध्येता होते हैं। उन्हें वेदों का सांगोपांग परिज्ञान था। वे चारों वेदों के **(सारक)** अध्यापन द्वारा सम्प्रवर्त्तक अथवा स्मारक–औरों को स्मरण कराने वाले, **(पारग)** वेदों के पारगामी, **(धारक)** उन्हें स्मृति में बनाये रखने में सक्षम तथा वेदों के छहों अंगों के ज्ञाता थे। वे षष्टितन्त्र (कपिलशास्त्र) में विशारद या निपुण थे। **(संख्यान)** गणित विद्या, **(शिक्षा)** ध्वनिविज्ञान--वेद मंत्रों के उच्चारण के विशिष्ट विज्ञान, **(कल्प)**–याज्ञिक कर्मकाण्डविधि, **(व्याकरण)** शब्दशास्त्र, **(छन्द)** पिंगलशास्त्र, **(निरुक्त)** वैदिक शब्दों के निर्वचनात्मक या व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या–ग्रन्थ, ज्योतिषशास्त्र तथा अन्य ब्राह्मणों के लिए हितकारी शास्त्र अथवा ब्राह्मण–ग्रन्थों–के प्रमुख विषय में सुपरिपक्व ज्ञानयुक्त होते थे।

THE RELIGIOUS TEXTS OF PARIVRAJAKS

77. The texts these *Parivrajaks* studied included four *Vedas—Rik, Yaju, Sama* and *Atharvan*, fifth one the history and sixth one *Nighantu* (lexicon). They had complete knowledge of the *Vedas* and their auxiliaries. They were propagators of the *Vedas* through teaching (*saraga = sarak*) and inspiring others to memorize (*saraga = smarak*) them. They were profound scholars (*parag*) of the *Vedas* and were capable of retaining them in memory (*dharak*) besides being experts of all their six limbs. They were experts of *Shashtitantra* (the works of Kapil). They had profound knowledge of mathematics (*sankhyan*), phonetics or the special science of pronouncing Vedic mantras (*shiksha*), ritual procedures of performing *Yajnas* (*Kalp*), grammar (*vyakaran*), poetics (*chhand*), etymology or the knowledge of origin and formation of Vedic terms (*Nirukt*), astrology (*jyotish*) and other scriptures useful to Brahmins.

परिव्राजकों का शौच धर्म

७८. ते णं परिव्वाया दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणा, पण्णवेमाणा, परूवेमाणा विहरंति। जं णं अम्हं किं चि असुई भवइ, तं णं उदएण य मट्टियाए य पक्खालियं सुई भवति। एवं खलु अम्हे चोक्खा, चोक्खायारा, सुई, सुइसमायारा भवित्ता अभिसेयजलपूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गमिस्सामो।

७८. वे परिव्राजक दानधर्म, शौचधर्म, दैहिक शुद्धि एवं स्वच्छतामूलक आचार तीर्थाभिषेक–तीर्थस्नान का जनसमुदाय में कथन करते हुए, (प्रज्ञापन) समझाते हुए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(प्ररूपण) युक्तिपूर्वक सिद्ध करते हुए विचरण करते हैं। उनका कथन है, हमारे मतानुसार जो कुछ भी अशुचि–अपवित्र प्रतीत होता है, वह मिट्टी लगाकर जल से धो लेने पर पवित्र हो जाता है। इस प्रकार हम स्वच्छ–निर्मल देह एवं वेषयुक्त तथा स्वच्छाचार–निर्मल आचारयुक्त हैं, शुचि–पवित्र, शुच्याचार–पवित्राचारयुक्त हैं, अभिषेक–स्नान द्वारा जल से अपने आपको पवित्र कर बिना किसी विघ्न के स्वर्ग जायेंगे।

THE PARIVRAJAK RELIGION OF CLEANSING

78. These *Parivrajaks* move around preaching and explaining to the masses, and logically establishing the religion of charity (*daan dharma*), religion of cleansing or conduct based on physical cleanliness (*shauch dharma*), bathing at pilgrimage centers (*tirthabhishek*). They say that according to their belief, whatever appears to be impure becomes pure by applying sand and washing with water. Thus, they claim, their body and dress is clean and pure and so is their conduct. Purifying and cleansing themselves with water by bathing they will reach heaven without any difficulty.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में परिव्राजकों के शौचधर्म के सम्बन्ध में बताया है, यह शौचधर्म अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। ज्ञाताधर्मसूत्र में दो स्थानों पर इस शौचधर्म का उल्लेख आता है। अध्ययन आठ में १९वें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ के समय में चोक्खा परिव्राजिका इसी शुचिमूलकधर्म का उपदेश देती है। जिसके साथ भगवती मल्ली ने तत्त्वचर्चा कर उसे निरुत्तर किया। पंचम अध्ययन में शुक परिव्राजक का वर्णन है, वह भी सौगंधिका निवासी सुदर्शन सेठ को इसी शुचिमूलक धर्म का उपदेश करता है। सुदर्शन सेठ थावच्चा–पुत्र अणगार के साथ इस विषय पर चर्चा करता है तब थावच्चा–पुत्र अणगार उसे शौचधर्म की निस्सारता समझाकर विनयमूलधर्म का उपदेश करते हैं। कुछ समय पश्चात् शुक परिव्राजक भी थावच्चा–पुत्र अणगार के साथ तत्त्वचर्चा करता है और शौचमूलधर्म के स्थान पर विनयमूलक जिनधर्म में दीक्षा ग्रहण करता है। यह प्रसंग २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के युग का है। लगभग वैसा ही वर्णन भगवान महावीर के युग की परिव्राजक परम्परा में मान्य शौचधर्म का है। (विशेष द्रष्टव्य सचित्र ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र, भाग १)

Elaboration—This aphorism describes the *Parivrajak* religion of cleansing. This appears to be a very ancient religion. This religion of cleansing is mentioned at two places in *Jnata Dharma Katha Sutra*. In the eighth chapter Chokkha Parivrajika, during Bhagavan Mallinath's period, preaches this cleansing based religion. Bhagavati Malli silences her in a religious debate. In the fifth chapter there is the story of Shuk Parivrajak who preaches this cleansing based religion to Sudarshan Seth of Saugandhika

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

city. Sudarshan Seth discusses with Thavachchaputra Anagar who explains the futility of this religion and preaches the modesty based religion (Jainism). In due course Shuk Parivrajak also discusses with Thavachchaputra Anagar and gets initiated into the modesty based religion (Jainism). This is an incident of the period of the 22nd *Tirthankar* Bhagavan Arishtanemi. The description here of this *Parivrajak* tradition extant during the period of Bhagavan Mahavir is almost the same. (for more details see *Illustrated Jnata Dharma Katha Sutra, Part I*)

परिव्राजकों का कल्प—आचार

७९. तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ अगडं व तलायं वा नइं वा वाविं वा पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं वा सरं वा सागरं वा ओगाहित्तए, णण्णत्थ अद्धाणगमणेणं।

णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं वा दुरूहित्ता णं गच्छित्तए।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ आसं वा हत्थिं वा उट्टं वा गोणं वा महिसं व खरं वा दुरूहित्ता णं गमित्तए, णण्णत्थ बलाभिओगेणं।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ नडपेच्छा इ वा जाव मागहपेच्छा इ वा पेच्छित्तए।

तेसिं परिव्वायगाणं णो कप्पइ हरियाणं लेसणया वा, घट्टणया वा, थंभणया वा लूसणया वा, उप्पाडणया वा करित्तए।

तेसिं परिव्वायगाणं णो कप्पइ इत्थिकहा इ वा, भत्तकहा इ वा, देसकहा इ वा, रायकहा इ वा, चोरकहा इ वा, जणवयकहा इ वा, अणत्थदंडे करित्तए।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ अयपायाणि वा, तउअपायाणि वा, तंबपायाणि वा, जसदपायाणि वा, सीसगपायाणि वा, रुप्पपायाणि वा, सुवण्णपायाणि वा, अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि धरित्तए।

णण्णत्थ अलाउपाएण वा दारुपाएण वा मट्टियापाएण वा।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ अयबंधणाणि वा जाव बहुमुल्लाणि धारित्तए।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ हारं वा, अद्धहारं वा, एगावलिं वा, मुत्तावलिं वा, कणगावलिं वा, रयणावलिं वा, मुरविं वा, कंठमुरविं वा, पालंबं वा, तिसरयं वा, कडिसुत्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा, दसमुद्दिआणंतगं वा, कडयाणि वा, तुडियाणि वा, अंगयाणि वा, केऊराणि वा, कुंडलाणि वा, मउडं वा, चूलामणिं वा पिणद्धित्तिए, णण्णत्थ एगेणं तंबिएणं पवित्तएणं।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ गंथिम–वेढिम–पूरिम–संघाइमे चउव्विहे मल्ले धारित्तए, णण्णत्थ एगेणं कण्णपूरेणं।

तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ अगरूएण वा, चंदणेण वा, कुंकुमेण वा गायं अणुलिंपित्तए, णणत्थ एक्काए गंगामट्टियाए।

७९. उन परिव्राजकों को **अवट**–कुएँ, तालाब, नदी, बावड़ी, **पुष्करिणी**–गोलाकार या कमलयुक्त बावड़ी, **दीर्घिका**–सारणी क्यारी, विशाल सरोवर, **गुंजालिका**–वक्राकार बना तालाब तथा जलाशय में एवं समुद्र में प्रवेश करना कल्पनीय नहीं है, किन्तु मार्ग में गमन करते समय यदि तालाब, नदी आदि बीच में आ जाते हैं, तो उसमें होकर रास्ता पार करना निषिद्ध नहीं है।

इसी प्रकार **शकट**–गाड़ी या (रथ), **थिल्लि**–दो घोड़ों की बग्घी या दो खच्चरों से खींचा जाता यान, **शिविका**–पर्दे लगी पालखी तथा **स्यन्दमानिका**–पुरुष–प्रमाण पालखी (ताम–जाम) पर चढ़कर जाना भी उनके लिए वर्जित है।

उन परिव्राजकों को घोड़ा, हाथी, ऊँट, बैल, भैंसे तथा गधे पर सवार होकर जाना या चलना नहीं कल्पता, इसमें बलाभियोग का अपवाद है अर्थात् जबर्दस्ती कोई बैठा दे तो उनका व्रत भंग नहीं होता।

उन परिव्राजकों के आचार अनुसार यह भी वर्जित है कि नटों के नाटक (नाचने वालों के नाच, खेल, पहलवानों की कुश्तियाँ, मुक्केबाजों के प्रदर्शन, चित्रपट दिखाकर आजीविका चलाने वालों की करतूतें, पूंगी बजाने वालों के गीत, ताली बजाकर मनोविनोद करने वालों के विनोदपूर्ण उपक्रम आदि) तथा मागधा–स्तुति गायकों के प्रशस्ति–प्रधान कार्यकलाप आदि देखना–सुनना नहीं कल्पता।

उन परिव्राजकों के लिए हरी वनस्पति का स्पर्श करना, उन्हें परस्पर घिसना, हाथ आदि द्वारा शाखाओं, पत्तों आदि को ऊँचा करना या उन्हें मोड़ना, उखाड़ना भी वर्जनीय है।

उन परिव्राजकों के लिए किसी स्त्री–कथा, भोजन–कथा, देश–कथा, राज–कथा, चोर–कथा, जनपद–कथा जो अपने लिए एवं दूसरों के लिए हानिप्रद तथा निरर्थक है, ऐसी करना कल्पनीय नहीं है।

उन परिव्राजकों के लिए तूंबे, काठ का कमण्डलु तथा मिट्टी के पात्र के सिवाय लोहे, राँगे, ताँबे, जसद, शीशे, चाँदी या सोने के पात्र या दूसरे बहुमूल्य धातुओं के पात्र धारण करना वर्जित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन परिव्राजकों को लोहे (राँगे, ताँबे, जसद, शीशे, चाँदी और सोने) के या दूसरे बहुमूल्य बन्ध पात्र बाँधने के सूत्र इनसे बँधे पात्र रखना कल्प्य नहीं है।

उन परिव्राजकों को एक धातु-गेरू से रँगे हुए गेरुए वस्त्रों के सिवाय तरह-तरह के रंगों से रँगे हुए वस्त्र धारण करना नहीं कल्पता।

वे परिव्राजक केवल ताँबे का एक पवित्रक-अंगूठी के अतिरिक्त हार, अर्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, मुखी-हार विशेष, कण्ठमुखी-कण्ठ का आभरण, प्रालम्ब-लम्बी माला, त्रिसरक-तीन लड़ों का हार, कटिसूत्र-करधनी, दशमुद्रिकाएँ, कटक-कड़े, त्रुटित-तोड़े, अंगद, केयूर-बाजूबन्द, कुण्डल-मुकुट तथा चूड़ामणि रत्नों का शिरोभूषण-शीर्षफूल धारण करना नहीं कल्पता।

उन परिव्राजकों को फूलों से बने केवल एक कर्णपूर (कर्णफूल) के सिवाय गूँथकर बनाई गई मालाएँ, लपेटकर बनाई गई मालाएँ, फूलों को परस्पर संयुक्त कर बनाई मालाएँ या जमा कर-परस्पर एक-दूसरे में उलझाकर बनाई गई मालाएँ-ये चार प्रकार की मालाएँ धारण करना नहीं कल्पता।

उन परिव्राजकों को केवल गंगा की मिट्टी के अतिरिक्त अगर, चन्दन या केसर से शरीर को लिप्त करना नहीं कल्पता।

THE CONDUCT OF PARIVRAJAKS

79. It is forbidden for these *Parivrajaks* to enter a well, pond, river, *bavadi* (a masonry tank with steps), *pushkarini* (a round masonry tank with steps or a masonry tank with lotuses), *dirghika* (large pond), *gunjalika* (oblong tank), lake and sea. However, it is not forbidden to enter and cross if such water bodies lie on their path.

It is also forbidden for them to ride a cart or chariot (*shakat*), coach driven by two horses or ponies (*thilli*), palanquin with curtains (*shivika*), or a large palanquin (*syandamanika*).

These *Parivrajaks* are forbidden to ride a horse, elephant, camel, ox, buffalo or donkey, the only departure being when they have to do so out of compulsion.

According to the *Parivrajak* code they are also not allowed to attend or witness programmes meant for recreation or felicitation including performances of *Nat* (actors; also acrobats),... and so on up to... *Magadh* (bards) etc.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

These *Parivrajaks* are forbidden to touch or rub together green vegetables or plants, raise or bend branches, leaves or other parts thereof with their hands or uproot them.

These *Parivrajaks* are not allowed to indulge in unnecessary or offending gossips about women, food, country, king, thief or settlements.

Other than gourd and wooden or earthen pots, they are proscribed to carry pots made of iron, tin, copper, zinc, lead, silver, gold or any other costly metal.

They are also not allowed to keep chains or strings made of iron (tin, copper, zinc, lead, silver, gold) or any other costly metal meant for tying or already tied to pots.

These *Parivrajaks* are forbidden the use of garb of any colour other than metallic saffron colour.

Besides a copper ring, these *Parivrajaks* are not allowed to wear any ornament such as necklaces of different type including *haar* (common necklace), *ardh-haar* (half necklace), *ekavali* (single line bead-string), *muktavali* (pearl string), *kanakavali* (golden bead-string), *ratnavali* (gem bead-string), *mukhi* (specific design of necklace), *kanth-mukhi* (specific design of necklace), *pralamb* (long necklace) and *trisarak* (three line necklace), *katisutra* (waist band), *dash-mudrikas* (ten rings), *katak* (bangles), *trutit* (a specific design of wristlet), *angad* (bracelet for upper arm), *keyur* (another design of bracelet for upper arm), *kundal* (ear-rings), *mukut* (crown), *chudamani* (a jewel worn in the crest of a diadem).

Besides *karnpurs* (ornament for the ears made of fresh flowers), these *Parivrajaks* are forbidden to wear any garlands including those made by stringing knots (*granthim*), wrapping (*veshtim*), braiding or filling (*purim*) and interweaving or entwining (*sanghatim*).

Except for the sand of river Ganges these *Parivrajaks* are not allowed to apply any paste on their bodies including those made of *Agar* (aquillaria agallocha; a herb used as incense), sandalwood or saffron.

८०. तेसि णं परिव्वायगाणं कप्पइ मागहए पत्थए जलस्स पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणे णो चेव णं अवहमाणे, से वि य थिमिओदए, णो चेव णं कद्दमोदए, से वि य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुप्पसण्णे, णो चेव णं अबहुप्पसण्णे, से वि य परिपूए, णो चेव अपरिपूए, से वि य णं दिण्णे, णो चेव णं अदिण्णे, से वि य पिवित्तए, णो चेव णं हत्थ–पाय–चरु–चमस–पक्खालणट्ठाए सिणाइत्तए वा।

तेसि णं परिव्वायगाणं कप्पइ मागहए आढए जलस्स परिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणे, णो चेव णं अवहमाणे, णं अदिण्णे, से वि य हत्थ–पाय–चरु–चमस–पक्खालणट्ठयाए, णो चेव णं पिवित्तए सिणाइत्तए वा।

८०. उन परिव्राजकों को मगध देश के तोल के अनुसार एकप्रस्थ जल लेना कल्पता है। वह भी बहता हुआ हो, एक स्थान पर रुका हुआ नहीं, अर्थात् तालाब आदि का बँधा हुआ जल नहीं। वह भी यदि स्वच्छ हो तभी, कीचड़युक्त हो तो ग्राह्य नहीं है। स्वच्छ होने के साथ-साथ वह बहुत साफ और निर्मल हो, तभी ग्राह्य है अन्यथा नहीं। वह भी वस्त्र से छाना हुआ हो, अनछना नहीं। वह भी किसी दाता द्वारा दिया गया हो तभी ग्राह्य है, बिना दिया हुआ नहीं। वह भी केवल पीने के लिए ग्राह्य है, हाथ, पैर, चरू–भोजन का पात्र, चमस–काठ की कुड़छी या चम्मच धोने के लिए या स्नान करने के लिए नहीं।

उन परिव्राजकों के लिए मागध तोल के अनुसार एक आढक प्रमाण जल लेना कल्पता है, वह भी बहता हुआ हो, एक जगह बँधा हुआ नहीं अर्थात् बहती हुई नदी का एक आढक–परिमाण जल उनके लिए ग्रहणीय है। (वह भी यदि स्वच्छ हो, वस्त्र से छाना हुआ हो, दिया गया हो–तभी ग्राह्य है।) वह भी केवल हाथ, पैर, चरू, चमस या चम्मच धोने के लिए ग्राह्य है, पीने के लिए या स्नान करने के लिए नहीं।

80. These *Parivrajaks* are allowed to take one Magadh *Prasth* (a measure popular in Magadh during that period) water. That too should be from a flowing source like a river and not from a collected source like a pond. That too only if it is clear and not muddled. Besides being clear it should be clean and pure; only then it is acceptable otherwise not. That too should be filtered with a cloth and not unfiltered. That too is acceptable if it is offered by a donor otherwise not. That too is acceptable only for drinking and not for bathing or washing hands, feet, bowl or spoon.

These *Parivrajaks* are allowed to take one Magadh *Adhak* (a measure popular in Magadh during that period) water. That too should be from a flowing source like a river and not from a collected source like a pond. That too is acceptable if it is offered by a donor.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

That too is acceptable only for washing hands, feet, bowl or spoon and not for drinking or bathing.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में प्रस्थ व आढक प्रमाण का उल्लेख है। अनुयोगद्वारसूत्र, सूत्र ३२१, पृ. ६० के अनुसार एक प्रस्थ (पत्थ) लगभग ६४ पल = २५६ तोला = २.९८५ कि. ग्रा.। ४ प्रस्थ = एक आढक अर्थात् ११.९४ कि. ग्रा. का होता है। चरक कृत भाव प्रकाश मान परिभाषा प्रकरण के अनुसार एक प्रस्थ लगभग ६४ तोला होता है। पुराने नाम के अनुसार ६४ तोला = एक सेर होता था। तथा चार प्रस्थ ४ सेर एक आढक माना गया है। (देखें औपपातिकसूत्र, पृष्ठ १३१, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)

Elaboration—This aphorism mentions about the weight measures *Adhak* and *Prasth*. According to *Anuyog-dvar Sutra* (A. 321, p. 60) one *Prasth* is about 64 *pal* or 256 *Tolas* or 2.985 kgs. One *Adhak* is equal to 4 *Prasth* or 11.94 kgs. However, according to *Maan Paribhasha Prakaran* chapter of *Bhava Prakash* by Charak one *Prasth* is approximately 64 *Tolas* which was one *Seer* of old Indian measure (0.74 kgs.). By this measure one *Adhak* is four *Prasth* (2.98 kgs.). (see *Aupapatik Sutra*, Agam Prakashan Samiti, Beawar, p. 131)

८१. ते णं परिव्वायगा एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं परियायं पाउणंति, बहूइं वासाइं परियायं पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई। दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, सेसं तं चेव।

● उपपातं वर्णनं समत्तं ●

८१. वे परिव्राजक इस प्रकार के आचार का पालन करते हुए बहुत वर्षों तक परिव्राजक–पर्याय में विचरते हैं। बहुत वर्षों तक वैसा आचार पालते हुए मृत्यु समय आने पर देह त्यागकर उत्कृष्ट ब्रह्मलोक कल्प तक में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनकी तदनुरूप गति और स्थिति होती है। उनकी स्थिति या आयुष्य दस सागरोपम कहा गया है। शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

● उपपात वर्णन समाप्त ●

81. They spend years as *Parivrajaks* following the *Parivrajak* code. When time comes they abandon their earthly bodies and are born as gods in the lofty *Brahmalok Kalp*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is ten *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). Other details are same as already mentioned.

● END OF UPAPAT CHAPTER ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अम्बड़ परिव्राजक प्रकरण
STORY OF AMBAD PARIVRAJAK

अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी

८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसयाइं गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासंमि गंगाए महानईए उभओकूलेणं कंपिल्लपुराओ णयराओ पुरिमतालं णयरं संपट्ठिया विहाराए।

८२. उस काल उस समय जब भगवान महावीर इस क्षेत्र में विचर रहे थे, तब एक बार जब ग्रीष्म ऋतु का समय था, जेठ का महीना था, अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी शिष्य गंगा महानदी के दो किनारों से काम्पिल्यपुर नामक नगर से पुरिमताल नामक नगर को रवाना हुए।

SEVEN HUNDRED DISCIPLES OF AMBAD PARIVRAJAK

82. During that period of time when Bhagavan Mahavir was wandering in this area, once during the *Jyeshtha* month of the summer season Ambad Parivrajak with his seven hundred disciples left Kampilyapur city on the two banks of the Ganges for Purimtaal city.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में अम्बड़ परिव्राजक का वर्णन है। आगमों में अम्बड़ परिव्राजक नामक व्यक्ति की तीन स्थानों पर चर्चा है। भगवतीसूत्र (शतक १४, उ. ८) में अम्बड़ परिव्राजक के सम्बन्ध में बहुत ही संक्षिप्त उल्लेख है। स्थानांगसूत्र (स्था. ९) अम्बड़ परिव्राजक नामक एक व्यक्ति का वर्णन आता है। वह एक विद्यासिद्ध पुरुष है। उसने चम्पा नगरी में भगवान महावीर का धर्मोपदेश ग्रहण किया। जब चम्पा नगरी से राजगृह की ओर जाने लगा तब भगवान ने कहा–"वहाँ सुलसा नामक श्रमणोपासिका रहती है, उसे कुशल समाचार कहना।" अम्बड़ सोचने लगा–'वह कौन महान् पुण्यशालिनी महिला है, जिसे स्वयं भगवान ने अपना कुशल समाचार कहने को कहा है? उसमें ऐसी क्या विशेषता है?' तब सुलसा के सम्यक्त्व की परीक्षा लेने अम्बड़ सुलसा श्रमणोपासिका के पास पहुँचता है। अपने चमत्कारों व आडम्बरों से जहाँ राजगृह के हजारों लोगों को प्रभावित किया, वहाँ सुलसा को भी व्यामोहित करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु सुलसा उसके आडम्बरों से कतई प्रभावित नहीं हुई। उसकी सम्यक्त्व दृढ़ता देखकर अम्बड़ परिव्राजक स्वयं ही सुलसा के प्रति विनत हो गया और उसकी दृढ़ सम्यक्त्व की प्रशंसा की। उससे प्रतिबोध प्राप्त किया। यह अम्बड़ परिव्राजक आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होगा।

औपपातिकसूत्र में जिस अम्बड़ परिव्राजक का वर्णन है वह स्थानांग के अम्बड़ परिव्राजक से भिन्न व्यक्ति लगता है। यह अम्बड़ परिव्राजक वैदिक एवं निर्ग्रन्थ–दोनों आचार परम्परा का एक मिश्रित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्करण जैसा लगता है। उसके जीवन के कुछ आचार व साधना पद्धति वैदिक परम्परा से प्रभावित है– जैसे शुचिमूलकधर्म, बाह्य शुद्धि के लिए स्नान आदि तथा त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष आदि धारण करना; जबकि अनशनमय घोर तप, अदत्त ग्रहण का त्याग, भिक्षा विधि तथा भगवान महावीर द्वारा कथित श्रमणोपासक धर्म का पालन आदि आचार श्रमण परम्परा के अनुकूल है। लगता है उस समय वैदिक एवं श्रमण परम्परा के बीच समन्वय-प्रधान कड़ी जोड़ने वाली ऐसी साधना पद्धति प्रचलित थी, जो आज लुप्त प्रायः हो चुकी है। प्रस्तुत सूत्र में अम्बड़ परिव्राजक के आचार आदि का विस्तृत वर्णन है।

प्रस्तुत सूत्र में अम्बड़ के काम्पिल्यपुर से पुरिमताल जाने का उल्लेख है। काम्पिल्यपुर उस समय दक्षिण पांचाल प्रदेश का प्रमुख नगर था। द्रुपद राजा की यही राजधानी थी। उपासकदशासूत्र के अनुसार यह एक समृद्ध नगरी थी। कुण्डकौलिक श्रावक यहीं का निवासी था। इस समय यह बदायूँ और फर्रुखाबाद (उ. प्र.) के बीच बूढ़ी गंगा के किनारे काम्पिल नाम के ग्राम के रूप में विद्यमान है।

'पुरिमताल' के सम्बन्ध में इतिहासविज्ञों में मतभेद है। कुछ विद्वान् मानभूमि के 'पुरुलिया' नामक स्थान को ही पुरिमताल बताते हैं तो कुछ प्रयाग का प्राचीन नाम 'पुरिमताल' बताते हैं। भगवान ऋषभदेव को पुरिमताल उद्यान में केवलज्ञान हुआ था। भगवान महावीर भी साधना काल में कई बार पुरिमताल पधारने का उल्लेख है। लगता है अयोध्या के आसपास ही इसकी अवस्थिति रही होगी।

Elaboration—This aphorism contains details about Ambad Parivrajak. In *Agams* a person with this name—Ambad—finds mention at three places. There is a brief mention of Ambad Parivrajak in *Bhagavati Sutra* (14/8). *Sthananga Sutra* (9) gives more details about a person named Ambad Parivrajak who is endowed with some special powers. He attended the discourse of Bhagavan Mahavir in Champa city. When he was about to leave Champa for Rajagriha, *Bhagavan* asked Ambad to convey the news of his well being to a *Shramanopasika* (a devoted Jain woman) named Sulasa living in Rajagriha. Ambad thought—Who is this fortunate women to whom *Bhagavan* wishes to send the message of his well being ? What is so special about her ? Ambad decided to test Sulasa's level of righteousness and went to Rajagriha. He first impressed thousands of citizens of Rajagriha with a display of his miracles and then tried his best to impress Sulasa also. But Sulasa was neither deluded nor impressed by the hallucinations created by him. Ambad Parivrajak was humbled by the strength of Sulasa's righteousness and he showered praise on her for her resolve. He finally got enlightenment and is destined to be a *Tirthankar* in the future time-cycle.

The Ambad Parivrajak described in *Aupapatik Sutra* seems to be a different person than the one mentioned in *Sthananga Sutra*. The Ambad Parivrajak described here appears to be a strange mixture of Vedic and *Nirgranth* traditions. Some of his codes of conduct and spiritual practices

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

have a Vedic influence, such as cleansing based religion, bathing for physical cleansing and carrying trident and *kamandal* (gourd-bowl). The other part of his conduct is based on the *Shramanopasak* religion propagated by Bhagavan Mahavir. This includes fasting based rigorous austerities, not accepting what is not given, code of alms-seeking and following the tenets of Bhagavan Mahavir. This is an evidence of an assimilative spiritual tradition that must have acted as a bridge between the *Shramanic* and Vedic schools and has become extinct now. This aphorism describes in detail Ambad Parivrajak's praxis.

The aphorism mentions of Ambad Parivrajak's journey from Kampilyapur to Purimtal. This Kampilyapur was an important city of southern Panchal area. It was the capital of king Drupad. According to *Upasak Dasha Sutra* it was a prosperous city. Kundakaulik Shravak resided in this very city. At present there is a village named Kampil at this location on the bank of Boodhi Ganga somewhere between Badayun and Farrukhabad in Uttar Pradesh.

Historians have different opinions about Purimtal. Some scholars claim that the area called Purulia in Maanbhumi is ancient Purimtal and others claim that Purimtal is the ancient name of Prayag. Bhagavan Risabhadeva attained *keval-jnana* in Purimtal garden. There are mentions of numerous visits of Bhagavan Mahavir to Purimtal. It appears that this place must have been located somewhere around Ayodhya only.

८३. तए णं तेसिं परिव्वायगाणं तीसे अगामियाए, छिण्णावायाए, दीहमद्धाए, अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से पुव्वगहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुंजमाणे झीणे।

८३. वे परिव्राजक चलते हुए एक ऐसे घोर जंगल में पहुँच गये, जहाँ आसपास कोई गाँव नहीं था, जहाँ न व्यापारियों के समूह व गायों के समूह, उनकी निगरानी करने वाले गोपालक आदि का ही आवागमन था। उसका मार्ग बड़ा दीर्घ–विकट था। वे इस जंगल का कुछ भाग पार कर पाये थे कि चलते समय अपने साथ लिया हुआ पानी पीते–पीते क्रमशः समाप्त हो गया।

83. On their way these *Parivrajaks* arrived in a dense forest. Near that forlorn place there was no village. In that area there was no movement of groups of traders, cows and cowherds. It was in fact a formidable trail. By the time they crossed a small area of the forest they had consumed all the supply of water they had brought along.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. तए णं से परिव्वायगा झीणोदगा समाणा तण्हाए पारब्भमाणा उदगदातारमपस्समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–

८४. इसके बाद वे परिव्राजक, जिनके पास का पानी बिल्कुल ही समाप्त हो चुका था, प्यास से अत्यन्त व्याकुल हो गये। वहाँ कोई पानी देने वाला भी नहीं दिखा। तब वे परस्पर एक-दूसरे को सम्बोधित कर इस प्रकार कहने लगे–

84. They were extremely distressed with the thirst as their supply of water had exhausted. When they found no one around to offer them water they deliberated—

८५. "एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमीसे अगामिआए जाव अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से उदए जाव झीणे। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करित्तए।"

त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेंति, करित्ता उदगदातारमलभमाणा दोच्चंपि अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

८५. "देवानुप्रियो ! हम इस अगम्य जंगल का, जिसमें कोई गाँव नहीं है, न ही लोगों का आवागमन है, अभी तो कुछ ही भाग पार कर पाये हैं कि हमारे पास जो पानी था, वह पीते-पीते समाप्त हो गया। अतः देवानुप्रियो ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है, हम इस ग्रामरहित निर्जन अटवी में सब दिशाओं में चारों ओर किसी जलदाता की मार्गणा-गवेषणा (खोजबीन) करें।"

उन सबने परस्पर ऐसी चर्चा कर यह निश्चय किया। ऐसा निश्चय कर सब दिशाओं में चारों ओर जलदाता की खोज करने लगे। खोज करने पर भी जब कोई जलदाता नहीं मिला तब उन्होंने एक-दूसरे को इस प्रकार कहा–

85. "Beloved of gods ! As of now we have been able to cross only a small part of this tortuous forest where there is neither a village nor any movement of people. We have consumed the supply of water we brought along. Therefore, beloved of gods ! It is advisable for us to explore all around this uninhabited forlorn terrain for someone who can offer us water."

After deliberation they came to a conclusion and accordingly started searching in all directions for some water-donor. In spite of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

all their search, when they failed to find any water-doner they once again deliberated—

संथारा–संलेखना ग्रहण

८६. "इह णं देवाणुप्पिया ! उदगदातारो णत्थि, तं णो खलु कप्पइ अम्हं अदिण्णं गिण्हित्तए, अदिण्णं साइज्जित्तिए, तं मा णं अम्हे इयाणिं आवइकालं पि अदिण्णं गिण्हामो, अदिण्णं साइज्जामो, मा णं अम्हं तवलोवे भविस्सइ। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! तिदंडयं कुंडियाओ य, कंचणियाओ य, करोडियाओ य, भिसियाओ य, छण्णालए य, अंकुसए य, केसरियाओ य, पवित्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए य, वाहणाओ य, पाउणाओ य, धाउरत्ताओ एगंते एडित्ता गंगं महाणइं ओगाहित्ता बालुयासंथारए संथरित्ता संलेहणाझूसियाणं, भत्तपाणपडियाइक्खियाणं, पाओवगयाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए।"

त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणित्ता तिदंडए य जाव एगंते एडेंति, एडित्ता गंगं महाणइं ओगाहेंति, ओगाहित्ता बालुआसंथारए संथरंति, संथरित्ता बालुयासंथारयं दुरूहिंति, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहा संपलियंकनिसण्णा करयल जाव कट्टु एवं वयासी–

८६. "देवानुप्रियो ! यहाँ कोई पानी देने वाला नहीं है। बिना दिया हुआ जल लेना, उसका सेवन करना हमारे लिए कल्पनीय नहीं है। इसलिए हम इस समय आपत्तिकाल में भी अदत्त जल का ग्रहण व सेवन न करें, जिससे हमारे व्रत का भंग न हो। अतः हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि हम त्रिदण्ड (तीन दंडों को एक साथ बाँधकर बनाया गया एक दण्ड), कुण्डिकाएँ–कमंडलु, कांचनिकाएँ–रुद्राक्ष मालाएँ, करोटिकाएँ–मृत्तिका या मिट्टी के पात्र, वृषिकाएँ–बैठने की पटड़ियाँ, तिपाइयाँ, षण्नालिकाएँ–त्रिकाष्ठिकाएँ, अंकुश–देव-पूजा हेतु वृक्षों के पत्ते गिराकर संगृहीत करने के उपयोग में आने वाले अंकुश, केशरिकाएँ–सफाई करने, पोंछने आदि के उपयोग में लेने योग्य वस्त्र खण्ड, पवित्रिकाएँ–ताँबे की अंगूठियाँ, गणेत्रिकाएँ–हाथों में धारण करने की रुद्राक्ष मालाएँ–सुमिरिनियाँ, छत्र–छाते, पैरों में धारण करने की पादुकाएँ, काठ की खड़ाऊ, धातुरक्त–गेरुए रंग की शाटिकाएँ–धोतियाँ इन सबको एकान्त में छोड़कर गंगा महानदी के तट पर बालू का संस्तारक (बिछौना) तैयार कर संलेखनापूर्वक–शरीर एवं कषायों को क्षीण करते हुए आहार–पानी का परित्याग कर, कटे हुए वृक्ष जैसी निश्चेष्टावस्था वाला पादोपगमन स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा न रखते हुए स्थिर हो जायेंष"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन सबने परस्पर एक-दूसरे से ऐसा विचार कर यह निश्चय किया। ऐसा निश्चय कर, त्रिदण्ड आदि अपने उपकरण एकान्त में छोड़ दिये। फिर गंगा में प्रवेश किया। फिर बालू का संथारा बिछाया। संथारा बिछाकर उस पर अवस्थित हुए। पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन में बैठे। दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे-

TAKING THE ULTIMATE VOW

86. "Beloved of gods ! There is no one here to offer us water and we are forbidden to take or consume any water that is not given to us. This implies that in order to avoid transgression of the vow we took, we should not take and consume any water that is not given to us. It is advisable for us, therefore, to abandon all our possessions including the triple staff (*tridand*), water-pot (*kundika*), *Rudraksh* (berries of the tree Elaeocarpus ganitrus) strings (*kanchanika*), earthen pots (*karotika*), wooden planks (*vrishika*), tripods (*shannalika* or *trikashtika*), gardening hook used for cutting leaves from trees (*ankush*), dusters or mops (*kesharika*), copper rings (*pavitrika*), rosaries of *Rudraksh* beads (*ganetrika*), umbrellas (*chhatra*), sandals (*paduka*), wooden sandals (*khadaun*), saffron garb (*dhaturakt*). After abandoning all these at some isolated spot we should prepare a bed with the sand from the banks of the Ganges. After that we should gradually reduce our association with our body and passions (*samlekhana*), give up our food and drink, lie down like a fallen tree (*padopagaman*) and remain absolutely still without the desire for death."

After deliberation they came to a conclusion and abandoned their equipment including triple-staff at an isolated spot. Then they entered the river Ganges and prepared beds with the sand. After this they sat down on these beds in lotus posture facing the east and joining their palms uttered—

८७. 'नमोत्थु णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं।

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स।

नमोत्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अम्हं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स।

पुव्विं णं अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अंतिए थूलगपाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

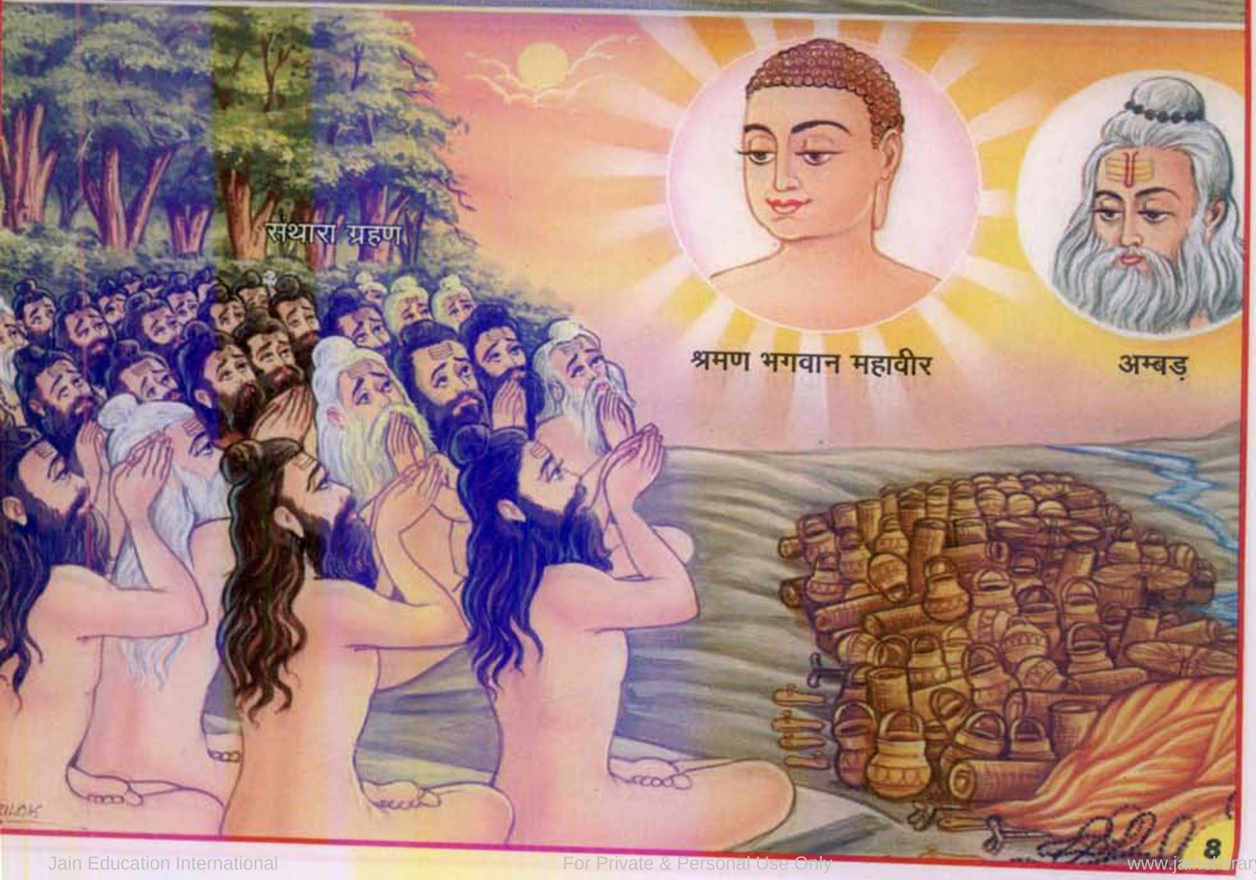

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-८	Illustration No. 8

अम्बड़ के सात सौ शिष्यों का संथारा

अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ शिष्य ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास में गंगा महानदी के किनारे-किनारे चलकर पुरिमतालपुर जा रहे हैं। मार्ग में एक लम्बी अटवी आ गयी। दूर-दूर तक कोई गाँव नहीं था। किसी मनुष्य का मुँह नहीं दीख रहा था। साथ में जो पानी था वह भी समाप्त हो गया। धूप के कारण कण्ठ सूखने लगे, प्यास से व्याकुलता बढ़ी, परन्तु नियम के अनुसार किसी के दिये बिना वे नदी आदि का पानी नहीं ले सकते थे। विषम परिस्थिति देखकर सभी मिलकर विचार करते हैं, अब क्या करें? संन्यासी इधर-उधर दूर तक देखते हैं, परन्तु कोई भी मनुष्य आता-जाता दिखाई नहीं देता।

अन्त में सबने मिलकर निश्चय किया, हमें शरीर छोड़ देना स्वीकार है, परन्तु अदत्त जल ग्रहण नहीं करेंगे।

निश्चय करके सबने अपने कमण्डलु, दण्ड, पात्र, छत्र आदि गंगा नदी के किनारे सूखे स्थान पर रख दिये और स्वयं गंगा किनारे की बालू का संस्तारक बनाकर उस पर शरीर एवं कषाय भावों का परित्याग करते हुए पद्मासन से स्थित हो जाते हैं। सभी ने पहले अपने आराध्य अरिहंत भगवान महावीर को नमस्कार किया। फिर अपने धर्माचार्य अम्बड़ परिव्राजक की वन्दना की। अपने गुरु के पास ग्रहीत पाँच अणुव्रतों की आलोचना कर आहार-पानी आदि चारों आहार का सर्वथा त्याग कर शरीर को स्थिर कर शान्त भाव से अवस्थित हो गये।

-सूत्र ८२-८८

SANTHARA BY SEVEN HUNDRED DISCIPLES OF AMBAD

In the Jyeshtha month of the summer season Ambad Parivrajak's seven hundred disciples walked along the banks of the Ganges towards Purimtaal city. On there way they arrived in a dense forest. There was no village far or near that forlorn place. No human was visible there. They had consumed all the supply of water they had brought along. Their throats were parched due to sun. They suffered agonizing thirst. Their codes proscribed them to take water from a river or any other source without being given. In this grave predicament they deliberated on what to do ? The *Sanyasis* started searching in all directions but failed to find any water-donor.

In the end they jointly decided that abandoning the earthly body was preferable to taking water without being given.

After resolving thus they abandoned their equipment including gourd-bowl, triple-staff, umbrella etc. at a dry spot on the river bank. Then they prepared beds with the sand and sat down in lotus posture. First they paid homage to Arihant Bhagavan Mahavir. Then after paying homage to their teacher, Ambad Parivrajak, they did critical review of five vows they had accepted, and abandoned four kinds of food and water. Finally they made their bodies motionless and mind still.

—Sutra 82-88

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जावज्जीवाए, थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, इयाणिं अम्हे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामो जावज्जीवाए एवं जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामो जावज्जीवाए।

सव्वं कोहं, माणं, मायं, लोहं, पेज्जं, दोसं, कलहं, अब्भक्खाणं, पेसुण्णं, परपरिवायं, अरइ–रइं, माया–मोसं, मिच्छादंसणसल्लं, अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामो जावज्जीवाए, सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामो जावज्जीवाए।

जं पि य इमं सरीरं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, पेज्जं, थेज्जं, वेसासियं, संमयं, बहुमयं, अणुमयं, भंडकरंडगसमाणं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय–पित्तिय–संनिवाइय विविहा रोगायंका, परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एयंपि णं चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं वोसिरामि।''

त्ति कट्टु संलेहणा–झूसणाझूसिया भत्तपाणपडियाइक्खिया पाओवगया कालं अणवंकखमाणा विहरंति।

८७. ''अरिहंतों को यावत् मुक्तिरूपी स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों को–नमस्कार हो।

उन श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो, जो सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के लिए समुद्यत हैं।

हमारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक अम्बड़ परिव्राजक को नमस्कार हो।

पहले हमने अम्बड़ परिव्राजक के पास, उनकी साक्षी से स्थूल प्राणातिपात–मृषावाद–चोरी, सब प्रकार के अब्रह्मचर्य तथा स्थूल परिग्रह का जीवन–पर्यन्त के लिए प्रत्याख्यान किया था। इस समय हम पुनः भगवान महावीर की साक्षी से सब प्रकार की (स्थूल एवं सूक्ष्म) हिंसा (सब प्रकार के असत्य, सब प्रकार की चोरी, सब प्रकार के अब्रह्मचर्य तथा सब प्रकार के परिग्रह) का जीवनभर के लिए परित्याग करते हैं।

इसी प्रकार सब प्रकार के क्रोध का, मान का, माया का, लोभ का, समस्त प्रेम (माया व लोभजनित रागभाव), समस्त द्वेष भाव का, कलह का, अभ्याख्यान का (मिथ्या दोषारोपण), पैशुन्य का (चुगली तथा पीठ पीछे किसी के होते–अनहोते दोषों का प्रकटीकरण), परपरिवाद (निन्दा) का, रति–(मोहनीय कर्म के उदय के परिणामस्वरूप असंयम में रुचि रखना) अरति का (संयम में अरुचि रखना), मायामृषा का–(माया या छलपूर्वक झूठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलना) तथा मिथ्यादर्शन शल्य का जीवन–पर्यन्त के लिए परित्याग करते हैं। अकरणीय योग–मन, वचन तथा शरीर की नहीं करने योग्य क्रिया का त्याग करते हैं। अशन, पान, खादिम, स्वादिम–इन चारों प्रकार के आहारों का जीवनभर के लिए परित्याग करते हैं।

यह शरीर, जो हमको इष्ट–वल्लभ, कान्त, प्रिय–प्यारा, मनोज्ञ–सुन्दर, मनाम–मन में बसा रहने वाला, प्रेय–अतिशय प्रिय हैं, प्रेज्य–विशेष मान्य, स्थैर्यमय–अस्थिर होते हुए भी अज्ञानवश स्थिर प्रतीत होने वाला है, वैश्वासिक–विश्वसनीय (पर–शरीर की अपेक्षा अपना शरीर अधिक विश्वास योग्य लगता है ऐसा विश्वसनीय), सम्मत, बहुमत–बहुत माना हुआ, अनुमत, आभूषणों की पेटी के समान (प्रेम का पात्र) प्यारा है। इस मेरे शरीर को सर्दी न लग जाये, गर्मी न लग जाये, यह भूखा न रह जाये, प्यासा न रह जाये, इसे साँप न डस ले, चोर उपद्रव न करें–डांस न काटें, मच्छर न काटें, वात, पित्त (कफ), सन्निपात आदि विविध रोगों द्वारा तत्काल मार डालने वाली बीमारियों द्वारा यह पीड़ित न हो इसे परीषह–भूख, प्यास आदि कष्ट तथा उपसर्ग–देवादि कृत संकट न हों। जिसके लिए हर समय ऐसा ध्यान रखते हैं, उस शरीर को हम अन्तिम उच्छ्वास–निःश्वास तक छोड़ देते हैं–उससे अपनी ममता हटाते हैं।''

संलेखना द्वारा जिनके शरीर तथा कषाय दोनों ही कृश हो चुके थे, उन परिव्राजकों ने इस प्रकार कहके आहार–पानी का परित्याग कर दिया। अपने शरीर को कटे हुए वृक्ष की तरह चेष्टा–शून्य बना लिया। मृत्यु की कामना न करते हुए शान्त भावपूर्वक अवस्थित हो गये।

87. "We bow and convey our reverence to the worthy ones (*Arhantanam*),... and so on up to... who have attained the state of ultimate perfection, known as *siddhi gai* or *siddha gati*.

"We bow and pay homage to Shraman Bhagavan Mahavir... and so on up to... the aspirant of and destined to attain the state of ultimate perfection (*siddha gai* or *siddha gati*).

"We bow and pay homage to Ambad Parivrajak who is our religious teacher and preceptor.

"Earlier, we had renounced, for life, any violence to living beings, falsehood, stealing, sexual activity and possessions in general before Ambad Parivrajak. But now, once again, we renounce, for life, any harm to living beings, falsehood, stealing, sexual activity and possessions (both gross and subtle) before Bhagavan Mahavir.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

In the same way we also renounce, for life, any *krodh* (anger), *maan* (conceit), *maya* (deceit), *lobha* (greed), *raag* (attachment inspired by love, deceit and greed), *dvesh* (aversion inspired by suppressed anger and conceit), *kalah* (dispute), *abhyakhyan* (blaming falsely), *paishunya* (inculpating someone), *paraparivad* (slandering), *rati-arati* (inclination towards indiscipline and inclination against discipline), *mayamrisha* (to betray or tell a lie deceptively) and *mithyadarshan shalya* (the thorn of wrong belief or unrighteousness). We also renounce all activities (of mind, speech and body) not worth doing. We renounce four kinds of food including *ashan, paan, khadya* and *svadya* (staple food, liquids, general food and savoury food).

To us our this body is adorable (*isht*), lovable (*kant*), beautiful (*manojna*), worth cherishing (*manaam*), worth doting (*preya*), worth idolizing (*prejya*), everlasting (although transient, it appears permanent due to ignorance), reliable (one's own body appears to be more reliable than those of others), agreeable (*sammat*), admirable (*bahumat*), commendable (*anumat*) and dear like a casket of ornaments. We are ever cautious that it may not catch cold, suffer heat stroke, suffer hunger or thirst, be bitten by snake, be outraged by thieves, be bitten by drones or mosquitos, be infected with fatal diseases like disturbed humours (*vaat* or air, *pitta* or bile and cough or phlegm) or stroke, suffer torments and afflictions (caused by animals, humans and gods). We renounce and forget our attachment for that body till our last breath."

Saying thus those *Parivrajaks*, who had emaciated their bodies and passions with austerities, abandoned food and water. With perfect serenity and without desiring for death, they made their bodies motionless like logs.

८८. तए णं ते परिव्वाया बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता, समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा। तेहिं तेसिं गई, दससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, परलोगस्स आराहगा, सेसं तं चेव।

८८. इस प्रकार उन परिव्राजकों ने अनशन द्वारा चारों प्रकार के आहारों से सम्बन्ध तोड़ा तथा बहुत-सा भोजन-काल-(आहार का समय) अनशन द्वारा व्यतीत किया। वैसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए अपने अतिचारों, दोषों की आलोचना की, उनसे प्रतिक्रान्त-दूर हुए, समाधि दशा प्राप्त की। मृत्यु-समय आने पर देह त्यागकर ब्रह्मलोक कल्प में वे देव रूप में उत्पन्न हुए। उस स्थान के अनुरूप वहाँ उनकी गति बतलाई गई है। उनका आयुष्य दश सागरोपम कहा गया है। वे परलोक के आराधक हैं। अवशेष वर्णन पहले की तरह समझना चाहिए।

88. This way those *Parivrajaks* abandoned four kinds of eatables and spent many a meal-time fasting. While doing so they critically reviewed their faults and transgressions. Distancing themselves from faults they attained the state of total tranquility of mind. When time came they abandoned their earthly bodies and were born as gods in the *Brahmalok kalp*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is ten *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They are true spiritual aspirants for next birth. Other details should be taken as already mentioned.

अम्बड़ परिव्राजक के विषय में गौतम की जिज्ञासा

८९. बहुजणे णं भंते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं परूवेइ-एवं खलु अंबडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णयरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ, से कहमेयं भंते ! एवं ?

८९. (गौतम-) भगवन् ! बहुत से लोग परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार भाषण करते हैं-इस प्रकार प्ररूपित करते हैं-बतलाते हैं कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर में एक ही समय सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। भगवन् ! यह बात कैसे है ?

GAUTAM'S QUERY ABOUT AMBAD PARIVRAJAK

89. *Bhante* ! Many a people say, speak and assert that Ambad Parivrajak takes his food from a hundred households and lives in a hundred households at the same time in Kampilyapur city. *Bhante* ! How is it so ?

भगवान का समाधान

९०. गोयमा ! जं णं से बहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ-एवं खुल अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे जाव घरसए वसहिं उवेइ, सच्चे णं एसमट्ठे अहंपि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि, एवं खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. (भगवान महावीर–) गौतम ! बहुत से लोग आपस में एक–दूसरे से जो ऐसा कहते हैं, प्ररूपित करते हैं कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर में एक साथ सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है, यह सच है। गौतम ! मैं भी ऐसा ही कहता हूँ, प्ररूपित करता हूँ कि अम्बड़ परिव्राजक यावत् (काम्पिल्यपुर नगर में एक साथ सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में) निवास करता है।

BHAGAVAN'S REPLY

90. Gautam ! What many people say about Ambad Parivrajak living and eating in a hundred households at the same time is true. I too say and affirm that Ambad Parivrajak does so.

९१. से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ–परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ ?

९१. (गौतम–) भंते ! अम्बड़ परिव्राजक के सम्बन्ध में सौ घरों में आहार करने तथा सौ घरों में निवास करने की जो बात कही जाती है, उसमें क्या रहस्य है ?

91. *Bhante* ! What is the secret of this rumour—Many a people say... and so on up to... Kampilyapur city.

९२. गोयमा ! अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइभद्दयाए जाव विणीययाए छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमिए आयावेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं अन्नया कयाइ तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहा–वूहा–मग्गण–गवेसणं करेमाणस्स वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए, ओहिणाणलद्धीए समुप्पण्णाए जणविम्हाणहेउं कंपिल्लपुरे णगरे घरसए जाव वसहिं उवेइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चई–अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णगरे घरसए जाव वसहिं उवेइ।

९२. गौतम ! यह अम्बड़ परिव्राजक प्रकृति से भद्र–सरल एवं शान्त है। स्वभावतः उसके क्रोध, मान, माया एवं लोभ अल्पतर हो चुके हैं। वह मृदुमार्दव गुण–सम्पन्न तथा गुरुजनों का आज्ञापालक एवं विनयशील है। उसने निरन्तर बेले–बेले (दो–दो दिनों) का उपवास करते हुए, अपनी भुजाएँ ऊँची उठाये, सूरज के सामने मुँह किए आतापना–भूमि में आतापना लेते हुए तप का अनुष्ठान किया है। अतः इस अम्बड़ परिव्राजक का शुभ परिणामों, पवित्र भावों, प्रशस्त अध्यवसाय–उत्तम मनःसंकल्पों, विशुद्ध होती हुई प्रशस्त लेश्याओं से आत्म–परिणामों की विशुद्धि होने से किसी समय वीर्य–लब्धि, वैक्रिय–लब्धि तथा अवधिज्ञान–लब्धि के आवरक कर्मों का क्षयोपशम हुआ। तब ईहा–सत्य अर्थ की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना में अभिमुख बुद्धि, **अपोह**–यह इसी प्रकार है, ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि, **मार्गणा**–अन्वयधर्मी चिन्तन–अमुक होने पर अमुक होता है–ऐसा चिन्तन एवं **गवेषणा**–व्यतिरेकधर्मी चिन्तन–अमुक नहीं होने पर अमुक नहीं होता इस प्रकार गम्भीर चिन्तन करते हुए उसको किसी दिन वीर्य–लब्धि (विशेष जीवनीशक्ति), वैक्रिय–लब्धि (अनेक रूप बनाने की क्षमता) तथा अवधिज्ञान–लब्धि (अतीन्द्रिय रूपी पदार्थों को साक्षात् आत्मा द्वारा जानने की शक्ति) प्राप्त हो गई। अतएव वह लोगों को आश्चर्यचकित करने के लिए इन लब्धियों द्वारा काम्पिल्यपुर में एक ही समय में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। गौतम ! इस कारण अम्बड़ परिव्राजक के द्वारा काम्पिल्यपुर में सौ घरों में आहार करने तथा सौ घरों में निवास करने की बात कही जाती है (वह सत्य है)।

92. Gautam ! This Ambad Parivrajak is simple and calm by nature. The intensity of his anger, conceit, deceit and greed has become minimum. He is endowed with qualities of sweetness and amiability. He obeys his seniors and is modest. He has undergone continued rigorous austerities by enduring heat from scorched earth facing the sun with raised arms and all along observing a series of two day fasts. Therefore, there has been a gradual improvement in his pious attitude and feelings, lofty pursuits and resolutions, and progressively refining *leshyas* (the colour code indicator of complexion of soul). As a consequence of this spiritual purity, at some point of time, there has been extinction-cum-pacification (*kshayopasham*) of the *karmas* that obscured his powers of potency (*virya labdhi*), transmutation (*vaikriya labdhi*) and extrasensory perception of the physical dimension (*avadhi-jnana*). After that he undertook profound contemplation following the process of *iha* or inquiry, *apoh* or deduction, *margana* or confirmation and gaveshana or elimination. While doing so, one day he acquired the power of potency (*virya labdhi*) or enhanced life-energy, the power of transmutation (*vaikriya labdhi*) or acquiring desired form and the power of extrasensory perception of the physical dimension (*avadhi-jnana*). Now, making use of these special powers, he takes his food from a hundred households and lives in a hundred households at the same time in Kampilyapur city simply to astonish people. Gautam ! That is why this rumour about Ambad Parivrajak living and eating in a hundred households at the same time is true.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-९

Illustration No. 9

चमत्कारी अम्बड़ परिव्राजक

गणधर इन्द्रभूति भगवान महावीर से पूछते हैं-भन्ते ! बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि अम्बड़ परिव्राजक कांपिल्यपुर नगर में एक ही समय में एक साथ सौ घरों में भोजन करता हुआ देखा जाता है ! इसमें क्या रहस्य है ?

भगवान ने उत्तर में कहा-गौतम ! वस्तुस्थिति यह है कि अम्बड़ परिव्राजक प्रकृति से भद्र, सौम्य एवं शान्त स्वभाव का है। वह विनयशील है, गुरुजनों का आज्ञा पालक है तथा उसके क्रोध-मान-माया-लोभ-चारों कषाय बहुत उपशान्त है। उसने बेले-बेले (दो-दो दिनों का) का उपवास करते हुए अपनी भुजाएँ ऊँची उठाकर सूरज के सामने मुँह किये आतापना ली है। उस तप अनुष्ठान से शुभ परिणाम व उत्तम अध्यवसायों के कारण उसने वीर्यलब्धि (विशेष शक्ति/*प्रतीक श्वेत प्रकाश देखें)* वैक्रिय लब्धि (अनेक रूप बनाने की क्षमता/*नीला प्रकाश देखें)* तथा अवधिज्ञान लब्धि (अतीन्द्रिय पदार्थ को सीधे आत्मा द्वारा जानने की योग्यता/*पीला प्रकाश)* प्राप्त की है। इस कारण वह जनता को विस्मित चकित करने की भावना से इन लब्धियों के ऐसा करने में समर्थ है।

-सूत्र ८९-९२

MIRACULOUS AMBAD PARIVRAJAK

Ganadhar Indrabhuti asked Bhagavan—"*Bhante* ! Many a people say that Ambad Parivrajak is seen taking his food from a hundred households at the same time in Kampilyapur city. *Bhante* ! How is it so ?

Bhagavan replied—Gautam ! This Ambad Parivrajak is simple and calm by nature. He obeys his seniors and is modest. The intensity of his anger, conceit, deceit, and greed has become minimum. He has undergone continued rigorous austerities by enduring heat from scorched earth facing the sun with raised arms and all along observing a series of two day fasts. As a consequence of this spiritual purity he has acquired power of potency (*virya labdhi* illustrated by white light), power of acquiring desired form (*vaikriya labdhi* illustrated by blue light), and power of extrasensory perception of the physical dimension (*avadhi-jnana* illustrated by yellow light). In order to astonish masses he uses these special powers and is capable of doing as rumoured.

—*Sutra 89-92*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. पहू णं भंते ! अम्मडे परिव्वायए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

९३. भगवन् ! क्या यह अम्बड़ परिव्राजक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित दीक्षित होकर अगार-गृहस्थ अवस्था से अनगार अवस्था-पंच महाव्रतमय श्रमण-जीवन प्राप्त करने में समर्थ है ?

93. *Bhante* ! Is it possible for this Ambad Parivrajak to get tonsured, renounce his household and turn *anagar* (homeless ascetic) to observe the five great vows of *Shraman* life ?

अम्बड़ का आचार-विचार

९४. णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा !

अम्मडे परिव्वाये समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव (उवलद्धपुण्णपावे, आसव-संवर-निज्जर-किरिया-अहिगरण-बंध-मोक्ख-कुसले, असेहज्जे, देवासुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किण्णर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गंथे पावयणे णिस्संकिए, णिक्कंखिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अभिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते, अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासीणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेत्ता समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं, वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं, ओस-हभेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणे) अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

णवरं ऊसिय-फलिहे, अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउर-घरदारपवेसी, एयं णं वुच्चइ।

९४. गौतम ! ऐसा सम्भव नहीं है अर्थात् वह अनगार धर्म में दीक्षित नहीं होगा।

अम्बड़ परिव्राजक श्रमणोपासक है, जिसने जीव, अजीव यावत् पुण्य-पाप, संवर-निर्जरा आदि पदार्थों के स्वरूप को अच्छी तरह समझ लिया है। [वह दूसरे की सहायता का अनिच्छुक है। वह देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व, महोरग आदि देवताओं द्वारा निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नहीं किया जा सकता है। निर्ग्रन्थ प्रवचन में वह शंकारहित, आकांक्षारहित, संशयरहित, धर्म के यथार्थ तत्त्व को प्राप्त किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, उसे ग्रहण किया है, प्रश्न पूछकर स्थिर किया है, आत्मगत किया है और उस पर निश्चय किया है, उसके अस्थि एवं मज्जा–पर्यन्त धर्म के प्रति प्रेम व अनुराग भरा है, उसका यह अटल विश्वास है कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ–उपकारक है, इसके सिवाय अन्य अनर्थ–अप्रासंगिक हैं। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषध का अच्छी तरह अनुपालन करता हुआ, श्रमण–निर्ग्रन्थों को प्रासुक–अचित्त एषणीय–निर्दोष अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार, वस्त्र, कम्बल, पाद–प्रोञ्छन, औषध, भेषज, प्रातिहारिक–पाट, बाजोट आदि द्वारा प्रतिलाभित करता हुआ] आत्मा को भावित करता है।

विशेष यह है कि उसके सम्बन्ध में निम्न तीन विशेषण यहाँ लागू नहीं होते, यथा–(१) **उच्छ्रित फलिह**–जिसके घर पर किवाड़ों की आगल कभी नहीं लगती हो, (२) **अपावृतद्वार**–जिसके घर के दरवाजे कभी किसी के लिए बन्द नहीं होते हों, तथा (३) **त्यक्तान्तःपुर गृहद्वार प्रवेश**–घर के भीतरी भाग में जिसका प्रवेश किसी को अप्रिय नहीं लगता हो।

CONDUCT OF AMBAD

94. Gautam ! No, it is not possible. In other words, he will not get initiated as an *anagar*.

Ambad Parivrajak is a *Shraman* worshipper (*Shramanopasak*) who has properly acquired the knowledge of the living (jiva), non-living (*ajiva*), merit-demerit (*punya-paap*), blocking of inflow and shedding of *karmas* (*smavar-nirjara*) and other fundamentals. He does not seek help from others.... and so on ...[He cannot be forced to waver from the *Nirgranth* sermon by gods, lower gods including *Asur, Naag, Suparn, Yaksh, Rakshas, Kinnar, Kimpurush, Garud, Gandharva* and *Mahorag*. Being free of any doubt, perplexity and ambiguity in the *Nirgranth* sermon he has received, acquired, confirmed by raising questions, absorbed and finalized the real fundamentals of religion. The affinity and attachment for religion has penetrated deep into his bone and marrow. It is his unwavering faith that only this *Nirgranth* sermon is meaningful or beatific and everything else is meaningless or worthless. Properly observing the complete *paushadh* (partial ascetic vow) on eighth, fourteenth and fifteenth days of every fortnight and offering uncontaminated and acceptable food (four kinds—*ashan, paan, khadya* and *svadya*), garb, blanket, napkin, medicine, bed etc. to *Shraman-nirgranths*] up to... he enkindles (*bhaavit*) his soul.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Worth a special mention is that the following three adjectives are not applicable to him—**(1) Uchchhrit phaliha**—in whose house door bolts are never used. **(2) Apavritadvar**—in whose house doors are never closed to anyone. **(3) Tyaktantahpura grihadvar pravesh**—whose entry to the inner (ladies) quarters of any house never offends anyone.

विवेचन—इस सूत्र में गत वर्णन से पता चलता है कि अम्बड़ आनन्द, कामदेव आदि जैसा ही अत्यन्त दृढ़ श्रद्धालु तत्त्व का जानकार और निर्ग्रन्थ प्रवचन में पूर्ण अविचल आस्था रखने वाला श्रमणोपासक था। वह अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों पर परिपूर्ण पौषध करता था और श्रमण निर्ग्रन्थों को एषणीय आहार आदि का यथोचित दान भी करता था। किन्तु वह स्वयं भिक्षु था, उसका अपना कोई घर नहीं था, अतः अन्त के तीन विशेषण जो श्रावकों के विषय में कहे जाते हैं, वे उस पर लागू नहीं होते। इन तीन विशेषणों के अर्थ सम्बन्धी दो परम्पराओं का वर्णन टीकाकार अभयदेवसूरि ने किया है—एक प्राचीन वृद्ध परम्परा, जिसके अनुसार ये तीनों वाक्य अम्बड़ की विशेषता के सूचक हैं—(१) **उच्छ्रित फलिह**—स्फटिक राशि के समान निर्मल हृदय, (२) **अपावृतद्वार**—अम्बड़ के लिए कभी किसी घर का दरवाजा बन्द नहीं रहता था, (३) **त्यक्तान्तःपुर गृहद्वार प्रवेश**—वह इतना विश्वस्त और पवित्र आचार वाला था कि उसका प्रवेश किसी भी घर के भीतर वर्जनीय या शंकास्पद नहीं था। आचार्य श्री घासीलाल जी म. ने अपनी टीका में वृद्ध परम्परा के इसी अर्थ को मान्य किया है, जबकि आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित सूत्र में टीकाकार द्वारा प्रस्तुत द्वितीय अर्थ स्वीकार किया गया है, जो अनुवाद में हमने दिया है।

Elaboration—The description in this aphorism informs that like Anand and Kamadev, Ambad Parivrajak was also a highly and deeply devoted *Shramanopasak* having profound knowledge of fundamentals and unwavering faith in the *Nirgranth* sermon. He observed the complete *paushadh* (partial ascetic vow) on fifteenth and other auspicious days of every fortnight and offered suitable food and other gifts to ascetics. However, as he himself was a homeless mendicant the three adjectives generally used for householders are not applicable in his case. Abhayadev Suri, the commentator (*Tika*) mentions about two traditions regarding the meaning of these adjectives—The ancient *Vriddha* tradition interprets these three terms as special qualities of Ambad Parivrajak—**(1) Uchchhrit phaliha**—having a heart clean and clear as a heap of crystals. **(2) Apavritadvar**—for Ambad Parivrajak no door was ever closed. **(3) Tyaktantahpura grihadvar pravesh**—he was so reliable that his entry into any house never caused any apprehension or offended anyone. Acharya Ghasilal ji M. has followed this Vriddha tradition interpretation in his commentary (*Tika*), whereas the edition published

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by Agam Prakashan Samiti, Beawar has followed the other view. In this edition we have also used the second interpretation.

९५. अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव परिग्गहे णवरं सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए।

९५. अम्बड़ परिव्राजक ने जीवनभर के लिए स्थूल प्राणातिपात–स्थूल हिंसा यावत् स्थूल मृषावाद आदि परिग्रह तथा समस्त प्रकार के अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान किया है (सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया)।

95. Ambad Parivrajak has renounced general (*sthool*) violence... and so on up to... possession. Besides this he has renounced for life all sexual activity (the vow of absolute abstinence).

९६. अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ अक्खसोयप्पमाणमेत्तंपि जलं सयराहं उत्तरित्तए, णण्णत्थ अद्धाणगमणेणं।

अम्मडस्स णं णो कप्पइ सगडं वा एवं तं चेव भाणियव्वं णण्णत्थ एगाए गंगामट्टियाए।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ आहाकम्मिए वा, उद्देसिए वा, मीसजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइकम्मे इ वा, कीयगडे इ वा, पामिच्चे इ वा, अणिसिट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, ठइत्तए वा, रइत्तए वा, कंतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलियाभत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, भोत्तए वा, पाइत्तए वा।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ मूलभोयणे वा जाव (कंदभोयणे, फलभोयणे, हरियभोयणे, पत्तभोयणे) बीयभोयणे वा भोत्तए वा पाइत्तए वा।

९६. इस अम्बड़ परिव्राजक को मार्गगमन करते समय अकस्मात् गाड़ी की धुरी–प्रमाण जल आ जावे तो भी उतरना नहीं कल्पता। परन्तु विहार करते हुए अन्य रास्ता नहीं हो तो बात अलग है।

अम्बड़ परिव्राजक को गाड़ी (पालकी) आदि पर सवार होना नहीं कल्पता, (पूर्व वर्णनवत्) केवल गंगा की मिट्टी का लेप करना कल्पता है।

अम्बड़ परिव्राजक को आधाकर्मिक तथा औद्देशिक–(हिंसा करके साधु के उद्देश्य से बना भोजन), मिश्र जात–(साधु तथा गृहस्थ दोनों के उद्देश्य से तैयार किया गया भोजन), अध्यवपूर–(साधु के लिए अधिक मात्रा में बनाया हुआ आहार), पूर्तिकर्म–(आधाकर्मी आहार के अंश से मिला हुआ आहार), क्रीतकृत–(खरीदकर लिया गया), प्रामित्य (उधार

लिया हुआ), अनिसृष्ट–(गृह–स्वामी या घर के मुखिया को बिना पूछे दिया जाता आहार), अभ्याहृत–(साधु के सम्मुख लाकर दिया जाता आहार), स्थापित–(अपने लिए पृथक् रखा हुआ भोजन), रचित–(बने भोजन को साधु के लिए पुनः संस्कारित किया भोजन), कान्तारभक्त–(अटवी पार करते समय घर से अपने पाथेय के रूप में लिया हुआ भोजन), दुर्भिक्षभक्त–(दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओं तथा अकालपीड़ितों के लिए बनाया हुआ भोजन), ग्लानभक्त–(बीमारों के लिए बनाया हुआ भोजन), वार्दलिकभक्त–(बादल आदि से घिरे वर्षा के दिनों में देने के लिए अथवा दुर्दिन में दरिद्र जनों के लिए तैयार किया गया भोजन), प्राघूर्णकभक्त–(अतिथियों–पाहुनों के लिए निष्पन्न भोजन) तथा इसी प्रकार के पेय भी अम्बड़ परिव्राजक को खाना–पीना नहीं कल्पता है।

इसी प्रकार अम्बड़ परिव्राजक को मूल (कन्द, फल, हरे, तृण) बीजमय भोजन खाना–पीना नहीं कल्पता है।

96. While walking Ambad Parivrajak considers it inappropriate to enter water even if it is no deeper than the axle of a cart. However, it is a different matter if there is no other way.

Ambad Parivrajak considers it forbidden to ride a cart... and so on up to... to apply any paste on his body except for the sand of river Ganges.

Ambad Parivrajak also considers it forbidden to accept any food or drink having the following faults—

Aadhakarmik and *auddeshik* (*uddesiyam*)—food prepared specifically for *shramans* against the code of *ahimsa*. *Mishrajat* (*meesjayam*)—food cooked jointly for family and ascetics. *Adhyavapur* (*ajjhoyar*)—food the quantity of which has been increased during cooking in anticipation of an ascetic's arrival. *Purtikarma* (*pooikammam*)—food mixed with even a small quantity of *aadhakarmik* food. *Kreetakrit* (*ke-agadam*)—food purchased for *shramans*. *Pramitya* (*pamiccham*)—food that is taken on loan for the specific purpose of giving to an ascetic. *Anisrisht* (*anisitthe*)—food given without permission of the owner. *Abhyahrit* (*abhihade*)—food that is brought to the place of stay of an ascetic and given to him. *Sthapit* (*thaitae*)—food kept apart for the donor himself. *Rachit* (*raittae*)—food re-cooked specifically for an ascetic. *Kantarbhakt* (*kantarbhattae*)—emergency food packed and taken

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

along while crossing a difficult terrain. *Durbhikshbhakt* (*dubbhikkhabhatte*)—food prepared for distributing to beggars and destitute during a drought. *Glanbhakt* (*gilaanbhatte*)—food meant for the sick. *Vardalikbhakt* (*vaddaliyabhatte*)—food prepared and kept for distributing during periods of heavy rain, floods and other such calamities. *Praghoornakbhakt* (*pahunagabhatte*)—food meant for guests.

In the same way, Ambad Parivrajak considers it forbidden to eat or drink anything having roots (bulbous roots, fruits, green leaves) and seeds.

९७. अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स चउव्विहे अणट्ठदंडे पच्चक्खाए जावज्जीवाए। तं जहा—अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे।

९७. अम्बड़ परिव्राजक ने चार प्रकार के अनर्थदण्डों का जीवन-पर्यन्त के लिए परित्याग किया है। वे चार अनर्थदण्ड इस प्रकार हैं-(१) अपध्यानाचरित, (२) प्रमादाचरित, (३) हिंस्रप्रदान, एवं (४) पापकर्मोपदेश।

97. Ambad Parivrajak has renounced four kinds of activities leading to unnecessary harm to others (*anarth-dand*). They are—(1) *apadhyanacharit*, (2) *pramadacharit*, (3) *himsrapradan*, and (4) *paapkarmopadesh*.

विवेचन—बिना किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के जो हिंसा की जाती है, उसे अनर्थदण्ड माना जाता है। प्रस्तुत सूत्र में सूचित चार प्रकार के अनर्थदण्ड की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है-

(१) **अपध्यानाचरित**—अर्थात् दुश्चिन्तन। दुश्चिन्तन दो प्रकार का है—आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान। इन दोनों तरह से होने वाला दुश्चिन्तन अपध्यानाचरित रूप अनर्थदण्ड है।

(२) **प्रमादाचरित**—अपने धर्म व कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा, असावधानी प्रमाद है; अथवा मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा रूप आचरण प्रमाद हैं। इनसे सम्बद्ध मन, वचन तथा शरीर के विकार प्रमादाचरित में आते हैं।

(३) **हिंस्रप्रदान**—हिंसा के कार्यों में साक्षात् सहयोग करना, जैसे-चोर, डाकू तथा शिकारी आदि को हथियार देना, आश्रय देना तथा दूसरी तरह से सहायता करना।

(४) **पापकर्मोपदेश**—दूसरों को पाप-कार्य में प्रवृत्त होने में प्रेरणा, उत्तेजना, उपदेश या परामर्श देना।

Elaboration—Any act of violence committed unnecessarily or without any specific purpose is called *anarth-dand*. Brief description of its four kinds stated in this aphorism are—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(1) Apadhyanacharit—This means bad or wrong thinking. This again is of two kinds—*arttadhyan* (tormented thoughts or grief) and *raudradhyan* (agitated thoughts or anger). These two kinds of bad thoughts are called *apadhyanacharit anarth-dand.*

(2) Pramadacharit—Negligence and inattentiveness towards one's religion and duty is *pramad* (stupor). Indulgence in alcoholism, carnal pleasures, passions, sleep and gossiping is also *pramad* (stupor). Mental, vocal and physical perversions related to these are included in *pramadacharit anarth-dand.*

(3) Himsrapradan—Direct involvement in acts of violence, such as providing weapons, shelter and other help to thieves, bandits, hunters, and other such people is called *himsrapradan anarth-dand.*

(4) Paapkarmopadesh—To inspire, provoke, preach or advise others to indulge in sinful activities is called *paapkarmopadesh anarth-dand.*

९८. अम्मडस्स कप्पइ मागहए अद्धाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए से वि य वहमाणए, णो चेव णं अवहमाणए जाव से वि य परिपूए, णो चेव णं अपरिपूए, से वि य सावज्जे त्ति काउं णो चेव णं अणवज्जे, से वि य जीवा त्ति काउं, णो चेव णं अजीवा, से वि य दिण्णे, णो चेव णं अदिण्णे, से वि य हत्थपाय-चरु-चमस-पक्खालणट्ठयाए पिबित्तए वा, णो चेव णं सिणाइत्तए।

अम्मडस्स कप्पइ मागहए य आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणए जाव णो चेव णं अदिण्णे, से वि य सिणाइत्तए णो चेव णं हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्ठयाए पिबित्तए वा।

९८. उस अम्बड़ को मागधमान–मगध देश के तोल के अनुसार आधा आढक (दो प्रस्थ प्रमाण) जल लेना कल्पता है। वह भी प्रवहमान (बहता हुआ) हो, अप्रवहमान नहीं हो। (सूत्र ८० के अनुसार) वह भी परिपूत–वस्त्र से छाना हुआ हो तो कल्प्य है, अनछाना नहीं। वह भी सावद्य मानकर लेता है, निरवद्य मानकर नहीं। सावद्य भी वह सजीव समझकर ही लेता है, अजीव समझकर नहीं। वैसा जल भी दिया हुआ ही कल्पता है, बिना दिया हुआ नहीं। वह भी हाथ, पैर, चरु, चमस, चम्मच आदि धोने के लिए या पीने के लिए ही कल्पता है, नहाने के लिए नहीं।

(विशेष) इस अम्बड़ को मागधमान के अनुसार एक आढक प्रमाण पानी लेना कल्पता है। वह भी बहता हुआ, यावत् दिया हुआ ही कल्पता है, वह भी स्नान के लिए लेना कल्पता है, हाथ, पैर, चरु, चमस धोने के लिए या पीने के लिए नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

98. Ambad Parivrajak is allowed to take half Magadh *Adhak* (two Magadh *Prasth*) water. This too should be from a flowing source like a river and not from a collected source like a pond. (same as aphorism 80) This too should be filtered with a cloth and not unfiltered. This too he accepts considering it to be *savadya* (involving sin) and not *niravadya* (not involving sin). This too he accepts considering it to have living organism and not without them. This too is acceptable if it is offered by a donor and not otherwise. This too is acceptable only for drinking or washing hands, feet, bowl, or spoon and not for bathing.

Ambad Parivrajak is allowed to take one Magadh *Adhak* water. This too should be from a flowing source... and so on up to... This too is acceptable if it is offered by a donor. This too is acceptable only for bathing and not for washing hands, feet, bowl, or spoon or drinking.

९९. अम्मडस्स णो कप्पइ अण्णउत्थिया वा, अण्णउत्थियदेवयाणि वा, अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं वंदित्तए वा, णमंसित्तए वा, जाव पज्जुवासित्तए वा, णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइं वा।

९९. अम्बड़ को अर्हत् या अर्हत्-चैत्यों (अर्हत् के अनुयायी श्रमणों) के अतिरिक्त अन्ययूथिक-(निर्ग्रन्थ-धर्मसंघ के अतिरिक्त अन्य संघों से सम्बद्ध पुरुष), उनके देव तथा उन द्वारा परिगृहीत-स्वीकृत चैत्यों को वन्दन करना, नमस्कार करना, उनकी पर्युपासना करना नहीं कल्पता है।

99. Besides *Arihant* (Jain *Tirthankar*) and *Arihant chaityas* (ascetic followers of *Arihant*) Ambad Parivrajak considers it forbidden to pay homage and obeisance to or worship any other religious organizations, their monks, their deities or their *chaityas* (temples).

अम्बड़ के आगामी भवों की पृच्छा

१००. अम्मडे णं भंते ! परिव्वायए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! अम्मडे णं परिव्वायए उच्चावएहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासयपरियायं पाउणिहिति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाउणिहित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं अम्मडस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई।

१००. भगवन् ! अम्बड़ परिव्राजक मृत्युकाल आने पर देह त्यागकर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?

गौतम ! यह अम्बड़ परिव्राजक–विशेष तथा सामान्य प्रकार से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान एवं पौषधोपवास द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक–पर्याय का पालन करेगा। पालन करता हुआ अन्त में एक मास की संलेखना धारण कर और साठ भक्त–एक मास का अनशन सम्पन्न कर, गृहीत व्रतों की आलोचना, प्रतिक्रमण कर, मृत्युकाल आने पर समाधिपूर्वक देह त्याग करेगा। देह त्यागकर वह ब्रह्मलोक (पंचम देवलोक) में देव रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ अनेक देवों की आयु–स्थिति दश सागरोपम प्रमाण बतालाई गई। अम्बड़ देव का भी आयुष्य दस सागरोपम प्रमाण होगा।

FUTURE REINCARNATIONS OF AMBAD

100. *Bhante* ! At the time of his death, abandoning this body, where will Ambad Parivrajak go ? Where will he reincarnate ?

Gautam ! Ambad Parivrajak will live for many years as *shramanopasak* (ascetic worshipping householder) enkindling (*bhaavit*) his soul by observing the vows of self denial and restraints, renunciation, partial asceticism and fasting. Finally he will take the ultimate vow (*samlekhana*) for a month and observe month-long fasting doing critical review of the observed vows. Doing so, at the time of death, he will abandon this earthly body in the state of meditation. Abandoning this body he will reincarnate as a god in the *Brahma-lok* (the fifth *dev-lok*). There the life-span of many gods is said to be ten *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). The life-span of Ambad Dev will also be ten *Sagaropam* (a metaphoric unit of time).

१०१. से णं भंते ! अम्मडे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं, अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति, कहिं उववज्जिहिति ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०१. भगवन् ! अम्बड़ देव अपना आयु–क्षय (देव सम्बन्धी आयुष्य), भव–क्षय (देव भव के हेतु कर्मों की निर्जरा) तथा स्थिति–क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवन कर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

101. *Bhante* ! After concluding his life-span (*ayu-kshaya*), the karmas causing specific birth (*bhava-kshaya*) and the realm-specific state (*sthiti-kshaya*) where will he go from the realm of gods (*dev-lok*) ? Where will he reincarnate ?

१०२. गोयमा ! महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति–अड्ढाइं, दित्ताइं, वित्ताइं, वित्थिण्ण–विउल भवण–सयणासण–जाण–वाहणाइं, बहुधण–जायरूव–रययाइं, आओग–पओगसंपउत्ताइं विच्छड्डिय–पउरभत्तपाणाइं, बहुदासी–दास–गोमहिसगवेलगप्पभूयाइं, बहुजणस्स अपरिभूयाइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिति।

१०२. गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में ऐसे कुल हैं, जो धनाढ्य हैं, दीप्त, प्रभावशाली एवं सम्पन्न हैं, भवन, शयन, आसन, यान, वाहन, विपुल साधन–सामग्री तथा सोना, चाँदी, सिक्के आदि प्रचुर धन से सम्पन्न होते हैं। वे नीतिपूर्वक धन के उपार्जन व सम्यक् नियोजन में कुशल होते हैं। उनके यहाँ (इतना प्रभूत भोजन बनता है कि) भोजन कर चुकने के बाद भी खाने–पीने के बहुत पदार्थ बचते हैं। उनके घरों में बहुत से नौकर, नौकरानियाँ, गायें, भैंसे, बैल, पाड़े, भेड़–बकरियाँ आदि होते हैं। वे अन्य लोगों द्वारा अपरिभूत अर्थात् इतने प्रभावशाली होते हैं कि कोई उनका तिरस्कार या अपमान करने का साहस नहीं कर पाता। अम्बड़ (देव) ऐसे कुलों में से किसी एक में पुरुष रूप में उत्पन्न होगा।

102. Gautam ! In the Mahavideh area there are clans that are affluent, brilliant, influential and wealthy. They are rich in terms of buildings, furniture, vehicles, cattle and abundance of other resources as well as wealth including gold, silver and coins. They are accomplished in earning and investing wealth honestly. In their kitchens (so much food is cooked that) even after they eat, a large quantity of food is left. They have a large number of servants, maids, cows, buffalos, goats, sheep etc. They are so influential that no one dares insult or offend them. Ambad will be re-born as a male child in one of these clans.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०३. तए णं तस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अम्मापिईणं धम्मे दढा पइण्णा भविस्सइ।

१०३. अम्बड़ शिशु के रूप में जब गर्भ में आयेगा, तब (उसके पुण्य-प्रभाव से) माता-पिता की धर्म में आस्था, श्रद्धा दृढ़-दृढ़तर होगी।

103. When Ambad is conceived, the faith and belief of his parents in religion will grow stronger and stronger (due to his meritorious influence).

१०४. से णं तत्थ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपाए, जाव ससिसोमाकारे, कंते, पियदंसणे, सुरूवे दारए पयाहिति।

१०४. नौ महीने साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर बालक का जन्म होगा। उसके हाथ-पैर सुकोमल होंगे यावत् वह सर्वांग सुन्दर होगा। उसका आकार चन्द्रमा के समान सौम्य होगा। वह कान्तिमान्, देखने में प्रिय एवं सुरूप होगा।

104. At the end of nine months and seven and a half days the male child will be born. His limbs will be delicate... and so on up to... he will be perfectly beautiful. His appearance will be as soothing as the moon. He will be radiant, lovable and handsome.

१०५. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइवडियं काहिंति, बिइयदिवसे चंदसूरदंसणियं काहिंति, छट्ठे दिवसे जागरियं काहिंति, एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते णिव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसाहे दिवसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं, गुणणिप्फण्णं णामधेज्जं काहिंति-जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि धम्मे दढपइण्णा तं होउ णं अम्हं दारए 'दढपइण्णे' णामेणं। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेहिंति दढपइण्णत्ति।

१०५. तत्पश्चात् माता-पिता पहले दिन उस बालक का कुलक्रमागत रीति अनुसार जन्म सम्बन्धी अनुष्ठान करेंगे। दूसरे दिन चन्द्र-सूर्य-दर्शनिका करेंगे। छठे दिन जागरिका-रात्रि जागरण करेंगे। ग्यारहवें दिन वे अशुचि-शोधन विधान (स्नान आदि) से निवृत्त होंगे। फिर बारहवें दिन माता-पिता उसका गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे, जैसे-इस बालक के गर्भ में आते ही हमारी धार्मिक आस्था दृढ़ हुई थी, अतः इसे 'दृढ़प्रतिज्ञ' नाम से पुकारा जाय, 'दृढ़प्रतिज्ञ'-यह गुणानुरूप, गुणनिष्पन्न नाम रखेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

105. On the first day, following the family tradition, the parents will perform ritual ceremonies related to birth of a son. On the second day they will perform the ritual adorational beholding of the sun and the moon. The sixth night will be spent singing devotional songs. On the eleventh day they will perform cleansing ceremony (taking bath and all). On the twelfth day the parents will perform the naming ceremony and give the child a name suiting his virtues—Since this child was conceived our religious faith and belief strengthened, therefore, this boy should be called Dridhapratijna (firm in resolve). We will name him Dridhapratijna based on his qualities.

१०६. तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि–करण–दिवस–णक्खत्त–मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेहिंति।

१०६. "दृढ़ प्रतिज्ञ बालक आठ वर्ष से कुछ अधिक का हो गया है," यह जानकर माता–पिता उसे शुभ तिथि, शुभ करण, शुभ दिवस, शुभ नक्षत्र एवं शुभ मुहूर्त्त में शिक्षण हेतु कलाचार्य के पास ले जायेंगे।

106. "Child Dridhapratijna has become slightly more than eight years." Realizing this the parents will take him to an accomplished teacher (a scholar of numerous subjects) on an auspicious date, day and moment under auspicious astrological signs and constellation.

१०७. तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ, गणियप्पहाणाओ, सउणरुय–पज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिति, सिक्खाविहिति, तं जहा–

लेहं, गणियं, रूवं, णट्टं, गीयं, वाइयं, सरगयं, पुक्खरगयं, समतालं, जूयं, जणवायं, पासगं, अट्ठावयं, पोरेकच्चं, दगमट्टियं, अण्णविहिं, पाणविहिं, वत्थविहिं, विलेवणविहिं, सयणविहिं, अज्जं, पहेलियं, मागहियं, गाहं, गीइयं, सिलोयं, हिरण्णजुत्तिं, सुवण्णजुत्तिं, गंधजुत्तिं, चुण्णजुत्तिं, आभरणविहिं, तरुणीपडिकम्मं, इत्थिलक्खणं, पुरिसलक्खणं, हयलक्खणं, गयलक्खाणं, गोणलक्खणं, कुक्कुडलक्खणं, चक्कलक्खणं, छत्तलक्खणं, चम्मलक्खणं, दंडलक्खणं, असिलक्खणं, मणिलक्खणं, कागणिलक्खणं, वत्थुविज्जं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंधारमाणं, नगरमाणं, वत्थुनिवेसणं, वूहं–पडिवूहं, चारं–पडिचारं, चक्कवूहं, गरुलवूहं, सगडवूहं, जुद्धं, निजुद्धं, जुद्धाइजुद्धं, मुट्ठिजुद्धं, बाहूजुद्धं, लयाजुद्धं, इसत्थं–छरुप्पवाहं, धणुव्वेयं, हिरण्णपागं, सुवण्णपागं, वट्टखेड्डं, सुत्ताखेड्डं, णालियाखेड्डं, पत्तच्छेज्जं, कडगच्छेज्जं, सज्जीवं, निज्जीवं, सउणरुयमिति।

बावत्तरिकलाओ सेहावित्ता, सिक्खावेत्ता अम्मापिईणं उवणेहिति।

१०७. तब कलाचार्य बालक दृढ़प्रतिज्ञ को लेख (अक्षर ज्ञान) एवं गणित (अंक ज्ञान) से प्रारम्भ कर पक्षिशब्द ज्ञान पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सूत्र रूप में–सैद्धान्तिक दृष्टि से, अर्थ रूप में–व्याख्यात्मक दृष्टि से, करण रूप में–प्रयोगात्मक दृष्टि से सधायेंगे, अभ्यास करायेंगे। वे बहत्तर कलाएँ इस प्रकार हैं–

(१) लेख–लेखन–अक्षरविन्यास–कला, (२) गणित, (३) रूप–भित्ति, पाषाण, वस्त्र, रजत, स्वर्ण आदि पर विविध प्रकार का चित्रांकन, (४) नाट्य–अभिनय, नाच, (५) गीत–गायन–संगीत–विद्या, (६) वाद्य–वीणा, दुन्दुभि, ढोल आदि स्वर एवं ताल सम्बन्धी वाद्य (साज) बजाने की कला, (७) स्वरगत–निषाद तथा पंचम–आदि सात स्वरों का परिज्ञान, (८) पुष्करगत–मृदंग वादन की विशेष कला, (९) समताल–ताल का ज्ञान, (१०) द्यूत–जूआ खेलने की कला, (११) जनवाद–लोगों के साथ वार्त्तालाप अथवा वाद–विवाद करने की कला, (१२) पाशक–पासा फेंकने की विशिष्ट कला, (१३) अष्टापद–चौपड़, शतरंज जैसे बिसात के खेलों की कला, (१४) पुरःकाव्य–आशुकविता अथवा पौरस्कृत्य–नगर की रक्षा, व्यवस्था आदि का परिज्ञान, (१५) उदक–मृत्तिका–जल तथा मिट्टी के मेल से बर्तन आदि निर्माण की कला, (१६) अन्नविधि–अन्न उत्पन्न करने अथवा भोजन पकाने की कला, (१७) पानविधि–जल प्रबन्धन तथा पेय पदार्थ बनाने तथा, प्रयोग आदि का परिज्ञान, (१८) वस्त्रविधि–वस्त्र सम्बन्धी ज्ञान, (१९) विलेपनविधि–शरीर पर चन्दन, कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों के लेप का, मण्डन का ज्ञान, (२०) शयनविधि–शय्या आदि बनाने, सजाने की कला, (२१) आर्या–आर्या आदि मात्रिक छन्द रचने की कला, (२२) प्रहेलिका–पहेलियाँ आदि रचने की कला, (२३) मागधिका–मगध देश की भाषा–मागधी–प्राकृत में काव्य–रचना, (२४) गाथा–प्राकृत भाषा में गाथा रचने की कला, (२५) गीतिका–गेय काव्य की रचना, (२६) श्लोक–अनुष्टप् आदि छन्दों में रचना, (२७) हिरण्ययुक्ति–चाँदी बनाने की कला, (२८) सुवर्णयुक्ति–सोना बनाने की कला, (२९) गन्धयुक्ति–सुगन्धित पदार्थ तैयार करने की विधि का ज्ञान, (३०) चूर्णयुक्ति–विभिन्न औषधियों द्वारा तान्त्रिक विधि से निर्मित चूर्ण डालकर दूसरे को वश में करना, स्वयं अन्तर्धान हो जाना आदि (विद्याओं) का ज्ञान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३१) आभरणविधि–आभूषण बनाने तथा धारण करने की कला, (३२) तरुणीप्रतिकर्म–युवतियों को सजाने, शृंगार करने की कला, (३३) स्त्रीलक्षण–पद्मिनी, हस्तिनी, शंखिनी व चित्रिणी स्त्रियों के लक्षणों का ज्ञान, (३४) पुरुषलक्षण–उत्तम, मध्यम, अधम आदि पुरुषों के लक्षणों का ज्ञान, अथवा शश आदि पुरुष–भेदों का ज्ञान, (३५) हयलक्षण–अश्व की जातियों, लक्षणों आदि का ज्ञान, (३६) गजलक्षण–हाथियों के शुभ, अशुभ आदि लक्षणों की जानकारी, (३७) गोलक्षण–गाय, बैल के लक्षणों का ज्ञान, (३८) कुक्कुटलक्षण–मुर्गे के लक्षणों का ज्ञान, (३९) चक्रलक्षण, (४०) छत्रलक्षण, (४१) चर्मलक्षण–ढाल आदि चमड़े से बनी विशिष्ट वस्तुओं के लक्षणों का ज्ञान, (४२) दण्डलक्षण, (४३) असिलक्षण–तलवार की श्रेष्ठता, अश्रेष्ठता का ज्ञान, (४४) मणिलक्षण–रत्नपरीक्षा, (४५) काकणीलक्षण काकिणी नामक रत्न की पहचान, (४६) वास्तु–विद्या–भवन–निर्माण की कला, (४७) स्कन्धावारमान–छावनी लगाना, मोर्चा लगाना आदि की कला, (४८) नगर–निर्माण आदि की कला अथवा नगर–रचना की जानकारी, (४९) वास्तुनिवेशन–भवनों के उपयोग आदि के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान, (५०) व्यूह–आकार–विशेष में सेना स्थापित करने या जमाने की कला, प्रतिव्यूह–शत्रु द्वारा रचे गये व्यूह के मुकाबले तत्प्रतिरोधक दूसरे व्यूह की रचना की कला, (५१) चार–चन्द्र, सूर्य, राहु, केतु आदि ग्रहों की गति का ज्ञान; प्रतिचार–इष्टजनक, अनिष्टजनक शान्तिकर्म का ज्ञान, (५२) चक्रव्यूह–चक्र, रथ के पहिये के आकार में सेना को स्थापित–सज्जित करना, (५३) गरुड़व्यूह के आकार में सेना की रचना करना, (५४) शकटव्यूह–गाड़ी के आकार में सेना को स्थापित करना, (५५) युद्ध की कला, (५६) नियुद्ध–पैदल युद्ध करने की कला, (५७) युद्धातियुद्ध–तलवार, भाला आदि फेंककर युद्ध करने की कला, (५८) मुष्टियुद्ध–मुक्कों से लड़ने में निपुणता, (५९) बाहुयुद्ध–भुजाओं द्वारा लड़ने की कला, (६०) लतायुद्ध–जैसे बेल वृक्ष पर चढ़कर उसे जड़ से लेकर शिखर तक आवेष्टित कर लेती है, उसी प्रकार जहाँ योद्धा प्रतियोद्धा के शरीर को कसकर भूमि पर गिरा देता है और उस पर चढ़ बैठता है, वह कला, (६१) इषुशस्त्र–नागबाण आदि के प्रयोग का ज्ञान, क्षुर–प्रवाह–छुरा आदि फेंककर वार करने का ज्ञान, (६२) धनुर्वेद–धनुर्विद्या, (६३) हिरण्यपाक–रजतसिद्धि, (६४) सुवर्णपाक–सुवर्णसिद्धि, (६५) वृत्तखेल–रस्सी आदि पर चलकर खेल दिखाने की कला, (६६) सूत्रखेल–सूत द्वारा खेल दिखाने, कच्चे सूत द्वारा करिश्मे बतलाने की कला, (६७) नालिकाखेल–नालिका में पास या कौड़ियाँ डालकर गिराना–जुआ खेलने की एक विशेष प्रक्रिया की जानकारी, (६८) पत्रच्छेद्य–एक सौ आठ पत्तों में यथेष्ट संख्या के पत्तों को एक बार में छेदने का हस्त–लाघव, (६९) कटच्छेद्य–चटाई की तरह क्रमशः फैलाये हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्र आदि के छेदन की विशेष प्रक्रिया में निपुणता, (७०) सजीव–पारद आदि मारित धातुओं को पुनः सजीव करना–सहज रूप में लाना, (७१) निर्जीव–पारद, स्वर्ण आदि धातुओं का मारण करना, तथा (७२) शकुनिरुत–पक्षियों के शब्द, गति, चेष्टा आदि जानने की कला।

ये बहत्तर कलाएँ सधाकर, इनका शिक्षण देकर, अभ्यास कराकर कलाचार्य बालक को माता–पिता को सौंप देंगे। (नोट–रायपसेणियसूत्र, सूत्र २८२ में भी ७२ कलाओं का उल्लेख है, किन्तु कहीं–कहीं नामों का अन्तर है)

107. The teacher will then impart theoretical education, including texts and meaning, as well as practical training of the seventy two arts (subjects) beginning with writing and mathematics and ending at the language of birds. The list of these subjects is as follows—

(1) writing or script (writing and reading) (*lekh* or *leham*), (2) mathematics (*ganit* or *ganiyam*), (3) decoration (art work on wall, rock, cloth, silver, gold etc.) (*roop* or *roovam*), (4) dramatics and dance (*natya* or *nattam*), (5) singing (*geet* or *geeyam*), (6) instrumental music (beat and rhythm) (*vadya* or *vaiyam*), (7) musicology (knowledge of musical notes) (*svar-gat* or *saragayam*), (8) playing percussion instruments, specially the mridang (*pushkar-gat* or *pokkharagayam*), (9) knowledge of beats (*samataal* or *samataalam*), (10) gambling (*dyoot* or *jooyam*), (11) conversation and debating (*janavaad* or *nanavaayam*), (12) playing dice (*paashak* or *paasayam*), (13) playing board games like chess and *chopar* (a type of ludo) (*ashtapad* or *atthavayam*), (14) instant poetry (*purahkavya*) or security and administration of a city (*pauraskritya* or *porekachcham*), (15) pottery (*udak-mrittika* or *dagmattiyam*), (16) farming and cooking (*annaviddhi* or *annavihim*), (17) water management including making drinks and use thereof (*paan-vidhi* or *paan-vihim*), (18) garment making (*vastravidhi* or *vatthavuhim*), (19) coating or applying pastes, such as sandalwood and making designs thereof (*vilepan vidhi* or *vilevan vidhi*), (20) the art of making bed (*shayan vidhi* or *sayan vihim*), (21) poetics specially metric rhyming in *arya* and other *matrik chhand* styles (*arya* or *ajjam*), (22) making and solving riddles and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

puzzles (*prahelika* or *paheliyam*), (23) Magadhi language and its poetics (*magadhika* or *magahiyam*), (24) Prakrit language and its poetics (*gatha* or *gaham*), (25) song writing (*gitika* or *geeiyam*), (26) poetics specially related to couplet style in *anushtup* and other suitable meters (*shlok* or *siloyam*), (27) silver refining and smithy (*hiranya yukti* or *hirannajuttim*), (28) gold refining and smithy (*suvarn yukti* or *suvannajuttim*), (29) art of making perfumes (*gandh yukti* or *gandhajuttim*), (30) the art of overpowering others and performing other miraculous acts using powder made of various herbs by tantric process (*churna yukti* or *chunnajuttim*), (31) making ornaments and art of adornment (*abharan vidhi* or *abharan vihim*), (32) taking care of females including their education, beautification etc. (*taruni pratikarma* or *tarunipadikamm*), (33) knowledge of the characteristics of all the four categories of females—*padmini, hastini, shankhini* and *chitrini* (*stree lakshan* or *itthilakkhanam*), (34) knowledge of the characteristics of the male including their grades (noble, medium, and lowly) and classes (*shash* etc.) (*purush lakshan* or *purisalakkhanam*), (35) knowledge of the characteristics of horses (*haya lakshan* or *hayalakkhanam*), (36) knowledge of the characteristics of elephants (*gaj lakshan* or *gayalakkhanam*), (37) knowledge of the characteristics of cows (*go lakshan* or *gonalakkhanam*), (38) knowledge of the characteristics of cocks (*kukkut lakshan* or *kukkudalakkhanam*), (39) knowledge of the characteristics of the disc weapon (*chakra lakshan* or *chckkalakkhanam*), (40) knowledge of the characteristics of umbrella or canopy (*chhatra lakshan* or *chhattalakkhanam*), (41) knowledge of the characteristics of leather and leather goods, such as shield (*charma lakshan* or *chammalakkhanam*), (42) knowledge of the characteristics of the staff (*dand lakshan* or *dandalakkhanam*), (43) knowledge of the characteristics of the sword (*asi lakshan* or *asilakkhanam*), (44) knowledge of the characteristics of gems (*mani lakshan* or *manilakkhanam*), (45) knowledge of the characteristics of the *kakini* (a divine gem) (*kakani lakshan* or *kaganilakkhanam*), (46) architecture (*vaastu vidya* or *vatthuvijjam*), (47) study of military camping, logistics and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

deployment (*skandhaavasramaan* or *khandhaarmaanam*), (48) town planning and urban development (*nagar nirman* or *nagaramanam*), (49) study of building utility (*vaastu niveshan* or *vatthunivesan*), (50) attack and defence strategy or deployment of forces in various formations for effective attack and defence (*vyuha-prativyuha* or *vooham-padivooham*), (51) knowledge of the movement, position and influence of stars and planets like the moon, the sun and planets and means and methods of impeding and enhancing their good and bad effects (*chaar-pratichaar* or *chaaram-padichaaram*), (52) battle formation—circular (*chakravyuha* or *chakkavooham*), (53) battle formation—eagle shape (*garuda vyuha* or *garulavooham*), (54) battle formation—cart shape (*shakat vyuha* or *sagadavooham*), (55) battle or war (*yuddha* or *juddham*), (56) hand-to-hand combat (*niyuddha* or *nijuddham*), (57) war including use of sword, spears, etc. (*yuddhatiyuddh* or *juddhatijuddham*), (58) fist-fight or boxing (*mushtiyuddha* or *mutthijuddham*), (59) arm wrestling (*bahuyuddha* or *bahujuddham*), (60) vine-like combat where the combatant embraces the adversary just as a vine entwines a tree and overpowers him (*latayuddha* or *layajuddham*), (61) the use of energized arrows or missiles like *naag-baan* and knife throwing (*ishushastra* and *kshur-pravaha* or *isattham* and *chharuppavayam*), (62) archery (*dhanurvidya* or *dhanuvveyam*), (63) chemistry of silver (*hiranyapaak* or *hirannapagam*), (64) chemistry of gold (*suvarnapaak* or *suvannapagam*), (65) games of the circle or rope, such as rope walking (*vritta khel* or *vattakhedam*), (66) games of the string (*sutra khel* or *suttakhedam*), (67) gambling or games played by dice thrown from a tube (*nalika khel* or *naliyakhedam*), (68) art of piercing maximum possible leaves in one stroke in a stack of one hundred eight leaves (*patrachhed* or *pattachhejjam*), (69) art of drilling or cutting of holes in leaves and plates in scattered formation (*katachhed* or *kadagachhejjam*), (70) art of converting metallic salts into metals (*sajiva* or *sajjivam*), (71) art of making metallic salts from metals (*nirjiva* or *nijjivam*), and (72) knowing language, movement and other activities of birds (*shakunirut* or *saunaruyamiti*).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

After teaching, imparting practical training and making skillful in all aforesaid seventy two arts or subjects, the teacher will send back the boy to his parents. (There is a mention of seventy two arts in *Rayapaseniya Sutra* also at p. 282 with some variations in the names.)

१०८. तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थगंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेहिंति, सक्कारेत्ता सम्माणेहिंति, सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसज्जेहिंति।

१०८. तब उस दृढ़प्रतिज्ञकुमार के माता-पिता कलाचार्य का प्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, गन्ध (सुगन्धित पदार्थ), माला तथा अलंकार आदि द्वारा सत्कार करेंगे, सम्मान करेंगे। सत्कार-सम्मान कर उन्हें जीविका के योग्य-जिससे समुचित रूप में जीवन-निर्वाह होता रहे, ऐसा प्रीतिदान-पुरस्कार देंगे। पुरस्कार देकर विदा करेंगे।

108. Then the parents of Dridhapratijna Kumar will greet and honour the teacher with ample gifts like staple food, liquids, general food and savoury food (*ashan, paan, khadya, svadya*), clothes, perfumes, garlands and ornaments. After that they will give him endowments enough for his comfortable sustenance and bid him farewell.

१०९. तए णं से दढपइण्णे दारए बावत्तरिकलापंडिए, नवंगसुत्तपडिबोहिए, अट्ठारसदेसी-भासाविसारए, गीयरई, गंधव्वणट्टकुसले, हयजोही, गयजोही, रहजोही, बाहुजोही, बाहुप्पमद्दी, वियालचारी, साहसिए, अलंभोगसमत्थे यावि भविस्सइ।

१०९. इसके बाद यह दृढ़प्रतिज्ञ बालक बहत्तर कलाओं में पण्डित होने पर, उसके नौ अंगों (दो कान, दो नेत्र, दो घ्राण, एक जिह्वा, एक त्वचा तथा एक मन-इन नव अंगों) की चेतना जाग जायेगी। वह यौवनावस्था को प्राप्त होगा तथा वह अठारह देशी भाषाओं-लोक भाषाओं में निपुण बनेगा, गीतप्रिय, गान्धर्व-नाट्य-कुशल-संगीत-विद्या, नृत्य-कला आदि में प्रवीण, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध इन सबमें दक्षता प्राप्त करेगा, विकालचारी होगा। निर्भीकता के कारण रात में भी घूमने-फिरने में निःशंक तथा साहसिक-प्रत्येक कार्य में साहसी दृढ़प्रतिज्ञ बनेगा। इस प्रकार सांगोपांग विकसित संवर्द्धित होकर सांसारिक सुखों का उपभोग करने में सर्वथा समर्थ हो जायेगा।

109. Thereafter when Dridhapratijna becomes well versed in these seventy two arts; his awareness and consciousness of nine sense organs of his body (two ears, two eyes, two nostrils, one tongue, one skin or sense of touch and one mind) attains perfection

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

he will be a mature young man. He will also become proficient in eighteen dialects, singing, dramatics and other allied fields, dancing and other performing arts. He will acquire skills of different types of battles riding horse, elephant, chariot and hand to hand combat as well. He will become a fearless wanderer filled with courage. Thus with an all-round development he will become fully mature and capable of enjoying all comforts and pleasures of life.

११०. तए णं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो बावत्तरिकलापंडियं जाव अलंभोगसमत्थं वियाणित्ता विउलेहिं अण्णभोगेहिं, पाणभोगेहिं, लेणभोगेहिं, वत्थभोगेहिं, सयणभोगेहिं, उवणिमंतेहिंति।

११०. तब उस दृढ़प्रतिज्ञकुमार के माता-पिता उसे बहत्तर कलाओं में मर्मज्ञ यावत् साहसिक जानकर उसे सर्वथा भोग-समर्थ जानकर अन्न, पान, लयन-सुन्दर गृह आदि में निवास, उत्तम वस्त्र तथा शयन-उत्तम शय्या, बिछौने आदि सुखप्रद सामग्री का उपभोग करने का आग्रह करेंगे।

110. Realizing that Dridhapratijna Kumar has become well versed in these seventy two arts... and so on up to... he has become fully mature and capable of enjoying all comforts and pleasures of life, his parents will beseech him to enjoy all comforts including best food, beautiful and furnished house and best of dresses.

१११. तए णं दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति, णो रज्जिहिति, णो गिज्झिहिति, णो मुज्झिहिति, णो अज्झोववज्जिहिति।

१११. तब वह दृढ़प्रतिज्ञकुमार माता-पिता द्वारा प्रस्तुत विपुल अन्न, शयन आदि भोगों में आसक्त नहीं होगा, अनुरक्त-(आकर्षित) नहीं होगा, गृद्ध-किसी भी प्रकार लोलुप नहीं होगा, मूर्च्छित-मोहित नहीं होगा तथा उनमें मन नहीं रमायेगा।

111. On being offered all the aforesaid things including food, abode and other comforts, Dridhapratijna Kumar will not have any attachment (*asakt* or *sajjihit*), attraction (*anurakt* or *rajjihit*), covetousness (*griddha* or *gijjhihit*), fondness (*murchhit* or *mujjhihit*) and infatuation (*adhyavasit* or *ajjhovavajjihit*) for any of these things.

११२. से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा, कुमदे इ वा, नलिने इ वा, सुभगे इ वा, सुगंधे इ वा, पोंडरीए इ वा, महापोंडरीए इ वा, सयपत्ते इ वा, सहस्सपत्ते इ वा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयसहस्सपत्ते इ वा, पंके जाये, जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाये, भोगेहिं संवुड्ढे णोवलिप्पिहिति कामरएणं, णोवलिप्पिहिति भोगरएणं, णोवलिप्पिहिति मित्तणाइ–णियग–सयण–संबंधिपरिजणेणं।

११२. जिस प्रकार उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सुगन्ध, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, शतसहस्रपत्र आदि विविध जाति के कमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं, जल में बढ़ते हैं परन्तु पंक–रज–जल–कीचड़ से जल–रज जल–कणों से लिप्त नहीं होते, अर्थात् निर्लेप स्वच्छ रहते हैं, उसी प्रकार दृढ़प्रतिज्ञकुमार जो काममय जगत् में उत्पन्न होगा, भोगमय जगत् में वृद्धि प्राप्त होगा–पलेगा–बढ़ेगा, किन्तु काम–रज से–शब्द एवं रूप सम्बन्धी भोग्य पदार्थों से, भोग–रज से–गंध–रस तथा स्पर्श सम्बन्धी भोग्य पदार्थों की आसक्ति से लिप्त नहीं होगा, मित्र–ज्ञाति–सजातीय, निजक–भाई, बहन आदि पितृपक्ष के पारिवारिक, स्वजन–नाना, मामा आदि मातृपक्ष के पारिवारिक तथा अन्यान्य सम्बन्धी, परिजन–सेवकवृन्द आदि के मोह बन्धन में नहीं फँसेगा।

112. Different variety of lotuses including *utpal, padma, kumud, nalin, subhag, sugandh, pundareek, mahapundarek, shatapatra, sahasrapatra, shatasahasrapatra* sprout in mud and grow in water but still remain unblemished by fine particles of mud and droplets of water. In the same way, Dridhapratijna Kumar, born in the world of desires and brought up in the world of sensual pleasures, will remain unaffected by attachment of objects of desire having attributes of sound and form (*kama-raj*) and objects of sensual pleasures having attributes of smell, taste and touch (*bhog-raj*). He will also not be trapped in the bonds of love for friends, kinfolk (*jnati*), paternal (*nijak*) and maternal (*svajan*) relatives and servants (*parijan*).

११३. से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति।

११३. वह तथारूप–वीतराग की आज्ञा के अनुसार सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र से युक्त स्थविरों–श्रमणों के पास केवलबोधि–विशुद्ध सम्यक् दर्शन प्राप्त करेगा, गृहवास का परित्याग कर वह अनगारधर्म में दीक्षित होगा।

113. He will acquire pure and right perception/faith from *sthavirs* (senior ascetics) who follow the path of right knowledge, perception/faith and conduct as shown by the *Vitarag*, and then get initiated in the order of the homeless ascetics, renouncing his household.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-१०

Illustration No. 10

अम्बड़ का उत्तरभव : दृढ़ प्रतिज्ञ कुमार

गणधर इन्द्रभूति के पूछने पर भगवान महावीर अम्बड़ परिव्राजक का दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के भव का वर्णन करते हैं। महाविदेह क्षेत्र में एक धनाढ्य कुल में उसका जन्म होगा। आठ वर्ष का होने पर दृढ़ प्रतिज्ञ माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर कलाचार्य के पास शिक्षण हेतु जायेगा। बहत्तर कलाओं में निष्णात बनाकर कलाचार्य उसे माता-पिता को सौंप देते हैं। माता-पिता अनेक प्रकार के आभूषण, वस्त्र, धन आदि देकर कलाचार्य का सम्मान करते हैं।

युवा होने पर माता-पिता उसे विवाह करके धन-वैभव सम्पत्ति का उपभोग करने के लिए बहुत-बहुत आग्रह करेंगे। दृढ़प्रतिज्ञ कुमार उनमें मोहासक्त नहीं होगा। वह घर त्याग कर दीक्षित होगा। दृढ़ प्रतिज्ञ मुनि अनेक वर्षों तक विविध प्रकार के तप करते हुए संयम का पालन करेंगे। अन्त में अनेक प्रकार के उपसर्गों को सहते हुए आठ कर्मों का क्षय करके ज्योतिर्मय स्थान सिद्धालय में जाकर विराजमान होंगे।

—सूत्र १०१-११५

AMBAD'S FUTURE BIRTH : PRINCE DRIDHAPRATIJNA

On being asked by Ganadhar Indrabhuti Bhagavan Mahavir narrates the story of Ambad Parivrajak's reincarnation as prince Dridhapratijna. He will be born in an affluent family in the Mahavideh area. When he is eight years old, Child Dridhapratijna will get blessings of his parents and go to a scholar of numerous subjects. The teacher makes him an expert of seventy two arts and brings him back to his parents. The parents honour the teacher by offering him ample ornaments, dresses, and money.

When he enters youth his parents will insist him to marry and enjoy their wealth and grandeur. Prince Dridhapratijna will avoid this attachment. He will renounce the household and get initiated. Ascetic Dridhapratijna will follow the path of ascetic discipline for many years observing a variety of austerities. In the end enduring many afflictions he will shed all the eight types of *karmas* and transcend to the radiant realm of *Siddhas*.

—*Sutra 101-115*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११४. से णं भविस्सइ अणगारे भगवंते ईरियासमिए जाव गुत्तबंभचारी।

११४. वे अनगार भगवान–दृढ़प्रतिज्ञ मुनि ईर्यासमिति आदि समिति–गुप्ति से युक्त, गुप्त ब्रह्मचारी–सम्पूर्ण नियमोपनियमपूर्वक (नवबाड़ सहित) ब्रह्मचर्य का परिपालन करने वाले होंगे।

114. That *anagar Bhagavan* Dridhapratijna will become an ascetic strictly observing all the ascetic code from *Irya samiti* (care of movement) to *gupta brahmachari* (absolute celibacy).

११५. तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स अणंते, अणुत्तरे, णिव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जहिति।

११५. इस प्रकार की चर्या में विहरमान–ऐसा साधनामय जीवन जीते हुए दृढ़प्रतिज्ञ मुनि को क्रमशः अनन्त–अनन्त पदार्थों को जानने वाला, अनुत्तर–सर्वश्रेष्ठ, निर्व्याघात–बाधा या व्यवधानरहित, आवरणरहित, समग्र–सर्वार्थग्राहक, प्रतिपूर्ण–परिपूर्ण, केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होगा।

115. Leading such ascetic life of spiritual pursuits ascetic Dridhapratijna will, in due course, attain infinite, unmatched, unrestricted, unveiled, perfect and supreme omniscience (*keval-jnana* and *keval-darshan*).

११६. तए णं से दढपइण्णे केवली बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणिहिति, केवलिपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे, मुंडभावे, अण्हाणए, अदंतवणए, केसलोए, बंभचेरवासे, अच्छत्तग अणोवाहणगं, भूमिसेज्जा, फलगसेज्जा, कट्ठसेज्जा, परघरपवेसो लद्धावलद्धं, परेहिं हीलणाओ, खिंसणाओ, निंदणाओ, गरहणाओ, तालणाओ, तज्जणाओ, परिभवणाओ, पव्वहणाओ, उच्चावया गामकटंगा, बावीसं परीसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमट्ठमाराहित्ता चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिज्झिहिति, बुज्झिहिति, मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिति।

११६. तत्पश्चात् दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवलि–पर्याय का पालन करेंगे अर्थात् केवलि अवस्था में विचरेंगे। केवलि–पर्याय का पालन करते हुए, एक मास की संलेखना और साठ भक्त (प्रतिदिन दो समय का भोजन मानने के अनुसार साठ भोजन काल अर्थात्) एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मास का अनशन सम्पन्न कर जिस उद्देश्य के लिए नग्नभाव (शरीर के प्रति अनासक्त भाव), मुण्डभाव–सांसारिक सम्बन्धों व कषायों का त्याग, अस्नान (स्नान का परित्याग), अदन्तवन (दतौन आदि का त्याग), केशलुंचन, ब्रह्मचर्यवास, अच्छत्रक–छाता धारण नहीं करना, जूते या पादरक्षिका धारण नहीं करना, भूमि पर सोना, फलक–काष्टपट्ट पर सोना, भिक्षा हेतु परगृह में प्रवेश करना, समय पर आहार की प्राप्ति हो या न हो फिर भी समभाव रखना, दूसरों द्वारा की गई भर्त्सनापूर्ण अवहेलना–अवज्ञा या तिरस्कार, खिंसना–मर्मोद्घाटनपूर्वक अपमान सहना, निन्दना–निन्दा, गर्हणा लोगों के समक्ष प्रकट की गई मानसिक घृणा, तर्जना–अंगुली आदि द्वारा संकेत कर कहे गये कटु वचन, ताड़ना–थप्पड़ आदि द्वारा परिताड़न, परिभवना–अपमान, परिव्यथना–व्यथा, आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों के लिए कष्टकर अनुकूल–प्रतिकूल स्थितियाँ, बाईस प्रकार के परीषह तथा देवादिकृत उपसर्ग आदि स्वीकार किये हैं, उस आत्म–कल्याण रूप चरम लक्ष्य को प्राप्त करके अपने अन्तिम उच्छ्वास–निःश्वास (अन्तिम साँस) में सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिवृत्त होंगे, सब दुःखों का अन्त करेंगे।

116. After that, Dridhapratijna Kevali will live and move about as an omniscient for many years. At the last moment, on achieving the ultimate goal of spiritual beatitude for which, while living as an omniscient, he underwent and endured various hardships—such as remaining unclad (*nagnabhaava* or detached from body); tonsured (*mundabhaava* or renouncing mundane relations and passions); giving up bathing (*asnana*); not cleaning teeth (*adantavan*); pulling out hair (*kesh lunchan*); practicing celibacy (*brahmacharyavaas*); giving up use of umbrella and sandals (*achhatrak* and *anopahanagam*); lying on ground (*bhumishayan*); lying on wooden plank (*phalak shayan* and *kashta shayan*); visiting houses of other people to seek alms; remaining equanimous irrespective of getting alms or not; ignoring rude neglect by others; tolerating scathing insult, slandering, hatred of people, rebuke, beating, affront, pain, and conditions unfavourable for sense organs including eyes, ears and nose; and twenty two kinds of physical afflictions and divine afflictions—he will observe the ultimate vow with month long fasting and become perfect (*Siddha*), enlightened (*buddha*), liberated (*mukta*), free of cyclic rebirth (*parinivrit*) and thus shall end all miseries.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११७. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु पव्वइया समणा भवंति, तं जहा– आयरियपडिणीया, उवज्झायपडिणीया, कुलपडिणीया, गणपडिणीया, आयरियउवज्झायाणं अयसकारगा, अवण्णकारगा, अकित्तिकारगा, बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा, वुप्पाएमाणा विहरित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति। बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयअप्पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं लंतए कप्पे देवकिब्बिसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, तेरस सागरोवमाइं ठिई। अणाराहगा, सेसं तं चेव।

११७. जो ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में प्रव्रजित श्रमण विहार करते हैं, जैसे– आचार्य–प्रत्यनीक–आचार्य के प्रतिकूल आचरण करने वाले, उपाध्याय–प्रत्यनीक, कुल–प्रत्यनीक, गण–प्रत्यनीक, आचार्य और उपाध्याय का अपयश करने वाले, अवर्णकारक–अवगुण कथन करने वाले, अकीर्तिकारक–अपकीर्ति या निन्दा करने वाले, अनेक प्रकार के असद्भाव की उद्भावना करने वाले–वस्तुतः जो है नहीं, ऐसी असत्य बातों या दोषों के आरोप लगाने वाले तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेश द्वारा अपने को तथा अन्यों को–दोनों को दुराग्रह में डालते हुए, अपने आपको तथा दूसरों को आशातना रूप पाप में गिराते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण–पर्याय का पालन करते हैं। तथापि अपने पाप–स्थानों की आलोचना, प्रतिक्रमणा नहीं करते हुए मृत्युकाल आ जाने पर मरण प्राप्त कर वे उत्कृष्ट लान्तक नामक छठे देवलोक में किल्विषिक जाति (जो देवलोक में साफ–सफाई आदि सेवा–कार्य करते हैं) के देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। उनकी वहाँ स्थिति तेरह सागरोपम प्रमाण होती है। वे (आलोचना आदि नहीं करने के कारण) अनाराधक–धर्म के विराधक होते हैं। (शेष वर्णन पूर्ववत् है।)

THE UPAPAT OF PRATYANEEKS

117. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live some initiated *Shramans* who are defiant to *acharyas*, who are defiant to *upadhyayas*, who are defiant to their *kula* (ascetic lineage), who are defiant to their *gana* (ascetic group), who defame *acharya* and *upadhyaya*, who criticize *acharya* and *upadhyaya* and who slander *acharya* and *upadhyaya*. For many years they live as *Shramans* inculpating others in many ways,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

misguiding themselves and others by indulging in unrighteous behaviour and pushing themselves and others into the sin of contemptuousness. They neither repent (doing critical review or *pratikraman*) nor atone for their sinful deeds. When time comes they abandon their earthly bodies and are born as *Kilvishik* (doing menial duties) gods in the lofty sixth heaven called *Lantak dev-lok*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is thirteen *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They do not aspire for next birth (because they do not atone for their sins). (rest of the details as already mentioned)

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनि जीवों का उपपात

११८. से जे इमे सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पज्जत्तया भवंति, तं जहा– जलयरा, थलयरा, खहयरा। तेसि णं अत्थेगइयाणं सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूहमग्गणगवेसणं करेमाणाणं सण्णीपुव्वजाइसरणे समुप्पज्जइ,

तए णं समुप्पण्णजाइसरणा समाणा सयमेव पंचाणुव्वयाइं पडिवज्जंति, पडिवज्जित्ता बहूहिं सीलव्वय–गुणवेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणा बहूहिं वासाइं आउयं पालेंति, पालित्ता आलोइयपडिक्कंता, समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, परलोगस्स आराहगा, सेसं ते चेव।

११८. जो ये **संज्ञी**–मन सहित, **पर्याप्त**–(आहारादि–पर्याप्तियुक्त) तिर्यंचयोनि में उत्पन्न–(–पशु–पक्षी जाति के) जीव होते हैं, जैसे–**जलचर**–पानी में चलने वाले, **स्थलचर**–पृथ्वी पर चलने वाले तथा **खेचर**–आकाश में चलने वाले, उनमें से कइयों के उत्तम अध्यवसाय, शुभ परिणाम तथा लेश्याओं की विशुद्धि होने के कारण ज्ञानावरण एवं वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होने से अपने विषय में ईहा (सामान्य विचार), अपोह (विशेष चिन्तन), मार्गणा, गवेषणा (अनुकूल–प्रतिकूल युक्तियों से विशेष विमर्श) करते हुए उन्हें अपनी संज्ञी अवस्था से पूर्ववर्ती भवों की स्मृति–जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने के कारण वे जीव स्वयं ही पाँच अणुव्रतों को स्वीकार कर लेते हैं। फिर अनेकविध शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान–त्याग, पौषधोपवास आदि द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक जीवित रहते हैं। फिर वे अपने किये हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पापस्थानों की आलोचना कर, प्रतिक्रमण कर, समाधि–अवस्था प्राप्त कर, मृत्युकाल आने पर देह का त्याग कर उत्कृष्ट सहस्रारकल्प देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। उनकी वहाँ स्थिति अठारह सागरोपम–प्रमाण होती है। वे परलोक के आराधक होते हैं। (शेष वर्णन पूर्ववत् जानें।)

THE UPAPAT OF SENTIENT FIVE SENSED ANIMALS

118. Because of the extinction-cum-pacification (*kshayopasham*) of *jnanavaraniya* (knowledge obscuring) *karma* and *viryantaraya* (potency hindering) *karma* caused by noble assiduity (*adhyavasaya*), good intentions (*parinam*) and purity of *leshyas* (colour-code indicator of purity of soul) many of these sentient (*sanjni*), fully developed (*paryapt*), animals (*tiryanch*) including aquatic (*jal-char*), terrestrial (*sthal-char*) and aerial (*khe-char*) beings acquire *jati-smaran jnana* or regain the memories of their births preceding the sentient state while indulging in the gradual process of *iha* (inquiry), *apoh* (deduction), *margana* (confirmation) and *gaveshana* (elimination) about the self.

As a result of acquiring *jati-smaran jnana* (the knowledge about earlier births), these beings accept five minor vows of their own volition. For many years they live enkindling their soul in many ways observing vows of spiritual discipline, restraints that reinforce the practice of *anuvrats*, disinterest in the mundane, renunciation and partial ascetic vow. They repent (doing critical review or *pratikraman*) and atone before the guru for their sinful deeds and transcend into the state of meditation. When time comes they abandon their earthly bodies and are born as gods in the lofty *Sahasrara kalp dev-lok*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is eighteen *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They are spiritual aspirants for next birth (because they atone for their sins). (rest of the details as already mentioned)

आजीवकों का उपपात

११९. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु आजीविया भवंति, तं जहा– १. दुघरंतरिया, २. तिघरंतरिया, ३. सत्तघरंतरिया, ४. उप्पलबेंटिया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. घरसमुदाणिया, ६. विज्जयंतरिया, ७. उट्टिया समणा, ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं परियायं पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तहिं तेसिं गई, बावीसं सागरोवमाइं ठिई, अणाराहगा, सेसं तं चेव।

११९. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो आजीवक-(गौशालक मतानुयायी) होते हैं, जैसे-(१) दो घरों के अन्तर से-दो घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले, (२) तीन घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले, (३) सात घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले, (४) भिक्षा में केवल कमल-डंठल ग्रहण करने वाले, (५) प्रत्येक घर से भिक्षा लेने वाले, (६) जब बिजली चमकती हो तब भिक्षा नहीं लेने वाले, (७) मिट्टी से बने नाँद जैसे बड़े बर्तन में बैठकर तप करने वाले, वे ऐसे आचार का पालन करते हुए-बहुत वर्षों तक आजीवक-पर्याय का पालन कर, मृत्युकाल आने पर मरण प्राप्त कर, उत्कृष्ट अच्युत कल्प (बारहवें देवलोक) में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। उनकी स्थिति बाईस सागरोपम-प्रमाण होती है। वे आराधक नहीं होते। (शेष वर्णन पूर्ववत् है।)

THE UPAPAT OF AJIVAKS

119. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live a variety of *Ajivaks* (followers of Gaushalak), such as—(1) those who collect alms from every third house on the way, (2) those who collect alms from every fourth house on the way, (3) those who collect alms from every eighth house on the way, (4) those who accept only lotus stalk as alms, (5) those who collect alms from every house on the way, (6) those who do not accept alms when lightening occurs, and (7) those who sit in a large earthen tub for their spiritual practices. They spend years as *Ajivaks* following the *Ajivak* code. When time comes, they abandon their earthly bodies and are born as gods in the lofty *Achyut-kalp* (the twelfth heaven). Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is upto twenty two *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). Other details are same as already mentioned.

आत्मोत्कर्षक आदि प्रव्रजित श्रमणों का उपपात

१२०. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु पव्वइया समणा भवंति, तं जहा- अत्तुकोसिया, परपरिवाइया, भूइकम्मिया, भुज्जो-भुज्जो कोउयकारगा, ते णं एयारूवेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयअपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं अच्चुएकप्पे आभिओगिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, बावीसं सागरोवमाइं ठिई, परलोगस्स अणाराहगा, सेसं तं चेव।

१२०. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो प्रव्रजित श्रमण होते हैं, जैसे–**आत्मोत्कर्षक**–अपना उत्कर्ष दिखाने वाले–अपनी प्रशंसा करने वाले, **परपरिवादक**–दूसरों की निन्दा करने वाले, **भूतिकर्मिक**–ज्वर आदि रोगग्रस्त लोगों की बाधा तथा उपद्रव शान्त करने हेतु अभिमन्त्रित भस्म आदि देने वाले, **कौतुककारक**–भाग्योदय आदि के निमित्त चमत्कारिक बातें बताने वाले। वे इस प्रकार की चर्या रखते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करते हैं। अपने गृहीत श्रमण-पर्याय का पालन कर वे अन्ततः अपने कृत पापस्थानों की आलोचना निन्दा नहीं करते हुए, उनका प्रतिक्रमण नहीं करते हुए, मृत्युकाल आने पर शरीर त्यागकर उत्कृष्ट अच्युतकल्प में **आभियोगिक**–सेवक वर्ग के देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। उनकी स्थिति बाईस सागरोपम-प्रमाण होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते। (शेष वर्णन पूर्ववत्।)

THE UPAPAT OF ATMOKARSHAK AND OTHER INITIATED SHRAMANS

120. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live some initiated *Shramans* who are indulging in self-praise (*Atmokarshak*), who criticize others (*Parparivadak*), who distribute consecrated ash and other such things for removing ailments and other problems of people (*Bhootikarmik*), and who claim expertise in miraculously bringing good luck to people. For many years they live as *Shramans* following the aforesaid ways. They neither repent (doing critical review or *pratikraman*) nor atone before the guru for their sinful deeds. When time comes they abandon their earthly bodies and are born as *Abhiyogik* gods (servant gods) in the lofty *Achyut-kalp* (the twelfth heaven). Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is upto twenty two *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They do not aspire for next birth (because they do not atone for their sins). (rest of the details as already mentioned)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२१. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु णिण्हगा भवंति, तं जहा–१. बहुरया, २. जीवपएसिया, ३. अव्वत्तिया, ४. सामुच्छेइया, ५. दोकिरिया, ६. तेरासिया, ७. अबद्धिया इच्चेते सत्त पवयणणिण्हगा, केवलचरियालिंगसामण्णा, मिच्छादिट्ठि बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा, वुप्पाएमाणा विहरित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं उवरिमेसु गेवेज्जेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई, परलोगस्स अणाराहगा, सेसं तं चेव।

१२१. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये निह्नव होते हैं, जैसे–(१) बहुरत, (२) जीवप्रादेशिक, (३) अव्यक्तिक, (४) सामुच्छेदिक, (५) द्वैक्रिय, (६) त्रैराशिक, तथा (७) अबद्धिक, वे सातों ही जिन–प्रवचन–वीतराग वाणी का अपलाप करने वाले या विपरीत प्ररूपणा करने वाले होते हैं। वे केवल चर्या–भिक्षायाचना आदि बाह्य क्रियाओं में तथा लिंग–रजोहरण आदि चिन्हों में श्रमणों के समान दीखते हैं। वे मिथ्यादृष्टि हैं। जिनका कोई सद्भाव या अस्तित्त्व नहीं है, ऐसे अविद्यमान पदार्थों या तथ्यों की उद्भावना–निराधार परिकल्पना द्वारा, मिथ्यात्व अभिनिवेश द्वारा अपने को, औरों को–दोनों को ही दुराग्रह में डालते हुए, जिन–प्रवचन के प्रतिकूल प्ररूपणा करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण–पर्याय का पालन करते हैं। श्रमण–पर्याय का पालन कर, मृत्युकाल आने पर शरीर त्यागकर उत्कृष्ट ग्रैवेयक देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। वहाँ उनकी स्थिति इकतीस सागरोपम प्रमाण होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते। (शेष वर्णन पूर्ववत् समझें।)

THE UPAPAT OF NIHNAVAS

121. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live some *nihnavas* (mendacious seceders), such as—(1) *Bahurat*, (2) *Jivapradeshik*, (3) *Avyaktik*, (4) *Samuchhedik*, (5) *Dvaikriya*, (6) *Trairashik*, and (7) *Abaddhik*. These seven are dissenters to the sermon of the *Jina* and present an opposing view. They are *Shramans* only in their *charya* or praxis (alms-seeking and other outward activities) and *ling* or appearance (garb and equipment). They have false perception and belief (*mithyadrishti*). For many years they live as *Shramans* misguiding themselves and others with baseless theories about non-existent things and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

concepts, spreading falsehood and preaching against the sermon of the *Jina*. When time comes, they abandon their earthly bodies and are born as gods in the lofty *Graiveyak dev-lok*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is upto thirty one *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They are not true spiritual aspirants for next birth (because they do not atone for their sins). (rest of the details as already mentioned)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में जिन सात निह्नवों का उल्लेख हुआ है—आचार्य अभयदेवसूरि ने अपनी वृत्ति में संक्षेप में उनकी चर्चा की है। निह्नवों के विषय में यत्र-तत्र अनेक ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होते हैं। निन्हवों के विषय में संक्षेप में परिचय इस प्रकार है—

सात निह्नव

निह्नव के रूप में यहाँ उनका उल्लेख है, जिनका जैन तत्त्व ज्ञान के किसी एक विषय में मतभेद हुआ, मतभेद होने पर जो भगवान महावीर के शासन से पृथक् हुए, किन्तु जिन्होंने अन्य धर्म-सम्प्रदाय को स्वीकार नहीं किया इसलिए वे जैन-शासन के एक विषय का अपलाप करने वाले निह्नव कहलाये। निन्हव वे होते हैं, जो किसी विषय को लेकर हठाग्रह या मिथ्या अहंकार के कारण विपरीत प्ररूपणा करते हैं। वे सात हुए हैं उनमें से दो भगवान महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के बाद हुए और शेष पाँच निर्वाण के पश्चात्। इनका अस्तित्त्वकाल श्रमण भगवान महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदह वर्ष से निर्वाण के पश्चात् पाँच सौ चौरासी वर्ष तक का है—

(१) **बहुरत**—भगवान महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती में बहुरतवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्ररूपक जमालि थे। ये क्षत्रिय राजकुमार भगवान महावीर के जामाता थे। बहुरतवादी कार्य की सम्पन्नता में दीर्घकाल की अपेक्षा मानते हैं। वह क्रियमाण को कृत नहीं मानते, अपितु वस्तु के पूर्ण निष्पन्न होने पर ही उसका अस्तित्त्व स्वीकार करते हैं।

(२) **जीवप्रादेशिक**—भगवान महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर में जीवप्रादेशिकवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्त्तक तिष्यगुप्त थे। जीव के असंख्य प्रदेश हैं, परन्तु जीवप्रादेशिक मतानुसारी जीव के चरम प्रदेश को ही जीव मानते हैं, शेष प्रदेशों को नहीं।

(३) **अव्यक्तिक**—भगवान महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ चौदह वर्ष पश्चात् श्वेताम्बिका नगरी में अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्त्तक आचार्य आसाढ़ के शिष्य थे। अव्यक्तवादी के शिष्य अनेक थे, अतएव उनके नामों का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। मात्र उनके पूर्वावस्था के गुरु का नामोल्लेख किया गया है।

(४) **सामुच्छेदिक**—भगवान महावीर के निर्वाण के दो सौ बीस वर्ष पश्चात् मिथिलापुरी में समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्त्तक आचार्य अश्वमित्र थे। ये प्रत्येक पदार्थ का सम्पूर्ण विनाश मानते हैं एवं एकान्त समुच्छेद का निरूपण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **द्वैक्रिय**–श्रमण भगवान महावीर के निर्वाण के दो सौ अट्ठाईस वर्ष पश्चात् उल्लुकातीर नगर में द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्त्तक आचार्य गंग थे। ये एक ही साथ दो क्रियाओं का अनुवेदन मानते हैं।

(६) **त्रैराशिक**–श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पाँच सौ चवालीस वर्ष पश्चात् अन्तरंजिका नगरी में त्रैराशिक मत का प्रवर्त्तन हुआ। इसके प्रवर्त्तक आचार्य रोहगुप्त (षडुलूक) थे। उन्होंने दो राशि के स्थान पर तीन राशियाँ (जीव, अजीव, नो जीव) मानीं।

(७) **अबद्धिक**–श्रमण भगवान महावीर के निर्वाण के पाँच सौ चौरासी वर्ष पश्चात् दशपुर नगर में अबद्धिक मत का प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्त्तक आचार्य गोष्ठामाहिल थे। इनका यह मन्तव्य था कि कर्म आत्मा का स्पर्श करते हैं किन्तु उनके साथ एकीभूत नहीं होते।

१ जमालि, ६ रोहगुप्त तथा ७ गोष्ठामाहिल के अतिरिक्त अन्य चार निह्नव अपनी-अपनी भूलों का प्रायश्चित्त लेकर पुनः संघ में सम्मिलित हो गये। जमालि, रोहगुप्त तथा गोष्ठामाहिल, जो संघ से अन्त तक पृथक् ही रहे, उनकी कोई परम्परा नहीं चली। न उनका कोई साहित्य ही उपलब्ध है।

निह्नवों के विशेष वर्णन के लिए विशेषावश्यक भाष्य तथा जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग २ में देखा जा सकता है।

Elaboration—In his commentary (*Vritti*), Acharya Abhayadev Suri has briefly discussed the seven *nihnavas* (mendacious seceders) mentioned in this aphorism. Scattered references about them are also available in various other scriptures. A brief introduction of *nihnavas* (mendacious seceders) is as follows—

SEVEN NIHNAVAS (MENDACIOUS SECEDERS)

Those people have been included in *nihnavas* (mendacious seceders) here who had difference of opinion on some particular philosophical topic or principle of Jainism. For these differences they left Bhagavan Mahavir's order but did not join any other school or sect. That is why they were called *nihnavas* (mendacious seceders) preaching against some specific Jain principle. *Nihnavas* (mendacious seceders) are those conceited individuals who oppose some established principle to propagate their dogmatic views. There have been seven such groups, two of which came into being after Bhagavan Mahavir attained omniscience and five after his nirvana. Their period extends from fourteen years after Bhagavan Mahavir's attaining omniscience to 584 ANM (After the Nirvana of Mahavir).

(1) Bahurat—Fourteen years after Bhagavan Mahavir attained omniscience the *Bahurat-vaad* school came into existence in Shravasti. Its founder was Jamali. This *Kshatriya* prince was the son-in-law of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhagavan Mahavir. *Bahurat-vaad* maintains that a long period of time is needed for the conclusion of an act. They do not believe in the theory that the work in progress should be taken to be accomplished. They accept it only when it is concluded.

(2) Jivapradeshik—Sixteen years after Bhagavan Mahavir attained omniscience the *Jivapradeshik-vaad* school came into existence in Rishabhpur. Its founder was Tishyagupta. Soul has innumerable space-points (*pradesh*) but according to the *Jivapradeshik-vaad* school only the final space-point (*pradesh*) is accepted as soul and not the rest.

(3) Avyaktik—Two hundred and fourteen years after the nirvana of Mahavir the *Avyakt-vaad* school came into existence in Shvetambika city. Its founder was a disciple of Acharya Asadh. *Avyakt-vaadi* had many disciples but their names are not available. The only available mention is of his guru prior to his dissent.

(4) Samuchhedik—Two hundred and twenty years after the nirvana of Bhagavan Mahavir the *Samuchhed-vaad* school came into existence in Mithilapuri. Its founder was Acharya Ashvamitra. This school believes in total destruction of every substance and propagates the theory of absolute destruction.

(5) Dvaikriya—Two hundred and twenty eight years after the nirvana of Bhagavan Mahavir the *Dvikriya-vaad* school came into existence in Ullukateer city. Its founder was Acharya Gang. This school believed in the possibility of two simultaneous activities.

(6) Trairashik—Five hundred and fourty four years after the nirvana of Bhagavan Mahavir the *Trairashik-vaad* school came into existence in Antaranjika city. Its founder was Acharya Rohagupta (Shaduluk). Instead of two groups—soul and matter—he postulated three groups—soul, matter and non-soul.

(7) Abaddhik—Five hundred and eighty four years after the nirvana of Bhagavan Mahavir the *Abaddhik-vaad* school came into existence in Dashpur city. Its founder was Acharya Goshthamahil. This school believed that *karmas* touch soul but are not fused with it.

Other than Jamali (1), Rohagupta (6) and Goshthamahil (7), four *nihnavas* later atoned for their misconceptions and mistakes to rejoin the order. Jamali, Rohagupta and Goshthamahil never rejoined the order. No lineage of disciples nor any literature connected with them is available.

For further details about *nihnavas* consult *Visheshavashyak Bhashya* and *Jain Siddhant Bol Samgrah*, Part 2.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२२. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा—अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, धम्मिट्ठा, धम्मक्खाई, धम्मप्पलोई, धम्मपलज्जणा, धम्मसमुदायारा, धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा, सुसीला, सुव्वया, सुप्पडियाणंदा।

साहूहिं एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया एवं जाव एगच्चाओ कोहाओ, माणाओ, लोहाओ, पेज्जाओ, दोसाओ, कलहाओ, अब्भक्खाणाओ, पेसुण्णओ, परपरिवायाओ, अरइरइओ, मायामोसाओ, मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।

एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। एगच्चाओ पयणपयावणाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ पयणपयावणाओ अपडिविरया। एगच्चाओ कोट्टणपिट्टणतज्जणतालणवहबंधपरिकिलेसाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। एगच्चाओ ण्हाणमद्दणवण्णगविलेवणसद्दफरिसरसरूवगंध-मल्लालंकाराओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति, तओ वि एगच्चाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।

१२२. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य होते हैं, जैसे—**अल्पारंभी**—आवश्यक थोड़ी हिंसा से जीवन चलाने वाले, **अल्पपरिग्रही**—सीमित धन, धान्य आदि में सन्तोष रखने वाले, **धार्मिक**—श्रुत चारित्ररूप धर्म का आचरण करने वाले, **धर्मानुग**—श्रुत धर्म या आगमानुमोदित धर्म का अनुसरण करने वाले, **धर्मिष्ठ**, धर्मप्रिय—धर्म में प्रीति रखने वाले, **धर्माख्यायी**—धर्म का आख्यान करने वाले, भव्य प्राणियों को धर्म बताने वाले अथवा **धर्मख्याति**—धर्म में ख्याति प्राप्त करने वाले, **धर्मप्रलोकी**—धर्म को उपादेय रूप में देखने वाले, **धर्मप्ररंजन**—धर्म में विशेष रूप से अनुरंजित रहने वाले, **धर्मसमुदाचार**—धर्म का सम्यक् आचरण करने वाले, धर्मपूर्वक अपनी जीविका चलाने वाले, **सुशील**—उत्तम शील, आचारयुक्त, सुव्रत—श्रेष्ठ व्रतयुक्त, **सुप्रत्यानन्द**—जिनका चित्त सदा धर्म में आनन्दयुक्त रहता हो।

वे साधुओं के पास—साधुओं की साक्षी से **एगच्चाओ**—आंशिक रूप में, या स्थूल रूप में जीवनभर के लिए हिंसा से निवृत्त होते हैं, किन्तु सूक्ष्म हिंसा से जो निवृत्त नहीं होते, इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह स्थूल मृषावाद आदि से भी समझना चाहिए तथा जो क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, परपरिवाद से, रति-अरति से, माया-मृषाभ से तथा मिथ्यादर्शन शल्य से स्थूल रूप से तो निवृत्त होते हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप में अनिवृत्त अविरत रहते हैं।

वे स्थूल रूप में जीवनभर के लिए आरम्भ-समारम्भ से विरत होते हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप में अविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए स्थूलरूप में किसी क्रिया के करने-कराने से विरत होते हैं, सूक्ष्म रूप से अप्रतिविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए पकाने-पकवाने से स्थूल रूप में प्रतिविरत होते हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप में अविरत होते हैं, इसी प्रकार कूटने-पीटने, तर्जित करने-कटु वचनों द्वारा भर्त्सना करने, ताड़ना करने, थप्पड़ आदि द्वारा ताड़ित करने, **वध**-प्राण लेने, **बन्ध**-रस्सी आदि से बाँधने, **परिक्लेश**-पीड़ा देने से स्थूल रूप में प्रतिविरत होते हैं, सूक्ष्म रूप में अप्रतिविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला तथा अलंकार से स्थूल रूप में विरत होते हैं, सूक्ष्म रूप में अविरत रहते हैं, इसी प्रकार और भी पापमय प्रवृत्तियुक्त, छल-प्रपंचयुक्त, दूसरों के प्राणों को कष्ट पहुँचाने वाले कर्मों से जीवनभर के लिए स्थूल रूप में प्रतिविरत होते हैं, किन्तु स्थूल रूप में अप्रतिविरत रहते हैं।

THE UPAPAT OF ALPARAMBHI AND OTHER HUMAN BEINGS

122. In places like *gram, aakar,*... and so on up to... *sannivesh* there live people who—commit minimum violence barely essential for subsistence (*alparambhi*). They are content with limited wealth and possessions (*alpaparigrahi*). They follow the religious conduct as stated in scriptures (*dharmik*). They pursue the spiritual path as stated in the *Agams* (*dharmanug*). They have affinity for religion (*dharmisth*). They preach religion to the worthy (*dharmakhyayi*) or are famous as being religious (*dharmakhyati*). They consider religion to be their goal. They are absorbed in religion (*dharmapraranjan*), are steadfast in following the right religious conduct and earn their livelihood religiously. They are good in religious conduct (*sushil*). They are good observers of vows (*suvrat*) and are blissful in following the religious path (*supratyanand*).

Under the guidance of ascetics they partially and broadly abstain from harming or destroying life (*pranatipat*) for their whole life but not absolutely and precisely. The same statement should be

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

repeated for *mrishavad* (falsity), *adattadan* (taking without being given; act of stealing), *maithun* (indulgence in sexual activities) and *parigraha* (act of possession of things). Also they partially and broadly, but not absolutely and precisely, abstain from indulging in *krodh* (anger), *maan* (conceit), *maya* (deceit), *lobha* (greed), *raag* (attachment inspired by love, deceit and greed), *dvesh* (aversion inspired by suppressed anger and conceit), *kalah* (dispute), *abhyakhyan* (blaming falsely), *paishunya* (inculpating someone), *paraparivad* (slandering), *rati-arati* (inclination towards indiscipline and against discipline), *mayamrisha* (to betray or tell a lie deceptively) and *mithyadarshan shalya* (the thorn of wrong belief or unrighteousness).

They partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from indulging in sinful deeds. They partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from worldly action and instigating such action. They partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from cooking or causing others to cook. In the same way they partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from hammering, reprimanding, insulting, slapping or beating, killing, binding with a rope and tormenting. They partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from bathing, massaging, painting, besmearing and influence of sound, touch, taste, form, smell, garlands and ornaments. In the same way they partially and broadly, but not absolutely and precisely, desist for their whole life from all other activities that are sinful, deceitful and tormenting to others.

१२३. तं जहा–समणोवासगा भवंति, अभिगयजीवाजीवा, उवलद्धपुण्णपावा, आसव–संवर–निज्जर–किरिया–अहिगरण–बंध–मोक्ख–कुसला, असहेज्जा, देवासुर–णाग–जक्ख–रक्खस–किन्नर–किंपुरिस–गरुल–गंधव्व–महोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा, निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया, णिक्कंखिया, निव्वितिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता "अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊसियफलिहा, अवंगुयदुवारा, चियत्तंतेउरपरघरप्पवेसा चउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेत्ता समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण–पाण–खाइम–साइमेणं, वत्थपडिग्गह–कंबलपायपुच्छणेणं, ओसहभेसज्जेणं पडिहारएण य पीढफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा विहरंति।

विहरित्ता भत्तं पच्चक्खंति ते बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता, समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, बावीसं सागरोवमाई ठिई, आराहगा, सेसं तहेव।

१२३. इसी प्रकार ऐसे श्रमणोपासक होते हैं, जो जीव, अजीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता होते हैं। जिन्होंने पुण्य और पाप का भेद अच्छी प्रकार जाना है। आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध एवं मोक्ष के विषय में हेय–उपादेय के ज्ञान से युक्त हैं। जो धर्म–साधना में किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते हैं, जिन्हें देव, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व, महोरग आदि देव निर्ग्रन्थ–प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते, जो निर्ग्रन्थ–प्रवचन में शंकारहित, अन्य भौतिक आकांक्षाओं से रहित, विचिकित्सा–संशयरहित, धर्म के यथार्थ तत्त्व को प्राप्त किये हुए, जिज्ञासा या प्रश्न द्वारा उसे स्थिर किये हुए, तत्त्व रहस्य को पूर्ण रूप में ग्रहण किये हुए, निश्चित रूप में आत्मसात् किये हुए हैं, जिनकी अस्थि और मज्जा तक धर्म के प्रति प्रेम तथा अनुराग से रँगे हैं। जो दूसरों को इस प्रकार बताते हैं, अथवा जिनका यह निश्चित विश्वास है कि "यह निर्ग्रन्थ–प्रवचन ही सारभूत है, इसके सिवाय अन्य सब सारहीन–व्यर्थ हैं।

(व्यवहार में वे इतने उदार और विश्वसनीय हैं कि–) **उच्छ्रित–परिघ**–कभी जिनके घर के किवाड़ों के आगल नहीं लगी रहती, अथवा जिनका हृदय स्फटिक के समान निर्मल है। **अपावृतद्वार**–भिक्षुक, अतिथि आदि खाली न लौट जायें, इस दृष्टि से जिनके घर के दरवाजे सदा खुले रहते हों **त्यक्तान्तःपुर गृहद्वार प्रवेश**–राजा के अन्तःपुर अथवा घर के भीतरी भाग में जिनका प्रवेश विश्वसनीय एवं प्रीतिकारक है, साधना की दृष्टि से चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध का सम्यक् अनुपालन करते हुए, श्रमण–निर्ग्रन्थों को प्रासुक–अचित्त, एषणीय–निर्दोष अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद–प्रोञ्छन, औषध–जड़ी–बूटी आदि वनौषधि, भेषज–तैयार औषधि, दवा, प्रातिहारिक वस्तु (–लेकर वापस लौटा देने योग्य वस्तु), बाजोट, ठहरने का स्थान, बिछाने के लिए घास आदि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए धर्म का पालन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार का जीवन जीते हुए वे अन्त समय में भोजन का त्याग कर देते हैं। बहुत से भोजनकाल अनशन रूप में व्यतीत करते हैं, अनशनकाल में वे पापस्थानों की आलोचना करते हैं। प्रतिक्रमण करते हैं। इस प्रकार समाधि अवस्था प्राप्त कर मृत्युकाल आने पर देह त्यागकर उत्कृष्टतः अच्युतकल्प में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। अपने स्थान के अनुरूप वहाँ उनकी गति होती है। उनकी स्थिति बाईस सागरोपम प्रमाण होती है। वे परलोक के आराधक होते हैं। (शेष वर्णन पूर्ववत् है।)

123. Also there are *Shraman* worshippers (*Shramanopasaks*) who have properly acquired the knowledge of the living (*jiva*), non-living (*ajiva*) and other substances, who have properly understood the difference between merit-demerit (*punya-paap*), who have discriminatory knowledge about inflow of *karmas* (*asrava*), blocking of inflow of *karmas* and shedding of *karmas* (*smavar-nirjara*), action (*kriya*), means (*adhikaran*), bondage (*bandh*) and liberation (*moksha*). They do not seek help from others in their religious pursuits. They cannot be forced to waver from the *Nirgranth* sermon by gods and lower gods including Asur, Naag, Suparn, Yaksh, Rakshas, Kinnar, Kimpurush, Garud, Gandharva and Mahorag. Being free of any doubt, perplexity and ambiguity in the *Nirgranth* sermon they have received, confirmed by raising questions, absorbed, acquired in entirety and the real fundamentals of religion. Affinity and attachment for religion has penetrated deep into their bone and marrow. They have unwavering faith that only this *Nirgranth* sermon is meaningful or beatific and everything else is meaningless or worthless.

(They are so liberal and upright in behaviour that—) in their houses door bolts are never used (*Uchchhrit phaliha*), this also means that their hearts are as pure as crystal; to avoid guests and beggars returning unattended, gates of their houses are never closed to anyone (*Apavritadvar*); and their entry to the inner (ladies) quarters of any house, including the king's palace, never offends anyone (*Tyaktantahpura grihadvar pravesh*). Properly observing the complete *paushadh* (partial ascetic vow) on eighth, fourteenth and fifteenth days of every fortnight and offering uncontaminated and acceptable food (of four kinds—*ashan, paan, khadya* and *svadya*), garb, blanket, napkin, medicine and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

returnable things like bed, living quarters, hay for making bed etc. to *Shraman-nirgranths*, they lead a pious life.

Leading such pious life they finally take the ultimate vow (*samlekhana*) and observe a long period of fasting doing critical review of the transgressions committed. Doing so, at the time of death, they abandon this earthly body in the state of meditation. Abandoning this body they reincarnate as gods in the lofty *Achyut-kalp*. Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is upto twenty two *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They are true aspirants for next birth. (rest of the details as already mentioned.)

आरम्भ त्यागी श्रमणों का मोक्ष

१२४. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा–अणारंभा, अपरिग्गहा धम्मिया जाव कप्पेमाणा सुसीला, सुव्वया, सुपडियाणंदा, साहू, सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया, जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया, सव्वाओ, कोहाओ, माणाओ, मायाओ, लोभाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया, सव्वाओ आरंभ–समारंभाओ पडिविरया, सव्वाओ करण–कारावणाओ पडिविरया, सव्वाओ पयण–पयावणाओ पडिविरया, सव्वाओ कोट्टण–पिट्टण–तज्जण–तालण–वह–बंध–परिकिलेसाओ पडिविरया, सव्वाओ ण्हाण–मद्दण–वण्णग–विलेवण–सद्द–फरिस–रस–रूव–गंध–मल्लालंकाराओ पडिविरया, जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जति, तओ वि पडिविरया जावज्जीवाए।

१२४. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य रहते हैं, उनमें से कई एक मनुष्य साधु होते हैं। आरम्भरहित होते हैं। परिग्रह के त्यागी होते हैं। धार्मिक होते हैं यावत् धर्म का अनुसरण करने वाले, धर्मिष्ठ तथा धर्मपूर्वक आजीविका चलाने वाले होते हैं। सुशील, सुव्रत–व्रतों का निर्दोष पालन करने वाले, जिनका चित्त सदा धर्मध्यान से आनन्द आल्हादयुक्त रहता हो, वे जीवनभर के लिए सम्पूर्णतः सब प्रकार की हिंसा (यावत् सम्पूर्णतः असत्य आदि) तथा समस्त परिग्रह से विरक्त होते हैं, वे सभी प्रकार के क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरक्त होते हैं, सब प्रकार के आरम्भ–समारम्भ से निवृत्त होते हैं, करने तथा कराने से सम्पूर्णतः विरक्त होते हैं। सब प्रकार पचन–पाचन की क्रियाओं से विरक्त होते हैं। कूटने, पीटने, तर्जित करने, ताडित करने, किसी के प्राण लेने,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस्सी आदि से बाँधने एवं किसी को कष्ट देने से सम्पूर्ण रूप में प्रतिविरत होते हैं, स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला और अलंकार से सम्पूर्ण रूप में दूर रहते हैं, इसी प्रकार सभी सावद्य–पाप प्रवृत्तियुक्त, छल–प्रपंचयुक्त जो दूसरों के प्राणों को कष्ट पहुँचाने वाले कार्य हैं, उनसे भी जीवनभर के लिए सम्पूर्ण रूप में विरत होते हैं।

THE UPAPAT OF ARAMBH-TYAGI SHRAMANS

124. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live people some of whom are *sadhus* (ascetics). They commit no sinful activity or violence. They completely renounce possessions. They follow the religious conduct as stated in scriptures (*dharmik*),... and so on up to... subsist religiously, are good in religious conduct (*sushil*), are good observers of vows (*suvrat*) and are blissful in following the religious path (*supratyanand*). Under the guidance of ascetics they absolutely and precisely abstain from harming or destroying life (*pranatipat*) for their whole life. The same statement should be repeated for *mrishavad* (falsity), *adattadan* (taking without being given, act of stealing), *maithun* (indulgence in sexual activities) and *parigraha* (act of possession of things). Also they absolutely and precisely abstain from indulging in *krodh* (anger), *maan* (conceit), *maya* (deceit), *lobha* (greed),... and so on up to... *mithyadarshan shalya* (the thorn of wrong belief or unrighteousness). They absolutely and precisely, desist for their whole life from indulging in sinful deeds. They absolutely and precisely, desist for their whole life from worldly action and instigating such action. They absolutely and precisely, desist for their whole life from cooking or causing others to cook. In the same way, they absolutely and precisely, desist for their whole life from hammering, reprimanding, insulting, slapping or beating, killing, binding with a rope and tormenting. They absolutely and precisely, desist for their whole life from bathing, massaging, painting, besmearing and influence of sound, touch, taste, form, smell, garlands and ornaments. In the same way, they absolutely and precisely, desist for their whole life from other activities that are sinful, deceitful and tormenting to others.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२५. से जहाणामए अणगारा भवंति–इरियासमिया, भासासमिया, जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओकाउं विहरंति।

१२५. ये जो अनगार–भगवंत होते हैं, वे ईर्या समिति, भाषा समिति आदि पाँच समितियों में सम्यक् रूप में यतनाशील होते हैं यावत् वे निर्ग्रन्थ के सभी गुणों से युक्त होते हैं। निर्ग्रन्थ, प्रवचन वीतराग वाणी रूप जिन–आज्ञा को सम्मुख रखते हुए विचरण करते हैं ऐसा पवित्र आचारयुक्त जीवन व्यतीत करते हैं।

125. These *Anagar Bhagavants* (venerated ascetics) properly follow the right code of self regulation related to movement, speech (etc.)... and so on up to... are endowed with all qualities of a *Nirgranth*. Keeping in mind the *Nirgranth* sermon, they lead life observing the pious code of conduct.

१२६. तेसि णं भगवंताणं एएणं विहारेणं विहरमाणाणं अत्थेगइयाणं अणंते जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जइ। ते बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खंति, भत्तं पच्चक्खित्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव अंतं करंति।

१२६. इस प्रकार निर्ग्रन्थ–प्रवचन को आगे करके संयमी जीवन व्यतीत करने वाले श्रमणों में से कइयों को अन्तरहित, केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होता है। वे बहुत वर्षों तक केवली–पर्याय का पालन करते हुए पृथ्वी पर विचरण करते हैं। अन्त में आहार का परित्याग करते हैं, बहुत भक्तों का अनशनकाल सम्पन्न कर जिस लक्ष्य के लिए नग्न भाव धारण किया है उसकी आराधना करते हुए सब दुःखों का अन्त करते हैं।

126. Some of these *Shramans* leading a disciplined life keeping in mind the *Nirgranth* sermon acquire *keval-jnana* and *keval-darshan* (ultimate knowledge and perception). For many years they wander around on this earth as omniscients. In the end they observe the ultimate vow for a long period of fasting and pursuing the goal for which they had embraced the unclad state they end all their miseries (attain liberation).

१२७. जेसिं पि य णं एगइयाणं णो केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जइ, ते बहूइं वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता आबाहे वा अणुप्पण्णे वा भत्तं पच्चक्खंति। ते बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठमाराहित्ता चरिमेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊसासणीसासेहिं अणंतं अणुत्तरं, निव्वाघायं, निरावरणं, कसिणं, पडिपुण्णं केवलवरनाणदंसणं उप्पादेंति, तओ पच्छा सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति।

१२७. इन श्रमण भगवंतों में से कतिपय अनगारों को केवलज्ञान, केवलदर्शन शीघ्र उत्पन्न नहीं होता, वे बहुत वर्षों तक छद्मस्थ-पर्याय में रहते हुए संयम का पालन करते हैं। फिर कभी चाहे किसी प्रकार के रोग आदि विघ्न उत्पन्न हों, चाहे नहीं हों, तो भी वे भोजन का परित्याग कर देते हैं। बहुत दिनों का अनशन करते हैं। अनशन सम्पन्न कर, जिस लक्ष्य से कष्टपूर्ण संयम-पथ स्वीकार किया, उसकी सम्यक् आराधना कर अपने अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास में (अन्तिम समय में) अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् सिद्ध होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं।

127. Some of these *Shramans* do not acquire *keval-jnana* and *keval-darshan* (ultimate knowledge and perception) soon. They observe ascetic-discipline for many years living as *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual *karmic* bondage). At some opportune moment they abandon food irrespective of being sick and tormented or not. After a prolonged period of fasting and pursuing the goal for which they had accepted the rigorous path of ascetic-discipline, they acquire the infinite, unique, unimpeded, unveiled, absolute and complete *keval-jnana* and *keval-darshan* (ultimate knowledge and perception) during their last breath. After that they attain the status of *Siddha* and end all miseries.

एकभवावतारी श्रमण

१२८. एगच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई, तेतीसं सागरोवमाइं ठिई, आराहगा, सेसं तं चेव।

१२८. उन अनगार भगवंतों में कुछ ऐसे भी अनगार होते हैं जो एक ही भव करने वाले-भविष्य में केवल एक ही बार मनुष्य-देह धारण करने वाले अथवा **भयत्राता**-संयममयी साधना द्वारा संसार भय से अपना परित्राण करने वाले साधक, जिनके पूर्व संचित कर्मों में से कुछ कर्म अवशेष रह जाते हैं, जिस कारण मृत्युकाल आने पर देह त्यागकर उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव रूप में उत्पन्न होते हैं, वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है। उनकी स्थिति तेतीस सागरोपम प्रमाण होती है। वे परलोक के आराधक होते हैं। (शेष वर्णन पूर्ववत् जानें।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

SHRAMANS DESTINED FOR JUST ONE REINCARNATION

128. Some of these *Anagar Bhagavants* (venerable ascetics) are those who are to reincarnate in future, only once as human beings or those aspirants who seek salvation from the fear of rebirths through their ascetic practices. As they are left with some residual *karmas* from those accumulated in the past, at the time of death, they abandon this earthly body and reincarnate as gods in the lofty *Sarvarth Siddha Mahaviman* (a divine dimension). Their state (*gati*) is according to their respective status. Their life-span there is thirty-three *Sagaropam* (a metaphoric unit of time). They are true aspirants for next birth. (rest of the details as already mentioned.)

सर्वकामादिविरत मनुष्यों का उपपात

१२९. से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति, तं जहा—सव्वकामविरया, सव्वरागविरया, सव्वसंगातीता, सव्वसिणेहाइक्कंता अक्कोहा, निक्कोहा, खीणक्कोहा एवं माण-माय-लोहा, अणुपुव्वेणं अट्ठ कम्मपयडीओ खवेत्ता उप्पिं लोयग्गपइट्ठाणा हवंति।

१२९. ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य रहते हैं, जैसे—शब्द आदि समस्त काम्य विषयों से जो विरक्त हो चुके हैं, सब प्रकार के राग परिणामों से जो निवृत्त हैं, **सर्व संगातीत**—सब प्रकार की आसक्तियों से दूर हैं, **सर्वस्नेहातिक्रान्त**—सब प्रकार के स्नेह से मुक्त हो चुके हैं, क्रोध को विफल करने वाले, **निष्क्रोध**—जिनके क्रोध का उदय ही नहीं होता, **क्षीणक्रोध**—जिनका क्रोध मोहनीय कर्म क्षीण हो गया हो, इसी प्रकार जिनके मान, माया, लोभ क्षीण हो गये हों, वे आठों कर्म-प्रकृतियों का क्षय करते हुए लोक के अग्र भाग में प्रतिष्ठित होते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।

THE UPAPAT OF SARVAKAMADIVIRAT

129. In places like *gram, aakar,...* and so on up to... *sannivesh* there live some people who have become apathetic to all kinds and objects of desire, such as sound; who are devoid of all thoughts and attitudes of attachment; who are beyond any infatuations; who are free of all kinds of fondness and love; who have subdued their anger (*akrodh*); in whom anger does not even arise (*nishkrodh*) and who have shed the anger-creating deluding *karma* (*krodh mohaniya karma*). In the same way, there are those who have shed the conceit, deceit and greed creating deluding *karmas* (*maan, maya, lobh*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

mohaniya karmas). They shed all the eight *karma prakritis* (species of *karma* by qualitative segregation) and are installed at the edge of the universe. In other words, they attain liberation.

केवली–समुद्घात सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

१३०. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवलिसमुग्घाएणं समोहणित्ताकेवलकप्पं लोयं फुसित्ता णं चिट्ठइ ?

हंता, चिट्ठइ।

१३०. भगवन् ! भावितात्मा–(अध्यात्म रस से अनुप्रीणित) अनगार केवलि–समुद्घात द्वारा आत्म–प्रदेशों को देह से बाहर निकालकर क्या समग्र लोक का स्पर्श कर स्थित होते हैं ?

हाँ, गौतम ! स्थित होते हैं।

QUESTIONS REGARDING KEVALI-SMUDGHAT

130. *Bhante* ! Do the worthy souls (inspired by spiritualism) expand their soul-space-points (*atmapradesh*) through the process of *Kevali-samudghat* (the bursting process through which an omniscient destroys the residual *karma* particles) and touch the entire universe (*lok* or occupied space) ?

Yes, Gautam ! They do.

१३१. से नूणं भंते केवलकप्पे लोए तेहिं निज्जरापोग्गलेहिं फुडे ?

हंता, फुडे।

१३१. भगवन् ! क्या उन समुद्घात से निर्जरित–खिरे हुए पुद्गलों से समग्र लोक स्पृष्ट (व्याप्त) होता है ?

हाँ, गौतम ! होता है।

131. *Bhante* ! Do the particles of matter shed and scattered during this process of *samudghat* (bursting) envelope the entire universe (*lok* or occupied space) ?

Yes, Gautam ! They do.

छद्मस्थ की जानने की क्षमता

१३२. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं फासं जाणइ पासइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

१३२. भगवन् ! छद्मस्थ-सराग अवस्था में रहा मनुष्य क्या उन निर्जरा पुद्गलों के वर्ण रूप से वर्ण को, गन्ध रूप से गन्ध को, रस रूप से रस को तथा स्पर्श रूप से स्पर्श को जानता है ? देखता है ?

गौतम ! ऐसा सम्भव नहीं है।

CAPACITY OF A CHHADMASTH TO EXPERIENCE

132. *Bhante* ! Is it possible for a *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual *karmic* bondage) to experience and know the appearance, smell, taste and touch of the matter particles so shed and scattered in the form of appearance, smell, taste and touch ?

No, Gautam ! That is not possible.

१३३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव (गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं फासं) जाणइ, पासइ ?

१३३. भगवन् ! यह किस अभिप्राय से कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन खिरे हुए पुद्गलों के वर्ण रूप से वर्ण को, गन्ध रूप से गन्ध को, रस रूप से रस को तथा स्पर्श रूप से स्पर्श को जरा भी नहीं जानता, नहीं देखता ?

133. *Bhante* ! For what reason it is said that it is not possible for a *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual *karmic* bondage) to experience and know the appearance, smell, taste and touch of the matter particles so shed and scattered in the form of appearance, smell, taste and touch ?

१३४. गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए, सव्वखुड्डाए, वट्टे, तेलापूयसंठाणसंठिए वट्टे, रहचक्कवालसंठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलियं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

१३४. गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सभी द्वीपों तथा समुद्रों के बिलकुल बीच में स्थित है। यह आकार में सबसे छोटा है, गोल है। तेल में पके हुए पूए के समान गोल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रथ के पहिये के आकार के सदृश गोलाकार है। कमलकर्णिका–कमल के बीज–कोष की तरह गोल है। पूर्ण चन्द्रमा के आकार के समान गोलाकार है। इसकी लम्बाई–चौड़ाई एक लाख योजन प्रमाण है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष तथा साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक इसकी परिधि बतलाई गई है।

134. Gautam ! This Jambudvipa continent is located at the center of all continents and oceans. It is round and smallest of all. It is round like a *pua* (a round fried cookie), like a chariot wheel, like a lotus seed pod and like a full moon. Its length and breadth is one hundred thousand *Yojans* (one *Yojan* being eight miles). Its circumference is said to be three hundred sixteen thousand two hundred twenty seven *Yojans*, three *Kosas*, one hundred twenty eight *Dhanushas* and thirteen *Anguls*. (for details about these units see *Illustrated Anuyog-dvar Sutra*, Part II, p. 72)

१३५. देवे णं महिड्ढीए, महज्जुतीए महब्बले, महाजसे, महासुक्खे, महाणुभावे, सविलेवणं गंधसमुग्गयं गिण्हइ, गिण्हित्ता तं अवदालेइ, अवदालित्ता जाव इणामेव त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा।

१३५. एक अत्यधिक ऋद्धिमान्, द्युतिमान्, अत्यन्त बलवान्, महायशस्वी, परम सुखी, बहुत प्रभावशाली ऐसा कोई देव चन्दन, केसर आदि विलेपन करने योग्य सुगन्धित चूर्ण से परिपूर्ण पेटी लेता है, लेकर उस पेटी को वहीं पर खोलता है, खोलकर उस सुगन्धित चूर्ण को सर्वत्र बिखेरता हुआ तीन चुटकी बजाने जितने समय में समस्त जम्बूद्वीप की इक्कीस परिक्रमाएँ कर तुरन्त लौट आता है।

135. A god endowed with great fortune, radiance, power, glory, happiness and influence takes a box filled with perfumed powder (sandalwood, saffron etc.) prepared for application. He opens the box and sprinkling around the powder, moves with great speed going around Jambudveep twenty one times and returning in as little time as taken in snapping fingers thrice.

१३६. से नूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?

हंता फुडे !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६. गौतम ! क्या समस्त जम्बूद्वीप उन सुगन्धित घ्राण पुद्गल परमाणुओं से स्पृष्ट होता है; भरा जाता है ?

हाँ, भगवन्, ऐसा होता है।

136. Gautam ! Is the whole Jambudveep enveloped by those ultimate smell particles of matter ?

Yes, *Bhante* ! It is.

१३७. छउमत्थे णं गोयमा ! मणुस्से तेसिं घाणपोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ पासइ ?

भगवं ! णो इणट्ठे समट्ठे।

१३७. गौतम ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन घ्राण-पुद्गलों को वर्ण रूप से वर्ण आदि को किंचित् रूप में भी जान पाता है ? देख पाता है ?

भगवन् ! ऐसा सम्भव नहीं है।

137. Is it possible for a *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual karmic bondage) to experience and know the appearance... and so on up to... touch of those ultimate smell particles of matter ?

No, *Bhante* ! It is not possible.

१३८. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ, पासइ।

१३८. गौतम ! इसी अभिप्राय से यह कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन खिरे हुए पुद्गलों के वर्ण रूप से वर्ण आदि को जरा भी नहीं जानता, नहीं देखता।

138. Gautam ! For the same reason it is said that it is not possible at all for a *chhadmasth* (one who is short of omniscience due to residual karmic bondage) to experience and know the appearance, smell, taste and touch of the matter particles so shed and scattered in the form of appearance, smell, taste and touch.

१३९. एए सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता, समणाउसो ! सव्वलोयं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३९. आयुष्मान् श्रमणो ! वे पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। वे समग्र लोक का स्पर्श कर स्थित रहते हैं।

139. Long lived *Shramans* ! Those particles are extremely subtle. They exist in a touching state and enveloping the entire *lok* (occupied space or universe).

केवली–समुद्‌घात का हेतु

१४०. कम्हा णं भंते ! केवली समोहणंति ? कम्हा णं केवली समुग्घायं गच्छंति ?

गोयमा ! केवली णं चत्तारि कम्मंसा अपलिक्खीणा भवंति, तं जहा–१. वेयणिज्जं, २. आउयं, ३. णामं, ४. गोत्तं। सव्वबहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ। सव्वत्थोए से आउए कम्मे भवइ। विसमं समं करेइ बंधणेहिं ठिईहि य। एवं खलु केवली समोहणंति, एवं खलु केवली समुग्घायं गच्छंति।

१४०. भगवन् ! केवली किस कारण समुद्‌घात करते हैं–किस कारण आत्म–प्रदेशों को फैलाते हैं।

गौतम ! केवलियों के वेदनीय, आयुष्य नाम तथा गोत्र–ये चार कर्मांश–कर्म दलिक अपरिक्षीण रहते हैं–पूर्णतः क्षीण नहीं होते, उनमें वेदनीय कर्म सबसे अधिक होता है, आयुष्य कर्म सबसे कम होता है। बन्धन एवं स्थिति द्वारा विषम कर्मों को वे सम करते हैं। बन्धन एवं स्थिति की दृष्टि से विषम कर्मों को सम करने हेतु केवली–समुद्‌घात् करते हैं। आत्म–प्रदेशों को फैलाते हैं।

THE PURPOSE OF KEVALI SAMUDGHAT

140. *Bhante* ! Why does a *Kevali* undertake the process of *Kevali samudghat* ? Why does he acquire the rarefied state of soul-space-points ?

Gautam ! Parts of four kinds of *karmas* of *Kevalis* are not completely shed or destroyed; they are *vedaniya* (*karma* that causes feelings of happiness or misery), *ayushya* (*karma* that determines the span of a given life-time), *naam* (*karma* that determines the destinies and body types) and *gotra* (*karma* responsible for the higher or lower status of a being). Of these residual *karmas*, *vedaniya* is maximum and *ayushya* is minimum. They have to equate these disproportionate *karmas* in terms of intensity and periodicity. They undertake the process of *Kevali samudghat* in

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

order to balance these *karmas*, disproportionate in terms of intensity and periodicity. For that purpose they launch the process of bursting and rarefying the soul-space-points.

१४१. सव्वे वि णं भंते ! केवली समुग्घायं गच्छंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे;

अकित्ता णं समुग्घायं, अणंता केवली जिण।
जरामरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया॥

१४१. भगवन् ! क्या सभी केवली-समुद्घात करते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं है।

समुद्घात किये बिना ही अनन्त केवली, जिन-(वीतराग) जरा और मृत्यु से सर्वथा मुक्त होकर सिद्धावस्था रूप सर्वोत्कृष्ट गति को प्राप्त हुए हैं। (समुद्घात वे ही करते हैं, जिनके विषय में सूत्र १४० लागू होता है।)

141. *Bhante* ! Do all *Kevalis* undergo the process of *Kevali-samudghat* ?

Gautam ! That is not true.

Without undertaking *samudghat* infinite *Kevali Jinas* (detached omniscients) have got themselves liberated from ageing and death and attained the most exalted state of perfection (*Siddha*). (*Samudghat* is undertaken only by those to whom conditions described in aphorism 140 are applicable.)

समुद्घात का स्वरूप

१४२. कइसमए णं भंते ! आउज्जीकरणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते।

१४२. भगवन् ! यह मोक्ष-प्राप्ति का आवर्जीकरण-बँधे हुए कर्मों को उदयावस्था में लाने का प्रक्रियाक्रम कितने समय का कहा गया है ?

गौतम ! वह असंख्येय समयवर्ती अन्तर्मुहूर्त्त का कहा गया है।

NATURE OF SAMUDGHAT

142. *Bhante* ! What is said to be the time required to bring the *karmas* fused to the soul to the state of fruition (*avarjikaran*) ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Gautam ! It is said to be an *antarmuhurt* (less than one *muhurt* or 48 minutes) consisting of innumerable *Samayas* (the ultimate fractional unit of time that cannot be divided any further; the smallest unit of time).

१४३. केवलिसमुग्घाए णं भंते ! कइसमइए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते। तं जहा—पढमे समए दंडं करेइ, बिईए समए कवाडं करेइ, तइए समए मंथं करेइ, चउत्थे समए लोयं पूरेइ, पंचमे समए लोयं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ। तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ।

१४३. भगवन् ! केवली-समुद्घात कितने समय का कहा है ?

गौतम ! केवली-समुद्घात आठ समय का कहा गया है। पहले समय में केवली ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक के अंत तक आत्म-प्रदेशों को विस्तीर्ण कर दण्ड के आकार में फैलाते हैं। दूसरे समय में केवली आत्म-प्रदेशों को कपाटाकार विस्तीर्ण करते हैं अर्थात् आत्म-प्रदेश पूर्व तथा पश्चिम दिशा में फैलकर कपाट का आकार धारण कर लेते हैं। तीसरे समय में केवली उन्हें मन्थानाकार करते हैं—आत्म-प्रदेश दक्षिण तथा उत्तर दिशा में फैलकर मथानी का आकार ले लेते हैं। चौथे समय में केवली लोकशिखर सहित सम्पूर्ण लोक के अन्तरालों (बीच के खाली स्थान को) आत्म-प्रदेशों से भर देते हैं। पाँचवें समय में उसी के विलोम क्रम में अन्तराल स्थित आत्म-प्रदेशों का संहरण करते हैं। छठे समय में मन्थानी के आकार में अवस्थित आत्म-प्रदेशों का संहरण करते हैं। सातवें समय में कपाट के आकार में स्थित आत्म-प्रदेशों को वापस संकुचित करते हैं। आठवें समय में दण्ड के आकार में स्थित आत्म-प्रदेशों का प्रतिसंहरण करते हैं। तत्पश्चात् वे (पूर्ववत्) अपने शरीर में स्थित हो जाते हैं।

143. *Bhante* ! What is said to be the time required for *Kevali-samudghat* ?

Gautam ! It is said to be eight *Samayas* (the smallest unit of time)—In the first *Samaya* the *Kevali* expands his soul-space-points to envelope space from lowest tip of the lower world (hells) to the highest tip of the upper world (heavens) in shape of a stick (cylindrical). In the second *Samaya* he expands his soul-space-points laterally from east to west taking the shape of a door (cubical but flat). In the third *Samaya* he expands his soul-space-points across from south to north taking the shape of a churning-stick. In

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the fourth *Samaya* he expands his soul-space-points filling the remaining void with his soul-space-points to cover the whole *lokakasha* (the occupied space or the universe). In the fifth *Samaya* he reverses the process and shrinks the soul-space-points from the void (to regain the churning stick shape). In the sixth *Samaya* from the churning stick shape (to regain the door shape). In the seventh *Samaya* from the door shape (to regain the stick shape). In the eighth *Samaya* from the stick shape to regain the original form of the body.

समुद्घात में योग प्रवृत्ति

१४४. से णं भंते ! तया समुग्घायं गए किं मणजोगं जुंजइ ? वयजोगं जुंजइ ? कायजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ, णो वयजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ।

१४४. भगवन् ! समुद्घात अवस्था में प्रवर्त्तमान केवली क्या मनोयोग का प्रयोग करते हैं ? क्या वचनयोग का प्रयोग करते हैं ? अथवा काययोग का प्रयोग करते हैं ?

गौतम ! समुद्घात में प्रवर्त्तमान केवली न तो मनोयोग का प्रयोग करते हैं, न ही वचनयोग का, किन्तु मात्र एक काययोग का प्रयोग करते हैं। अर्थात् उस समय केवल काययोग की क्रिया होती है।

ASSOCIATION DURING SAMUDGHAT

144. *Bhante* ! During the process of *samudghat* does a *Kevali* indulge in activity associated with mind (*mano-yoga*) ? Does he indulge in activity associated with speech (*vachan yoga*) ? Does he indulge in activity associated with body (*kaya-yoga*) ?

Gautam ! During the process of *samudghat* a *Kevali* neither indulges in activity associated with mind nor in activity associated with speech. He only indulges in activity associated with body ?

१४५. कायजोगं जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ? ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ ? वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ ? वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ ? आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ ? आहारगमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ ? कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं पि जुंजइ णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ, णो वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, कम्मसरीरकायजोगं पि जुंजुइ।

पढमट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, बिइयछट्ठसत्तमेसु समएसु ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, तइयचउत्थ पंचमेहिं कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ।

१४५. भगवन् ! काययोग का प्रयोग करते हुए क्या वे केवली औदारिक शरीर काययोग को काम में लेते हैं, औदारिक शरीर से क्रिया करते हैं? अथवा औदारिक–मिश्र (औदारिक और कार्मण) दोनों शरीरों से क्रिया करते हैं? क्या वैक्रिय शरीर से क्रिया करते हैं? अथवा वैक्रिय–मिश्र (कार्मण–मिश्रित अथवा औदारिक मिश्रित वैक्रिय) शरीर से क्रिया करते हैं? क्या आहारक शरीर से क्रिया करते हैं? अथवा आहारक–मिश्र (औदारिक मिश्रित आहारक शरीर) से क्रिया करते हैं? क्या कार्मण शरीर से क्रिया करते हैं? अर्थात् सात प्रकार के काययोग में से किस काययोग का प्रयोग करते हैं?

गौतम ! समुद्घात अवस्था में स्थित केवली भगवान औदारिक शरीर काययोग से क्रिया करते हैं, औदारिक–मिश्र काययोग से भी क्रिया करते हैं। किन्तु वे वैक्रिय शरीर तथा वैक्रिय–मिश्र शरीर से क्रिया नहीं करते। आहारक शरीर तथा आहारक–मिश्र शरीर काययोग से भी क्रिया नहीं करते। अर्थात् वे केवली भगवान मात्र औदारिक तथा औदारिक के साथ–साथ कार्मण शरीर काययोग का प्रयोग करते हैं।

पहले और आठवें समय में वे औदारिक शरीर काययोग का प्रयोग करते हैं। दूसरे, छठे एवं सातवें समय में वे औदारिक–मिश्र शरीर काययोग का प्रयोग करते हैं। तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में कार्मण शरीर काययोग का प्रयोग करते हैं। (अर्थात् सात प्रकार के काययोगों में मात्र औदारिक शरीर काययोग, औदारिक–मिश्र शरीर काययोग तथा कार्मण शरीर काययोग का प्रयोग करते हैं।)

145. *Bhante* ! While undertaking activity associated with the body does a *Kevali* employ association of the *Audarik sharira* (acts with the gross physical body) or mixed *Audarik sharira, i.e. Audarik* and *Karman* (both, gross physical body and *karmic*) body ? Does he employ *Vaikriya sharira* (transmutable body) or mixed *Vaikriya sharira, i.e. Vaikriya-Karman* or *Vaikriya-Audarik* (*karmic* and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

transmutable or *karmic* and gross physical) bodies ? Does he employ *Aharak sharira* (telemigratory body) or mixed *Aharak sharira, i.e. Aharak* and *Audarik* (telemigratory and gross physical) bodies ? Does he employ *Karman sharira* (*karmic* body) ? In other words, of the seven kinds of body associations which one does he employ ?

Gautam ! While undertaking activity associated with the body a *Kevali* employs association of the *Audarik sharira* (acts with the gross physical body) and also mixed *Audarik sharira*. He does not employ *Vaikriya sharira* (transmutable body) or mixed *Vaikriya sharira.* He also does not employ *Aharak sharira* (telemigratory body) or mixed *Aharak sharira*. In other words, a *Kevali* employs association only with gross physical body and *karmic* body.

In the first and eighth *Samaya* he employs activity associated with gross physical body. In the second, sixth and the seventh *Samayas* he employs activity associated with mixed gross physical body. In the third, fourth and fifth *Samayas* he employs activity associated with *karmic* body. (In other words, of the seven kinds of body associations he only employs *Audarik sharira* association, mixed *Audarik sharira* association, and *Karman sharira* association.) (for details about five kinds of bodies refer to *Illustrated Anuyogadvar Sutra*, Part II, aphorism 405)

समुद्घात के पश्चात् योग-प्रवृत्ति

१४६. से णं भंते ! तहा समुग्घायगए सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वाइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?

णो इणट्ठे समट्ठे। से णं तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता तओ पच्छा मणजोगं पि जुंजइ, वयजोगं पि जुंजइ, कायजोगं पि जुंजइ।

१४६. भगवन् ! क्या समुद्घात करते समय केवली भगवान सिद्ध होते हैं ? बुद्ध होते हैं ? मुक्त होते हैं ? परिनिर्वाण को प्राप्त करके समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता। किन्तु वे उस-समुद्घात क्रिया से निवृत्त होकर वापस लौटते हैं। लौटकर अपने मनुष्य शरीर में स्थित होते हैं। तत्पश्चात् मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग को भी प्रयुक्त करते हैं-मानसिक, वाचिक एवं कायिक क्रिया भी करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

146. *Bhante* ! While undergoing the process of *samudghat*, does a *Kevali* become Siddha (attain the state of perfection), Buddha (enlightened), Mukta (liberated) and attain *nirvana* to end all miseries ?

Gautam ! This does not happen. But concluding the process of *samudghat* he returns. On returning he maintains himself in his human body. After that he also employs associations (*yoga*) with mind, speech and body in activity. In other words he indulges in mental, vocal and physical activities.

१४७. मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ ? मोसमणजोगं जुंजइ ? सच्चामोसमणजोगं जुंजइ ? असच्चामोसमणजोगं जुंजइ ?

गोयमा ! सच्चमणजोगं जुंजइ, णो मोसमणजोगं जुंजइ, णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं पि जुंजइ।

१४७. भगवन् ! समुद्घात से निवृत्त होने पर केवली भगवान मनोयोग का उपयोग करते हुए क्या सत्य मनोयोग का उपयोग करते हैं ? अथवा मृषा–असत्य मनोयोग का उपयोग करते हैं ? क्या सत्य–मृषा, सत्य–असत्य मिश्रित मनोयोग का उपयोग करते हैं ? क्या असत्य–अमृषा, अर्थात् व्यवहार मनोयोग का उपयोग करते हैं ?

गौतम ! वे केवली भगवान सत्य मनोयोग का उपयोग करते हैं किन्तु असत्य मनोयोग तथा सत्य–असत्य मिश्रित मनोयोग का उपयोग नहीं करते। परन्तु असत्य–अमृषा मनोयोग रूप व्यवहार मनोयोग का उपयोग करते हैं।

147. *Bhante* ! After concluding the *samudghat* process, while performing activities of the mind (*manoyoga*) does a *Kevali* use association based on truth or untruth or truth-untruth or non-truth-non-untruth ?

Gautam ! A *Kevali* uses mind-association based on truth. He does not use mind-association based on untruth or truth-untruth. However, he uses that based on practical non-truth-non-untruth ?

१४८. वयजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजइ ? मोसवइजोगं जुंजइ ? सच्चामोसवइजोगं जुंजइ ? असच्चामोसवइजोगं जुंजइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! सच्चवइजोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ, णो सच्चामोसवइजोगं जुंजइ, असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ।

१४८. भगवन् ! वे केवली भगवानवचन योग को काम में लेते हुए क्या सत्य वचनयोग का प्रयोग करते हैं? क्या मृषा वचनयोग को प्रयुक्त करते हैं? अथवा असत्य-अमृषा वचनयोग को प्रयुक्त करते हैं?

गौतम ! वे सत्य वचनयोग का प्रयोग करते हैं। किन्तु न तो असत्य वचनयोग का प्रयोग करते हैं, न वे सत्य-मृषा वचनयोग का ही प्रयोग करते हैं परन्तु वे असत्य-अमृषा-वचनयोग का भी प्रयोग करते हैं।

148. *Bhante* ! After concluding the *samudghat* process, while performing activities of the speech (*vachan yoga*) does a *Kevali* use association based on truth or untruth or truth-untruth or non-truth-non-untruth ?

Gautam ! A *Kevali* uses speech-association based on truth. He does not use speech-association based on untruth or truth-untruth. However, he uses that based on non-truth-non-untruth ?

१४९. कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, उल्लंघेज्ज वा, पलंघेज्ज वा, उक्खेवणं वा, अवक्खेवणं वा, तिरियक्खेवणं वा करेज्जा पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जासंथारगं पच्चप्पिणेज्जा।

१४९. समुद्घात से निवृत्त केवली भगवान काययोग में प्रवृत्ति करते हुए आगमन करते हैं, ठहरते हैं, बैठते हैं, लेटते हैं, लाँघते हैं-उलाँघते हैं, उत्क्षेपण-अवक्षेपण तथा तिर्यक्क्षेपन करते हैं-हाथ आदि को ऊपर करते हैं, नीचे करते हैं, तिरछे या आगे-पीछे करते हैं अथवा ऊँची, नीची और तिरछी गति करते हैं तथा प्रातिहारिक-काम में लेने के बाद वापस लौटाने योग्य पट्ट, शय्या, संस्तारक आदि उपकरण लौटाते हैं।

149. After concluding the *samudghat* process, while performing activities of the body (*kayayoga*) a *Kevali* comes, stays, sits, lies down, crosses, goes across, moves up-down and sideways (or moves his hands up-down and sideways) as well as returns plank, bed, ascetic-broom and other returnable ascetic-equipment.

सिद्धावस्था-प्राप्ति का क्रम

१५०. से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झइ, जाव (बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वाइ, सव्व-दुक्खाणं) अंतं करेइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णो इणट्ठे समट्ठे।

१५०. भगवन् ! वे केवली भगवान क्या सयोगी अवस्था में सिद्ध होते हैं (बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वृत्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं) एवं सब दुःखों का अन्त करते हैं ?

गौतम ! ऐसा नहीं होता।

PROGRESS TO PERFECTION

150. *Bhante* ! While still in this aforesaid state of association (*sayogi avastha*), does a *Kevali* become *Siddha* (attain the state of perfection), *Buddha* (enlightened), *Mukta* (liberated) and attain nirvana to end all miseries ?

No, Gautam ! This does not happen.

१५१. से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं निरुंभइ, तयाणंतरं च णं बिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं बिइयं वइजोगं निरुंभइ, तयाणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णजोगस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं तइयं कायजोगं णिरुंभइ।

१५१. वे सयोगी केवली भगवान सबसे पहले पर्याप्त संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव के जघन्य मनोयोग के भी नीचे के स्तर से असंख्यात गुणहीन मनोयोग का निरोध करते हैं, अर्थात् इतना सूक्ष्म मनोव्यापार उनके बाकी रहता है। उसके बाद पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव के जघन्य वचनयोग के नीचे के स्तर से असंख्यात गुणहीन वचनयोग का निरोध करते हैं। उसके पश्चात् अपर्याप्त-सूक्ष्म पनक-लीलन-फूलन आदि निगोदिया जीव के जघन्य योग के नीचे के स्तर से असंख्यात गुणहीन काययोग का निरोध करते हैं।

151. That *Sayogi Kevali* first of all, restricts the residual activities associated with mind which are of the order of an infinite fraction of the minimum mental activity of a fully developed five sensed sentient being; which means that he was left with only such a minute mental activity. After that he restricts the residual activities associated with speech which are of the order of an infinite fraction of the minimum mental activity of a fully developed two sensed being. Then he restricts the residual activities associated with body

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

which are of the order of an infinite fraction of the minimum physical activity of underdeveloped dormant life forms like moss and lichen.

१५२. से णं एएणं उवाएणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, मणजोगं णिरुंभित्ता वयजोगं णिरुंभइ, वयजोगं णिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभइ, कायजोगं णिरुंभित्ता जोगनिरोहं करेइ, जोगनिरोहं करेत्ता अजोगत्तं पाउणइ, अजोगत्तणं पाउणित्ता ईसिं हस्सपंचक्खरुच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ।

पुव्वरइयगुणसेढियं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्धाए असंखेज्जेहिं गुणसेढीहिं अणंते कम्मंसे खवयंते, वेयणिज्जाउयणामगोए इच्चेते चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ, खवित्ता ओरालियतेयकम्माइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता उज्जुसेढीपडिवण्णे अफुसमाणगई उड्ढं एक्कसमएणं अविग्गहेण गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ।

१५२. इस प्रकार के उपाय द्वारा वे केवली भगवान सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं, मनोयोग का निरोध कर वचनयोग का निरोध करते हैं, वचनयोग का निरोध कर काययोग का निरोध करते हैं। काययोग का निरोध कर सर्वथा योगनिरोध करते हैं–मन, वचन तथा शरीर से सम्बद्ध प्रवृत्ति मात्र को रोकते हैं। इस क्रम से समस्त योगों का निरोध कर वे अयोगि अवस्था प्राप्त करते हैं। अयोगि अवस्था प्राप्त हो जाने पर मध्यम गति से अ, इ, उ, ऋ, लृ के पाँच ह्रस्व अक्षर उच्चारण काल में जितना समय लगता है उतने असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त्त काल में शैलेशी अवस्था–(मेरुवत् अकम्प) दशा को प्राप्त हो जाते हैं।

उस शैलेशी काल में पूर्व रचित गुण–श्रेणी के रूप में रहे कर्मों को, असंख्यात गुण–श्रेणियों में अनन्त कर्मांशों (कर्मदलिकों) को क्षीण करते हुए वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गोत्र–इन चारों कर्मदलिकों का एक साथ क्षय कर देते हैं। इन्हें क्षीण कर औदारिक, तैजस् तथा कार्मण शरीर का पूर्ण रूप से परित्याग कर देते हैं। कर्मों के क्षीण होने पर ऋजुश्रेणिप्रतिपन्न हो अर्थात् आकाश–प्रदेशों की विग्रहरहित सीधी पंक्ति का अवलम्बन कर अन्तराल के प्रदेशों को नहीं स्पर्शते हुए एक समय में ऊर्ध्वगमन कर साकारोपयोग–ज्ञानोपयोग में सिद्ध अवस्था में विराजमान होते हैं।

152. This way he first of all stops mental activity. After stopping mental activity he stops all vocal activity. After stopping vocal activity he stops all physical activity. After stopping physical activity he stops all activity or association; which means he stops all intent of any activity associated with mind, speech and body. Having thus terminated all association in the said order he attains

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the state of non-association or non-action (*ayogi*). Once the *ayogi* state is attained he transcends to the *shaileshi* state (rock-like stillness) within an *antarmuhurt* (less than fourty eight minutes) of infinite *Samayas* equivalent to the time taken in pronouncing the five short vowels *a, i, u, ri* and *lri* with average speed.

During the period he is in that *shaileshi* state he sheds infinite fractions of *karmas* (the subtle *karma* particles) prearranged or already existing in the innumerable qualitative sequences (*guna-shreni*). This instantaneously brings to an end all the four *karmas* (non-vitiating *karmas*), namely *Vedaniya* (*karma* that causes feelings of happiness or misery), *Ayushya* (*karma* that determines the span of a given life-time), *Naam* (*karma* that determines the destinies and body types) and *Gotra* (*karma* responsible for the higher or lower status of a being). Shedding all *karmas* he completely abandons the *audarik* (gross physical), *taijas* (fiery) and *karman* (*karmic*) bodies through diverse methods of renunciation. Once the *karmas* are shed he rises taking a straight line vertical path (*rijushreni*) and not touching the intervening space-points, transcends in just one *Samaya* to the state of perfection (*Siddha* state) and ever pulsating knowledge (*sakaropayoga*).

विवेचन–इस सूत्र में योग-निरोध कर सिद्ध अवस्था-प्राप्ति का क्रम बताया है। यही क्रम उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २९ के सूत्र ७३-७४ में भी है। इसमें आये विशेष शब्द गुण श्रेणी तथा ऋजु श्रेणी का संक्षिप्त भाव इस प्रकार है–

गुण श्रेणी–केवली अवस्था में अवशिष्ट वेदनीय आदि चार कर्मों को शीघ्रतर क्षय करने के निमित्त उनके दलिकों को क्रम से प्रति समय पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुण वृद्धि से गुणित कर स्वल्प, बहु, बहुतर एवं बहुतम इस श्रेणी रूप में विभाजित करते हुए कर्म स्थिति का क्षय करना, गुण श्रेणी है। अर्थात् गुण श्रेणी के प्रथम समय में कर्मदलिक स्वल्प ग्रहण किये जाते हैं, द्वितीय समय में पूर्व की अपेक्षा असंख्यात गुणित दलिक ग्रहण किये जाते हैं, तृतीय समय में इससे भी असंख्यात गुणित कर्मदलिक ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार जब तक अन्तर्मुहूर्त्त का समय पूर्ण नहीं हो जाता क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यात गुण कर्मदलिकों को क्षय किया जाता है। कर्म पुद्गलों की इस श्रेणीबद्ध रचना का नाम गुण श्रेणी है। केवली भगवान प्रथम रचित गुण श्रेणिक कर्म को उस शैलेषी अवस्था में नष्ट करते हुए अनन्त कर्मांशों का क्षय कर देते हैं।

ऋजु श्रेणीगत अस्पृशद्मान गति–जीव की गति दो प्रकार की श्रेणी में होती है–ऋजु और वक्र। मुक्त जीव का ऊर्ध्वगमन ऋजु श्रेणी–आकाश प्रदेश की मोड़रहित सरल सीधी गति से होता है। उस समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा द्वारा स्पृष्ट आत्म-प्रदेशों के अतिरिक्त अन्तरालवर्ती आकाश प्रदेशों का स्पर्श न करते हुए गति करना अस्पृशद् गति है। (औपपातिक, अभयदेव वृत्ति)

Elaboration—This aphorism describes the progression of attaining the *Siddha* state through termination of association (*yoga*). The same order is also mentioned in *Uttaradhyayan Sutra* 29/73-74. The two technical terms used here are briefly explained as follows—

Gunashreni—The process of shedding *karma* particles every *Samaya* in exponential progression, from few to more to much more to much-much more, in order to end all the four kinds of residual *karmas* including *vedaniya* is called *Gunashreni* (qualitative sequence). This means that in the first *Samaya* of this sequence only a few *karma* particles are shed; in the second *Samaya* innumerable times more *karma* particles are shed; in the third *Samaya* innumerable times more *karma* particles than those shed in the second *Samaya* are shed; this process continues for one *antarmuhurt* and more and more *karma* particles are shed exponentially. This sequential formation of *karma* particles for shedding is called *Gunashreni*. A *Kevali* destroying these prearranged sequences while he is in the *shaileshi* state sheds infinite number of *karma* particles.

Untouched movement in Rijushreni—A being moves two ways, straight and crooked. A liberated being or soul rises upwards in a straight line. During this rise the soul does not touch any external space-point. This movement or instantaneous jump without touching the intervening space-points is called untouched movement in *Rijushreni* (straight line). (*Aupapatik Abhayadev Vritti*)

सिद्धों का स्वरूप

१५३. ते णं तत्थ सिद्धा हवंति सादीया, अपज्जवसिया, असरीरा, जीवघणा, दंसणनाणोवउत्ता, निट्ठियट्ठा, निरेयणा, नीरया, णिम्मला, वितिमिरा, विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति।

१५३. वे (पूर्व सूत्र में कथित मनुष्य सर्वकाममुक्त होकर अष्ट कर्मप्रकृतियों का क्षय करके ऊर्ध्वलोक में लोक के अग्र भाग ऊर्ध्वलोक में स्थित होते हैं) लोकाग्र भाग में स्थित **सादि**–मोक्ष-प्राप्ति के काल की अपेक्षा से आदि सहित है, **अपर्यवसित**–पुनः जन्म-मरण से मुक्त है, **अशरीर**–शरीररहित है, **जीवघन**–सघन अवगाढ़ आत्म-प्रदेशयुक्त है (पूर्व शरीर को छोड़ते समय शरीराकृति के अन्तरालों में आत्म-प्रदेश भर जाने से उनकी अवगाहना सघन-ठोस हो जाती है, अर्थात् पूर्व शरीर से तीन भाग न्यून अवगाहना रहती है। ज्ञान रूप साकार तथा दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप अनाकार उपयोग सहित है, **निष्ठितार्थ**–कृतकृत्य है, **निरेजन**–निश्चल, स्थिर या निष्कम्प है, **नीरज**–कर्म रूप रज से रहित है, **निर्मल**–पूर्वबद्ध कर्मों के मल से विनिर्मुक्त है, **वितिमिर**–अज्ञान रूप अन्धकार से रहित है, **परम शुद्ध**–समस्त कर्मक्षय हो जाने पर परम आत्म-शुद्धियुक्त सिद्ध भगवान भविष्य में शाश्वतकाल पर्यन्त (अपने स्वरूप में) संस्थित रहते हैं।

NATURE OF SIDDHAS

153. They, located at the edge of the universe (as mentioned in the preceding aphorism), are with a beginning (*saadi*) in context of the moment of attaining liberation but without an end (*aparyavasit*) in context of never to be reborn and without a body (*asharira*). They have a compact soul (*jivaghan*) or a soul having dense soul-space-points (when they abandon their body the void thus created is compensated by compacting of soul-space-points; the space occupied by the soul-space-points is two-third of the space occupied by the original body). They are with a manifest vivacity (*sakar upayog*) of knowledge and non-manifest vivacity (*anakar upayog*) of perception. They are free of all needs (*nishthitarth*); free of any movement or absolutely still (*nirejan*); beyond the reach of the dirt of *karmas* (*neeraj*); free of the dirt of *karmas* accumulated in the past (*nirmal*); free of the darkness of ignorance (*vitimir*); and absolutely pure (*param shuddha*), having attained ultimate spiritual purity as a consequence to the complete shedding of all *karmas*. These perfect souls eternally remain in the aforesaid form.

१५४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, ते णं तत्थ सिद्धा भवंति सादीया, अपज्जवसिया जाव (असरीरा, जीवघणा, दंसणनाणोवउत्ता, निट्ठियट्ठा, निरेयणा, नीरया, णिम्मला, वितिमिरा, विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं) चिट्ठंति ?

गोयमा ! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवा मेव सिद्धाणं कम्मबीए दड्ढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–ते णं तत्थ सिद्धा भवंति सादीया, अपज्जवसिया जाव चिट्ठंति।

१५४. भगवन् ! आप किस कारण से कहते हैं कि वहाँ जो सिद्ध भगवान स्थित हैं, वे सादि तथा अपर्यवसित होते हैं, यावत् (शरीररहित, घनरूप, दर्शनज्ञानोपयुक्त–निष्ठितार्थ–निरेजन, नीरज, निर्मल, वितिमिर, विशुद्ध–परम शुद्ध, शाश्वत कालपर्यन्त) स्थिर रहते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम ! जैसे अग्नि से दग्ध–सर्वथा जले हुए बीजों की पुनः अंकुरों के रूप में उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार कर्म–बीज सम्पूर्ण रूप में दग्ध होने के कारण सिद्धों की भी फिर जन्मोत्पत्ति नहीं होती। गौतम ! मैं इसी आशय से यह कह रहा हूँ कि सिद्ध सादि, अपर्यवसित .... होते हैं।

154. *Bhante* ! Why do you say that they, located at the edge of the universe (as mentioned in the preceding aphorism), are with a beginning (*saadi*) in context of the moment of attaining liberation; without an end (*aparyavasit*).... and so on up to.... These perfect souls eternally remain in the aforesaid form ?

Gautam ! Seeds burnt in fire cannot germinate. In the same way, as the seeds of *karmas* in case of *Siddhas* (perfected beings) are completely burnt, they are not born again. So Gautam ! I say that they, located at the edge of the universe (as mentioned in the preceding aphorism), are with a beginning (*saadi*) in context of the moment of attaining liberation; without an end (*aparyavasit*)... and so on up to... These perfect souls eternally remain in the aforesaid form.

सिद्ध होते जीव के संहनन संस्थान आदि

१५५. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि संघयणे सिज्झंति ?

गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणे सिज्झंति।

१५५. भगवन् ! सिद्ध अवस्था प्राप्त होते हुए जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं ?

गौतम ! वे वज्र–ऋषभनाराच संहनन में सिद्ध होते हैं।

CONSTITUTION AND STRUCTURE

155. *Bhante* ! In which constitution (*samhanan*) do the beings destined to be *Siddhas* (perfected beings) attain perfection ?

Gautam ! They attain perfection in *vajra-rishabh-narach samhanan* (a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest).

१५६. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि संठाणे सिज्झंति ?

गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिज्झंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५६. भगवन् ! सिद्ध अवस्था प्राप्त होते हुए जीव किस संस्थान में सिद्ध होते हैं ?

गौतम ! छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान से सिद्ध हो सकते हैं।

156. *Bhante* ! In which body structure (*samsthan*) do the beings destined to be *Siddhas* (perfected beings) attain perfection ?

Gautam ! They attain perfection in any of the six kinds of body structures (*samsthan*).

१५७. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि उच्चत्ते सिज्झंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसइए सिज्झंति।

१५७. भगवन् ! सिद्धगति प्राप्त होते हुए जीव कितनी अवगाहना-ऊँचाई में सिद्ध होते हैं ?

गौतम ! कम से कम सात हाथ तथा अधिक से अधिक पाँच सौ धनुष (४ हाथ का एक धनुष) की अवगाहना में सिद्ध होते हैं।

157. *Bhante* ! In what space-occupation or height (*avagahana*) of the body do the beings destined to be *Siddha* (perfected beings) attain perfection ?

Gautam ! They attain perfection in a minimum body height of seven cubits and a maximum of five hundred *Dhanush* (one *Dhanush* being four cubits).

विवेचन—सूत्र में सिद्ध अवस्था प्राप्त होने वाले जीवों की जो अवगाहना बताई है, वह तीर्थंकरों की अपेक्षा से समझना चाहिए। जैसे कि भगवान महावीर जघन्य सात हाथ की और भगवान ऋषभ उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष की अवगाहना से सिद्ध हुए। सामान्य केवलियों की अपेक्षा यह कथन नहीं है। क्योंकि कूर्मापुत्र दो हाथ की अवगाहना से सिद्ध हुए, मरुदेवी माता की अवगाहना पाँच सौ धनुष से अधिक थी।

Elaboration—The *avagahana* or body height of the beings destined to be *Siddha* mentioned in this aphorism is in context of *Tirthankars*. The minimum body height of seven cubits refers to the height of Bhagavan Mahavir and the maximum of five hundred *Dhanush* refers to that of Bhagavan Rishabhadeva. This statement does not relate to ordinary omniscients because Kurmaputra attained perfection with a body height of two cubits and mother Marudevi with a body height of more than five hundred *Dhanush*.

१५८. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झंति ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झंति।

१५८. भगवन् ! सिद्धगति प्राप्त होते हुए जीव कितने आयुष्य में सिद्ध होते हैं ?

गौतम ! कम से कम आठ वर्ष से कुछ अधिक आयुष्य में तथा अधिक से अधिक करोड़ पूर्व के आयुष्य में सिद्ध होते हैं। (इसका तात्पर्य यह हुआ कि आठ वर्ष या उससे कम की आयु वाले और क्रोड पूर्व से अधिक की आयु वाले जीव सिद्ध नहीं होते हैं।)

158. *Bhante* ! At what age do the beings destined to be *Siddha* (perfected beings) attain perfection ?

Gautam ! They attain perfection at a minimum age of a little more than eight years and a maximum of ten million *Purvas* (one Purva being 7056×10^{10} years).

सिद्धों का परिवास

१५९. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव अहे सत्तमाए।

१५९. भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी-(प्रथम नारक भूमि) के नीचे सिद्ध भगवान निवास करते हैं ?

नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं है।

रत्नप्रभा के साथ-साथ शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूम्रप्रभा, तमःप्रभा तथा तमस्तमःप्रभा-पहली से सातवीं तक सभी नारकभूमियों के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए अर्थात् उनके नीचे सिद्ध निवास नहीं करते।

ABODE OF SIDDHAS

159. Do the *Siddhas* reside beneath the *Ratnaprabha* land (the first hell) ?

No, this is not true.

This statement also holds good for all the infernal worlds including *Sharkaraprabha, Balukaprabha, Pankaprabha, Dhoomprabha, Tamahprabha* and *Tamastamahprabha*. That means *Siddhas* do not reside beneath any of these infernal worlds.

१६०. अत्थि णं भंते ! सोहम्मस्स कप्पस्स अहे सिद्धा परिवसंति ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णो इणट्ठे समट्ठे, एवं सव्वेसिं पुच्छा–ईसाणस्स, सणंकुमारस्स जाव (माहिंदस्स, बंभस्स, लंतगस्स, महासुक्कस्स, सहस्सारस्स, आणयस्स, आरणस्स) अच्चुयस्स गेवेज्जविमाणाणं अणुत्तर विमाणाणं।

१६०. भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान सौधर्मकल्प (प्रथम देवलोक) के नीचे निवास करते हैं ?

नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं है। ईशान, सनत्कुमार (माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण एवं) अच्युतकल्प तक, ग्रैवेयक विमानों तथा अनुत्तर विमानों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिए। अर्थात् इनके नीचे भी सिद्ध निवास नहीं करते।

160. Do the *Siddhas* reside beneath the Saudharma-kalp (the first *dev-lok* or heaven) ?

No, this is not true. The same also holds good for *Ishan*, *Sanatkumar*... and so on (*Mahendra, Brahma, Lantak, Mahashukra, Sahasrar, Anat, Pranat, Aran* and) up to... *Achyut* as well as *Graiveyak* and *Anuttar Vimans*. That means *Siddhas* do not reside beneath any of these *dev-loks* or heavens.

१६१. अत्थि णं भंते ! ईसीपब्भाराए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति ?

णो इट्ठे समट्ठे।

१६१. भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे निवास करते हैं ?

नहीं, ऐसा कथन ठीक नहीं है।

161. Do the *Siddhas* reside beneath the *Ishatpragbhara Prithvi* ?

No, this is not true.

१६२. से कहिं खाइ णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ?

गोयम ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिमसूरियग्गहगणणक्खत्त–ताराभवणाओ बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूओ जोयणकोडीओ, बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढतरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलंतग–महासुक्कसहस्सारआणयपाणयआरणअच्चुए, तिण्णि य अट्ठारे गेविज्जविमाणावाससए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीईवइत्ता विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्ठसिद्धस्स य महाविमाणस्स सव्वउवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालसजोयणाइं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता। पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएणं।

१६२. भगवन् ! सिद्ध भगवान कहाँ, किस स्थान पर निवास करते हैं ?

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र तथा तारों के भवनों से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन तथा बहुत क्रोडाक्रोड योजन से ऊर्ध्वतर-बहुत ऊपर जाने पर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युतकल्प तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमान आवास से भी ऊपर (नव ग्रैवेयक में तीन-तीन के तीन त्रिक समूह हैं। प्रथम त्रिक में १११, दूसरे त्रिक में १०७ तथा तीसरे त्रिक में १०० इस प्रकार तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमान हैं) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध महाविमान के शिखर के अग्र भाग से बारह योजन ऊपर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) है।

वह पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी है। एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाली है।

162. *Bhante* ! Where do the *Siddhas* reside ?

Gautam ! Many *Yojans* above the beautiful land known as *Ratnaprabha Prithvi* and abodes of Moon, Sun, planets, constellations and stars; in fact hundreds of *Yojans*, thousands of *Yojans*, hundreds of thousands of *Yojans*, millions of *Yojans*, million times millions of *Yojans* above them, even above the heavens (*dev-lok*) known as *Saudharma, Ishan, Santkumar, Mahendra, Brahma, Lantak, Mahashukra, Sahasrar, Anat, Pranat, Aran, Achyut* and the three hundred eighteen *Graiveyak Vimans* (they are in three groups having 111, 107 and 100 *Vimans* in this class of heavens) and twelve *Yojans* above the highest point of *Vijaya, Vaijayant, Jayant, Aparajit* and *Sarvarthasiddha Anuttar Vimans* is located the *Ishatpragbhara Prithvi* (*Siddhashila*). (*Ishatpragbhara Prithvi* literally means 'the land or world just before the edge'.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This world is four million five hundred thousand (45,00,000) *Yojans* long and wide with a circumference of slightly more than fourteen million two hundred thirty thousand two hundred forty nine (1,42,30,249) *Yojans*.

१६३. ईसीपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं, तयाणंतरं च णं मायाए मायाए परिहायमाणी सव्वेसु चरिमपेरंतेसु मच्छियपत्ताओ तणुयतरा अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

१६३. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी अपने ठीक मध्य भाग में आठ योजन मोटी है। तत्पश्चात् मोटाई में क्रमशः कुछ-कुछ कम होती हुई सबसे अन्तिम किनारों पर मक्खी की पाँख से भी अधिक पतली है। उन अन्तिम किनारों की मोटाई अंगुल के असंख्यातवें भाग के तुल्य कही गई है।

163. *Ishatpragbhara Prithvi* is eight *Yojans* deep at the center, tapering down to the thickness of the wings of a house-fly at its periphery. It is said that the thickness of these edges is equal to the innumerable fraction of an *Angul*.

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम

१६४. ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ईसी इ वा, ईसीपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणुतणू इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ती इ वा, मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा, लोयग्गथूभिगा इ वा, लोयग्गपडिबुज्झणा इ वा, सव्वपाण-भूय-जीव-सत्तसुहावहा इ वा।

१६४. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं-

(१) ईषत्, (२) ईषत्प्राग्भारा, (३) तनु, (४) तनुतनु, (५) सिद्धि, (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय, (९) लोकाग्र, (१०) लोकाग्रस्तूपिका, (११) लोकाग्रप्रतिबोधना, (१२) सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावहा।

TWELVE NAMES OF ISHATPRAGBHARA PRITHVI

164. *Ishatpragbhara Prithvi* is said to have twelve names. They are as follows—

(1) *Ishat*, (2) *Ishatpragbhara*, (3) *Tanu*, (4) *Tanutanu*, (5) *Siddhi*, (6) *Siddhalaya*, (7) *Mukti*, (8) *Muktalaya*, (9) *Lokagra*, (10) *Lokagrastupika*, (11) *Lokagrapratibodhana*, (12) *Sarva-praan-bhoot-jiva-sattva-sukhavaha*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-११

Illustration No. 11

सिद्ध शिला में सिद्धों का निवास

गणधर इन्द्रभूति भगवान से पूछते है–भन्ते ! सिद्ध आत्मा कहाँ निवास करती हैं ?

उत्तर में भगवान महावीर कहते हैं–तिर्यक् लोक से करोड़ों योजन ऊपर जाने पर सौधर्म कल्प आदि बारह देव विमान हैं। इनसे करोड़ों योजन ऊपर नवग्रैवेयक विमान हैं। ग्रैवेयक विमानों से अनेक योजन ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। इन पाँच विमानों में अनेक देव निवास करते हैं। इनमें सबसे ऊपर सर्वार्थ सिद्ध विमान हैं। उसके सर्वोच्च शिखर से बारह योजन ऊपर ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी है। यह पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी–चौड़ी है। इसकी कुल परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास (१,४२,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक है।

यह पृथ्वी ठीक मध्य भाग में आठ योजन मोटी है। फिर दोनों तरफ क्रमशः पतली होती–होती सबसे अन्तिम किनारों पर मक्खी की पाँख से भी अधिक पतली है। (यह उलटे रखे छत्र के आकार की है)

मनुष्य लोक से देह त्याग कर जो आत्मा अष्टकर्म मुक्त होकर वहाँ जाते हैं, वे उसी त्यक्त देह की घनाकार ठोस आकृति में पूर्व देह के तिहाई भाग कम अवगाहना में स्थित होते हैं।

एक सिद्ध की अवगाहना में अन्य अनन्त सिद्धों की अवगाहन अवगाढ–समाहित हो जाती है। अमूर्त तथा अगुरु–लघु होने से उनमें किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। ये सभी आत्मा केवलज्ञान–केवलदर्शन के चिन्मय–ज्योति स्वरूप में स्थित है।

–सूत्र १६३-१८०

SIDDHAS DWELLING AT SIDDHA SHILA

Ganadhar Indrabhuti asks *Bhagavan—Bhante* ! Where do the *Siddhas* reside ?

Bhagavan Mahavir replies—Millions of Yojans above the *Tiryak lok* there are twelve celestial vehicles including *Saudharm Kalp*. Millions of Yojans above these are *Nava-Graiveyak Vimans*. Many Yojans above these are five *Anuttar Vimans*. Many gods reside in these five celestial vehicles. Highest among these is the *Sarvarth Siddha Viman*. Twelve Yojans above the highest point of this *Viman* is located the *Ishatpragbhara Prithvi*. This world is four million five hundred thousand (45,00,000) Yojans long and wide with a circumference of slightly more than fourteen million two hundred thirty thousand two hundred forty nine (1, 42, 30, 249) Yojans.

This *Prithvi* is eight Yojan deep at the center tapering down to the thickness of the wings of a house-fly at its periphery. (Its shape is like an upturned umbrella)

After abandoning the body as human beings the souls that are liberated from eight type of *karmas* reach there and occupy a space one third less than that occupied by their solid earthly bodies.

The space occupied by one *Siddha* is also occupied by infinite other *Siddhas*. As these souls are formless and non-gross or subtle there is no problem in their occupying the same space. All these souls exist in an eternal glow-like state of *Keval Jnana* and *Keval Darshan*.

—Sutra 163-180

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६५. ईसीपब्भारा णं पुढवी सेया आयंसतलविमल-सोल्लिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीरहारवण्णा, उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिया, सव्वज्जुणसुवण्णयमई, अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्ठा, मट्ठा, णीरया, णिम्मला, णिप्पंका, णिक्कंकडच्छाया, समरीचिया, सुप्पभा, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा।

१६५. वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी श्वेत है, दर्पणतल के जैसी निर्मल है, श्वेत पुष्प, कमलनाल, तुषार, जल-बिन्दु (बर्फ), गाय के दूध तथा मुक्ताहार के समान श्वेत वर्ण वाली है। उलटे किए हुए छत्र जैसा उसका आकार है। वह अर्जुन स्वर्ण, श्वेत स्वर्ण-जैसी उज्ज्वल द्युतियुक्त है। वह आकाश या स्फटिक-जैसी स्वच्छ, श्लक्ष्ण (स्निग्ध), शुभ परमाणु-स्कन्धों से बनी होने के कारण कोमल तन्तुओं से बुने हुए वस्त्र के समान मुलायम, **लष्ट**-घुटे हुए वस्त्र के समान चिकनी, **घृष्ट**-तेज शाण पर घिसे हुए पत्थर की तरह मानो तराशी हुई चिकनी, **मृष्ट**-सुकोमल शाण पर घिसकर मानो पत्थर की तरह सँवारी हुई, **नीरज**-रजरहित, निर्मल, **निष्पंक**-कर्दमरहित, आवरणरहित, **समरीचिका**-सुन्दर किरणों की प्रभा से युक्त, **प्रासादीय**-चित्त को प्रसन्न करने वाली, **दर्शनीय**-देखने में आँखों को तृप्ति देने वाली, **अभिरूप-मनोज्ञ**-मन को अपने में रमा लेने वाली तथा **प्रतिरूप**-मन में बस जाने वाली है।

165. That *Ishatpragbhara Prithvi* is white and faultless like a mirror. It is as white as *Solliya* flower, lotus stalk, dew, drop of water, snow, cow's milk and pearl necklace. Its shape is like an upturned umbrella. It has a brilliant glow like that of white gold. It is clean like sky or crystal; constituted of smooth particles; it is as soft as a piece of cloth made of fine fibre (*shlakshna*); it is gossamer like polished cloth (*lasht*); it is smooth like a stone polished on a grinder (*ghrisht*); it is glossy as if honed on a fine honing wheel (*mrisht*); it is free of dust, dirt, and slime; it is without any cover; it is radiant with rays and it is delightful, spectacular, attractive and enchanting.

१६६. ईसीपब्भाराए णं पुढवीए सेयाए जोयणंमि लोगंते। तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे, तत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया, अपज्जवसिया अणेगजाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयणं संसारकलंकलीभाव-पुणब्भव-गब्भवास-वसही-पवंचमइक्कंता सासयमणागयद्धं चिट्ठंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. उस शुभ्र ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से ऊपर एक योजन पर लोकान्त है। उस योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग (३३३ धनुष ३२ अंगुल प्रमाण स्थान पर) पर सिद्ध भगवान, जो **सादि**–आदियुक्त, **अपर्यवसित**–अनन्त काल स्थिति में विराजमान जन्म, जरा, मृत्यु आदि अनेक योनियों की वेदना, संसार के भीषण दुःख, पुनः-पुनः होने वाले गर्भवास रूप प्रपंचों से मुक्त हो चुके हैं, अपने शाश्वत भविष्य में सदा सुस्थिर स्वरूप में संस्थित रहते हैं।

166. One *Yojan* above that white *Ishatpragbhara Prithvi* is the edge of the universe (*lokant* or edge of the occupied space). The *Siddhas*, who are with a beginning (*saadi*) and without an end (*aparyavasit*); who have gone beyond the agonies of birth, ageing and death in numerous genuses; who are liberated from the terrible miseries of rebirth and the complexity of stay in womb time and again; who are in their eternal and stable state of future immortality, are stationed at a level around one-sixth of the last *Kosa* (quarter *Yojan*), which is equivalent to 333 *Dhanush* and 32 *Angul*, from this edge of the universe.

१६७. कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पडिट्ठिया ?
कहिं बोंदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झई ? ॥१॥

१६७. भगवन् ! सिद्ध भगवान किस स्थान पर प्रतिहत हैं–कहाँ जाकर आगे जाने से रुक जाते हैं ? वे कहाँ प्रतिष्ठित हैं–इस लोक में शरीर को छोड़कर कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

167. Where do the *Siddhas* halt (*pratihat*) ? Where are they stationed ? Where do they abandon their body and where do they go to become *Siddhas* ?

१६८. अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पडिट्ठिया।
इह बोंदि चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झई॥२॥

१६८. सिद्ध भगवान लोक के अग्र भाग में प्रतिष्ठित हैं, अतः आगे अलोक में जाने में रुक गये हैं। इस मर्त्यलोक में ही शरीर को छोड़कर वे सिद्ध स्थान में जाकर सिद्ध होते हैं।

168. The *Siddhas* are stationed at the edge of the universe, thus they halt before *aloka* (unoccupied space). They abandon their earthly body on this earth only, and go to the edge of the universe to become *Siddhas* there.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६९. जं संठाण तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयंमि।
आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स॥३॥

१६९. इस भव में देह का त्याग करते समय अन्तिम समय में सिद्ध का मनुष्य क्षेत्र में जो संस्थान था, उस सिद्ध भगवान का वह संस्थान उस सिद्ध क्षेत्र में नाक, कान, आँख आदि इन्द्रियों के पोले रिक्त स्थान भर जाने के कारण घनीभूत आकार प्रदेशघन रूप होता है। वही आकार वहाँ सिद्ध स्थान में रहता है।

169. There they have the same compact form that they acquire during the last *Samaya* in their human body on this land of humans through the process of filling the voids of nose, ear, eyes and other organs with soul-space-points.

१७०. दीहं वा हस्सं वा, जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणं, सिद्धाणोगाहणा भणिया॥४॥

१७०. अन्तिम भव में संस्थान चाहे दीर्घ ५०० धनुष का हो या ह्रस्व दो हाथ का हो या मध्यम अवगाहना वाला हो, लम्बा-ठिगना, बड़ा-छोटा जैसा भी आकार होता है, उससे तीसरा भाग कम में सिद्धों की अवगाहना-अवस्थिति होती है।

170. The space occupied by the *Siddhas* is one-third less than the space occupied by their body during their last birth (500 *Dhanush* or 2 cubits or in between) irrespective of it being large or small, tall or short or medium.

१७१. तिण्णि सया तेत्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ बोद्धव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया॥५॥

१७१. सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ तेतीस धनुष तथा एक धनुष का तीसरा भाग (बत्तीस अंगुल) होती है, सर्वज्ञों ने ऐसा बतलाया है। (जिनका शरीर पाँच सौ धनुष-विस्तारमय होता है, उनकी अपेक्षा यह अवगाहना कही है।)

171. As told by the omniscients, the maximum *avagahana* (space occupied) of *Siddhas* is one-third of a *Dhanush* more than three hundred thirty three *Dhanush* (333 *Dhanush* and 32 *Anguls*). (This is in context of those whose original *avagahana* was maximum, *i.e.* 500 *Dhanush*.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२. चत्तारि य रयणीओ, रयणितिभागूणियाय बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमओगाहणा भणिया॥६॥

१७२. सिद्धों की मध्यम अवगाहना चार हाथ और एक हाथ का तीसरा भाग (सोलह अंगुल) प्रमाण होती है, ऐसा सर्वज्ञों ने निरूपित किया है। सिद्धों की इस मध्यम अवगाहना का कथन उन मनुष्यों की अपेक्षा से है, जिनकी देह की अवगाहना सात हाथ परिमाण होती है।

172. As told by the omniscients, the medium *avagahana* (space occupied) of *Siddhas* is one-third of a cubit more than four cubits (4 cubits and 16 *Anguls*). (This is in context of those whose original *avagahana* was medium, *i.e.* seven cubits.)

१७३. एक्का य होइ रयणी, साहीया अंगुलाइ अट्ठ भवे।
एसा खलु सिद्धाणं, जहण्णओगाहणा भणिया॥७॥

१७३. सिद्धों की जघन्य–न्यूनतम अवगाहना एक हाथ तथा आठ अंगुल होती है, ऐसा सर्वज्ञों का कथन है। यह अवगाहना दो हाथ की अवगाहना वाले जीवों की अपेक्षा से कही गई है।

173. As told by the omniscients, the minimum *avagahana* (space occupied) of *Siddhas* is one cubit and eight *Anguls*. (This is in context of those whose original *avagahana* was minimum, *i.e.* two cubits.)

१७४. ओगाहणाए सिद्धा, भवत्तिभागेण होंति परिहीणा।
संठाणमणित्थत्थं, जरामरणविप्पमुक्काणं॥८॥

१७४. सिद्ध अपने अन्तिम भव की अवगाहना से तृतीय भाग कम अवगाहना वाले होते हैं। उनका संस्थान–आकार किसी भी लौकिक आकार से नहीं मिलता। वे जन्म, जरा एवं मरण से सदा के लिए मुक्त हो चुके हैं।

174. The *Siddhas* have an *avagahana* (space occupied) one-third less than their original avagahana during their last birth. Their constitution does not match any other constitution in this world. They are eternally liberated from birth, ageing and death.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७५. जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगंते॥९॥

१७५. जिस सिद्ध क्षेत्र में एक सिद्ध भगवान रहते हैं, वहाँ भवक्षय-जन्म-मरण रूप सांसारिक आवागमन नष्ट हो जाने से मुक्त हुए अनन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जो परस्पर अवगाढ़-एक-दूसरे में मिले हुए हैं। वे सब लोकान्त का-लोकाग्र भाग का संस्पर्श किये हुए हैं, क्योंकि अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं है, अतः लोक के आगे गति का अभाव है।

175. Where there is one *Siddha*, there are many who have been liberated (due to the termination of cyclic incarnations in mundane state) and they all exist fused together or in a state of assimilation, touching the edge of the universe. This is because in *alok* (unoccupied space) there is an absence of motion (*dharmastikaya*) and thus it is impossible for them to move beyond *lok* (occupied space).

१७६. फुसइ अणंते सिद्धे, सव्वपएसेहि णियमसा सिद्धो।
ते वि असंखेज्जगुणा, देसपएसेहिं जे पुट्ठा॥१०॥

१७६. एक सिद्ध अपने समस्त आत्म-प्रदेशों (असंख्यात प्रदेशों) द्वारा दूसरे अनन्त सिद्धों का सम्पूर्ण रूप में संस्पर्श किये हुए स्थित हैं। इस प्रकार एक सिद्ध की अवगाहना में अनन्त सिद्धों की अवगाहना है-एक में अनन्त समाहित हो जाते हैं और उनसे भी असंख्यात गुण सिद्ध ऐसे हैं जो देशों और प्रदेशों से कतिपय भागों से एक-दूसरे में समाहित, एक-दूसरे का स्पर्श किये हुए हैं।

तात्पर्य यह है कि अनन्त सिद्ध तो ऐसे हैं जो पूरी तरह एक-दूसरे में समाये हुए हैं और उनसे भी असंख्यात गुणित सिद्ध ऐसे हैं जो देश-प्रदेश से कतिपय अंशों में, एक-दूसरे में समाये हुए हैं। अमूर्त्त होने के कारण उनकी एक-दूसरे में अवगाहना होने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती।

176. One *Siddha* is stationed fully touching infinite number of *Siddhas* with all his soul-space-points (innumerable space-points). Thus the space occupied (*avagahana*) by one *Siddha* is also occupied by infinite *Siddhas* at the same time. In other words infinite *Siddhas* are assimilated within one. Innumerable times more than these are *Siddhas* who are in a state of partial mutual assimilation or contact of their soul-sections (*desh*) and soul-space-points (*pradesh*).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This means that there are infinite *Siddhas* who exist in a state of complete mutual assimilation and innumerable times more than these are those who exist in a state of partial mutual assimilation. As they are formless, nothing prevents them from this mutual assimilation.

१७७. असरीरा जीवघणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य।
सागारमणागारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं॥११॥

१७७. सिद्ध भगवान शरीररहित हैं, जीवघन-सघन आत्म-प्रदेशों से युक्त तथा दर्शनोपयोग एवं ज्ञानोपयोग हैं। केवलज्ञान की अपेक्षा वे साकार ज्ञानोपयोग एवं केवलदर्शन की अपेक्षा अनाकार दर्शनोपयोगयुक्त हैं। यही सिद्धों का लक्षण है।

177. They are without a body. They are in a state of compacted soul-space-points having pulsating knowledge and perception. They are endowed with *Keval-jnana* or a manifest vivacity of knowledge and *Keval-darshan* or a non-manifest vivacity of perception. That, in fact, is the sign of a *Siddha*.

१७८. केवलणाणुवउत्ता, जाणंती सव्वभावगुणभावे।
पासंति सव्वओ खलु केवलदिट्ठीहिणंताहिं॥१२॥

१७८. वे सिद्ध भगवान केवलज्ञानोपयोग द्वारा सभी पदार्थों के गुणों एवं उनकी अनन्त पर्यायों को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन द्वारा समग्र रूप में समस्त भावों को देखते हैं।

178. With the help of this *Keval-jnana* they know all attributes of all substances and their infinite modes. And with the help of *Keval-darshan* they perceive all feelings and states in their totality.

सिद्धों के अनन्त अनुपम सुख

१७९. ण वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं ण वि य सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं॥१३॥

१७९. सिद्धों को जो सर्वथा विघ्न बाधारहित-अव्याबाध शाश्वत सुख प्राप्त है, वह तीन लोक में न तो मनुष्यों को प्राप्त है और न समग्र देवताओं को ही उपलब्ध है।

THE INFINITE UNENDING BLISS

179. The absolutely uninterrupted and unobstructed (*avyabadh*) eternal bliss experienced by *Siddhas* is beyond the reach of any and all humans and gods in the three worlds.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८०. जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं॥१४॥

१८०. तीन काल से गुणा किया हुआ देव–सुख, यदि अनन्त बार वर्गवर्गित किया जाये तो भी वह मोक्ष–सुख के समान नहीं हो सकता।

180. Let the happiness of the divine beings be multiplied by three (for three periods of time) and then squared infinite times. Still it does not reach the level of the bliss of liberation.

विवेचन–इस सूत्र का भावार्थ इस प्रकार समझा जा सकता है–सर्व देवों का सुख भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों कालों से गुणा करने पर त्रैकालिक सुख कहा जाता है, कल्पना करें, उस देव–सुख को यदि लोक तथा अलोक के अनन्त आकाश प्रदेशों में एक–एक प्रदेश पर स्थापित करते–करते अनन्त आकाश के समूचे प्रदेश उससे भर जायें तब उस समस्त प्रदेशस्थ सुखों को परस्पर में गुणा करें तो वह **अनन्त देव–सुख** कहा जाता है। उस अनन्त देव–सुख का अनन्त से वर्ग–वर्ग किया जाये तो भी वह मोक्ष के एक क्षणभर सुख के समान नहीं हो सकता। अर्थात् समस्त देवों का जो त्रैकालिक सुख है, उसे अनन्त गुणा किया जाये तो भी वह सिद्ध भगवान के एक क्षण के सुख की समानता नहीं कर सकता।

दो समान संख्याओं का परस्पर गुणन करने से जो गुणनफल प्राप्त होता है, उसे 'वर्ग' कहा जाता है। उदाहरणार्थ पाँच का पाँच से गुणन करने पर गुणनफल पच्चीस आता है। पच्चीस पाँच का वर्ग है। वर्ग का वर्ग से गुणन करने पर जो गुणनफल आता है, उसे 'वर्गवर्गित' कहा जाता है। जैसे पच्चीस का पच्चीस से गुणन करने पर छह सौ पच्चीस गुणनफल आता है। यह पाँच का वर्गवर्गित है। गणित के इस नियम के अनुसार देवों के उक्त अनन्त सुख को यदि अनन्त बार वर्गवर्गित किया जाये तो भी वह मुक्ति–सुख के समान नहीं हो सकता।

Elaboration—The happiness of divine beings multiplied by three, the number representing three periods of time—past, present and future—is called *traikalik sukha* or the happiness of three periods of time. Suppose this divine happiness is placed as unit on every space point. This way, when all the infinite number of space-points in *lok* and *alok* (occupied and unoccupied space) are filled, the square of this infinite number of units of happiness will be called 'endless divine happiness' (*anant dev sukha*). Now if this resultant infinite number is squared the same infinite number of times it still does not amount to the momentary bliss of liberation. In other words if the happiness of all the divine beings of past, present and future is added together and squared infinite times still it does not reach the level of the bliss a *Siddha* experiences for one moment.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A number multiplied by the same number gives the square of that number. For example five multiplied by five is equal to twenty five. Thus twenty five is square of five. The square multiplied by itself is called *'varg-vargit'* (square of square) of the original number. For example twenty five multiplied by twenty five is equal to six hundred twenty five. Thus six hundred twenty five is *'varg-vargit'* of five. Using this method if the said infinite divine happiness is square-squared infinite times. It still cannot equal the bliss of liberation.

१८१. सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वद्धा, पिंडिओ जइ हवेज्जा।
सोणंतवग्गभइओ, सव्वागासे ण माएज्जा॥१५॥

१८१. एक सिद्ध भगवान के सुख की राशि को तीनों काल के समयों से गुणित करने पर जो सुख–राशि प्राप्त होती है उसे यदि अनन्त वर्ग से विभाजित किया जाये, तब जो सुख–राशि भाग के रूप में प्राप्त हो, वह सुख–राशि भी इतनी अधिक होती है कि सम्पूर्ण आकाश में समाहित नहीं हो सकती।

181. If the quantum of bliss experienced by a *Siddha* is multiplied by the number of *Samayas* in all the three periods of time and the square root of the resultant number infinite times over is calculated, the resultant fraction of the said quantum of bliss is so large that it cannot be accommodated in the whole space.

दृष्टान्त द्वारा सुखों की उपमा

१८२. जह णाम कोइ मिच्छो, नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
न चएइ परिकहेउं, उवमाए तहिं असंतीए॥१६॥

१८२. जैसे कोई म्लेच्छ–वनवासी पुरुष नगर के बहुत प्रकार के गुणों को जानता हुआ भी शब्दों से नगर के गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हो पाता, क्योंकि वन में वैसी कोई उपमा नहीं मिलती।

METAPHORIC EXPRESSION OF BLISS

182. A primitive aborigine cannot describe the attributes of a city in words because he does not come across any suitable metaphors in the forest.

१८३. इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं।
किंचि विसेसेणेत्तो, ओवम्ममिणं सुणह वोच्छं॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. उसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है। सांसारिक पदार्थों से उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। फिर भी (सामान्य जनों के बोध हेतु) विशेष रूप से उपमा द्वारा उसे समझाया जा रहा है।

183. In the same way the bliss of *Siddhas* is unparalleled and no suitable metaphors for it can be found in mundane things. Still an effort is being made to explain it with the help of some special metaphors (for the benefit of common people).

विवेचन—सूत्र १८२-१८३ में सिद्धों के अनुपम सुख के लिए वन में रहने वाले भील का दृष्टान्त दिया है। टीकाकारों ने इस स्थान पर निम्न दृष्टान्त का उल्लेख किया है—

एक राजा घूमने-फिरने का बड़ा शौकीन था। एक दिन अपने साथ कुछ सैनिक लेकर घोड़े पर सवार होकर वह वन-विहार के लिए निकला। उसका घोड़ा पवनगामी था। हवा से बातें करता था। अतः देखते-देखते ही राजा बहुत आगे निकल गया और सैनिक बहुत पीछे छूट गये।

ग्रीष्म ऋतु की कड़ी धूप पड़ रही थी, हवा कानों व शरीर को जला डालना चाहती थी। पशु-पक्षी भी ठण्डे छायादार जगत में शरण लिए पड़े थे। ऐसे कठिन काल में वह राजा अकेला पड़ गया और मार्ग भूल गया। घण्टों तक वह इधर-उधर भटकता हुआ मार्ग खोजता रहा, किन्तु मार्ग मिला ही नहीं। राजा थककर चूर-चूर हो गया। प्यास के मारे उसके प्राणों पर बन आई। ग्रीष्म की उस भयावह ऋतु में कहीं एक बूँद पानी भी उसे नहीं मिला। उसके प्राण छटपटाने लगे। अन्त में थक-हारकर, उसने एक छायादार वृक्ष के नीचे ठहरकर विश्राम करना चाहा, किन्तु वह इतना अशक्त हो चुका था कि अश्व पर से उतर भी न सका। वह गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया।

संयोगवश घूमता हुआ एक वनवासी भील युवक उस स्थान पर आ पहुँचा। उसने देखा कि एक पथिक मूर्च्छित पड़ा है। पास ही उसका सुन्दर घोड़ा खड़ा है। उसने अनुमान लगाया-'यह पथिक प्यास से व्याकुल होकर ही मूर्च्छित हुआ है।' उसके पास शीतल जल था। जल के छींटे उसने राजा के मुख पर डाले। धीरे-धीरे राजा की चेतना लौटी। भील ने राजा को थोड़ा पानी पिलाया और बाद में कुछ कन्द-मूल तथा रोटियाँ भी उसे खाने के लिए दीं। इस प्रकार राजा के प्राणों की रक्षा हुई।

राजा को वे रूखी-सूखी रोटियाँ अपने छप्पन भोगों से भी अधिक सुस्वादु और अमृततुल्य लगीं। भील के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ होते हुए राजा ने कहा-"भैया ! आज तुमने मुझे नया जीवन दिया है। मुझ पर ऐसा उपकार किया है जिसे मैं जीवनभर भुला नहीं सकता।"

भोले भील ने राजा के ये उद्गार सुनकर सहज भाव से उत्तर दिया-"अरे भाई, इसमें उपकार की क्या बात है। भूखे और प्यासे राहगीर को रोटी-पानी देना तो हमारा धर्म है।"

उत्तर सुनकर राजा गद्गद हो उठा। जंगली कहे जाने वाले मनुष्य में भी मानवता का कैसा उज्ज्वल रूप निखर रहा है। उसने स्नेहपूर्वक भील के कन्धे पर हाथ रखा और कहा-"भाई ! तुम्हारे इस निः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ उपकार का बदला तो मैं कभी चुका ही नहीं सकता। होने को मैं राजा हूँ, किन्तु मैं तुम्हें इस समय क्या दूँ? देखो, तुम कभी मेरे नगर में अवश्य आना।''

''इसमें देने-लेने की क्या बात है भाई ! पानी और रोटी क्या मैंने आपके हाथ बेची हैं?'' भील मुस्कराता हुआ बोला।

राजा के नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू उमड़ आये। बोला-''अच्छा भाई, लेकिन तुम कभी नगर में मेरे महल पर अवश्य आना।''

भील ने राजा का आग्रह स्वीकार करते हुए कहा-''अच्छा, देखा जायेगा, कभी आऊँगा तो जरूर मिलूँगा। पर यह तो बता कि तेरा नाम-धाम क्या है? कैसे तेरा पता चलेगा? क्या तू मुझे देखकर पहचान लेगा?''

राजा को भील की भोली बातों को सुनकर हँसी आ गई, बोला-''अरे भाई ! तुम्हें क्यों नहीं पहचानूँगा? तुझे इस जीवन में मैं कभी भूल ही नहीं सकता। नगर में आकर तू किसी से भी पूछ लेना कि राजा का घर कहाँ है? बस, मैं तुझे मिल जाऊँगा।''

राजा अपने घोड़े पर सवार होकर और अपने प्राणदाता भील से विदा लेकर नगर की ओर चल पड़ा। नगर का मार्ग उसने उस भील से पूछ लिया था। थोड़ी दूर जाने पर ही उसे अपने सैनिक भी मिल गये।

कुछ दिन बाद वह भील किसी काम से शहर गया। उसने सोचा-'चलो, आया ही हूँ तो उस राजा से मिल लूँ। बेचारा बार-बार कह गया था।' यह सोचकर उसने किसी से पूछा-''राजा का घर कौन-सा है?''

लोगों को उसकी मूर्खता पर बड़ी हँसी आई। एक ने कहा-''अरे, राजा का घर नहीं, महल कह।''

''अरे बाबा, महल ही सही, किन्तु वह है कहाँ, यह बताओ न।''

लोगों ने राजमहल का मार्ग बता दिया। वह भील सीधा धड़धड़ाता हुआ वहाँ पहुँच गया। उसने देखा कि राजा का घर तो बहुत बड़ा है, ऊँचा है, सुन्दर है। बड़ा अच्छा लग रहा है। वह भीतर जाने के लिए आगे बढ़ा तो द्वारपाल ने उसे डाँटकर रोकते हुए कहा-''अरे ! अरे ! कहाँ घुसा चला आता है?''

''यहाँ कोई राजा रहता है न?''

''हाँ, रहता है तो तुझे क्या? बड़ा आया राजा के पास जाने वाला। भाग यहाँ से मूर्ख, गँवार.........!''

द्वारपाल न जाने उस भोले को कितना डाँटता-फटकारता और गालियाँ देता, किन्तु संयोगवश अपने महल के गवाक्ष में बैठे राजा की दृष्टि उस भील पर पड़ गई। उसने द्वारपाल को रोका और स्वयं उठकर दौड़ता हुआ द्वार पर आ गया और उसे प्रेमपूर्वक हाथ पकड़कर भीतर ले गया। द्वारपाल, दरबारी और दास-दासियाँ यह देखकर विस्मित हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

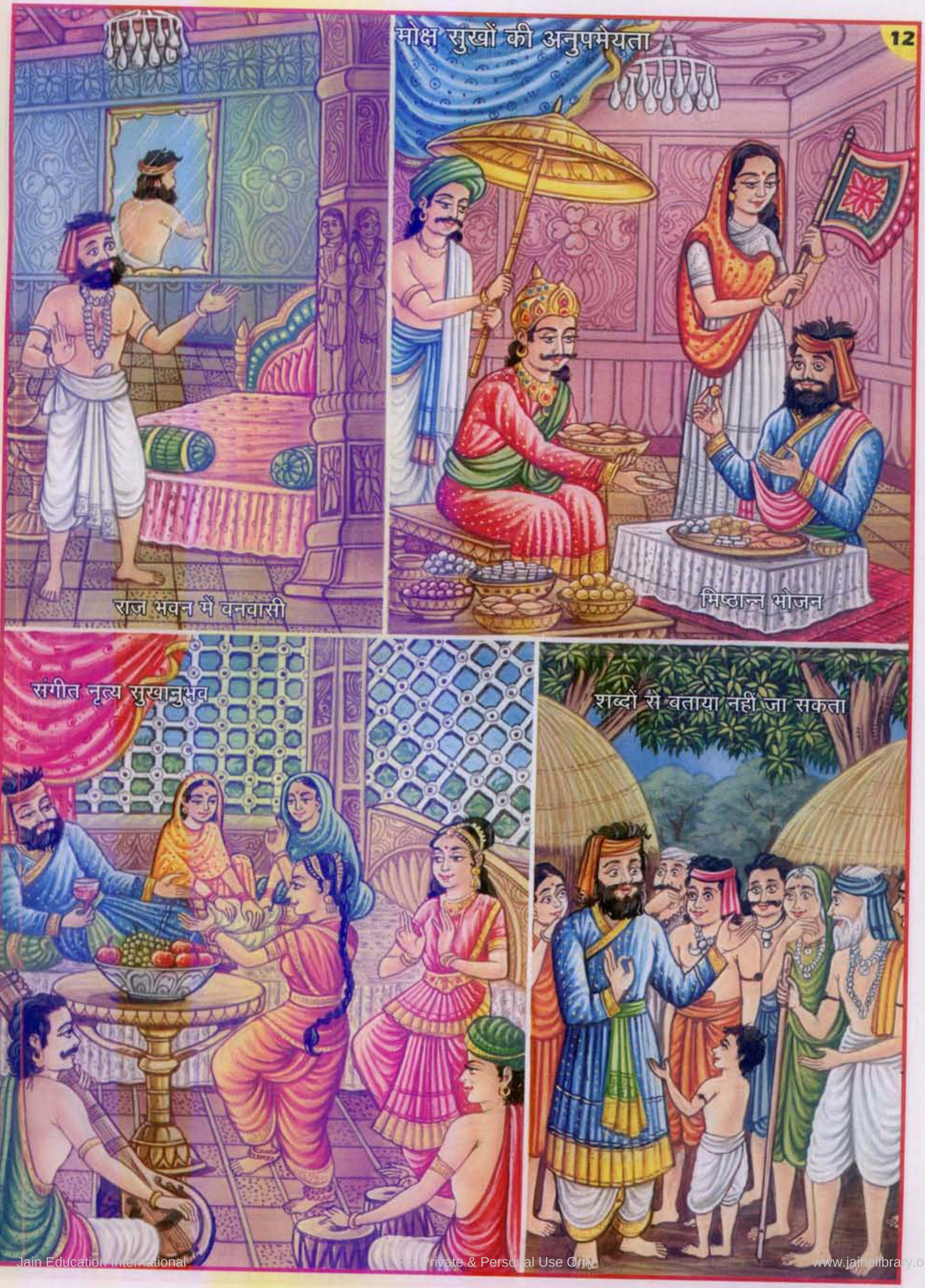

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

चित्र परिचय-१२

Illustration No. 12

मोक्ष सुखों की अनुपमेयता

मोक्ष में आत्मा कैसा सुख अनुभव करती है, इसको समझाने के लिए एक दृष्टान्त दिया गया है।

जंगलों में रहने वाला कोई वनवासी पुरुष राजा की मित्रता के कारण एकबार नगर में आया। राजा ने उसे अपने सुन्दर सुसज्जित महलों में ठहराया। महलों की चकाचौंध व सजावट देखकर वह चकित सा रह गया है। फिर राजा उसे अनेक प्रकार के मिष्ठान्न-पक्वान्न खिलाता है। स्वादिष्ट भोजन परोसता है और शीतल-सुगन्धित पेय आदि पिलाता है। भोजन के पश्चात् राजमहलों की कोमल शैय्या पर सोना, वहाँ नृत्य-गायन तथा दासियों की सेवा-चाकरी व विविध प्रकार के फलों व मधुर पेयों से स्वागत-सत्कार। इन सब अभूतपूर्व सुखों के अनुभव से वह मन ही मन बड़ा चकित-भ्रमित-सा हो गया। कुछ दिन राजभवन के सुखों का आनन्द लेकर वह अपने वन में चला जाता है। वहाँ के वनवासी स्वजन-परिजन उससे पूछते हैं-तुमने वहाँ क्या खाया, पीया? कैसा स्वाद था उसका? कैसा सुख अनुभव किया? वनवासी उन सब भोगे हुए सुखों का वर्णन करना चाहता है, परन्तु उसके पास न तो शब्द है, न ही उपमा। वह उन अनुभूत सुखों का वर्णन नहीं कर पाता। बस यही कहता है, बहुत ही अनुपम सुख था। बड़ा ही आनन्द आया।

इसी प्रकार मोक्ष में आत्मा को जिन अभूतपूर्व सुखों का अनुभव होता है, उनका वर्णन करने के लिए न तो पर्याप्त शब्द हैं न ही कोई यथार्थ उपमा है। इसलिए उन्हें अनुपमेय सुख कहकर बताया जाता है।

—सूत्र १८३-१८४

INCOMPARABLE BLISS OF LIBERATION

A story is narrated to explain the bliss experienced by a soul in the liberated state.

An aborigine living in a jungle comes to a city to visit the king who is a friend. The king took him to his beautiful and decorated palace for stay. The aborigine was dumbfounded to see the grandeur and radiance of the palace. When it was meal time he was served rich and tasty dishes and flavoured cold drinks. After meals he enjoyed music and dance, was served a variety of fruit juices by maids, and enjoyed sleeping in the soft bed. This unprecedented experience of pleasure astonished and intoxicated the aborigine. Enjoying the stay for a few days he returned to the jungle. There his curious friends and relatives asked him what he saw ? What he ate ? How was the taste ? How he enjoyed everything ? The aborigine wants to express his pleasurable experiences but fails to find words or metaphors to do so. He was unable to express what he had experienced. He just utters—"It was very good. It was excellent. It was fun."

Same is true for the unearthly spiritual bliss of a *Siddha* which is unique. There is no suitable allegory or metaphor to convey it. That is why it is called incomparable bliss

—Sutra 183-184

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजमहल की अद्‌भुत शोभा देखकर वह सीधासादा भील युवक भौंचक्का-सा रह गया। राजा ने उसकी मालिश करवाई, स्नान कराया, सुन्दर मुलायम कपड़े पहनाये। भोजन का समय जब हुआ तब रत्नजटित सोने के थालों में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पकवान उसे परोसे गये। शीतल मधुर पेय पिलाये। भील के लिए यह सारी बातें इन्द्रजाल के समान ही थीं।

भोजन के बाद राजा ने उसे अपने महल का शेष भाग भी दिखाया, जिसे देख-देखकर वह अपना भान ही भूल बैठा और उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो वह किसी जादू नगरी अथवा परीलोक में ही सैर कर रहा हो। उसके लिए यह अपने जीवन का प्रथम अनुभव था, जिसकी कल्पना भी उसने कभी न की होगी।

आनन्द मनाते हुए दो-चार दिन देखते-देखते बीत गये। किन्तु उसके बाद उसे अपने घर और परिवार की याद सताने लगी। उसे याद आने लगे अपने वे पर्वत और जंगल के कन्द-मूल और फल, वह स्वतन्त्रता और शुद्ध वायु।

इसके अतिरिक्त उसके मन में अपने माता-पिता तथा अन्य बंधु-बान्धवों को इस विलक्षण सुख और आनन्द का अनुभव बताने की तीव्र लालसा भी जाग्रत हो उठी। बेचारा पहाड़ी भील तो था ही, नगर-सभ्यता से उसका क्या लेना-देना? अतः शिष्टता-अशिष्टता का कुछ भी विचार किये बिना, वह बिना किसी से कहे, बिना राजा से मिले, अपनी लकुटिया उठाकर जंगल की राह चल पड़ा।

एक नवीन आनन्दानुभूति के कारण उसके पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ रहे थे। हवा में उड़ता हुआ-सा वह जंगलों में जा पहुँचा। अपने स्वजन-साथियों से उसने सारी घटना का और जो कुछ भी उसने देखा, अनुभव किया, उसका वर्णन करने लगा। उत्सुक भीलों की भीड़ लग गई। उसने क्या देखा, क्या खाया, कैसा स्वाद था, कैसे रहा इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देते-देते वह आखिर थक गया। वस्तुओं के नाम तो उसे याद थे नहीं, प्रश्नों के उत्तर में वह इतना ही कहता रहा-"बहुत अच्छा, बहुत बढ़िया, बड़ा मजेदार था।"

वन में पाई जाने वाली अनेक वस्तुओं के नाम ले-लेकर भील उससे पूछते-"क्या ऐसा ही था?" किन्तु वह उत्तर देता-"नहीं, इससे हजार गुना अधिक अच्छा था, लाख गुना अधिक स्वादिष्ट था वह!' और ऐसा कहते-कहते वह खुशी से नाच उठता था। कह देता था-"क्या था, कैसा था-कुछ न पूछो! अजीब था, बहुत बढ़िया।"

प्रकृति के सरल पुत्र उस भील युवक में नागरिक सौंदर्य, आनन्द तथा राजमहल के सुख और वैभव को व्यक्त करने की क्षमता नहीं थी। न ही उसके पास शब्द थे। न ही कोई उपमा थी। वह तो मन ही मन उन अनुभूतियों का आनन्द लेकर मग्न हो रहा था। उन अनुभूतियों को शब्दों द्वारा प्रकट करने में वह समर्थ नहीं था।

सिद्ध भगवान को इसी प्रकार का अलौकिक आत्मानन्द तथा सुख है, जो अनुपम है। उसे किसी उपमा द्वारा बताया नहीं जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Elaboration—Aphorisms 182 and 183 give the example of a primitive aborigine to explain the bliss of *Siddhas*. However, the commentators have added the following story as an example—

A king was very fond of outings. One day he went out riding a horse along with some soldiers to roam around in a forest. His horse was very fast. It had the speed of the wind. Thus, the king soon went far ahead of the accompanying soldiers.

It was the scorching sun of the summer season and the hot air was tormenting the body, specially the ears. Animals and birds had also taken refuge in the shade. In such difficult conditions the king got isolated and lost his way. For hours he roamed around in vain in search of an exit. He was completely exhausted. He was dying with thirst but could not find even a drop of water in that scorching summer afternoon. He felt as if he was going to die. At last in a state of complete exhaustion he thought of stopping in the shade of a dense tree to rest. But he had become so feeble that he could not even get down from the horse. He fell on the ground and lost consciousness.

Coincidentally an aborigine youth who was residing in that forest arrived there. He saw that a wayfarer was lying unconscious and his beautiful horse was standing nearby. He at once realized that 'the wayfarer had lost his consciousness due to thirst.' The aborigine carried cold water with him. He sprinkled some water on the king's face. Slowly the king regained his consciousness. The aborigine made him drink a little water and then gave some fruits and bread to eat. Thus the king was saved.

The king found the ordinary dry bread much more tasty and satiating than the rich and gourmet food he was used to. Expressing his gratitude to the aborigine, the king said—"Brother ! You have given me a new life today. You have done me a favour that I cannot forget all my life."

The simple aborigine responded naturally—"Hey fellow ! Don't talk of gratitude. To provide food and water to a hungry and thirsty wayfarer is our duty."

This answer moved the king. A surprisingly high degree of humanitarian values were evident in a person who was called a primitive. He placed his hand affectionately on the shoulder of the aborigine and said—"Brother ! I can never repay for this selfless obligation. Although I am a king, there is nothing I can give you at the moment. I insist that whenever possible you must come to my city."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"Why do you talk of give and take ? Did I sell you the water and bread ?" The aborigine said with a smile.

The king's eyes brimmed with tears of gratitude. He said—"All right, brother ! But I beseech you to come to my city and my palace."

Accepting the king's offer the aborigine said—"All right. But who knows the future. However, if I happen to visit the city some time, I will certainly meet you. But tell me your name and address. How will I find you ? Will you recognize me when you see me ?"

The king laughed at this guileless statement and replied—"Hey brother ! How can I not recognize you ? I can never forget you in this life. When you are in the city just ask anyone where is the house of the king ? That is enough and you will find me there."

The king sat on his horse, bid farewell to his aborigine saviour and left for his city. He had asked the aborigine about the path to the city. After he covered some distance he also found his soldiers.

Some days later, that aborigine went to the city for some work. He thought—'Why not meet the king while I am in the city ? The poor chap had requested me many a time.' He asked some pedestrian—"Where is the house of the king ?"

People standing around laughed at his ignorance. One of them said—"Stupid ! Don't say king's house, say king's palace."

"All right. Let it be king's palace. But tell me where it is ?"

Someone showed him the way to the palace. The aborigine straight away went there and saw that the king's house was very large, high and beautiful. It was very attractive. When he stepped ahead to enter, the gatekeeper frowned and stopped him. He asked—"Stop there ! Where are you going ?"

"Doesn't some king live here ?"

"Yes, he lives here. So what ? You hardly qualify to meet the king. Go away, you fool, rustic.... !"

The guard would have further insulted and ill-treated the aborigine but luckily for him the king was sitting in the *verandah* and he happened to look down at his aborigine friend. He shouted at the guard and rushed to the gate. He affectionately held the aborigine's hand and took him inside the palace. The gatekeeper, courtiers, servants and maids all were taken aback.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The simple aborigine youth was dumbfounded to see the divine grandeur of the palace. The king arranged for his massage and bath and got him dressed in fine soft clothes. When it was meal time he was served rich and tasty dishes in gem studded golden plates. He was also offered sweet and flavoured cold drinks. For the aborigine all this was like a magic spell.

When the meals were over, the king took him around the palace. As the aborigine went around the palace and witnessed its gorgeousness he was stunned and felt as if he had come to some magical city or fairy land. It was his first experience of a king's palace and he could never imagine that even in his dreams.

Enjoying the stay, a few days passed unawares. But after that he felt homesick and missed his family. He thought of his mountain and forest and fruits and the freedom and the pristine air.

Besides these, he was filled with a burning desire to share his experience of this unique joy and pleasure with his parents and friends. He was a simple aborigine of hilly area and was ignorant of the city culture. Not encumbered by any thought of social norms and etiquette, he took his staff and left without informing anyone or meeting the king.

His newfound experience made him fleet-footed. He reached the forest as if floating in air. He started describing in detail the incident and what he saw and experienced. A crowd of curious aborigines gathered around asking him, what he saw, what he ate, how was the taste, how he enjoyed everything ? Answering all their questions he at last got tired. As he did not remember the names of all the things he had seen, he replied all questions uttering—"It was very good. It was excellent. It was fun."

His friends asked him pointing at various things available in the forest—"Was it like this ?" And he replied—"No ! Thousand times better than this. Hundreds of thousand times tasty than this." And he would start dancing with joy. Finally he would say—"Don't ask what it was or how it was ? It was strange but it was excellent."

A simple son of nature, that aborigine lacked the ability or knowledge to express in words the urban beauty and pleasure or the joy and grandeur of the palace. He neither had words nor any metaphors. He was happy enjoying reminiscences of his experiences. It was impossible for him to express those feelings in words.

Same is true for the unearthly spiritual bliss of a *Siddha* which is unique. There is no suitable allegory or metaphor to convey it in words.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८४-८५. जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई।
तण्हा-छुहाविमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो॥१८॥
इय सव्वकालतित्ता, अतुलं निव्वाणमुवगया सिद्धा।
सासयमव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता॥१९॥

१८४-१८५. जैसे कोई पुरुष अपने द्वारा चाहे गये पाँचों इन्द्रियों को तृप्त करने वाले सभी गुणों-विशेषताओं से युक्त यथेच्छित भोजन कर, भूख-प्यास से मुक्त होकर अमृतपान के समान अपरिमित तृप्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार सिद्ध भगवान सर्वकालतृप्त-सर्वदा परम तृप्तियुक्त, अनुपम शान्तियुक्त-सदा काल स्थिर रहने वाला तथा सभी विघ्न-बाधाओं से रहित अव्याबाध-परम सुख में निमग्न रहते हैं।

184-185. If a person has tasted ambrosia and is free of all hunger and thirst, he feels amply satiated after eating desired food, having all qualities required to gratify all the five senses and in required quantity. In the same way a *Siddha* remains fully engulfed in the unobstructed and uninterrupted ultimate bliss that is ever satiating, extremely serene and absolutely permanent.

१८६. सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य, पारगयत्ति य परंपरगयत्ति।
उम्मुक्ककम्मकवया, अजरा अमरा असंगा य॥२०॥

१८६. वे सिद्ध हैं-उन्होंने अपने सारे प्रयोजन साध लिए हैं। वे बुद्ध हैं, केवलज्ञान द्वारा समस्त विश्व का बोध उन्हें प्राप्त है। वे पारगत हैं, संसार-सागर को पार कर चुके हैं। वे परम्परागत हैं, वे परम्परा से प्राप्त मोक्ष के उपायों का अवलम्बन कर संसार-सागर के पार पहुँचे हुए हैं, वे उन्मुक्त-कर्मकवच हैं, जो कर्मों का कवच-आवरण उन पर लगा था, उससे वे मुक्त हो चुके हैं। वे अजर हैं, वृद्धावस्था से रहित हैं। अमर हैं, मृत्यु के पार के पहुँच गये हैं, तथा वे असंग हैं, सब प्रकार की आसक्तियों से तथा समस्त पर-पदार्थों के संसर्ग से रहित हैं।

186. They are *Siddhas* (perfect ones) as they have attained all their goals. They are *Buddhas* (enlightened ones) as they know all that is to know through omniscience. They are *Paragat* (accomplished ones) as they have crossed the ocean of mundane existence. They are *Paramparagat* (adept ones) as they have attained salvation from cycles of rebirth following the traditional

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

path. They are *Unmukt-karmakavach* (unveiled ones) as they are free of the armour like veil of *karmas* they had when they were born. They are *Ajar* (ageless) as they are immune to the process of ageing. They are *Amar* (immortal ones) as they have gone beyond death. And they are *Asang* (detached ones) as they are free of all attachment and involvement with all things other then the self.

१८७. णित्थिण्णसव्वदुक्खा, जाइजरामरणबंधणविमुक्का।
अव्वाबाहं सुक्खं, अणुहोंति सासयं सिद्धा॥२१॥

१८७. वे सिद्ध भगवान सब दुःखों को पार कर चुके हैं, जन्म, जरा तथा मृत्यु के बन्धन से मुक्त हैं। निर्बाध, शाश्वत सुख का अनन्त काल तक अनुभव करते रहते हैं।

187. They have gone beyond all miseries and are free of the bondage of birth, ageing and death. They experience unobstructed and uninterrupted spiritual bliss eternally.

१८८. अतुलसुहसागरगया, अव्वाबाहं अणोवमं पत्ता।
सव्वमणागयमद्धं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता॥२२॥

● ओवाइयं समत्तं ●

१८८. वे सिद्ध भगवान अनुपम सुख-सागर में लीन, बाधारहित अनुपम मुक्तावस्था को प्राप्त किये हुए अनागत काल में-भविष्य में सदा सुखों में स्थित रहते हैं।

● औपपातिकसूत्र समाप्त ●

188. Having attained the unobstructed unique state of liberation and engulfed in unfathomable ocean of beatitude they remain in the state of spiritual bliss for all times to come.

● AUPAPATIK SUTRA CONCLUDED ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट
APPENDIX

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

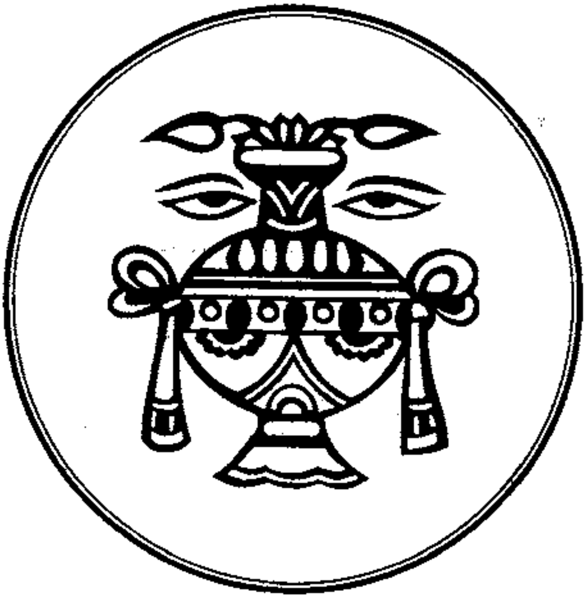

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों का अनध्यायकाल

(स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्‌धृत)

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वर-विद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी शास्त्रों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है।

स्थानांगसूत्र के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या। इस प्रकार बत्तीस अनध्यायकाल माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है।

दसविहे अंतलिक्खिए असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिए असज्झाए, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानांगसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवाए सुगिम्हपाडिवए।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पढिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते।

कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानांगसूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात—तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **दिग्दाह**–जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग–सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. **गर्जित**–बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. **विद्युत्**–बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु–स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. **निर्घात**–बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६. **यूपक**–शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. **यक्षादीप्त**–कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े–थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. **धूमिका–कृष्ण**–कार्तिक से लेकर माघ मास तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका–कृष्ण कहलाती है। जब तक वह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. **मिहिकाश्वेत**–शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्यायकाल है।

१०. **रज–उद्घात**–वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूल छा जाती है। जब तक यह धूल फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११–१३. **हड्डी, माँस और रुधिर**–पंचेन्द्रिय, तिर्यंच की हड्डी, माँस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आसपास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, माँस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन–रात का होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक तथा बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. **अशुचि**–मल–मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. **श्मशान**–श्मशान भूमि के चारों ओर सौ–सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. **चन्द्रग्रहण**–चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. **सूर्यग्रहण**–सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. **पतन**–किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र–पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाह–संस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ़ न हो, तब तक शनैः–शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. **राजव्युद्ग्रह**–समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन–रात्रि स्वाध्याय नहीं करे।

२०. **औदारिक शरीर**–उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२१–२८. **चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा**–आषाढ़–पूर्णिमा, आश्विन–पूर्णिमा, कार्तिक–पूर्णिमा और चैत्र–पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९–३२. **प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्ध–रात्रि**–प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी पहले और एक घड़ी पीछे एवं अर्ध–रात्रि में भी एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार अस्वाध्यायकाल टालकर दिन–रात्रि में चार काल का स्वाध्याय करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

INAPPROPRIATE TIME FOR STUDY OF AGAMS

Scriptures should be studied only at the appropriate time as prescribed in the *Agams*. Study of scriptures at a 'time inappropriate for studies' (*anadhyaya kaal*) is prohibited.

Detailed description of *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) is also included in *Smritis* (the corpus of *Sanatan Dharmashastra*) like *Manusmriti*. Vedic people also mention about the *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) of the *Vedas*. This rule is applicable to other Aryan holy books. As Jain *Agams* are sermons of the Omniscient, ensconced by the *devas*, and phonetically composed, discussion about the *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) is also included in the scriptures. For example :

According to *Sthananga Sutra* there are thirty two slots of time defined as *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies)—ten related to sky, ten related to the gross physical body (*audarik sharira*), four relating to *mahapratipada* (the date following a specific full moon night), four relating to the date of the said full moon night, and four relating to *sandhya* (the four junctions of parts of the day, viz. morning, noon, evening, and midnight). They are briefly described as follows :

RELATING TO SKY

1. Ulkapat or Tarapatan—If a falling star or a comet is visible in the sky scriptures should not be studied for three hours following the incident.

2. Digdaha—As long as the sky looks crimson in any direction, as if there was a fire then study of scriptures should not be done.

3. Garjit—For three hours following thunder of clouds such studies are prohibited.

4. Vidyut—For three hours following lightening such studies are prohibited.

However, the prohibition related to thunder and lightening is not applicable during the four months of monsoon. This is because

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

frequent thunder and lightening is an essential attribute of that season. Thus this prohibition is relaxed starting from *Ardra* till *Svati Nakshatra* (lunar mansion or 27/28 divisions of the ecliptic on the path of the moon).

5. Nirghat—For six hours following thunder without clouds (demonic or otherwise) such studies are prohibited.

6. Yupak—The conjunction of solar and lunar glows at twilight hour on first second and third days of the bright half of a month (*Shukla Paksha*) is called *Yupak*. During these dates such studies are prohibited during the first quarter of the night.

7. Yakshadeepti—Some times there is a lightning like intermittent glow visible in the sky. This is called *Yakshadeepti*. As long as such glow is visible in the sky such studies are prohibited.

8. Dhoomika-krishna—The months from *Kartik* to *Maagh* are months of cloud formation. During this period smoky fog of suspended water particles is a frequent phenomenon. This is called *Dhoomika-krishna*. As long as this fog exists such studies are prohibited.

9. Mihikashvet—The white mist during winter season is called *Mihikashvet*. As long as this exists such studies are prohibited.

10. Raj-udghat—High speed wind causes dust storm. This is called *Raj-udghat*. As long as the sky is filled with dust such studies are prohibited.

RELATING TO GROSS PHYSICAL BODY

11-13. Bone, flesh and blood—As long as bone, flesh and blood of five sensed animals are visible and not removed from sight such studies are prohibited. According to the commentator (*Vritti*) if such things are lying up to a distance of 60 yards the prohibition is effective.

This rule is applicable to human bones, flesh and blood with the amendment that the distance is 100 cubits and the effective period is one day and night. The period prohibited for studies is three days in case of a women in menstruation, seven days in case of male-child birth and eight days in case of a female-child birth.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

14. Ashuchi—As long as excreta is visible and not removed from sight such studies are prohibited.

15. Smashan—Up to a distance of hundred yards in any direction from a cremation ground such studies are prohibited.

16. Chandra grahan—At the time of lunar eclipse such studies are prohibited for eight, twelve, or sixteen hours.

17. Surya grahan—At the time of solar eclipse such studies are prohibited for eight, twelve, or sixteen hours.

18. Patan—On the death of a king or some other nationally eminent person such studies are prohibited as long as he is not cremated. Even after that, the period of study is kept limited as long as his successor does not take over.

19. Raaj-vyudgraha—During a war between neighbouring states such studies are prohibited as long as peace does not prevail. Studies should be resumed only 24 hours after peace is established.

20. Audarik Sharir—In case a five sensed animal dies or is killed in an *upashraya* (place of stay for ascetics) such studies are prohibited as long as the dead body is not removed. This prohibition also applies if a dead body is lying within 100 yards of the place of stay.

21-28. Four Mahotsavas and four Mahapratipada—*Ashadh, Ashvin, Kartik*, and *Chaitra purnimas* (the full moon days of these four months) are called great festival days. The days after these festival days are called *Mahapratipada*. On all these days such studies are prohibited.

29-32. Sandhya—During the twenty four minutes preceding and following the four junctions of parts of the day, viz. morning, noon, evening, and midnight such studies are prohibited.

Studies of scriptures or other holy books should be done avoiding all these *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Appendix-2

Technical Terms

AUPAPATIC SUTRA

The alphabetical index of technical terms according to aphorism number

(A)

aagar dharma = householder's code (57)

Aaigaranam (Aadikaranam) = the first propounders of Jainism (20)

Aaigare (Aadikar) = the first propounder of the *shrut dharma* (Jainism) of his time [16 (a)]

aak = a plant yielding fine fibre (10)

aakar = settlement near a mine (53, 69, 70, 71, 72, 73, 75, 76, 117, 120, 121, 122, 123, 125, 130)

aaram = entertainment centers [1 (b)]

Abaddhik = a group of dissenters (122)

abharan vidhi (abharan vihim) = art of making ornaments; art of adornment (107)

Abhayadayanam (Abhayadayakanam) = those who dispel fear (20)

Abhayadaye (Abhayadayak) = he who dispels fear [16 (a)]

abhigam = codes of courtesy meant for a religious assembly (54, 55)

abhiksha laabh = to resolve to accept food only if it does not fall in the category of *bhiksha laabh* [30 (c)]

abhinibodhik (mati) jnana vinaya [30 (g)]

Abhiyogik gods = servant gods (121)

abhyahrit (abhihade) = food that is brought to the place of stay of an ascetic and given to him (96)

abhyakhyan = blaming falsely [56 (b), 87, 123]

abhyakhyan viraman = to abstain from blaming falsely [56 (b)]

abhyangan = rubbing of oils, creams and pastes (48)

abhyantar tap [30 (f)]

abhyasavartita = to sit still near spiritual guides and noble persons [30 (g)]

abhyutthan = to stand up to show respect to elders and masters when they arrive [30 (g)]

Achal (Ayal) = the unwavering [16 (a), 20]

acharya = head of the order [30 (g), 117]

achhatrak = giving up use of umbrella (116)

achit = non-living (28); free of living organisms (54, 55)

Achuyt kalp = name of a dev-lok; the twelfth heaven (37, 120, 121, 124, 161, 163)

adan-bhand-patra nikshepan = maintaining ascetic equipment including bowls (27)

adantavan = not cleaning teeth (116)

adattadan = taking without being given; act of stealing [56 (b), 57, 123, 125]

adattadan viraman = to abstain from taking without being given; to abstain from acts of stealing [56 (b)]

Adhai Dveep = the area inhabited by human beings (37)

adhikaran = means (124)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

adho-lok = lower world (37)

adhyavapur (ajjhoyar) = food the quantity of which has been increased during cooking in anticipation of an ascetic's arrival (96)

adhyavasaya = assiduity (118)

adhyavasit (ajjhovavajjihit) = infatuation (111)

adrisht laabh = to resolve to accept food not seen earlier or from a donor never seen before [30 (c)]

agar (aagaar) = householder's life (23)

Agar = aloe wood; Aquillaria agallocha; fragrant herb used as incense [2 (a), 79]

Agni-kumar = a class among bhavan-vasi gods (34, 37)

aharak sharira = telemigratory body (146)

ahat = undamaged (48)

ahvaniya = suitable for charitable deeds [2 (b)]

ajar = ageless (187)

ajiva = the non-living or matter [56 (b), 94, 124]

Ajivaks = followers of Gaushalak (120)

ajna = commandments [30 (g)]

ajna-ruchi = to have faith and interest in worship and propagation of the teachings of the *vitarag* [30 (g)]

ajna-vichaya = meditation on the teachings of *Tirthankar* [30 (g)]

ajnana dosh = to indulge in sinful activities out of ignorance or mistaken belief inspired by fallacious scriptures [30 (g)]

ajnat charya = to resolve to accept food only if it is offered by a stranger and that too without revealing one's identity [30 (c)]

akaam brahmacharya = unintended or enforced celibacy (69, 72)

akaam nirjara = to endure inflicted pain aimlessly or out of helplessness (57); unintentional shedding of karmas (70)

akaam-tap = austerity devoid of the aspiration for spiritual purity (69)

akanduyak = to resolve not to scratch any part of the body when itching [30 (e)]

akash pratipati labdhi = the power to fly or to shower good or bad objects from the sky [24 (b)]

akashativadi labdhi = power to control formless things like sky [24 (b)]

akhyapak = auger [1 (a), 2 (b)]

akinchan = devoid of possessions [16 (c), 27]

Akriyavadi = non-doers (73)

akrodh = without anger (130)

Akshaya (Akkhaya) = he who is free of decay [16 (a), 20]

akshinamahanasik labdhi = the power of making the source of food inexhaustible [24 (b)]

alamban = support or aid [30 (g)]

aleek vachan = telling lies (57)

alhadajanak = rejuvenating and exhilarating body and senses (48)

alochanarh prayashchit = the atonement made simply by revealing a censurable fault [30 (g)]

alok = unoccupied space or the space beyond the known universe [56 (b), 169, 176, 181]

alpaparigrahi = people content with limited wealth and possessions (123)

alparambhi = people who commit minimum violence barely essential for subsistence (123)

alsi = linseed (10)

amam = selfless (27)

amanojna artadhyan = anxious mental state to be rid of detestable and adverse conditions and things [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Amar = immortal ones (187)

amaranant dosh = continued indulgence in mistakes and sinful activities without any repentance till the end of life [30 (g)]

amarshaushadhi labdhi = this power turned the touch of the adept curative [24 (b)]

amatsarata = absence of jealousy and appreciation of virtues (57)

amatya (amachch) = counselors heading eighteen different sections (15)

Ambad = a class of Parivrajaks (76)

Ambubhakshi = those who subsisted only on water (74)

amralata = a creeper (8)

anagar (anagaar) = homeless (23); homeless ascetic (93)

anagar bhagavant = venerable ascetic (114, 126, 129)

anagar dharma = ascetic way (38); ascetic code (57)

anakar upayog = non-manifest vivacity (154)

Anant = Infinite and Eternal [16 (a), 20]

anant dev sukha = endless divine happiness (181)

anantavrittitanupreksha = to contemplate again and again about the eternality of the cycles of rebirth [30 (g)]

Anapannik = a class among vaan-vyantar gods (35, 37)

anarth-dand = unnecessary harm to others (97)

anarth-dand viraman = to avoid attitudes and indulgences that are detrimental to the attributes of soul (57)

anarya = of ignoble class [56 (a)]

anashan = to abandon food and desire for food [30 (a)]

Anat = name of a dev-lok; ninth heaven (37, 161, 163)

anavasthapyarh prayashchit = the atonement that includes banishment of the defaulter from the ascetic order and not re-initiating him as long as he does not successfully perform the specified austerities prescribed for atonement [30 (g)]

anayukt gaman = improper and careless movement [30 (g)]

anayukt nishidan = improper and careless sitting [30 (g)]

anayukt prollanghan = improper and careless crossing of water or slime on the way repeatedly [30 (g)]

anayukt sarvandriyakayayoga yojanata = indulge in improper and careless activities of all sense organs and body [30 (g)]

anayukt sthan = improper and careless halting and standing [30 (g)]

anayukt tvagvartan = improper and careless lying and turning [30 (g)]

anayukt ullanghan = improper and careless crossing of water or slime on the way [30 (g)]

angad = bracelet for upper arm (79)

Angul = a linear measurement equal to the width of a finger (135, 167, 172, 173, 174)

anima = power of miniaturization [56 (b)]

anishthivak = to resolve not to spit [30 (e)]

anisrisht (anisitthe) = food given without permission of the owner (96)

anityanupreksha = to revolve around the thought that mundane things are ephemeral [30 (g)]

anjan = collyrium (38)

ankush = gardening hook used for cutting leaves from trees (86)

annaglyayak = to resolve to accept food only if it was cooked on the previous day [30 (c)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

annaviddhi (annavihim) = farming and cooking (107)

anopahanagam = giving up use of footwear (116)

antahar = to eat food prepared from cheap and low quality food grains [30 (d)]

antahpur = women's quarters (23)

antaraya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of karma particles responsible for impeding the attribute of infinite energy of the soul [30 (g)]

antarmuhurt = less than one muhurt or 48 minutes (143, 153)

antevasi = ascetic disciples [23, 24 (a), 25]

antyashatana vinaya = avoiding disrespect [30 (g)]

anumat = commendable (87)

anupreksha = to ruminate over anything connected with the scriptures including the text, meaning and related topics [30 (g)]

anurakt (rajjihit) = attraction (111)

Anuttar Vimans (37, 161)

anuvrats = minor vows (38, 57, 118)

apadhyanacharit = bad or wrong thinking (97)

apaneet charya = to resolve to accept alms only from the portion separated and kept away for donating to a person other than the seeker [30 (c)]

apaneetopaneet charya = to resolve to accept alms only from the food which is *apaneet* or *upaneet* and also the food which is first decried and then extolled [30 (c)]

apanvithi = marketplaces (40)

Aparajit (163)

apardh = less than half [30 (b)]

aparyavasit = without an end (154, 155, 167)

Apavritadvar = in whose house doors are never closed to anyone (94, 124)

apaya-vichaya = contemplation and meditation about removal of sources of sorrow, breaking of the bondage of karma, and gaining the transcendental state [30 (g)]

apayanupreksha = to contemplate again and again about the torments caused by influx of karmas [30 (g)]

apoh = deduction (92, 118)

aprashast kaya vinaya = ignoble modesty or non-modesty of body [30 (g)]

aprashast man = ignoble mind [30 (g)]

aprashast mano vinaya = ignoble modesty or non-modesty of mind [30 (g)]

aprashast vachan vinaya = ignoble modesty or non-modesty of speech [30 (g)]

Apratighat (Appadihaya) = holder of unlimited unveiled knowledge and perception [16 (a), 20]

apravartak = to remain unclad [30 (e)]

aprisht laabh = to resolve to accept food only if not so addressed [30 (c)]

apsaras = goddesses (37)

apt-purush = sagacious individuals [30 (g)]

Apunaravartak (Apunaravattiam) = those who attain the state from where there is no return to the cycles of rebirth [16 (a), 20]

Arab = Arabia; name of a geographic area (55)

aradhak = spiritual aspirant (69)

aram = garden [30 (f)]

Aran = name of eleventh dev-lok (37, 161, 163)

arasahar = to eat tasteless and flavourless food [30 (d)]

archaniya = suitable for offering scented substances [2 (b)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

archi = divine brilliance (33)

ardh = half [30 (b)]

ardh-haar = half necklace; nine string necklace (38, 48, 79)

Ardhamagadhi language [56 (a)]

ardhamasik bhakt = fasting for a fortnight [30 (b)]

Arhantanam = the worthy ones (20, 87)

Arhat (Araha) = worthy of worship [16 (a), 30 (g), 56 (b)]

Arihant = Jain *Tirthankar* (57, 99)

Arihant chaityas = ascetic followers of *Arihant* (99)

arjav = simplicity and honesty [30 (g)]

Arjun = a tree (6)

art-gaveshanata = to take proper care, with medicine and food, of the ailing and aging ascetics and spiritual guides [30 (g)]

arttadhyan = grievous thoughts or agitated state of mind caused by gain and loss of coveted things and conditions [30 (g), 97]

Aruja (Arua) = who are free of ailments [16 (a), 20]

arya (aryaa) (ajjam) = poetics specially metric rhyming in *aryaa* and other *matrik chhand* (107)

arya = of noble class [56 (a)]

asakt (sajjihit) = attachment (111)

asamkhyat samaya = a unit of time (28)

asammoha = not to be deluded by any illusions created by gods or any other subtle and complex subjects [30 (g)]

asamyat = absence of self-restraint (64, 67, 68)

asan-pradan = to provide seat to elders when and where they want to sit [30 (g)]

asanabhigrah = to carry cushion or mattress for elders to sit on [30 (g)]

Asang = detached ones (187)

asanklisht parinam = unperturbed attitude (70)

asansrisht charya = to resolve to accept food only if served with clean hands or spoons unsoiled with the food [30 (c)]

asasag = a tree (37)

ashan (87, 94, 108, 124)

asharananupreksha = to revolve around the thought that there is no succour and refuge other than the teachings of the jina [30 (g)]

asharira = without a body (154)

ashatana-anavasthapya prayashchit = this atonement is prescribed for the fault of committing acts of disrespect to *Tirthankar* and other individuals of high religious status [30 (g)]

Ashoka = pious tree for *Kimpurush* and *Kinnar* (37)

ashokalata = a creeper (8)

ashram = hermitage (53, 69, 70)

ashrut = hitherto unknown (38)

asht-mangal = eight auspicious symbols (49)

ashtaashtamika = eight eight-day duration *bhikshupratima* [24 (c)]

ashtam bhakt = giving up eight meals or fasting for three days [30 (b)]

ashtapad (atthavayam) = playing board games like chess and chopar (107)

ashubhanupreksha = to contemplate again and again about the ills and evils of the world [30 (g)]

asi lakshan (asilakkhanam) = knowledge of the characteristics of the sword (107)

asnana = giving up bathing (116)

asrava = inflow of *karmas* [16 (c), 56 (b), 124]

asravakar = attracting influx of demeritorious *karmas* [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Asur or Asur-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (33, 34, 37, 53, 94, 124)

atank artadhyan = anxious desire to be rid of terror and ailments [30 (g)]

atapak = to remain exposed to the sun or other sources of heat [30 (e)]

Atharvan (77)

atibali = having infinite strength [56 (a)]

atimuktakalata = a creeper (8)

atithi samvibhag = to respectfully share, from one's lawful possessions, things needed by ascetic and co-religionist guests for discipline and sustenance (57)

atmapradesh = soul-space-points (131)

atmokarshak = *Shramans* who are indulging in self-praise (121)

audarik = gross physical (153)

audarik sharira = gross physical body (146)

auddeshik (uddesiyam) = prepared specifically for *shramans* against the code of *ahimsa* (96)

avadhi-jnana = extrasensory perception of the physical dimension, something akin to clairvoyance [24 (a), 30 (g), 92]

avadhi-jnana vinaya [30 (g)]

avagahana = space-occupation or height (158); space occupied; (172, 173, 174, 175, 177)

avalika = a unit of time (28)

avamodarika = eating less than appetite and also to limit use of other utilities [30 (a)]

avarjikaran = the state of fruition (143)

avirat = not abstained from violence and other such acts (64, 67, 68)

Aviruddha = those who follow humbleness or submissive devotion as religion (73)

Avyabadh (Avvavaha) = those who are beyond all obstructions [16 (a), 20]; unimpeded (180)

Avyaktik = a group of dissenters (122)

avyatha = not to get disturbed by any divine or demonic affliction [30 (g)]

ayamasikth bhoji = to consume meager quantities of grain-wash and the few leftover grains in it [30 (d)]

ayambil (achamamla) = eating once in a day food cooked or baked with a single ingredient even without any salt or other condiments [30 (d)]

ayambil-vardhaman-tap [24 (c)]

ayan = a unit of time (28)

ayogi = state of non-association or non-action (153)

ayu = *karma* that determines the span of a given lifetime [30 (g)]

ayu-kshaya = concluding one's life-span (101)

ayushya = *karma* that determines the span of a given lifetime (141, 153)

ayushya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for life-span [30 (g)]

(B)

baal tap = to indulge in austerities and other such practices in state of unrighteousness or ignorance (57)

Bahal = name of a geographic area (55)

bahu dosh = to remain absorbed in thoughts of many or all of the sinful activities like violence, falsehood, etc [30 (g)]

Bahudak = a class of Parivrajaks; those who, as a rule, spend only one night in a village and five nights in a city (76)

bahumat = admirable (87)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

bahurakshika = arm-bands (19)

Bahurat = a group of dissenters (122)

bahuyuddha (bahujuddham) = arm wrestling (107)

bajuband = armlets (37)

Bal = a class of Parivrajaks (76)

bal = four pronged army (23); physical strength [56 (a), 69, 70]

balasampanna = rich in physical strength (25)

balavyaprit = the chief of the commissariat of his army (40)

Baldev = epoch maker sovereign of the land [56 (b)]

bali karma = propitiatory rites (38)

balis = earrings (37)

Balukaprabha = the third hell (160)

bandh = bondage of *karmas* [56 (b), 124]

Barbar = name of a geographic area (55)

bater = quail [4 (b)]

bavadi = a deep and elaborate masonry tank or well with steps down to the water level [1 (b), 79]

beej buddhi = capacity to elaborate the meaning of an aphorism like growing of a large tree from a seed [24 (b)]

bhaava avamodarika [30 (b)]

bhaava vyutsarg [30 (g)]

bhaavabhigrah charya = to resolve to accept alms only if a donor displays a specific sentiment or activity such as mirth, singing, entertaining himself, etc [30 (c)]

bhaavit = enkindling [21, 22, 23, 24 (a), 26, 31, 38, 62, 94,100]

bhadra kalyan = endowed with bliss, love, great charm and joy [56 (c)]

bhadrapratima [24 (c)]

bhadrasan = a specific design of seat (49)

Bhagavantanam = the supreme ones (20)

Bhagnak = a class of Parivrajaks (76)

bhakt paan dravya avamodarika = restricted consumption of food items [30 (b)]

bhakt pratyakhyan = lifelong fasting [30 (b)]

bhakt-pan vyutsarg = to renounce food and water and attachment for them [30 (g)]

Bhaktivadi = those who took submissive devotion as religion (73)

bhanit = speech [12 (a)]

bharand = a mythical bird of giant proportions (27)

Bhargava = a class of Parivrajaks; the followers of the tradition founded by sage Bhrigu (76)

bhasha = speech (27)

bhava-kshaya = shedding the *karmas* causing specific birth (101)

Bhavan-vasi = mansion residing (34)

bhavans = abodes (37)

bhavya jiva = souls worthy of attaining liberation [56 (c)]

bhedakar = filled with thoughts of piercing nose, ears, and other body-parts of beings [30 (g)]

bheem = terrifying appearance (42)

bheri = a musical instrument (49, 52)

bhiksha laabh = to resolve to accept food only when it is so lowly as to be worthy of a beggar or that which the donor himself has collected as alms or cooked from collected alms [30 (c)]

bhikshacharya = to live on alms [30 (a)]

bhikshupratima [24 (c)]

bhindimal = javelins or slingshots (49)

bhingarak = a type of bird producing humming sound like a bumble-bee [4 (b)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Bhog = king's ministers (23, 38)

Bhog-putra = sons of ministers (38)

bhog-raj = dust of indulgence (112)

bhojak = singers of devotional songs [2 (b)]

Bhoot = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

Bhoot-vadik = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

Bhootikarmik = Shramans who distribute consecrated ash and other such things for removing ailments and other problems of people (121)

bhring = black-bee [16 (b)]

bhritya = servants (49)

bhuj-mochak gem [16 (b)]

bhujag = serpent (37)

Bhujagapati mahakaya mahorag = a class among *vaan-vyantar* gods (37)

bhumishayan = lying on ground (116)

bhusundi = a sling like weapon for throwing stones [1 (b)]

Bijahari = those who subsist on seeds (74)

Bil-vasi = those who lived in caves and holes (74)

bimb fruit = *kundaru*; Coccinia cordifolia (l) cogn. [16 (b), 33]

Bohayanam (Bodhakanam) = those who are the givers of enlightenment (20)

Bohaye (Bodhak) = the giver of enlightenment [16 (a)]

Bohidayanam (Bodhidayakanam) = those who steer one to enlightenment (20)

Brahma = name of a *dev-lok* (37, 161, 163)

brahmacharya = chastity (62)

brahmacharyavaas = practicing celibacy (116)

Brahmalok = the fifth *dev-lok* (100)

Brahmin Parivrajaks = the initiates from the Brahmin clans (76)

Brihaspati = Jupiter (36)

brimhaniya = toning up of muscles (48)

Buddha = enlightened (116, 147, 151)

Buddhanam = enlightened ones (20, 187)

Buddhe (Buddha) = the enlightened [16 (a)]

Budha = Mercury (36)

bura = a plant (10)

(C)

chaap graah = attendants who carried bows and arrows (49)

chaar-pratichaar (chaaram-padichaaram) = knowledge of the movement, position, and influence of stars and planets like the moon and the sun, and means and methods of impeding and enhancing their good and bad effects (107)

chaatukar = flatterers (49)

chaityas = temples (99)

Chakkhudayanam (Chakshudayakanam) = those who give spiritual vision (20)

Chakkhudaye (Chakshupradayak) = he who gives spiritual vision [16 (a)]

chakor = a type of partridge [4 (b)]

chakra = disk-weapon [1 (b)]; wheel [16 (b)]

chakra lakshan (chakkalakkhanam) = knowledge of the characteristics of the disc weapon (107)

chakravak = brahminy duck; anas casarca [4 (b)]

chakravarti = emperor [16 (c), 50]; epoch maker sovereign of the land [56 (b)]

chakravyuha (chakkavooham) = battle formation - circular (107)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

chakrik = potters (53)

chakshurindriya-vishaya-prachar-nirodh = to restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of seeing [30 (f)]

chamar = whisk (19)

chamar graah = attendants who carried whisks (49)

Chamarendra (53)

chamars = yaks (10)

champaka = a creeper (8)

chandan = sandal-wood tree (6)

Chandra = the moon; a class among jyotishk gods (36, 37)

charam mohaniya karma or sukshma lobh = residual deluding *karma* or minute greed (66)

charan labdhi = special power of movement and speed [24 (b)]

charitra vinaya = modesty of conduct [30 (g)]

charitrasampanna = strict adherents of ascetic-conduct (25)

charma lakshan (chammalakkhanam) = knowledge of the characteristics of leather and leather goods, such as shield (107)

Charvak [56 (b)]

charya = praxis (122)

chaturdash bhakt = giving up fourteen meals or fasting for six days [30 (b)]

chaturmasik bhakt = fasting for four months [30 (b)]

chaturth bhakt = giving up four meals or fasting for a day [30 (b)]

chaturvidh vandan = quintuple bowing; a specific posture of squatting and bending forward bowing head, two hands and two knees (38)

chauthai = quarter [30 (b)]

ched or sevak = attendants and servants (15)

chhadmasth = one who is short of omniscience due to residual *karmic* bondage (128, 133, 134, 138, 139)

chhagal = goat (37)

chhand = poetics (77)

chhatra = umbrellas (86)

chhatra lakshan (chhattalakkhanam) = knowledge of the characteristics of umbrella or canopy (107)

chhedakar = filled with thoughts of cutting limbs of beings [30 (g)]

chhedarh prayashchit = the atonement done by curtailing some period from ascetic-state [30 (g)]

chhedopasthapaniya charitra vinaya [30 (g)]

chhek = astute (48)

chhinnagranth = free from any bonds in the form of attachment for material things (27)

chhinnapravah = free from any mundane activities (27)

chirasthitik = with a very long life-span [56 (c)]

chopar = a type of ludo (107)

chudamani = a jewel worn in the crest of a diadem (33, 79)

churna yukti (chunnajuttim) = the art of overpowering others and performing other miraculous acts using powder made of various herbs by tantric process (107)

(D)

daan dharma = religion of charity (78)

dadhiparna = a tree (6)

dadim = a tree (6)

daksh = skilled (48)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Dakshin-koolak = those who lived on the southern bank of the Ganges (74)

damarkar = hailers (49)

Damila = Dravid; name of a geographic area (55)

dand lakshan (dandalakkhanam) = knowledge of the characteristics of the staff (107)

dandanayak (dandanayag) = administrators (15)

dandayatik (dandayaiye) = to remain standing ramrod straight [30 (e)]

dandi = attendants who carried sticks (49)

Dantolu Khalik = those who eat fruits only (74)

darbh = grass (5)

darpan = a mirror (49)

darpaniya = enhancing physical strength (48)

darshan vinaya = modesty of perception/faith [30 (g)]

darshan-sampanna = having profound perception/faith (25)

darshanavaraniya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of perception/faith obscuring *karma* particles [30 (g)]

dash-mudrikas = ten rings (79)

dashadashamika = ten ten-day duration *bhikshupratima* [24 (c)]

dasham bhakt = giving up ten meals or fasting for four days [30 (b)]

davakar = comedians (49)

deept tapasvi = ascetic who is capable of turning the acquired *karmas* to ashes (62)

desh = soul-sections (177)

deshakalajnata = to behave properly and according to time and place [30 (g)]

deshavakashik = gradual disciplining of one's desires and indulgences (57)

dev = divine beings; god [56 (b), 69]

dev-lok = heavenly abodes, divine dimension; heaven; realm of gods [37, 56 (b), 56 (c), 101, 163]

dev-samsar vyutsarg = to renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as a divine being [30 (g)]

Devagupt = a class of Parivrajaks (76)

devakul = temple [30 (f)]

Dhamma Chakkavatti (Dharma Chakravarti) = Emperor of religion [16 (a)]

Dhammadayanam (Dharmadayak) = originators of *dharma* (20)

Dhammadesayanam (Dharmadeshakanam) = preceptors of *dharma* (20)

Dhammanayaganam (Dharmanayakanam) = leaders of *dharma* (20)

Dhammasarahinam (Dharmasarathinam) = true guides of *dharma* (20)

Dhammavarachaurant-chakkavatthinam (Dharmavarachaturanta Chakravartinam) = emperors of *dharma* in all the four dimensions of life (20)

dhan = herds of cattle (23)

dhanurvidya (dhanuvveyam) = archery (107)

Dhanush = a linear measure equivalent to four cubits (135, 158, 167, 172,)

dhanya (dhaanya) = stock of grains (23)

dharak = capable of retaining in memory (77)

Dharanendra (53)

dharim = traded by weight such as grains, sugar, etc (38)

Dharmachintak = those who study scriptures only (73)

dharmadhyan = virtuous meditation or pious thinking inspired and enhanced by religious sentiments [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

dharmakatha = to comment, elaborate, and lecture on shrut dharma [30 (g)]; to steer self and others towards spiritual discipline with the help of spiritual stories, biographies, and incidents [30 (g)]

dharmakhyati = people famous as being religious (123)

dharmakhyayi = people who preach religion to the worthy (123)

dharmanug = people who pursue the spiritual path as stated in the *Agams* (123)

dharmapraranjan = people who are absorbed in religion (123)

dharmastikaya = passive motion (176)

dharmik = people who follow the religious conduct as stated in scriptures (123, 125)

dharmisth = people who have affinity for religion (123)

dhaturakt = saffron garb (86)

dhav = a tree (6)

Dhoom-prabha = the fifth hell (160)

dhoomketu = comet (36)

dhoop = fragrant material used as incense [2 (a), 40]

dhvaj = flag (42)

dhyan = meditation, concentration, and restraint of feelings and attitudes [30 (f)]

dhyan tap = meditation, concentration, and restraint of feelings and attitudes [30 (g)]

digvrat = to limit movement in different directions (57)

dirghika = large pond (79)

Disha (dik)-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

Dishaprokshi (Disapokkhi) = those who sprinkled water in all directions before collecting fruits and flowers (74)

divo (deepak) = lamp [16 (a), 20]

divo (dveep) = island [16 (a), 20]

doot (duya) = emissaries and ambassadors (15)

dovariya = gatekeepers or guards (15)

dravya avamodarika [30 (b)]

dravya vyutsarg [30 (g)]

dravyabhigrah charya = to resolve to accept alms only when a specific thing is available under some specific conditions [30 (c)]

Dridhapratijna = firm in resolve (105)

drisht laabh = to resolve to accept food seen first of all or from the donor seen first of all [30 (c)]

dronmukh = a settlement connected with land rout as well as water rout; a hamlet (53, 69, 70)

dundubhi = a musical instrument (52)

duragantik = faraway [56 (c)]

durbhiksh bhakt (dubbhikkhabhatte) = food prepared for distributing to beggars and destitute during a drought (96)

durdur = toad (37)

dushchirna = unrighteous [56 (b)]

dvadash bhakt = giving up twelve meals or fasting for five days [30 (b)]

Dvaikriya = a group of dissenters (122)

dvaimasik bhakt = fasting for two months [30 (b)]

Dvaipayan = a class of Parivrajaks (76)

Dveep-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

dvesh = aversion inspired by suppressed anger and conceit [56 (b), 87, 123]

dvesh viraman = to abstain from aversion inspired by suppressed anger and conceit [56 (b)]

dvibhag = half [30 (b)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

dvitiya saptaratrindiva = two one week duration *bhikshupratima* [24 (c)]

dyoot (jooyam) = gambling (107)

dyuti = divine glow or family grandeur (33); radiance (69, 70)

(E)

ekant baal = absolutely unrighteous or who has intense false perception or belief (64, 67)

ekant dand = only inflicting pain on self and others (64, 67)

ekant supt = state of deep stupor of false belief (64, 67)

ekarchcha = destined to be born just once as human beings [56 (c)]

ekatvanupreksha = to revolve around the thought that good and bad *karmas* are acquired by a being alone and their fruits are also suffered by a being alone [30 (g)]

ekatvavitark-avichar = meditation on a single aspect of a single substance [30 (g)]

ekavali = single line bead-string (79)

ekavali-tap [24 (c)]

eshana = alms seeking (27)

eshaniya = acceptable for ascetics [30 (f)]

(G)

gachh = larger groups (31)

gada = mace [1 (b)]

gaj lakshan (gayalakkhanam) = knowledge of the characteristics of elephants (107)

gajapati = bull elephant (37)

gana = ascetic group [30 (g), 117]

gana vyutsarg = to renounce *gana* and attachment for it [30 (g)]

ganadhar = chief disciple of a *Tirthankar* [30 (g)]

ganak (ganaga) = astrologers (15)

gananayak (gananayag) = chieftains (15)

gandh yukti (gandhajuttim) = art of making perfumes (107)

Gandharva = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37, 94, 124)

ganetrika = rosaries of Rudraksh beads (86)

ganim = traded by numerical count, such as coconut, betel nut, etc (38)

Ganipitak = the corpus of basic Jain canon (26)

ganit (ganiyam) = mathematics (107)

garud = eagle [16 (b), 34, 94, 124]

garuda vyuha (garulavooham) = battle formation - eagle shape (107)

gatha (gaham) = Prakrit language and its poetics (107)

gati (gai) = gait [12 (a)]; movement [16 (a), 20]; dimension or realm of birth; state (29, 69, 70, 75, 81, 88, 117, 118, 120, 121, 122, 124, 129)

Gautam = those who beg their livelihood by displaying entertaining acts of an ox (73)

gaveshana = elimination (92, 118)

geet (geeyam) = singing (107)

Geet-ratipriya = those who have keen interest in music and entertainment and who like the company of song-lovers (75)

ghanamridang = a musical instrument (53)

ghranendriya-vishaya-prachar-nirodh = to restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of smelling [30 (f)]

ghrisht = smooth like a stone polished on a grinder (166)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

gitika (geeiyam) = song writing (107)

glan = ailing ascetics [30 (g)]

glan bhakt (gilaanbhatte) = food meant for the sick (96)

go lakshan (gonalakkhanam) = knowledge of the characteristics of cows (107)

gorochan = fragrant material used as incense [2 (a), 40]

goshirsh = fragrant material used as incense (48)

Goshthamahil (122)

Gotra = *karmas* that determine environmental circumstances [30 (g)]; *karma* responsible for the higher or lower status of a being (141, 153)

gotra karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for the higher or lower status of a being [30 (g)]

Govratik = those who take a vow of serving cows (73)

Graha = planets; a class among *vaan-vyantar* gods (37)

Graiveyak (161)

Graiveyak dev-lok (122)

Graiveyak Vimans (163)

gram = small village (53, 69, 70, 71, 72, 73, 75, 76, 117, 120, 121, 122, 123, 125, 130)

granthim = stringing (79)

griddha (gijjhihit) = covetousness (111)

Grihadharmi = those who consider the householder's code, including serving guests and charity, to be beneficial and observe that only (73)

gulm = smaller sub-groups (31)

guna-shreni = qualitative sequences (153)

gunasthan (66)

gunavrats = restraints that reinforce the practice of *anuvrats* (57)

gunjalika = oblong tank (79)

gupta = introvert and detached (27)

gupta brahmachari = who practiced absolute celibacy with nine fences (27, 114)

guptindriya = complete restraint over sense organs (27)

guptis = restraints (27)

(H)

haar = common necklace (38, 48, 79)

haaskar = jesters (49)

hadappaya graah = attendants who carried pots of beetle leaves and beetle-nuts (49)

Hamsa = a class of Parivrajaks who lived in mountain-caves, mountain trails, hermitages, temples or gardens (76)

Hastitapas (Hatthitavas) = those who killed an elephant and subsisted long on its meat (74)

haya = stallion (37)

haya lakshan (hayalakkhanam) = knowledge of the characteristics of horses (107)

himsanubandhi raudradhyan = to think of violence [30 (g)]

himsrapradan = direct involvement in acts of violence (97)

hiranya = silver (23)

hiranya yukti (hirannajuttim) = silver refining and smithy (107)

hiranyapaak (hirannapagam) = chemistry of silver (107)

Hotrak = those who do offerings at fire sacrifice (74)

hudakk = a musical instrument (49, 52)

Humbauttha = those who carry bowls (74)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(I)

ibhya = affluent (23, 38)

ichchha parimaan = to limit the desire of possession (57)

iha = inquiry (92, 118)

Indra = the king or overlord of gods [11 (b), 37, 50]

indriya pratisamlinata = restraint of activities of sense organs [30 (f)]

irya = movement (27)

irya samiti = care of movement (114)

Ishan = name of a *dev-lok*; second heaven (37, 161, 163)

Ishat = a name for *Siddhashila* (165)

Ishatpragbhara = a name for *Siddhashila* (165)

Ishatpragbhara Prithvi = the land or world just before the edge (162, 163, 164, 165, 166, 167)

isht = adorable (87)

ishushastra and kshur-pravaha (isattham and chharuppavayam) = the use of energized arrows or missiles like naag-baan and knife throwing (107)

ishvar = influential and rich persons (38)

Isigina = Isin; name of a geographic area (55)

itvarik = abstaining from food intake for a specific period of time or temporary fasting [30 (b)]

itvarik tap = temporary fasting [30 (b)]

(J)

jal-char = aquatic living being (118)

Jal-vasi = those who lived in water, like in a river (74)

jalla = trapeze artists [1 (a), 2 (b)]; filth [16 (b)]; sand (69)

jallaushadhi labdhi = this power turned the slime or mucus from various parts of the adept's body fragrant and medicinal [24 (b)]

Jamali (122)

Jambudvipa = a continent (135, 137)

janavaad (nanavaayam) = conversation and debating (107)

Janaye (Jnata/Jnapak) = the lamp of knowledge and beacon on the path of victory over attachment and aversion [16 (a)]

jati = with matted hair (49)

jati-smaran jnana = the knowledge about earlier births (118)

jatisampanna = belonging to high castes (25)

java = and so on upto (39)

Javayanam (Jnayakama/Jnapakanam) = lamps of knowledge and beacons on the path of victory over attachment and aversion (20)

Jayant (163)

jayini = racing at high speed (49)

jhalar = a musical instrument (49, 52)

jhool = caparisons (42)

jihvendriya-vishaya-prachar-nirodh = to restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of tasting [30 (f)]

Jinanam = conquerors of attachment and aversion (20)

Jine (Jina) = the conqueror of attachment and aversion [16 (a)]

jiva = the living or soul [56 (b), 94, 124]

Jivadayanam (Jivanadayakanam) = those who give spiritual meaning to life (20)

Jivadaye (Jivanprad) = he who gives spiritual meaning to life [16 (a)]

jivaghan = compact soul (154)

Jivapradeshik = a group of dissenters (122)

jnana vinaya = modesty of knowledge [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

jnanasampann = rich in knowledge (25)

jnanavaraniya = knowledge obscuring (118)

jnanavaraniya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of knowledge obscuring *karma* particles [30 (g)]

jnata clan (23)

jnati = kinfolk (112)

Jona = Yunana or Greece; name of a geographic area (55)

jyotish = astrology (77)

Jyotishk = stellar (36, 37)

Jyotishk dev-loks (74)

(K)

kaalabhigrah charya = to resolve to accept alms only at a specific time like first quarter of the day, second quarter of the day, or any other predetermined time [30 (c)]

kadamb = a musical instrument (49); a tree (6); pious tree for *Pishach* (37)

kahal = a musical instrument (49)

kakani lakshan (kaganilakkhanam) = knowledge of the characteristics of the *kakini* gem (107)

kaksha = tether (42)

kalah = dispute [56 (b), 87, 123]

kalah viraman = to abstain from dispute [56 (b)]

kalahansa = swan [4 (b)]

kalangi = feather plume (35)

kalash = an urn (49)

Kalp = ritual procedures of performing Yajnas (77)

Kalp vimans (heavens) = the twelve divine lands known as *Kalps* [56 (c)]

kalp-vasi vaimanik gods = gods dwelling in *kalp*-heaven or a specific celestial area (37)

kalp-vriksh = wish-fulfilling tree (48)

kalpateet vaimanik gods = gods dwelling outside the kalp-heavens (37)

kalyan-maya = suitable for revering as a place that is a source of boons and beatitude [2 (b)]

kalyanaks = auspicious events in the lives of *Tirthankars* (birth, initiation, attaining omniscience, and nirvana) (37)

kama-raj = dust of attachment (112)

Kamagam = name of celestial vehicle (37)

kamagam = power to go wherever one desired (35)

kamal = ordinary lotus [16 (b)]

kamandal = gourd-bowl (82)

kamarupadhari = power to assume whatever form they desired (35)

kanak = bullion (23)

kanakavali = golden bead-string (79)

kanakavali-tap [24 (c)]

kanchanika = strings (86)

kanchuki = female-guards of inner quarters (55)

Kandahari = those who subsisted on bulbuous roots (74)

Kandarpik = merriment loving who habitually act like a clown, humourist, and jester (75)

kandarpkar = flirts (49)

kank bird = white kite [16 (b)]

kansaal = a musical instrument (49)

kant = lovable (87)

kantak = pious tree for *rakshas* (37)

kantarbhakt (kantarbhattae) = emergency food packed and taken along while crossing a difficult terrain (96)

kanth-mukhi = specific design of necklace (79)

kanth-sutras = a type of necklace (37)

kanthalas = a type of necklace (37)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

kanthis = a type of necklace (37)

kanti = radiance [56 (a)]

kapalik = skull-carrying mendicants (53)

Kapil = a class of Parivrajaks (76)

karadhani = waist-band (38)

karans = means (mind, speech, and body) (57)

karapidit = persons who suffered under heaving state tax and other duties (53)

karbat = market (53); a very small town or a trading post (69, 70)

karghani = waistbands (37)

Karkant = a class of Parivrajaks (76)

karkash = harsh and devoid of love [30 (g)]

karma prakritis = species of *karma* by qualitative segregation (130)

karma vyutsarg [30 (g)]

karman = *karmic* (153)

Karman sharira = *karmic* body (146)

karnpurs = ornament for the ears made of fresh flowers (79)

karotika = earthen pots (86)

kartal = a musical instrument (53)

karya hetu = to show respect and offer services to teachers before, during and after acquiring knowledge [30 (g)]

kashaya pratisamlinata = restraint of passions [30 (f)]

kashaya vyutsarg [30 (g)]

kashta shayan = lying on wooden plank (116)

katachhed (kadagachhejjam) = art of drilling or cutting of holes in leaves and plates in scattered formation (107)

katak = bangles (79)

kathak = story tellers [1 (a), 2 (b)]

katisutra = waist band (79)

katuk = a source of pain for self and others [30 (g)]

kaudi = shells (73)

Kaukuchik = those who amuse people with ridiculous and grotesque gestures and behaviour (75)

Kautrak = those who sleep on the ground (74)

kautuk = auspicious mark on forehead (17); placatory rites to invoke good omen (38)

kautumbik = heads of large families (38)

kautvik = bards (49)

kaya vinaya = modesty of body [30 (g)]

kaya-yoga = activity associated with body (145, 150)

kayabali = endowed with strength of body [24 (a)]

kayaklesh = mortification of body [30 (a), 30 (e)]

kayaklesh tap [30 (e)]

kayayoga pratisamlinata = turning absolutely still [30 (f)]

kayotsarg = dissociating mind from the body [30 (g)]

kesh lunchan = pulling out hair (116)

kesharika = dusters or mops (86)

Keval jnanis [24 (a)]

keval-darshan = right perception/faith (115, 179); a non-manifest vivacity of perception in *Siddha* (178)

Keval-jnana = omniscience [24 (a), 30 (g), 115, 179]; a manifest vivacity of knowledge (178)

keval-jnana and darshan = ultimate knowledge and perception (127, 128)

Kevali = the omniscient [16 (a), 141, 142, 145, 146, 147, 149, 150, 151]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Kevali Jinas = detached omniscients (142)

Kevali-samudghat = the bursting process through which an omniscient destroys the residual *karma* particles (131, 141, 142, 144)

keyur = armlets; another design of bracelet for upper arm (19, 79)

khadaun = wooden sandals (86)

khadga = rhinocerous (37)

khadya = eatables (87, 94, 108, 124)

khandik = students (53)

khanjan = a bird (10)

kharmuhi = a musical instrument (52)

khe-char = aerial (118)

khelaushadhi labdhi = this power turned the phlegm of the adept fragrant and medicinal [24 (b)]

khet = kraal or a settlement with boundary wall made of mud (53, 69, 70)

kilvishik = clowns and jesters (53); doing menial duties (117)

kimpak phal = a poisonous fruit (23)

Kimpurush = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37, 94, 124)

kinchit nyun = slightly less [30 (b)]

kinkar = attendants (49)

Kinnar = a class among *vaan-vyantar* gods (10, 35, 37, 94, 124)

kirati = from the Kirat country (55)

kobhagak [4 (b)]

koda-kodi = ten million multiplied by ten million (37)

kodumbiya (chowdhary) = heads of prominent families and village-heads (15)

kondalak = a type of bird [4 (b)]

Kooladhmayak = those who took their meals on the bank after shouting loudly (74)

korant flowers (49, 50)

Kosa = quarter Yojan (135, 167)

kosh = treasury (23)

koshtagar = silos (23)

koshth buddhi = the capacity to remember text and meaning eternally like grains stored in a silo or *koshth* [24 (b)]

krandanata = to weep and cry loudly [30 (g)]

Krandit = a class among gods (35, 37)

kraunch bird = curlew [56 (a)]

kreetakrit (ke-agadam) = purchased for *shramans* (96)

kridakar = entertainers (49)

Krishna = a class of Parivrajaks (76)

krit-pratikriya = to express gratitude and offer services to those who have obliged in any way [30 (g)]

kriti = behaviour [12 (a)]

kritikarma = to offer them homage and obeisance in prescribed manner [30 (g)]

kriya = action (124)

kriyavan = ascetics immaculately following the code [30 (g)]

krodh = anger [56 (b), 87, 123, 125]

krodh mohaniya karma = anger creating deluding *karma* (130)

krodh viraman = to abstain from anger [56 (b)]

krodh vyutsarg = to renounce anger [30 (g)]

kshanti = endurance and forgiveness [30 (g)]

kshatriya = the warrior or the regal caste [11 (a), 23, 38]

Kshatriya Parivrajaks = the initiates from the Kshatriya clans (76)

kshatrop = a tree (6)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

kshayopasham = extinction-cum-pacification (92, 118)

kshemankar = who works for the lasting welfare of his people [11 (b)]

kshetrabhigrah charya = to resolve to accept alms only from a specific place like village, city, or any other predetermined area [30 (c)]

kshir-madhu-sarpirasav labdhi = this power turned the speech of the adept as sweet and delightful [24 (b)]

kubja = hunchbacks (55)

kukkut lakshan (kukkudalakkhanam) = knowledge of the characteristics of cocks (107)

kula = ascetic family or disciples of the same acharya [30 (g)];ascetic lineage (117)

kulasampanna = coming from noble families (25)

kumud = a kind of lotus (112)

kundal = earrings (37, 79)

kundarushk = fragrant material used as incense [2 (a)]

kundika = water-pot (86)

kunt = spears (49)

kunt graah = attendants who carried spears (49)

kupya graah = attendants who carried leather oil-bags (49)

kuru clan (23)

kuruvind grass [16 (b)]

kush = grass (5)

Kushmand = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

kutaj = a tree (6)

Kutichar = a class of Parivrajaks who disciplined their passions while still living as householders (76)

kutrikapan = a divine store where all coveted things are available (26)

(L)

labdhi = special miraculous or supernatural powers [24 (b), 24 (c)]

laghav-sampanna = having minimum possessions as well as passions (25)

laghumokapratima [24 (c)]

laghusimhanishkridit-tap [24 (c)]

lajjasampanna = shy of indulging in sinful activities (25)

lakshan = attribute or expression [30 (g)]

lakuch = a tree (6)

lakutashayi (laudasaiye) = to lie like a curved piece of wood; keep the body raised placing head and heals on the ground [30 (e)]

langalik = farmers (53)

langot = loin-cloth (76)

lankh = stilt-dancers and pole-acrobats [1 (a), 2 (b)]

Lantak = name of a *dev-lok* (37, 161, 163)

Lantak dev-lok = sixth heaven (117)

lasak = folk-dancers [1 (a), 2 (b)]

lasht = gossamer like polished cloth (166)

lashti graah = attendants who carried staffs (49)

Lasiya = Lasak; name of a geographic area (55)

latayuddha (layajuddham) = vine-like combat where the combatant embraces the adversary just as a vine entwines a tree and overpowers him (107)

Lausa = Lakush; name of a geographic area (55)

lav = a unit of time (28)

lavanya = charm (23)

lekh (leham) = writing or script (107)

leshya = divine orb (33); the colour code indicator of complexion of soul (25, 92, 118)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Lichchhivi = members of the Lichchhivi republic (38)

Lichchhiviputra = sons of Lichchhivis (38)

ling = appearance (122)

loban = fragrant material used as incense [2 (a), 40]

lobh = greed [56 (b), 87, 123, 125]

lobh vyutsarg = to renounce greed [30 (g)]

lobh viraman = to abstain from greed [56 (b)]

lodhra = a tree (6)

Logahiyanam (Lokahitanam) = benefactors of all the worlds (20)

Loganahanam (Lokanathanam) = masters of all the worthy beings of all the worlds (20)

Logapaivanam (Lokapradipanam) = lamps of wisdom who dispel the darkness of ignorance in all the worlds (20)

Logapajjoyagaranam (Lokapradyotakaranam) = spiritual illuminators of all the worlds (20)

Loguttamanam (Lokottamanam) = eminent among all beings in the *lok* (20)

lok = occupied space or universe [56 (b), 131, 132, 140, 176, 181]

Lokagra = a name for *Siddhashila* (165)

Lokagrapratibodhana = a name for *Siddhashila* (165)

Lokagrastupika = a name for *Siddhashila* (165)

lokakasha = the occupied space or the universe (144)

lokant = the edge of the universe; edge of the occupied space (167)

lokopachar vinaya = modesty of social behaviour [30 (g)]

lokpal (37)

(M)

maan = conceit [56 (b), 87, 123, 125]

maan viraman = to abstain from conceit [56 (b)]

maan vyutsarg = to renounce conceit [30 (g)]

maataa = mother [56 (b)]

madamb = an isolated settlement or a borough (53, 69, 70)

madambiya (jamindar) = landlords (15)

madaniya = acting as aphrodisiac (48)

magadh = bard [2 (b), 79]

Magadh Adhak = a measure popular in Magadh during that period (80, 98)

Magadh Prasth = a measure popular in Magadh during that period (80, 98)

magadhika (magahiyam) = Magadhi language and its poetics (107)

Maggadayanam (Margadayakanam) = those who show the path of liberation (20)

Maggadaye (Margapradayak) = he who shows the path of liberation [16 (a)]

maha-arambh = extreme violence (57)

maha-parigraha = excessive possession and covetousness (57)

mahabali = having great strength [56 (a)]

mahabhadrapratima [24 (c)]

Mahakaya Bhujagapati = a type of *vaan-vyantar* gods (35)

Mahakrandit = a class among vaan-vyantar gods (35, 37)

mahamantri (mahamanti) = chief ministers (15)

mahamokapratima [24 (c)]

mahapundareek = a kind of lotus (112)

Mahashukra = name of a *dev-lok* (37, 161, 163)

mahasimhanishkridit-tap [24 (c)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

mahatta = greatness [56 (a)]

Mahavideh area = a mythical area (102)

Mahendra = a mountain [11 (a)]; name of a dev-lok; fourth heaven (37, 161, 163)

mahish = buffalo (37)

Mahorag = a type of *vaan-vyantar* gods (94,124)

maithun = indulgence in sexual activities [56 (b), 57, 123, 125]

maithun viraman = to abstain from indulgence in sexual activities [56 (b)]

malaya = a mountain [11 (a)]

malla = dry dirt [16 (b), 69); wrestlers [1 (a), 2 (b)]

Mallaki = members of the Malla republic (38)

mamtarahit = selfless [16 (c)]

manaam = worth cherishing (87)

manah-paryav jnana = extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings, something akin to telepathy [24 (a), 30 (g)]

mandavik = landlords (38)

Mangal = Mars (36)

mani lakshan (manilakkhanam) = knowledge of the characteristics of gems (107)

mano vinaya = modesty of mind [30 (g)]

mano-yoga = activity associated with mind (145, 148)

manobali = endowed with strength of mind [24 (a)]

manogam = name of celestial vehicle (37)

manojna = beautiful (87)

manojna artadhyan = intense desire to have perpetual hold on lovable indulgences and things [30 (g)]

manoyoga pratisamlinata = restraining evil thoughts and cultivating noble thoughts [30 (f)]

mans-bhakshan = eating meat (57)

mantri (manti) = ministers (15)

manuj-samsar vyutsarg = to renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as a human being [30 (g)]

mardav = tenderness, gentleness, and absence of pride [30 (g)]

margana = confirmation (92, 118)

masik bhakt = fasting for a month [30 (b)]

mati-jnana = sensory knowledge or to know the apparent form of things coming before the soul by means of five sense organs and the mind [24 (a), 30 (g)]

mati-jnanis [24 (a)]

matsya = a fish (49)

Maukharik = who indulge in incoherent and senseless banter (75)

mauna charya = to resolve to accept food observing complete silence [30 (c)]

maushtik = pugilists [1 (a), 2 (b)]

maya = deceit [56 (b), 87, 123, 125]

maya viraman = to abstain from deceit [56 (b)]

maya vyutsarg = to renounce deceit [30 (g)]

mayamrisha = betray or tell a lie deceptively [56 (b), 87, 123]

mayamrisha viraman = to abstain from betraying or telling a lie deceptively [56 (b)]

mayapurna nikriti = guileful deception (57)

medhavi = experienced in new and old techniques (48)

Meru = a mountain [11 (a)]

meya = traded by volume measure, such as milk, etc (38)

michchami dukkadam = may my improper actions be without consequence or may my faults be undone [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

mishrajat (meesjayam) = food cooked jointly for family and ascetics (96)

mithyadarshan shalya = the thorn of wrong belief or unrighteousness [56 (b), 87, 123, 125]

mithyadarshan shalya viraman = to remove the thorn of wrong belief or unrighteousness [56 (b)]

mithyadrishti = false perception and belief (122)

mohaniya = deluding (65)

mohaniya karma = deluding *karma* (66)

mohaniya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for delusion [30 (g)]

moksha = state of liberation [56 (b), 124]

Moolahari = those who subsisted on roots only (74)

Moyaganam (Mochakanam) = those who are liberators (20)

Moyaye (Mochak) = the liberator [16 (a)]

mridang = a musical instrument (49, 52)

mrig = deer (37)

Mrigalubdhak = those who trapped deer and subsisted on its meat (74)

mrishanubandhi raudradhyan = to think of falsehood [30 (g)]

mrishavad = falsity [56 (b), 57, 123, 125]

mrishavad viraman = to abstain from falsity [56 (b)]

mrisht = glossy as if honed on a fine honing wheel (166)

muhurt = unit of time (28)

mukhamangalik = admirers and flatterers (53)

mukhi = specific design of necklace (79)

Mukta = liberated (116, 147, 151)

Muktalaya = a name for *Siddhashila* (165)

muktavali = pearl string (79)

Mukti = a name for *Siddhashila* (165)

mukti = freedom from greed and other feelings of attachment [30 (g)]

mukund = a musical instrument (49)

mukut = crown (79)

mularh prayashchit = the atonement done by re-initiation [30 (g)]

mundabhaava = tonsured; renouncing mundane relations and passions (116)

mundi = with tonsured heads (49)

munis = ascetics observing the vow of silence or discipline of speech [56 (a)]

muraj = a musical instrument (52)

murchhit (mujjhihit) = fondness (111)

Murund = name of a geographic area (55)

mushtiyuddha (mutthijuddham) = fist-fight or boxing (107)

Muttanam (Muktanam) = liberated (20)

Mutte (Mukta) = the liberated [16 (a)]

myna = a type of asian starling [4 (b)]

(N)

naag = pious tree for Bhujagapati Mahakaya Mahorag (37)

Naag or Naag-kumar = a type of *bhavan-vasi* gods (34, 37, 53, 94, 124)

naagalata = a creeper (8)

naam = karma that determines the destinies and body types [30 (g), 141, 153]

naam karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for negating the attribute of formlessness of soul [30 (g)]

nagar = city (53, 70); city where no tax is levied (69)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

nagar nirman (nagaramanam) = town planning and building (107)

nagar-guptik = municipal officer (45)

nagarik (nagarnigam) = citizens (15)

nagnabhaava = remaining unclad; detached from body((116)

Nagnak = a class of Parivrajaks (76)

nairayik = infernal beings [56 (b)]

nairayik-samsar vyutsarg = to renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as an infernal being [30 (g)]

naishadyik = to sit cross-legged [30 (e)]

nakshatra = constellations; a class among *vaan-vyantar* gods (37)

nalika khel (naliyakhedam) = gambling or games played by dice thrown from a tube (107)

nalin = a kind of lotus (112)

namaskaraniya = suitable for paying homage [2 (b)]

Nandan-van = the divine garden [1 (b)]

nandi vriksh = a tree (6)

nandighosh arrangement = the combined sound of twelve musical instruments (49)

nandimukh = a type of bird [4 (b)]

nandyavart = a specific elaborate graphic design resembling an extended swastika (49)

Nandyavart = name of celestial vehicle (37)

Narad = a class of Parivrajaks (76)

narak = hell [56 (b)]

nartak = dancers [1 (a), 2 (b)]

nartan-sheel = who love dancing (75)

nat = actors; also acrobats [1 (a), 2 (b), 79]

natya (nattam) = dramatics and dance (107)

Nava graiveyak vimans (37)

navanavamika = nine nine-day duration bhikshupratima [24 (c)]

naya = system of variant perspectives (25)

neem = a tree (6)

neeraj = beyond the reach of the dirt of karmas (154)

nigam = trade center (53, 69, 70)

nighantu = lexicon (77)

nihnavas = mendacious seceders (122)

nijak = paternal relatives (112)

nikshipt charya = to resolve to accept alms only from the portion that has not been taken out from the cooking pots [30 (c)]

nikshipt-utkshipt charya = to resolve to accept alms only from the portion taken out from the cooking pot and placed at a different place [30 (c)]

Nimajjak = those who remain under water for some time (74)

niravadya = not involving sin (98)

nirejan = absolutely still (154)

nirgranth = knotless (57, 124)

nirgranth sermon = the tenets of Jainism [16 (c)]

Nirgranth Shraman = Jain ascetic (76)

Nirishvar Samkhya = atheist Samkhya (76)

nirjara = shedding of *karmas* [56 (b)]

nirjiva (nijjivam) = art of making metallic salts from metals (107)

nirmal = free of the dirt of *karmas* accumulated in the past (154)

Nirukt = etymology or the knowledge of origin and formation of Vedic terms (77)

nirupahat = free of any ailment or deformity [16 (b)]

nirupalep = free from any coating in the form of bondage of *karmas* (27)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

nirvikritik = to give up food containing butter, oil, milk, curd, jaggery, and sugar [30 (d)]

nirvyaghatim = lifelong fasting in absence of any affliction [30 (b)]

nisarg-ruchi = to have natural or spontaneous interest in the religion of the Jina [30 (g)]

nishkrodh = in whom anger does not even arise (130)

nishthitarth = free of all needs (154)

nishthur = cruel [30 (g)]

niyuddha (nijuddham) = hand-to-hand combat (107)

(O)

oghbali = having constantly uniform and inexhaustible strength [56 (a)]

(P)

paan (87, 94, 108, 124)

paan-vidhi (paan-vihim) = water management including making and use of drinks (107)

paap or paap karma = demeritorious *karmas* or sins [56 (b), 64, 65]

paapkarmopadesh = to inspire, provoke, preach or advise others to indulge in sinful activities (97)

paash graah = attendants who carried lances and whips (49)

paashak (paasayam) = playing dice (107)

pad = verse [24 (b)]

padanusari buddhi = the capacity to acquire knowledge of hundreds of verses of a scripture just by hearing a single verse [24 (b)]

padma = a kind of lotus (112)

padmalata = a creeper (8)

padopagaman = lie down like a fallen tree (86); lifelong fasting keeping the body motionless like a fallen tree [30 (b)]

paduka = sandals (86)

paishunya = inculpating someone [56 (b), 87, 123]

paishunya viraman = to abstain from inculpating someone [56 (b)]

Paittha (Pratishtha) = anchor [16 (a)]; anchors (20)

Pakkun = Pakkan; name of a geographic area (55)

palak = name of celestial vehicle (37)

palakhi (38)

palyopam = a metaphoric unit of time (74, 75)

Panapannik = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

panas = a tree (6)

panav = a musical instrument (52)

panchamasik bhakt = fasting for five months [30 (b)]

panchendriya vadh = killing of five sensed beings (57)

Panhava = Pahlava; name of a geographic area (55)

pani = hands [16 (b)]

panit-griha = store [30 (f)]

panit-shala = business center [30 (f)]

pank = wet dirt or slime (69)

Pankaprabha = the fourth hell (160)

parachhandanuvartita = to obey the wishes and commands of spiritual guides and noble persons [30 (g)]

parag = profound scholars (77)

paragat = accomplished ones (187)

parakram = valour (23, 69, 70)

param shuddha = absolutely pure (154)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Param-hamsa = a class of Parivrajaks who lived on river banks or where two rivers met (76)

paramparagat = adept ones (187)

paranchikarh prayashchit = the atonement done with an earnest desire to rise above one's sinful doings with the help of austerities [30 (g)]

paraparivad = slandering [56 (b), 87, 123]

paraparivad viraman = to abstain from slandering [56 (b)]

Paras = Persia; name of a geographic area (55)

Parashar = a class of Parivrajaks (76)

parichchhedya = traded by quality testing; diamond, pearl, etc (38)

parigraha = act of possession of things [56 (b), 57, 123, 125]

parigraha viraman = to abstain from acts of possession of things [56 (b)]

pariharavishuddhi charitra vinaya [30 (g)]

parijan = servant (112)

parimardan = kneading for deeper penetration of oils (48)

parimit pindapatik = to resolve to accept food only in limited quantity or only from one house [30 (c)]

parinam = intentions (118)

parinirvana = state of liberation [56 (b)]

parinivrit = free of cyclic rebirth (116)

parinivritta = liberated soul [56 (b)]

pariparshvak (peedhamadda) = bodyguards who are always at the back of the king (15)

paritapanakar = filled with thoughts of torturing beings [30 (g)]

parivartana = to revise and repeat what has already been learnt [30 (g)]

Parivrajak = one who renounces everything and takes to peripatetic life; the sanyasins who travel all around (76, 78)

parparivadak = *Shramans* who criticise others (121)

parush = devoid of affection [30 (g)]

paryapt = fully developed (118)

pata buddhi = the capacity to contain the voluminous scriptural knowledge in memory [24 (b)]

patah = a musical instrument (49, 52)

pataka = streamers (42)

patrachhed (pattachhejjam) = art of piercing maximum possible leaves in one stroke in a stack of one hundred eight leaves (107)

Patrahari = those who subsisted on leaves (74)

pattan = harbour or port city (53, 69, 70)

pauraskritya (porekachcham) = security and administration of a city (107)

paushadh = partial ascetic vow (94, 124)

paushadhopavas = to live like an ascetic for a limited period and to observe fast (57)

Pavan (vayu)-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

pavitrika = copper rings (86)

Payausa = Bakush; name of a geographic area (55)

peeth = seat [30 (f)]

peeth graah = attendants who carried seats (49)

peethmard (peedhamadda) = bodyguards who are always at the back of the king (15)

phalak = wooden plank [30 (f)]

phalak graah = attendants who carried wooden planks (49)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

phalak shayan = lying on wooden plank (116)

phutkar = smaller random groups (31)

pichchhi = attendants who carried peacock feather brooms (49)

pilukalata = a creeper (8)

Pishach = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

pitaa = father [56 (b)]

plavak = gymnast [1 (a), 2 (b)]

pooshyamanav = bards (53)

Potrak = the clad ones (74)

prabha = divine shine (33)

pradesh = space-points (177)

praghoornak bhakt (pahunagabhatte) = food meant for guests (96)

prahelika (paheliyam) = making and solving riddles and puzzles (107)

prahvaniya = suitable for performing special rites and rituals [2 (b)]

prakriti bhadrata = natural goodness (57)

prakriti vinitata = natural humbleness (57)

pralamb = long necklace (79)

pramad = torpor and delusion [32 (a)]

pramadacharit = negligence and inattention towards one's religion and duty (97)

praman prapt = full standard meal [30 (b)]

pramitya (pamiccham) = food that is taken on loan for the specific purpose of giving to ascetics (96)

Pranat = name of a *dev-lok*; tenth heaven (37, 161, 163)

pranatipat = harming or destruction of life [56 (b), 57, 123, 125]

pranatipat viraman = to abstain from harming or destroying life [56 (b)]

pranitarasa parityag = to give up food from which liquids like butter, oil, milk, and syrup are dropping [30 (d)]

prantahar = to eat leftover or remnants of food or scrapings from cooking utensils [30 (d)]

prapa = water-hut [30 (f)]

praptarth = well trained (48)

prashast kaya vinaya = noble modesty of body [30 (g)]

prashast mano vinaya = noble modesty of mind [30 (g)]

prashast vachan vinaya = noble modesty of speech [30 (g)]

Prashasta = administrative officers (23, 38)

prasuk = lifeless [30 (f)]

pratham saptaratrindiva = one week duration *bhikshupratima* [24 (c)]

pratiharak = remover of hurdles, faults, and adverse conditions [2 (b)]

pratihat = halt (168)

pratikarm = other activities including cleaning the body, undergoing treatment, and medicine intake [30 (b)]

pratikraman = critical review (117, 118, 121)

pratikramanarh prayashchit = the atonement required for withdrawing the soul involved in sinful and evil activities [30 (g)]

pratimas = special codes and resolutions for an ascetic (29)

pratimasthayi = to observe any of the twelve ascetic-pratimas including the monthly one [30 (e)]

pratiprichhana = to ponder over the lessons and resolve difficulties and doubts by seeking clarification and elaboration from the learned ones [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

pratisamlinata = to hold back and limit internal as well as external efforts [30 (a)]

pratisamlinata tap = to restrain the extrovert attitudes related to senses, passions, etc and focus on the soul [30 (f)]

pratisevanaanavasthapyarh prayashchit = this atonement is prescribed for those who indulge in theft and fierce fighting [30 (g)]

pratotradhar = drivers (44)

pratyakhyan = perfect abstainment (64, 67, 68)

prayashchit = atonement for the faults and transgressions committed while observing vows [30 (f)]

prayashchit tap = the conscious activity of purifying the soul through atonement for the faults and transgressions committed [30 (g)]

Prayat (Patag) = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

prejya = worth idolizing (87)

preya = worth doting (87)

prinaniya = improving blood and fluid circulation (48)

prisht laabh = to resolve to accept food only if addressed, "O ascetic ! What may I offer you?" [30 (c)]

prithaktvavitark-savichar = shifting meditation on a chosen substance [30 (g)]

pritigam = name of celestial vehicle (37)

priyak = a tree (6)

priyangu = a tree; pipal (6, 37)

pua = a round fried cookie (135)

pujaniya = suitable for worshiping with flowers and other such things [2 (b)]

Puland = Pulind; name of a geographic area (55)

pundareek = white lotus [11 (b), 112]

punya = meritorious *karmas* [56 (b)]

punya-paap = merit-demerit (73, 94, 124)

pur = cities (23)

purahkavya (porekachcham) = instant poetry (107)

purim = braiding or filling (79)

Purisasihanam (purush-simhanam) = lions among men (20)

Purisasihe (purush-simha) = a lion among men because of his spiritual valour [16 (a)]

Purisavar-gandhahatthi (purush-var-gandhahasti) = a glorious elephant among men [16 (a)]

Purisavar-gandhahatthinam (purush-var-gandhahastinam) = glorious elephants among men (20)

Purisavar-pundariyanam (purush-var-pundareekanam) = unspoiled among men like a white lotus (20)

Purisavar-pundariye (purush-var-pundareek) = unspoiled among men like a white lotus [16 (a)]

Purisuttamanam (purushottamanam) = supreme among men (20)

Purisuttame (purushottam) = supreme among men [16 (a)]

puropag = a tree (6)

purtikarma (pooikammam) = mixed with even a small quantity of *aadhakarmik* food (96)

purush lakshan (purisalakkhanam) = knowledge of the characteristics of the male including their grades and classes (107)

purushakar = human form (69, 70)

purvabhukta artadhyan = intense desire to have perpetual hold on lovable indulgences and things already enjoyed in the past and regained now [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Purvas = one Purva being 7056×10^{10} years (159)

pushkar-gat (pokkharagayam) = playing percussion instruments, specially the mridang (107)

pushkarini = a round masonry tank with steps or a masonry tank with lotuses (79)

Pushpahari = those who subsisted on flowers (74)

pushpak = name of celestial vehicle (37)

pustak graah = attendants who carried books (49)

(R)

raag = attachment inspired by love, deceit, and greed [56 (b), 87, 123]

raag viraman = to abstain from attachment inspired by love, deceit, and greed [56 (b)]

rachit (raittae) = food re-cooked specifically for an ascetic (96)

Rahu (36)

raja = regional kings (38)

rajanya = king's advisors (23, 38)

Rajaraj = a class of Parivrajaks (76)

Rajarama = a class of Parivrajaks (76)

rajavriksh = a tree (6)

rajeshvar/yuvaraj (raisar) = princes and kings (15)

Rakshas = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37, 94, 124)

rasa parityag = giving up use of tasty and desirable things [30 (a)]

rasa parityag tap [30 (d)]

rathyantar = inner lanes (40)

rati-arati = inclination towards indiscipline and against discipline [56 (b), 87, 123]

rati-arati viraman = to abstain from inclination towards indiscipline and against discipline [56 (b)]

Ratnaprabha Prithvi = the one hundred eighty thousand Yojan deep first hell (37, 160, 163)

ratnavali = gem bead-string (79)

raudradhyan = cruel thoughts or anger inspired and animated by violent sentiments [30 (g), 97]

riddhi = divine wealth (33); wealth and family (69,70); wealth of paranormal abilities [56 (c)]

rijumati = limited range [24 (b)]

rijushreni = straight line path (153)

Rik = one of the four *Vedas* (77)

rishi = sages with supernatural powers [56 (b)]; ascetics endowed with *avadhi-jnana* [56 (a)]

Rishivadik = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37)

rishtak = a gem (10)

Rohagupta (122)

roop (roovam) = decoration (107)

roop-sampanna = handsome (25)

ruchak gem (33)

Rudraksh = berries of the tree Elaeocarpus ganitrus (86)

rukshahar = to eat dry and non-nutritious food [30 (d)]

ruru = an animal (10)

(S)

saadi = with a beginning (154, 155, 167)

saarthavah (satthavaha) = caravan chiefs (15)

Sabar = Shabar; name of a geographic area (55)

sabha = assembly hall [30 (f)]

sachit = living (28); infested with living organisms (54, 55)

sadharmik = co-religionists [30 (g)]

sadhus = ascetics [16 (c), 125]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

sadhvis = female ascetics [16 (c)]

Sagaropam = a metaphoric unit of time (81, 88, 100, 117, 118, 120, 121, 122, 124, 129)

Sahasambuddhanam (Svayam-sambuddhanam) = the self-enlightened ones (20)

Sahasambuddhe (Svayam-sambuddh) = the self-enlightened one [16 (a)]

sahasrapaak = a type of medicated and perfumed oil (48)

sahasrapatra = a kind of lotus (112)

Sahasrar = name of a *dev-lok*; eighth heaven (37, 161, 163)

Sahasrara kalp dev-lok (118)

sajiva (sajjivam) = art of converting metallic salts into metals (107)

sakar upayog = manifest vivacity (154)

sakaropayoga = ever pulsating knowledge (153)

sakriya = involved in sinful deeds [30 (g)]; indulges in mundane activities, physical, vocal, and mental (64, 67)

sallekhana = ultimate vow and austerity (57, 100, 124); to reduce association from body and passions (86)

sam-chaturasra (sam-chauramsa) = the anatomical structure of a human being where parallel lines drawn from the extremities of a body sitting cross-legged form a square and all the parts of body are of standard dimensions [16 (b), 62]

Sama = one of the four *Vedas* (77)

samanik gods (37)

samataal (samataalam) = knowledge of beats (107)

samavasaran = the divine assembly of a *Tirthankar* (21, 37)

Samaya = the ultimate fractional unit of time that cannot be divided any further; the smallest unit of time (28, 143, 144, 153, 170, 182)

samayik = the prescribed Jain meditation aimed at equanimity (57)

samayik charitra vinaya [30 (g)]

sambhinnashroto labdhi = highly enhanced capacity to hear [24 (b)]

sambhogik = ascetics of the same group or those following the same codes [30 (g)]

samghat = divine physical build (33)

samhanan = constitution (156)

samhriyaman charya = to resolve to accept alms only from the portion that the donor has put in a pot after cooling it by spreading in a bowl [30 (c)]

samitis = regulations (27)

Samkhya = a class of Parivrajaks; the followers of the Samkhya school of philosophy (76)

Samkhya school [56 (b)]

samkhyadatik = to resolve to accept food only in counted units such as one piece or one spoon or one unbroken pouring [30 (c)]

Sammajjak = those who bathe by repeating dips (74)

samman = to honour them [30 (g)]

sammananiya = suitable for giving a place of honour in one's mind [2 (b)]

sammat = agreeable (87)

Samprakshalak = those who cleanse their body by rubbing sand or clay (74)

samrakshananubandhi raudradhyan = to think violently of protecting acquired wealth and other means of enjoyment [30 (g)]

samsar vyutsarg [30 (g)]

samsaranupreksha = to revolve around the thought that with passage of time this being enters into a variety of relationships and takes birth in a variety of forms [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

samstarak = smaller bed or cushion just enough to stretch legs [30 (f)]

samsthan = constitution or body structure (33, 157)

samsthan-vichaya = contemplation and meditation on the structure of universe and other things [30 (g)]

samuchchhinnakriya anivritti = meditation where all vibrations of soul-sections stop [30 (g)]

Samuchhedik = a group of dissenters (122)

samudghat = bursting (132, 142, 145, 147, 150)

samvah = settlement in a valley (53, 69, 70)

samvahan = artful (48)

samvar = stoppage of inflow of *karmas* [32 (b), 56 (b)]

samvar-nirjara = blocking of inflow and shedding of *karmas* (94, 124)

samyamasamyam = householder's conduct (57)

san = the plant Cannabis sativa (10)

Sanatkumar = name of a dev-lok (37, 161, 163)

sandhipal (sandhival) = border guards and diplomats (15)

sangh = religious organization [30 (g)]

sanghatim = interweaving or entwining (79)

sanjni = sentient (118)

sankhyan = mathematics (77)

sannivesh = temporary settlement or a camp site for caravans or armies (53, 69, 70, 71, 72, 73, 75, 76, 117, 120, 121, 122, 123, 125, 130)

sansrisht charya = to resolve to accept alms only if served with hands or spoons soiled with the food [30 (c)]

sanukroshata = kindness and compassion (57)

sanyasins (76)

saptaparna = a tree (6)

saptasaptamika = seven seven-day duration *bhikshupratima* [24 (c)]

sarabh = octopus (10)

sarag samyam = ascetic-discipline where attachment and passions are still active (57)

sarak (saraga) = propagators of the *Vedas* through teaching (77)

Saranam (Sharanam) = the refuge [16 (a), 20]

Sarandayanam (Sharanadayakanam) = those who give refuge to the seekers of the right path (20)

Sarandaye (Sharanprad) = he who gives refuge to the seekers of the right path [16 (a)]

sarthavaha = caravan chief (38)

sarthavahaputra = sons of caravan chiefs (38)

sarus = crane [4 (b)]

Sarva-praan-bhoot-jiva-sattva-sukhavaha = a name for *Siddhashila* (165)

sarvagatra-parikarm-vibhusha-vipramukt = to resolve to refrain from any and all cosmetic care of the body [30 (e)]

Sarvarth Siddha Mahaviman (129)

sarvartha-apratilomata = not to transgress the code of behaviour required for any and all activity [30 (g)]

Sarvarthasiddha Anuttar (163)

Sarvatobhadra = name of celestial vehicle (37)

sarvatobhadrapratima [24 (c)]

sarvaushadhi labdhi = this power turned the phlegm, slime from every part of the body as also the nails and hair of the adept fragrant and medicinal [24 (b)]

satkar = to show them respect [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

satkaraniya = suitable for honouring by offering clothes [2 (b)]

Saudharm or Saudharm Kalp = the first *dev-lok* or heaven (37, 75, 161, 163)

saumanas = name of celestial vehicle (37)

savadya = sinful activities [30 (g)]; involving sin (98)

Savvadarisinam (Sarvadarshinam) = all-seeing (20)

Savvadariso (Sarvadarshi) = all-seeing [16 (a)]

Savvannu (Sarvajna) = all-knowing [16 (a)]

Savvannunam (Sarvajnanam) = all-knowing (20)

savya = a tree (6)

sayogi avastha = state of association (151)

Sayogi Kevali (66, 152)

sehara = wreath; tiara (35)

semal fruit = silk-cotton [16 (b)]

senapati (senavai) = commander of the armed forces (15, 23, 38)

Seshvar Samkhya = theist Samkhya (76)

seth = merchants (23)

shaal = a tree (6)

shaiksh = new initiates [30 (g)]

shaileshi state = rock-like stillness (153)

Shaivalabhakshi (Sevalabhakkhi) = those who subsisted on moss only (74)

shakat = chariot (79)

shakat vyuha (sagadavooham) = battle formation - cart shape (107)

shakti = tridents (49)

shakunirut (saunaruyamiti) = knowing language, movement and other activities of birds (107)

shalaka purush = epoch makers (62)

Shanaishchar = Saturn (36)

shankh = conch shell; a musical instrument (49, 52)

Shankhadhmayak = those who took their meals after blowing conch-shell (74)

shankhik = conch-shell blowers (53)

shannalika = tripods (86)

sharir vyutsarg = to renounce body and bodily relationships and attachment for them [30 (g)]

Sharkaraprabha = the second hell (160)

Shashidhar (Shashidharak) = a class of Parivrajaks (76)

shasht bhakt = giving up six meals or fasting for two days [30 (b)]

Shashtitantra = the works of Kapil (77)

shataghni = a giant catapult capable of launching large rocks that could crush hundreds of soldiers [1 (b)]

shatamasik bhakt = fasting for six months [30 (b)]

shatapatra = a kind of lotus (112)

shatasahasrapatra = a kind of lotus (112)

shatpaak = a type of medicated and perfumed oils (48)

shauch dharma = religion of cleansing or conduct based on physical cleanliness (78)

shayan vidhi (sayan vihim) = the art of making bed (107)

shayya = bed [30 (f)]

shikhandi = with topknots (49)

shiksha = phonetics or the special science of pronouncing Vedic mantras (77)

shikshavrats = instructive or complimentary vows of spiritual discipline (38, 57)

Shiladhi = a class of Parivrajaks (76)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

shirish = a flowering tree (6, 37)

shivika = small palanquin with curtains [1 (b), 38, 79]

shlakshna = soft as a piece of cloth made of fine fibre (166)

shlok (siloyam) = poetics specially related to couplet style in anushtup and other suitable meters (107)

shochanata = to feel wretched and humiliated [30 (g)]

shodash bhakt = giving up sixteen meals or fasting for seven days [30 (b)]

Shraddhakin = those who perform rituals for the benefit of deceased relatives (74)

Shraman-nirgranths (124)

shramanopasak = ascetic-worshipping householder (57, 94, 100, 124)

Shramanopasak religion (82)

shramanopasika = a devout Jain woman (57, 82)

Shramans (117)

Shravak = Brahmins who listen to recital of religious scriptures (73)

shravak = Jain lay man (57)

shravak dharma = householder's code (38)

shravika = Jain lay woman (57)

shreshthi (setthi) = merchants specially those who wore golden headband marked with the sign of Lakshmi (15)

shreshti = established merchants (38)

shringar rasa = amatory sentiment [12 (a), 37]

shrivats = a specific mark found on the chest of all *Tirthankars* [16 (b), 49]

Shrivats = name of celestial vehicle (37)

shrotrendriya-vishaya-prachar-nirodh = to restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of hearing [30 (f)]

shrut = already known (38)

shrut dharma = Jainism or the religion propagated by Jinas [30 (g),38]

shrut-jnana = scriptural knowledge [24 (a), 30 (g)]

shrut-jnana vinaya [30 (g)]

shuddhaishanik = to resolve to accept food only if it is pure, free of all faults and acceptable according to the ascetic code [30 (c)]

shukla dhyan = pure meditation or noble and spiritual thinking [30 (g)]

Shukra = Venus (36)

shunyavad = idealism [56 (b)]

Siddha = perfect being or liberated soul [56 (b), 57, 116, 128, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 163, 167, 168, 168, 171, 172, 173, 174, 175, 176, 177, 180, 181, 182, 184, 187]; the most exalted state of perfection (147, 151, 153)

siddha gai or siddha gati = state of ultimate perfection [16 (a), 38]

Siddhalaya = a name for *Siddhashila* (165)

Siddhashila = the abode of *Siddhas* (163)

Siddhi = a name for *Siddhashila* (165)

siddhi = state of perfection [56 (b)]

silindhra = a flower (33, 37)

Simhala = Ceylon; name of a geographic area (55)

singhatak = triangular courtyards (38, 40)

Siva (Shiva) = the epitome of beatitude [16 (a)]

Sivam (Shivam) = epitomes of beatitude (20)

smarak (saraga) = inspiring others to memorize (77)

smit = smile [12 (a)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

snagat = graceful [12 (a)]

solliya = a flower (166)

sparshendriya-vishaya-prachar-nirodh = to restrain the indulgence of mind in activities of the sense organ of touch [30 (f)]

stainyanubandhi raudradhyan = to think of stealing [30 (g)]

Stanit-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

sthal-char = terrestrial (118)

Sthalakin = those who carry *thali* and other pots (74)

sthanasthitik = to remain in a fixed posture, sitting or standing [30 (e)]

sthapit (thaitae) = food kept apart for the donor himself (96)

sthavir = ascetics senior in terms of knowledge, initiation, and age [25, 30 (g), 113)

sthiti = life-span (69, 70, 72)

sthiti-kshaya = terminating the realm-specific state (101)

sthool = general (95)

sthool adattadan = to abstain generally from taking without being given or stealing (57)

sthool mrishavad = to abstain generally from falsity (57)

sthool pranatipat = to abstain generally from intentional harming or killing of mobile beings (57)

stok = unit of time (28)

stree lakshan (itthilakkhanam) = knowledge of the characteristics of all the four categories of females, namely *padmini, hastini, shankhini,* and *chitrini* (107)

subhag = a kind of lotus (112)

subhat = guards (23, 38)

suchirna = righteous deeds [56 (b)]

sugandh = a kind of lotus (112)

sukshmakriya-apratipati = level of meditation where only subtle activities of the body, such as minimal breathing, remain [30 (g)]

sukshmasamparaya (66)

sukshmasamparaya charitra vinaya [30 (g)]

Suparn or Suparn-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37, 94, 124)

supratyanand = blissful in following the religious path (123, 125)

Surya = the sun; a class among *jyotishk gods* (36, 37)

sushil = good in religious conduct (123, 125)

sushrusha vinaya = modesty of service [30 (g)]

sutra khel (suttakhedam) = games of the string (107)

sutra-ruchi = to have interest and faith in agams [30 (g)]

suvarn = gold (23)

suvarn yukti (suvannajuttim) = gold refining and smithy (107)

suvarnapaak (suvannapagam) = chemistry of gold (107)

suvrat = good observers of vows (123, 125)

svadar-santosh = to be content with normal sex with one's own wife and refrain from any other normal or perverse sexual activity (57)

svadhyaya = study and teaching of spiritual scriptures [30 (f)]

svadhyaya tap = study and teaching of spiritual scriptures [30 (g)]

svadya (87, 94, 108, 124)

svajan = maternal relatives (112)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

svar-gat (saragayam) = musicology or knowledge of musical notes (107)

svaroop = form [30 (g)]

swastika = a specific graphic design resembling the mathematical sign of addition with a perpendicular line added to each of the four arms in clockwise direction (49)

syadvad = doctrine of qualified assertion [56 (b)]

syandamanika = large palanquin [1 (b), 38, 79]

(T)

taal = a tree (6)

taalaachar = clappers or those who entertain by clapping [1 (a)]

Taanam (tran) = the succour [16 (a), 20]

taijas = fiery (153)

tajjat sansrisht charya = to resolve to accept food only if hands are soiled specifically with the dish being offered [30 (c)]

tal-bhangak = bracelet (33)

talavar (pattadhari) = knights of honour (15, 38)

talim = a musical instrument (49)

Tamah-prabha = the sixth hell (160)

tamal = a tree (6)

Tamastamah-prabha = the seventh hell (160)

Tanu = a name for *Siddhashila* (165)

Tanutanu = a name for *Siddhashila* (165)

tapas = forest dwelling hermits (73, 74)

tapasvi = ascetics observing austerities [30 (g)]

tapoarh prayashchit = the atonement done through austerities [30 (g)]

tapt tapasvi = aglow with the power of his austerities (62)

tara = stars; a class among vaan-vyantar gods (37, 53)

Tarayanam (Tarakanam) = those who help crossing the ocean of cycles of rebirth (20)

Taraye (Tarak) = he who helps crossing the ocean of cycles of rebirth [16 (a)]

taruni pratikarma (tarunipadikamm) = taking care of females including their education and beautification (107)

tej = influence [56 (a)]

tejoleshya = fire power (62)

tepanata = to shed tears silently [30 (g)]

thali = plate (74)

thilli = coach driven by two horses or ponies (79)

tilak = a tree (6); auspicious mark on the forehead (38)

tinduk = pious tree for *Gandharvas* (37)

Tinnanam (Tirnanam) = those who have crossed the ocean of cycles of rebirth (20)

Tinne (Tirna) = he who has crossed the ocean of cycles of rebirth [16 (a)]

tirthabhishek = religion of bathing at pilgrimage centers (78)

Tirthankar (38, 55)

Tiryak lok = middle world (37)

tiryak-samsar vyutsarg = to renounce causes of *karmic* bondage leading to rebirth as an animal [30 (g)]

tiryanch = animals (118)

tiryanch yoni = animal genus [56 (b)]

titar = partridge [4 (b)]

Titthagaranam (Tirthankaranam) = the religious ford-makers (20)

Titthagare (Tirthankar) = the religious ford-maker or founder of the four-fold religious order [16 (a), 38]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

tiryanch-yonik jiva = animals [56 (b)]

torans = ornamental entrances [1 (b)]

traikalik sukha = the happiness of three periods of time (181)

traimasik bhakt = fasting for three months [30 (b)]

Trairashik = a group of dissenters (122)

Trayastrinsh gods (37)

tridand = triple staff (86)

trikashtika = tripods (86)

trisarak = three line necklace (79)

tritiya saptaratrindiva = three one week duration *bhikshupratima* [24 (c)]

trutik = armlets (33, 37)

trutit = a specific design of wristlet (79)

tulsi = pious plant for bhoot (37)

tumb veenak = players of drone or snake-charmer's pipe [1 (a), 2 (b)]

tunailla = players of a musical instrument called tuna [1 (a), 2 (b)]

turya = a musical instrument (53)

Tvachahari = those who subsisted on bark of a plant (74)

tyaktantahpura griha dvar pravesh = whose entry to the inner (ladies) quarters of any house never offends anyone (94, 124)

(U)

uchchar-prasravan = excreta disposal (27)

uchchhrit phaliha = in whose house door bolts are never used (94, 124)

Udadhi-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

udak-dvitiya = consuming only one food item and water (73)

udak-ekadash = consuming ten food items and water (73)

udak-mrittika (dagmattiyam) = pottery (107)

udak-saptam = consuming six food items and water (73)

udak-tritiya = consuming two food items and water (73)

Uddandak = those who moved about raising their staff (74)

udvalan = reverse rubbing or rubbing against the tilt of body-hair (48)

udyan = orchard [30 (f)]

ugra = warrior families (23); security officers (38)

ugraputra = sons of security officers (38)

Unmajjak = those who bathe by taking just one dip in water; also those who bathe by pouring water only on the body up to ears (74)

Unmukt-karmakavach = unveiled ones (187)

upabhog paribhog pariman = to limit use and consumption of things (57)

upadesh-ruchi = to have interest and faith in the religious discourse of ascetics and learned people [30 (g)]

upadhi vyutsarg = to renounce possessions [30 (g)]

upadhyaya = teacher of scriptures [30 (g), 117]

upadravanakar = filled with thoughts of causing death-like pain to others or depriving them of their belongings [30 (g)]

upakaran dravya avamodarika = restricted use of ascetic equipment [30 (b)]

upaneet charya = to resolve to accept alms only from the food a donor has received as gift from someone [30 (c)]

upaneetapaneet charya = to resolve to accept alms only from the food which is upaneet and apaneet and also the food which is first extolled and then decried [30 (c)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Upangas = the auxiliary explanatory works to the twelve (1) angas or the main corpus of the Jain canonical texts (1)

upanihit = to resolve to accept food only if it is placed near the donor who himself is eating [30 (c)]

upapat = instantaneous birth (61, 69, 70, 72)

upasham = discipline, containment, suppression of passions (59)

utkanchanta = to conceal intent of and postpone swindling someone for a limited period (57)

utkshipt charya = to resolve to accept alms only from the portion the donor has taken out for himself from cooking pots [30 (c)]

utkshipt-nikshipt charya = to resolve to accept alms only from the portion that has been transferred from the cooking pot to some other pot and is placed near or away from the cooking area [30 (c)]

utkutukasanik = to sit in *utkutuk* posture; to squat with feet flat on the ground and keep both palms joined [30 (e)]

utpal = blue lotus [16 (b), 112]

utsanna dosh = to remain absorbed in thoughts of any one of the sinful activities like violence, falsehood, etc [30 (g)]

Uttar-koolak = those who lived on the northern bank of the Ganges (74)

uttariya = a long scarf-like piece of cloth or long one-piece shawl (19, 48, 54)

(V)

vaadkar = debaters (49)

vaahan = shoes/carrier, including vehicle (19, 38)

vaan-vyantar = interstitial (35, 37)

vaastu niveshan (vatthunivesan) = study of building utility (107)

vaastu vidya (vatthuvijjam) = architecture; study of military camping, logistics and deployment (107)

vachan vinaya = modesty of speech [30 (g)]

vachan yoga = activity associated with speech (145, 149)

vachana = to take lessons of the scriptures methodically from the acharya at proper time following proper procedure [30 (g)]

vachanbali = endowed with strength of speech [24 (a)]

vadya (vaiyam) = instrumental music (107)

vagyoga pratisamlinata = restraining use of abject words or speech and cultivating use of noble words or speech [30 (f)]

vaidurya mani = cat's-eye gems (49)

Vaijayant (163)

vaikriya labdhi = divine or special power of transmutation (35, 37, 92)

vaikriya sharira = transmutable body (146)

vaimanik = endowed with celestial vehicles (37)

Vaishraman Kuber = the god of wealth (50)

vaiyavritya = to offer food and other services to fellow ascetics and seniors [30 (f)]

vaiyavritya tap = to offer food and other services to fellow ascetics and seniors [30 (g)]

vajra = thunder-weapon (34)

vajra-rishabh-narach = a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest [16 (b), 62]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

vajra-rishabh-narach samhanan = a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest (156)

vajramadhyachandrapratima [24 (c)]

Valkavasi = the bark-clad (74)

vamani = dwarf (55)

vamsh = a musical instrument (49)

vanamala = garlands (35)

Vanaprastha ashram = according to the Vedic religion the third quarter of life when a person retired and lived as a forest dweller (74, 76)

vanavyantar dev-lok = interstitial divine realms (69, 70, 71, 73)

vanchanta = to swindle someone (57)

vandaniya = suitable for salutations by reciting panegyrics and other rites [2 (b)]

varah = wild boar (37)

vardalik bhakt (vaddaliyabhatte) = food prepared and kept for distributing during periods of heavy rain, floods and other such calamities (96)

vardhaman = illustration of cup-saucer or a man riding another man's shoulders (34); persons carried on shoulders (53)

vardhamanak = a specific design of vessel (49)

varg-vargit = square of square (181)

varna = complexion (23)

varshadhar = eunuchs (55)

vartishyaman charya = to resolve to accept alms only from the portion already served in plate for eating [30 (c)]

vasantilata = a creeper (8)

vasati = living quarters [30 (f)]

Vasina = Charukinik; name of a geographic area (55)

vastravidhi (vatthavuhim) = garment making (107)

Vasudev = epoch maker sovereign of the land [56 (b)]

Vayubhakshi (Vaubhakkhi) = those who subsisted only on air (74)

vedana = suffering [56 (b)]

vedaniya = *karma* responsible for mundane experience of pain and pleasure [30 (g), 66, 141, 153]

vedaniya karma vyutsarg = to renounce causes of bondage of *karma* particles responsible for mundane experience of pain and pleasure [30 (g)]

Vedas (77)

veena = a musical instrument (53)

veena graah = attendants who carried veena (49)

veeyak = a plant (10)

Vel-vasi = those who lived near seashore (74)

veshtim = wrapping (79)

Viattachhaumanam (Vyavritta-chhadmaanam) = free of masks of ignorance and illusion (20)

Viattachhaume (Vyavrittachhadma) = free of masks of ignorance and ambiguities [16 (a)]

vidambak = comedians, clowns or jesters [1 (a), 2 (b)]

Videha = a class of Parivrajaks (76)

vidyadhar prajnapti labdhi [24 (b)]

Vidyut-kumar = a class among *bhavan-vasi* gods (34, 37)

Vijaya (163)

vijaya-vaijayanti = flag of victory (49)

vikurvana (vaikriya labdhi) = having power of self-mutation or that of acquiring different forms of body [24 (b)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

vilapanata = to lament [30 (g)]

vilas = movement [12 (a)]

vilepan vidhi (vilevan vidhi) = coating or applying pastes (107)

Vimal = name of celestial vehicle (37)

vinamit = bent low due [4 (b)]

vinaya = modesty [30 (f)]

vinaya tap = to cleanse the soul of the karmic filth through modesty in behaviour including acts of offering respect, homage, devotion, services, etc [30 (g)]

vinayasampanna = modest (25)

Vinayavadi = who took humbleness as religion (73)

vipak-vichaya = contemplation and meditation on the forms of *karma* and their fruition [30 (g)]

viparinamanupreksha = to contemplate again and again about the incessantly transforming state of the world [30 (g)]

viprudaushadhi labdhi = this power turned the constituents of urine and faeces of the adept fragrant and medicinal [24 (b)]

vipulmati = wide range [24 (b)]

virasahar = to eat food prepared from very old, flat and fetid grains [30 (d)]

virasanik = to sit in *vira* posture; half squatting as if sitting on a chair with feet flat on the ground and retaining the posture when the chair is removed [30 (e)]

viravalaya = warrior's bangle (48)

Viruddha = those who refute soul and other spiritual things and are against spiritual practices both physical and mental (73)

virya = spiritual power; potency [56 (a), 69, 70]

virya labdhi = power of potency (92)

viryantaraya = potency hindering (118)

Vitarag (113)

vitimir = free of the darkness of ignorance (154)

vivek = the realization that soul and body are separate entities [30 (g)]; discerning attitude (59)

vivekarh prayashchit = the atonement by abandoning a thing or activity with discerning attitude [30 (g)]

vivikta-shayanasan-sevanata = to retire into solitude as prescribed in the ascetic code [30 (f)]

Vriddha = old or ancient (73)

Vriddha-tapas = those who retire in old age to become hermits (73)

Vrikshamoolak = those who lived under trees (74)

vrishabh = bull (37)

vrishika = wooden planks (86)

vritta khel (vattakhedam) = games of the circle or rope, such as rope walking (107)

vyaghatim = affliction based lifelong fasting [30 (b)]

vyakaran = grammar (77)

vyuha-prativyuha (vooham-padivooham) = attack and defense strategy or deployment of forces in various formations for effective attack and defense (107)

vyutsarg = renounce evil and mundane things [30 (f)]; to renounce body and ascetic-equipment with total detachment [30 (g)]

vyutsarg tap = renounce evil and mundane things [30 (g)]

vyutsargarh prayashchit = the atonement done by *kayotsarg* [30 (g)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Y)

yaan = vehicles (38)

Yajin = those who perform *yajna* (ritual sacrifice) (74)

Yaju = one of the four *Vedas* (77)

Yaksh = a class among *vaan-vyantar* gods (35, 37, 94, 124)

yash = fame (69, 70)

yathakhyat charitra vinaya [30 (g)]

Yati Parivrajaks (76)

yatis = ascetics immaculate in observing the code of conduct [56 (a)]

yavamadhyachandrapratima [24 (c)]

yavatkathit = abstaining from food intake for whole life or lifelong fasting [30 (b)]

yavatkathit tap = lifelong fasting [30 (b)]

yoddha = soldiers (23) ; commissioned warriors (38)

yoga = association (153, 147)

yoga pratisamlinata = restraint over physical, vocal, and mental activities [30 (f)]

yogas = methods (do, induce, and attest) (57)

Yogi = a class of Parivrajaks who practiced Hath-yoga (76)

Yojan = eight miles (135)

yuddha (juddham) = battle or war (107)

yuddhatiyuddh (juddhatijuddham) = war including use of sword, spears, etc. (107)

yugma = a palanquin shaped vehicle [1 (b)]

yupa = the ceremonial pillar in a *yajna* [16 (b)]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

प्रस्तुत सूत्र के सम्पादक श्री अमर मुनि जी, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के एक तेजस्वी संत हैं। आपकी वाणी में जादू है। श्रोता जब आपश्री के मुख से जिनवाणी का रसास्वाद करते हैं तो झूमने लग जाते हैं।

जिनवाणी के परम उपासक गुरुभक्त श्री अमर मुनि जी का जन्म वि. सं. १९९३ भादवा सुदि ५ (सन् १९३६), क्वेटा (बलूचिस्तान) के मल्होत्रा परिवार में हुआ।

११ वर्ष की लघुवय में आप जैनागम रत्नाकर आचार्यसम्राट श्री आत्माराम जी महाराज की चरण-शरण में आये और आचार्यदेव ने अपने प्रिय शिष्यानुशिष्य भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज को इस रत्न को तराशने/सँवारने का दायित्व सौंपा। गुरुदेव श्री भण्डारी जी महाराज ने अमर को सचमुच अमरता के पथ पर बढ़ा दिया। आपने संस्कृत-प्राकृत-आगम-व्याकरण-साहित्य आदि का अध्ययन करके एक ओजस्वी प्रवचनकार, तेजस्वी धर्म-प्रचारक तथा जैन आगम साहित्य के अध्येता और व्याख्याता के रूप में जैन समाज में प्रसिद्धि प्राप्त की।

आपश्री ने भगवती सूत्र (४ भाग), प्रश्नव्याकरण सूत्र (२ भाग), सूत्रकृतांग सूत्र (२ भाग) आदि अनेक आगमों की सुन्दर विस्तृत व्याख्याएँ की हैं। आगम साहित्य का सचित्र प्रकाशन करने की अभिनव अद्वितीय संकल्पना की है।

UP-PRAVARTAK SHRI AMAR MUNI

The editor-in-chief of this Sutra, is a brilliant ascetic affiliated with Shri Vardhaman Sthanakvasi Jain Shraman Sangh. He is endowed with a maganetic style of oration. When masses listen to the tenets of Jina they are spellbound.

A great worshiper of the tenets of Jina and a devotee of his Guru, Shri Amar Muni Ji was born in a Malhotra family of Queta (Baluchistan) on Bhadva Sudi 5th in the year 1993 V.

He took refuge with Jainagam Ratnakar Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. at an immature age of eleven years. Acharya Samrat entrusted his dear grand-disciple, Bhandari Shri Padmachandra Ji M. with the responsibility of cutting and polishing this raw gem. Gurudev Shri Bhandari Ji M. indeed, put Amar (immorta) on the path of immortality. He studied Sanskrit, Prakrit, Agams, Grammar and Literature to gain fame in the Jain society as an eloquent orator, an effective religions preacher and a scholar and interpreter of Jain Agam literature.

He has written nice and detailed commentaries of Bagavati Sutra (in four parts), Prashnavyakaran Sutra (in two parts), Sutrakritanga Sutra (in two parts) and some other Agams. He is the one who came out with the unique concept of the publication of Ilustrated Agam literature.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

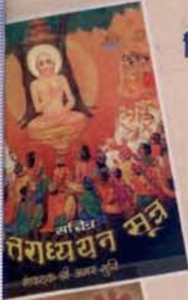

विश्व में पहली बार जैन साहित्य के इतिहास में एक नया शुभारम्भ

सचित्र आगम : हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद के साथ

For the first time in the history of Jain Literature a unique beginning Illustrated Agams With Hindi and English Translations

सचित्र उत्तराध्ययनसूत्र *(Illustrated Uttaradhyayan Sutra)* **Rs. 500.00**
भगवान महावीर की अन्तिम वाणी अत्यन्त शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्द्धक जीवन सन्देश।
The last sermon of Bhagavan Mahavir. Inspiring and enlightening teachings.

सचित्र अन्तकृद्दशासूत्र *(Illustrated Antakriddasha Surtra)* **Rs. 500.00**
अष्टम अंग। ९० मोक्षगामी आत्माओं का तप-साधना पूर्ण रोचक जीवन वृत्तान्त।
The eighth Jain canon (Anga). Inspiring stories of the spiritual pursuits of 90 great men destined to be liberated.

सचित्र कल्पसूत्र *(Illustrated Kalpa-Sutra)* **Rs. 500.00**
पर्युषण पर्व में पठनीय २४ तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र व स्थविरावली आदि का वर्णन। रंगीन चित्रमय।
Most suited for study during the Paryushan Parva. The biographies of the 24 Tirthankars along with the chronological list of the Sthavirs of the post Mahavir Jain tradition. Multicolored illustrations.

सचित्र ज्ञाता धर्म कथांगसूत्र (भाग १, २) **Rs. 1000.00**
(Illustrated Jnata Dharma Kathang Sutra, Part 1 & 2)
भगवान महावीर द्वारा कथित बोधप्रद दृष्टान्त एवं रूपकों आदि को सुरम्य चित्रों द्वारा सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है।
Famous inspiring and enlightening tales told by Bhagavan Mahavir presented with colorful illustrations in this unique and attractive edition of the sixth Jain canon.

सचित्र दशवैकालिकसूत्र *(Illustrated Dashavaikalik Sutra)* **Rs. 500.00**
जैन श्रमण की सरल आचार संहिता : जीवन में पद-पद पर काम आने वाले विवेकयुक्त, संयत व्यवहार, भोजन, भाषा, विनय आदि की मार्गदर्शक सूचनाएँ। आचार विधि को रंगीन चित्रों के माध्यम से आकर्षक और सुबोध बनाया गया है।
The simple rule book of Shraman conduct rendered vividly with the help of colorful illustrations. Useful at every step in life, even for common man, as a guide book for good behavior, balanced conduct, and norms of etiquette, food and speech.

सचित्र श्री नन्दीसूत्र *(Illustrated Sri Nandi Sutra)* **Rs. 500.00**
मतिज्ञान-श्रुतज्ञान आदि पाँच ज्ञान का सर्वांग पूर्ण विवेचन चित्रों सहित।
All enveloping discussion of the five facets of knowledge including Mati-Jnana and Sruta Jnana.

सचित्र आचारांग सूत्र (भाग १, २) *(Illustrated Acharanga Sutra-Part 1&2)* **Rs. 1000.00**
आचारांग सूत्र भगवान महावीर के दर्शन का आधारभूत प्रथम अंग सूत्र है।
Acharanga Sutra is the first Anga Sutra, the foundation of Bhagavan Mahavir's philosophy.

सचित्र उपासक दशा एवं अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र
(Illustrated Upasak Dasha and Anuttaraupapatik-Dasha Sutra) **Rs. 500.00**
१० श्रावकों तथा ३३ श्रमणों की तपःसाधना का वर्णन।
Description of Spiritul and ascetic practices of 10 Shravaks and 33 Shramans.

सचित्र रायपसेणिय सूत्र *(Illustrated Raipaseniya Sutra)* **Rs. 500.00**
राजा प्रदेशी और केशीकुमार श्रमण के बीच हुई आध्यात्मिक चर्चा।
The spiritual discussions between Keshi Kumar Shraman and King Pradeshi.

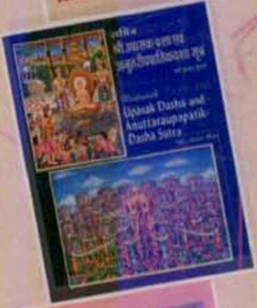

सभी सचित्र आगमों के सम्पादक वाणी भूषण उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org